

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

शोध अंक 22

अप्रैल-जून 2013

200 रूपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 07838090732

ई-मेल : shodhdisha@gmail.com

वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन०सी०आर०

अनुभूति

सी-106, शिव कला

बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा

फोन : 09952070700

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल

एफ-403, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,

गुडगाँव (हरियाणा)

फोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ० हरिशरण वर्मा

एफ-120, सेक्टर 10

डी०एल०एफ० (के०एल० मेहता स्कूल के पास)

फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन :

व्यक्तिगत : तीन हजार रूपए

संस्थागत : चार हजार रूपए

वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रूपए

यह प्रति : दो सौ रूपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

- डॉ० आर०पी० सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)
- डॉ० अशोक चक्रधर, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
- डॉ० हरिमोहन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, के०एम०मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ० आदित्य प्रचंडिया, प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
- डॉ० रामसजन पांडेय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ० दामोदर खड्से, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा०)
- डॉ० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- डॉ० पद्मा पाटिल, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० माया टाक, प्रोफेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० नरेंद्रकिशोर पांडेय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० अनिलकुमार जैन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
- डॉ० बाबूराम, प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र
- डॉ० चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे (महा०)
- डॉ० मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० जितेंद्र वत्स, प्रोफेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० हरeram पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
- डॉ० शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)
- डॉ० श्यामधर तिवारी, प्रोफेसर हिं०वि०, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० सभापति मिश्र, पूर्व प्राचार्य, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० शाहबुद्दीन शेख, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० संतोषकुमार गौड़, रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०)
- डॉ० सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना० महा०, मेरठ

आजीवन सदस्य

डॉ० रामानंद शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी०जी०) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ०प्र०)

डॉ० मधुलिका तिवारी

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल०आर० पी०जी० कॉलेज, साहिबाबाद
गाषियाबाद (उ०प्र०)

श्री हरिराम 'पथिक'

स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं० 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ०प्र०)

डॉ० वंदना सेमल्टे

टी०एफ० 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाजियाबाद 201001

डॉ० मनमोहन शुक्ल

147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

डॉ० अश्विनीकुमार 'विष्णु'

अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा०)

डॉ० शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख

(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको, अहमदनगर 414003
09850119687

डॉ० लियाकत मियाँ भाई शेख

अखिलेश नगर, प्लॉट क्र० 11
नए बस स्टैंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा०
09423933402

प्रो० शेख मुहम्मद शाकिर शेख बशीर

अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा०)
09423017017

डॉ० अशोक द्रौपद गायकवाड़

'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा०) 414003
09822941330

प्रा० दत्तात्रय माधवराव टिलेकर

द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं० 13
पाटील अली, ओतूर
तह० जुन्नर, ज़िला पुणे (महा०) 412409
09860229544

डॉ० मजीद मुनीर शेख

ग्राम व पो० साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह० अंबड
षिला जालना (महा०) 431212
09765944586

श्री अरुणकुमार भगत

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ०प्र०)

डॉ० मेहमूद रसूल पटेल

दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा०)

डॉ० भरत त्र्यंबक शेणकर

द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो० व तह० अकोले
षिला अहमदनगर (महा०) 422601
09423164521

डॉ० पोपट विठ्ठल कोटमे

फ्लैट नं० 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा०) 422006
09850760866

प्रा० अनंत नानाजी केदारे

5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा०)

डॉ० शोभा साहेबराव राणे

17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा०) 422013

डॉ० श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके

सुशीला सोसायटी, प्लॉट क्र० 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफिस
नागपुर 440014 (महा०)

डॉ० मंजूर चाँदभाई सय्यद

'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा०)
09822991516

प्रा० (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार

स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड
कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा०)
09011449636

डॉ० एस०एन० देवरे

प्लॉट नं० 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा०) 424002

डॉ० अर्चना वालिया

286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ० विपिनकुमार गिरि

पुराना माधव नगर, भारद्वाज गली, सहारनपुर (उ०प्र०)

श्री हेमांशु शर्मा

हिंदी विभाग, साईदास ए०एस०सी० सी०से० स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या

आर०बी०डी० महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ०प्र०) 246701

प्राचार्या

कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या,

कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ० विद्या चौधरी

मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ० विजय इंदु

1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुडगाँव (हरियाणा) 122001

डॉ० सुधरानी सिंह

सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ०प्र०)

डॉ० राजेंद्र मिश्र

14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 252730 (म०प्र०)

डॉ० स्मृति शुक्ला

ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म०प्र०)

डॉ० सुरेंद्र यादव

301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ० प्रेमव्रत तिवारी

सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ०प्र०)

प्रो० डॉ० चंद्रकांत मिसाल

हिंदी विभाग,
एस०एन०डी०टी० वुमन विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री शारदा बी. जावरे

ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र० 402

प्लॉट नं० 26, सर्व क्र० 137/1 ए,

बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)

08805616654

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश

661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,
षिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर, मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री, षिला धुले 424304

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह. साक्री, षिला धुले 424304

प्रा. डॉ. प्रमोद गोकुळ पाटील
मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. षिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ. अभयकुमार रमेश खैरनार
मु. पो. जुनवणे, तह. जि.धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ. संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीराम नगर, वाडीभोकर रोड,
देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

प्रा. उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागडे
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
षिला नासिक (महा.)

प्रा. डॉ. अशफाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ. महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

डॉ. सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं. 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्रा. डॉ. योगेश गोकुळ पाटील
प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपूर, धुले 424002

प्रा. डॉ. मंजू तरडेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमार नगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ. चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ. संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि. नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ. देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी, धुले रोड
अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ. कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि. नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

प्रा. डॉ. रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग, कंवांवि महाविद्यालय, नवापुर,
षिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ. रेखा वसंत पाटील
सीतामाई नगर, चालिसगाँव
जिला-जलगाँव (महा.) 424101

प्राचार्य
विद्यार्थिनी महाविद्यालय, धुले (महा.) 424001

डॉ. हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

डॉ. पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ्फरनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

सुश्री नेहा संदीप घोरपडे

द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं० 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं० 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर

फ्लेट नं० 12, एस नं० 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

प्रा० शिंदे नवनाथ सर्जेराव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

डॉ० ज्योतिसिंह

213 अनूपनगर
सी०एच०एल० अपोलो हास्पिटल के सामने
ए०बी० रोड, इंदौर 452008 (म०प्र०)
09926300355

सुश्री मीनल वारें

बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास, शिवाजी नगर, जेल
रोड, नासिक रोड (महाराष्ट्र)

Dr. V. Jayalakshmi

Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam
Chennai-600100

प्रा० ईश्वर पदमसिंग ठाकुर

जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर
तहसील यावल (जलगाँव)

सुश्री भारती मधुकर पाटील

मु०पो० सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा०)

डॉ० सुचित्रा मलिक

37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

के 83 सी आशियाना
लखनऊ 226012
09415917170

प्राचार्य

शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म.प्र.)

डॉ० चंद्रा तलेरा जैन

जी-17, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001
09425944773

डॉ० वंदना अग्निहोत्री

194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001
09926477787

डॉ० चंद्रकिरण अग्निहोत्री

108, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001

डॉ० जुबैदा हाशिम मुल्लाँ

बैतुल हाशमी, म०नं० 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

प्रो० दीपक विश्वासराव पाटील

मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील जिला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा०) 424002
099923811609

डॉ० अनिता मधुकर अंतरे

मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो० लोनी बी के, तालुका रहाता,
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

नुक्कड़, अभिनेता और हम दर्शक

जब मैं आपसे यह कहता हूँ कि मनुष्य धरती का पहला ऐसा प्राणी है, जो अदाकारी कर सकता है, अभिनय कर सकता है तो मेरी बात का यह अभिप्राय भी है कि यदि यह बात सत्य नहीं है तो कोई दूसरा प्राणी लाएँ, जो इतनी कुशलता के साथ अनुकरण कर सकता हो। मुझे विश्वास है कि आप ऐसा नहीं कर सकेंगे। आप ऐसा इसलिए नहीं कर सकेंगे कि अभिनय या अदाकारी के इतने गुण किसी और प्राणी में हैं ही नहीं, जितने कि आदमी में हैं। यद्यपि थोड़ी-बहुत नाट्य कुशलता तो प्रत्येक व्यक्ति में होती है, प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ अदाकारी कर सकता है, अभिनय कर सकता है, लेकिन जिनमें यह गुण असाधारण या उच्चस्तर का होता है, वे इसे कला का रूप देकर अपनी इस क्षमता का अद्भुत प्रदर्शन करने में सफल हो जाते हैं।

आदमी कबसे अभिनय कर रहा है? हजारों-लाखों वर्ष पुराने कलेंडर पर इसकी सही तिथि या काल को चिह्नित करना संभव नहीं है, लेकिन अब तक की खोज ने इस तथ्य को लगभग सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य ने अपने इतिहास के जिस प्रारंभिक काल में समूहों में एकत्र होकर रहना सीखा था, तभी से उसने नाट्यकला से अपना मनोरंजन करना भी सीख लिया था। गीत, नृत्य और नाट्य, ये तीन कलाएँ ऐसी हैं, जो आरंभ से मानव की सामूहिक गतिविधियों का केंद्र रही हैं। मनुष्यों के समूह दिन-भर के कड़े परिश्रम के बाद जब रात को निश्चित होकर मिल बैठते तो वे सामूहिक रूप से मनोरंजन की मुद्रा में गीत गाते, नृत्य करते या उन चीजों की नक़ल करके अपना मन बहलाते, जो उनके अनुभव में आ चुकी होती थीं।

चित्रकला भी इतनी ही पुरानी है, जितनी मानव-सभ्यता। खुदाई में जो प्राचीन गुफाएँ मिली हैं, उनमें पशु-पक्षियों के चित्र ही नहीं मिले, अभिनय करते हुए मानव-समूहों की चित्रकारी भी देखी गई है। मनुष्य की बुद्धि दूसरे समस्त प्राणियों की तुलना में अधिक तेज एवं कुशाग्र थी। वह गायन कर सकता था, नृत्य कर सकता था। दूसरे प्राणियों के लिए यह सब करना संभव नहीं था। आगे चलकर आदमी की इन कलात्मक प्रवृत्तियों ने मानव-सभ्यता को किस सीमा तक समृद्ध किया, इसका प्रमाण सभी ललित कलाओं के साथ-साथ नाट्यकला के निरंतर विकास में मिल सकता है। नाट्यकला ने मानव-समाज को विभिन्न रूपों में प्रभावित किया है। इसे विभिन्न शैलियों में रचा गया और विभिन्न रूपों में इसका प्रदर्शन किया जाता रहा।

नाट्यकला अपने विकास के प्रारंभिक काल में आदमी के सामान्य सामाजिक जीवन के साथ जुड़ने के अतिरिक्त उसकी धार्मिक गतिविधियों के साथ भी जुड़ी। कितने ही नाटक विभिन्न मानव-समुदायों की विभिन्न धार्मिक आस्थाओं के आधार पर रचे और प्रदर्शित किए जाते रहे हैं। रामलीला, इंद्रसभा, कृष्णलीला, राजा हरिश्चंद्र, खुदा दोस्त सुलतान कितने ही प्राचीन

नाटक ऐसे हैं, जो शताब्दियों तक भारत के जनमानस की अभिरुचि तथा उसकी धार्मिक आस्थाओं के साथ जुड़े रहे और करोड़ों लोगों के आकर्षण का केंद्र बने रहे। आज भी गाँव-गाँव और शहर-शहर में इन नाटकों का प्रदर्शन होता है और आज भी असंख्य लोग इनसे भावनात्मक स्तर पर जुड़े हुए हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि समय के साथ विकसित होती गई नाट्यकला को नियमित मंच तो बहुत बाद में मिला। आरंभ में तो यह खुले मैदानों अथवा छायादार वृक्षों के नीचे पलती रही। नौटंकी हो या कठपुतली का तमाशा, रामलीला हो या खुदा दोस्त सुलतान की नाट्यकथा, बिना सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित मंच के ही भारी जनसमूह के बीच इनका प्रदर्शन किया जाता रहा। इन्हें हम नाट्यकलाओं के प्रारंभिक रूप भी कह सकते हैं।

यह कहना ग़लत न होगा कि अन्य ललित कलाओं की तुलना में चाहे वह गीत हो या नृत्य, नाटक में अपने दर्शकों को प्रभावित करने की क्षमता अधिक है। क्योंकि जब आप कविता पढ़ रहे होते हैं या उसे सुन रहे होते हैं, तो आपके साथ बुद्धि, कान या आँखें ही संगत कर रही होती हैं, इसी तरह जब आप नृत्य देख रहे होते हैं तो बुद्धि और आँखें ही आपकी सहयोगी होती हैं; किंतु जब आप एक दर्शक के रूप में किसी नाटक में सम्मिलित होते हैं तो आपकी आँखें, कान अथवा यों कहिए कि आपकी समस्त इंद्रियाँ सक्रिय होकर उससे आनंदित होती हैं। यही नाट्यकला की श्रेष्ठता और विशेषता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि नाटक को सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित मंच तो बहुत बाद में मिला। प्रारंभ में तो यह गलियों, कूचों, मैदानों तथा छायादार वृक्षों के नीचे ही पलता रहा। इसी आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि अमंचीय नाटकों की इसी प्राचीन परंपरा ने आगे चलकर कुछ विशेष परिस्थितियों के परिणामस्वरूप नुक्कड़ नाटकों की परिपाटी को उभरने एवं विकसित होने में सहायता दी। आइए, इसका एक संक्षिप्त-सा अवलोकन करें।

साहित्य का इतिहास हमें बताता है कि शताब्दियों लंबी अवधि में नाट्यकला के जितने रूप हमारे सामने आए हैं, आरंभ में वे आदमी की मनोरंजनप्रियता तथा हास्य-विनोद की मौलिक प्रवृत्ति से जन्मे थे। आज हम देखते हैं कि मंचीय नाटकों से लेकर, फ़िल्म के पर्दे पर दिखाए जानेवाले चलचित्रों, दूरदर्शन के स्क्रीन पर दिखाई जानेवाली नाट्य-गाथाओं, सीरियलों, आकाशवाणी से प्रसारित होनेवाले नाटकों तथा बस्तियों के भीड़-भरे स्थानों पर खेले जानेवाले नुक्कड़ नाटकों तक, इस कला के विभिन्न रूप हमारे सामने हैं। इसी के साथ-साथ प्राचीन ढंग की परंपरागत नौटंकीयों के अतिरिक्त धार्मिक महत्त्व के नाट्य-प्रदर्शन भी अब तक हमारे समाज का अनिवार्य अंग बने हुए हैं। इन्होंने लोकप्रियता का ऐसा रिकार्ड बनाया है कि शायद ही ऐसा कोई और उदाहरण मिल सके। दूरदर्शन पर दिखाए गए रामायण और महाभारत जैसे नाटकों ने जिस गहराई से भारतीय जनमानस को प्रभावित किया, वह स्पष्ट रूप में इस बात का प्रमाण है कि धार्मिक आस्थाओं से अलग हटकर भी नाट्यकला जनसाधारण को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करने की क्षमता रखती है, शर्त यह है कि वह कला की दृष्टि से उच्चकोटि की हो।

इसमें कोई दो मत नहीं कि भारत में नाट्यकला का विकास वैदिककाल से ही आरंभ हो गया था। यह भी सर्वविदित है कि भरत-प्रणीत नाट्यशास्त्र नाट्यविधा का आदिग्रंथ माना जाता है। हम भारतीयों की आस्था है कि स्वयं ब्रह्मा ने ही नाट्यविधा को परिभाषित किया है। भारतवासियों की मान्यता है कि त्रेतायुग में देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद,

सामवेद तथा अथर्ववेद के आधार पर पंचम वेद यानी नाट्यवेद की रचना की। इस वेद में चार अंग हैं—पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस। इससे यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि भारत में नाट्यकला की परंपरा कितनी पुरानी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रो० पिशेल आदि के मत से सहमति व्यक्त करते हुए लिखा कि ऋग्वेद में पाए जानेवाले संवाद-सूत्र वास्तव में नाटक के प्रारंभिक अंश ही हैं। उक्त निष्कर्षों के आधार पर हम यह दावा तो कर ही सकते हैं कि वैदिककाल में नाट्यकला भले ही पूर्ण रूप में विकसित एवं सुगठित न हुई हो, किंतु संवाद और कला-सामग्री के दृष्टिकोण से यह अपने लिए आधार अवश्य तैयार कर रही थी। यूरोपीय शोधकर्ता डॉ० रिजवे ने तो आदिमानव की पूजा-भावना के विभिन्न रूपों को भी नाट्यकला की प्रारंभिक स्थिति स्वीकार किया है। कुछ अन्य यूरोपीय विद्वानों जैसे प्रो० हिलेब्रां तथा प्रो० कोनो ने भी इस बात से सहमति व्यक्त की है कि नाट्यकला का उदय लौकिक कृत्यों के माध्यम से हुआ है। प्राचीन लोकसमाज में गाए जानेवाले गीतों, नृत्यों तथा मौसमों और उत्सवों में संपन्न होने वाली विभिन्न गतिविधियों के गर्भ से ही नाटक ने जन्म लिया है। कठपुतली के खेल तथा छाया नाटकों से इस कला का प्राचीन संबंध है। जब हम नाट्यकला की प्राचीनता को खोजने के लिए निकलते हैं तो हमारा संपर्क सर्वप्रथम वैदिककाल की नाट्य-संबंधी सामग्री से ही होता है। इसी के साथ-साथ हमें लोकनाट्य-परंपरा के सूत्र भी आसानी से मिल जाते हैं।

लोकनाट्य-परंपरा के प्रमाण तो हमें सशक्त और स्पष्ट रूप में आठवीं-नवीं शताब्दी के इतिहास में मिलने आरंभ हो जाते हैं। हम देखते हैं कि भारत पर निरंतर होनेवाले विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप जो दबाव, दमन तथा अशांति की स्थिति समय-समय पर उत्पन्न होती रही, उसमें लोकनाट्य-परंपरा तेजी से विकसित हुई। इस कला के माध्यम से हास्य और व्यंग्य की शैली में जन-कलाकारों ने अपने क्रोध और विरोध को अभिव्यक्त किया। लेकिन तब तक नाट्य-लोकविधा में कला का स्तर इतना सशक्त नहीं हुआ था, जितना बाद में हुआ। परिणामतः उस युग में कोई उल्लेखनीय नाटककार सामने नहीं आया। मुगलकाल इस दृष्टिकोण से और भी दुर्भाग्यपूर्ण रहा। इसमें नाटक-लेखन अथवा नाटक-रचना लगभग रुक-सी गई। केवल जनमानस के आधार पर वही नाट्यसामग्री मंचित अथवा प्रदर्शित होती रही, जो पहले से उपलब्ध थी। इसी के साथ जब हम सामान्य लोकजीवन में झाँककर देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि अन्य लोककलाओं की भाँति नाट्यकला भी जनता के स्तर पर जीवित रही। इसे प्रमाणित करने के लिए कहीं बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। बंगाल में जात्रा, बिहार में विदेसिया, अवध की पूर्वी बोली, अवधी बोली ब्रज तथा खड़ीबोली में हमें जो रासरंग, स्वांग, नौटंकी, भांड और नक्काल देखने को मिलते हैं, वे इसी जननाट्य कला के विभिन्न रूप हैं, जो निरंतर भारतीय जनमानस के आकर्षण का कारण बने रहे।

लोकनाटक की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वह अपने लिए किसी सुव्यवस्थित मंच की माँग नहीं करता। वह आरंभ से ही मुक्त आकाश के नीचे अपने पाँव जमाता आया है। यह तो अपनी आवश्यकता के लिए अवसर के अनुसार अस्थाई मंच निर्मित करता है और उन अनिवार्यताओं से अपने-आपको बचा लेता है, जो स्थाई मंच के लिए आवश्यक मानी जाती हैं। यह जननाटक पर्वों, धार्मिक उत्सवों एवं अनुष्ठानों के अवसरों पर खेले जाते रहे हैं और इनकी परंपरा बहुत पुरानी है।

आगे चलकर हमें हिंदी-नाटक का व्यवस्थित रूप दिखाई देता है। इसे हम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारतेंदुयुग के नाम से परिभाषित कर सकते हैं। यद्यपि भारतेंदुयुग से पूर्व भी हिंदी-नाटक की मंचीय परंपरा कर सकते हैं। यद्यपि भारतेंदुयुग से पूर्व भी हिंदी-नाटक की मंचीय परंपरा विद्यमान है, भारतेंदुपूर्व हिंदी-नाटकों की सूची में रास शैली के नाटक, संस्कृत प्रभाववाले नाटक तथा अँग्रेजी नाटक के अनुवाद ही प्रमुख रूप से हमारे सामने आते हैं, लेकिन भारतेंदुयुग में इन्हें परिस्थितियों के अनुसार मोड़ा एवं विकसित किया गया। भारतेंदु ने सर्वप्रथम यह अनुभव किया कि भारतीय जनता को केवल संस्कृत परिपाटी पर आधारित नाटकों से संतुष्ट रखना समय के अनुकूल नहीं है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि पारसी रंगमंच भी भारतीय जनमानस की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाएगा। तब उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर नाटकों के लेखन तथा मंचन पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतेंदु के उदय से हिंदी-नाट्यकला को एक नई दिशा मिली। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि भारतेंदु न केवल आधुनिक हिंदी-नाटक के जन्मदाता हैं, बल्कि समस्त हिंदी-साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन के पुरोधा ऐतिहासिक महापुरुष हैं। उन्होंने और उनके समकालीन नाटककारों ने लीक से हटकर अपने-आपको समसामयिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के साथ जोड़ा तथा उद्देश्य को प्रमुखता देकर कलात्मक नाटकों की रचना की। इन नाटककारों ने अपना ध्यान विशेष रूप में देश की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक समस्याओं की ओर केंद्रित किया। यह समय हिंदी-नाटक के लिए परिवर्तनशीलता का युग था। पूरा देश उथल-पुथल से भरा हुआ था। यह वह समय था, जब एक ओर पुरातनवादी वर्ग अपनी सारी परंपराओं तथा रूढ़िवादी रीति-रिवाजों को ज्यों-का-त्यों बनाए रखने और उन्हें भारतीय संस्कृति का अपरिवर्तनीय आधार मानने की हठ कर रहा था, तो दूसरा वर्ग प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों के बंधन से निकलकर पुनर्जागरण की ओर अग्रसर हो रहा था। ऐसी स्थिति में भारतेंदु हरिश्चंद्र की दृष्टि नाट्यकला की ओर गई। क्योंकि यह कला अपनी प्राचीन परंपरा के कारण हास-परिहास अथवा मनोरंजन के दायरे से आगे नहीं निकल पा रही थी। इस नाट्य-परंपरा में कला और उद्देश्य दोनों का भारी अभाव था। इसके साथ ही रंगमंच की दशा भी शोचनीय थी। भारतेंदुयुग में यह गतिरोध टूटा और नाटक को उद्देश्यपूर्ण एवं संदर्भों के साथ जोड़कर एक व्यवस्थित रंगमंच दिया गया। इस युग में ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनीतिक, रोमांटिक तथा राष्ट्रीयता प्रधान नाटक तो लिखे ही गए, साथ ही अच्छे और उच्चस्तरीय नाटकों का संस्कृत, बंगला तथा अँग्रेजी भाषाओं से अनुवाद भी किया गया।

यह घटना भी स्मरण कर लेनी चाहिए कि हिंदी-नाट्यकला का सबसे पहला रंगमंच काशी में 1868 में 'बनारस थिएटर' के नाम से स्थापित किया गया था। हिंदी-नाटक के विकास तथा रंगमंच की स्थापना की इसी पृष्ठभूमि में साहित्य के युगपुरुष जयशंकर प्रसाद का उदय हुआ। वे नाटक-रचयिता थे, अभिनेता नहीं थे। उन्होंने ऐतिहासिक विषयों से जुड़े सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले तथा भारतीय गौरव को दर्शाने वाले उच्चस्तरीय नाटक लिखे। हिंदी-नाटक को भारतेंदु ने जहाँ छोड़ा था, प्रसाद ने उसे आगे चलकर नया मोड़ दिया। प्रसाद ने हिंदी-नाटकों में ऐसे विषय भी जोड़े, जो उनसे पहले अमान्य अथवा अशोभनीय समझे जाते थे। उदाहरण के लिए हमें इन नाटकों में मंच पर ही युद्ध, मृत्यु, हत्या, आत्महत्या, अपहरण आदि-आदि के दृश्य भी

दिखाई देते हैं। स्पष्ट है कि यह शैली पाश्चात्य परंपरा के प्रभाव से हिंदी-नाटकों में आई और इससे नाट्यकला का क्षेत्र और विकसित हुआ।

यह सर्वविदित है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद का समय हिंदी-नाट्यकला के लिए विकास का उपयुक्त समय था। इस युग में गोविंदवल्लभ पंत, उग्र, सेठ गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, मुंशी प्रेमचंद, आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा उदयशंकर भट्ट ने अच्छे मंचीय नाटक लिखे। इस युग में मौलिक नाटक भी लिखे गए; पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय व समस्या-प्रधान नाटक भी। इस युग में अच्छे नाटकों का विभिन्न भाषाओं से अनुवाद भी हुआ। लेकिन यह भी सही है कि जिस युग को हम 'प्रसादयुग' का नाम देते हैं, वह रंगमंचीय दृष्टि से बहुत कम विकसित हुआ। प्रसादयुग में के उपरांत नाट्यकला के जिन रूपों का उदय हुआ, उनमें एकांकी की विधा अपना विशेष महत्त्व रखती है। यह एक नवीन तथा स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित भी हुई और लोकप्रिय भी। एकांकी के साथ वे सारे विषय और समस्याएँ भी जुड़ गईं, जो अब तक नाट्यकला से दूर थीं। एकांकी की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि इसमें समस्त आडंबरों को त्यागते हुए सामान्य जनजीवन और उससे जुड़ी समस्याओं को प्रस्तुत किया जाने लगा था। इन दैनिक समस्याओं में दर्शक अपने-आपको व्यक्तिगत रूप में सम्मिलित पाता था, जबकि पुराने राजा-महाराजाओं अथवा दैवीय घटनाओं पर रचित नाटकों से सामान्यजन की कोई संबद्धता नहीं होती थी। हिंदी में एकांकी नाटकों की रचना एवं प्रस्तुति यों तो भारतेंदु एवं द्विवेदीयुग में भी होती रही, किंतु उस समय ऐसा कोई लेखक या नाटककार उभरकर सामने नहीं आया, जो एकांकी रचना को नवीन शिल्प एवं कथा के मापदंडों से जोड़ता। बाद में एकांकी को नया रूप, नई तकनीक तथा प्रस्तुतीकरण का नया रंग-ढंग मिला।

देश की स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी-एकांकी के विकास को और अधिक अनुकूल वातावरण मिला। उसके परिपक्व होने की संभावनाएँ और अधिक उज्ज्वल हुईं। इस प्रकार एकांकी एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो गया।

इस संक्षिप्त विवरण तथा परिचय के उपरांत अब हम अपने मूल विषय की ओर अग्रसर होते हैं। यह तथ्य ध्यान में रहना चाहिए कि जब-जब राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिस्थितियाँ जनसामान्य के अनुकूल नहीं होती हैं, मानसिक और सामाजिक दबाव बढ़ता है, तब-तब लोककलाएँ अपने लिए ऐसे क्षेत्र सरलतापूर्वक खोज लेती हैं, जहाँ वे अपने युग की मानवीय भावनाओं को सशक्त एवं प्रभावकारी ढंग से व्यक्त कर सकें। मंचीय नाटकों से जब हम नुक्कड़ नाटकों तक पहुँचते हैं, तो ठीक ऐसी ही स्थिति से हमारी भेंट होती है। यह तो हम बता ही चुके हैं कि हमारे यहाँ अमंचीय नाटकों की परंपरा अत्यंत पुरानी है। हमारे यहाँ शताब्दियों पहले से धार्मिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटक खुले आसमान के नीचे खेले जाते रहे हैं। इसी सशक्त परंपरा के गर्भ से नुक्कड़ नाटकों का उदय हुआ, जो बाद में विकसित होते-होते एक अलग एवं स्थाई विधा के रूप में स्थापित हो गया। नाटक के इस प्रस्तुतीकरण को किसी सुव्यवस्थित मंच की आवश्यकता नहीं थी। उद्देश्य केवल जनसामान्य को जागरूक करते हुए उन समस्याओं से जोड़ना था, जो समाज में विद्यमान थीं और जिनसे जनमानस जूझ रहा था।

जिन नाटकों को हम नुक्कड़ नाटकों का नाम देते हैं, वे सर्वप्रथम तो समस्त रंगमंचीय

ताम-झाम और साज-सज्जा से मुक्त होते हैं। साथ ही उनकी भाषा सरल तथा आम लोगों के सांस्कृतिक स्तर से जुड़ी होती है, तीसरे उनमें पूरा बल संवाद और अभिनय पर दिया जाता है, दृश्यों पर नहीं। अत्यधिक संक्षेप में कहना चाहें तो हम यह भी कह सकते हैं कि नुक्कड़ नाटक भारतीय जनता की सामयिक एवं वास्तविक भावनाओं की अभिव्यक्ति भर हैं। लोककलाओं के ढंग पर ही इनका विकास हुआ है।

अभिनय की अधिक-से-अधिक संभावनाएँ एवं परिस्थितियाँ तो सभी प्रकार के नाटकों की आत्मा है, किंतु अभिनय की प्रधानता नुक्कड़-नाटकों के लिए सबसे पहली और जरूरी शर्त है, क्योंकि नुक्कड़ नाटक के पास दर्शकों को प्रभावित करने के लिए रोशनी, साज-सज्जा, मंच, दृश्य तथा अन्य ऐसी कोई सामग्री तो होती नहीं। इसके कलाकार को तो केवल अभिनय और संवादों से ही काम लेना होता है। यदि अभिनय कमजोर, कथ्य में नाटकीयता दुर्बल, संवाद शिथिल तथा प्रस्तुतीकरण ढीला हो तो नुक्कड़ नाटक दर्शकों को प्रभावित करने और उन्हें अपने साथ जोड़ने में सफल नहीं हो पाएगा। मंचीय नाटकों में अनिवार्य अन्य वस्तुओं की पूर्ति नुक्कड़ नाटकों में अच्छे अभिनय तथा चुटीले संवादों से होती है। यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि नुक्कड़ नाटकों की विधा को 'इप्टा' जैसे संगठन-द्वारा जो प्रोत्साहन मिला, उसे नकारना संगत न होगा। इप्टा ने इस क्षेत्र में ऐतिहासिक काम किया और यह संगठन अब भी नुक्कड़ नाटकों को आगे बढ़ाने और जनता को इससे जोड़ने में विशिष्ट भूमिका निभा रहा है।

पाँचवें दशक के प्रारंभ (1942) में हमारे यहाँ 'भारतीय जननाट्य संघ' की स्थापना हुई थी। यह वह समय था, जब भारत में अँग्रेज शासकों का दमन अपनी पराकाष्ठा पर था। दूसरे महायुद्ध ने भारी नरसंहार किया था, महँगाई ने जनता के मुँह से रोटी छीन ली थी, बंगाल के अकाल ने तीस लाख लोगों से भी अधिक की जान ले ली थी, किंतु जनविरोध को मुखर होने के लिए मार्ग नहीं मिल रहा था। ऐसे में नुक्कड़ नाटकों ने इस चुनौती को स्वीकार किया। गली-गली और गाँव-गाँव, चौराहे-चौराहे और नुक्कड़-नुक्कड़ इन नाटकों का प्रदर्शन किया गया। इनके साथ जनता बहुत बड़ी संख्या में जुड़ी।

स्वतंत्रता के उपरांत भी जनसमस्याओं को लेकर नुक्कड़ नाटक लिखे और खेले जाते रहे। ये आज भी जनमानस की रुचि का केंद्र हैं।

—डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ०प्र०)

अनुक्रम

नुक्कड़, अभिनेता और हम दर्शक/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	7
नई समीक्षा का शास्त्र/ विद्याचस्पति प्रोफ़ेसर (डॉ०) आदित्य प्रचंडिया	15
सामाजिक प्रस्थिति और नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक/ डॉ० अशोक उपाध्याय	22
कवि नीलकंठ के काव्य में पर्यावरण के प्रति चिंता/ डॉ० चंद्रकांत मिसाल	32
विद्यापति के काव्य में संगीत तत्त्व/ मीना अग्रवाल	40
हिंदी की उषा प्रियंवदा तथा मराठी की सानिया के उपन्यास में चित्रित बदलती नारी प्रतिमा : तुलनात्मक अध्ययन/ डॉ० सुनील बाबुराव कुलकर्णी	49
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के गजल संग्रह 'आदमी है कहाँ' में आदमी की खोज प्रा० डॉ० शिवाजी नामदेवराव देवरे/दीपक विश्वासराव पाटिल	59
आचार्य कुलपति मिश्र का ध्वनि-निरूपण/ गुंजन त्रिपाठी	63
वैदिक एवं जैन साहित्य में नारी/ डॉ० चंदा तलेरा जैन/डॉ० पुष्पा शाक्य	73
समाचार की भाषा एवं प्रयोजनमूलक हिंदी/ डॉ० वंदना अग्निहोत्री	78
'आवां' उपन्यास में स्त्री-संघर्ष / कुमारी संध्या	82
'एक जमीन अपनी' उपन्यास के विज्ञापन जगत में स्त्री-यथार्थ/ कुमारी संध्या	87
हिंदी पुनर्जागरणकाल के आधार भारतेंदुयुग के काव्य की समीक्षा/ डॉ० संजीवकुमार	91
'मन के जीते जीते' उपन्यास शक्ति-संपन्न मन की आवाज़/ डॉ० रुबी जुत्शी	96
प्रवासी साहित्यकार राष्ट्रकवि ब्रजेंद्रकुमार भगत 'मधुकर' जी की काव्य-यात्रा का संक्षिप्त परिचय/ डॉ० ऋषिपाल	100
बीसवीं शती के अंतिम दशक की प्रमुख हिंदी-कहानियों में सामाजिक व्यंग्य/ डॉ० रेनू सिंह	105
बीसवीं शती के अंतिम दशक की प्रमुख हिंदी-कहानियों में राजनेताओं का चरित्र एवं उनकी कार्यप्रणाली पर व्यंग्य/ डॉ० रेनू सिंह	114
'इतिहास की आवाज़' बनाम आज की सच्ची तस्वीर/ डॉ० स्मृति शुक्ल	121
नरेश मेहता के उपन्यासों में नारी-चेतना/ डॉ० उषादेवी	127
महादेवी वर्मा का कला-विधान/ डॉ० सतकुमार	133
अठारहवीं सदी के हिंदी साहित्य में माधुर्य-भाव/ डॉ० सतकुमार	137
पंडित लखमीचंद के सांगों में शृंगाररस/ डॉ० बलजीत सिंह	141
हरियाणवी लोकनाट्य (सांग) में हास्य-व्यंग्य/ डॉ० बलजीत सिंह	146
हरियाणा के सांगों में मानवीय सौंदर्य/ डॉ० बलजीत सिंह	152
मुक्ति का रहस्य : संवेदना एवं शिल्प/ काशीनाथ	158

निबंधकार जयनाथ 'नलिन'/ सत्यपाल	162
हिंदी-मराठी यात्रासाहित्य के शिल्पपक्ष का तुलनात्मक अध्ययन/ डॉ० सचिन कदम	168
दलित-चिंतन : एक अवलोकन/ डॉ० रीता	172
निरुपमा सेवती की कहानियों में नारी के विविध रूप/ प्रा० राहुल सुरेश भदाणे	179
विश्वनाथप्रसाद तिवारी के काव्य में संवेदना/ ममता	184
हिंदी छायावादी काव्य में राष्ट्रीय भावना/ डॉ० संजीवकुमार	190
लक्ष्मीकांत वर्मा के लेख 'मानवमूल्यों के संदर्भ में लघुमानव की कल्पना' का पुनर्पाठ/ मनोजकुमार खाली	195
इलियट की काव्यदृष्टि (निर्वैयक्तिकता और परंपरा/ संवेदनशीलता असाहचर्य और वस्तुनिष्ठ समीकरण)/ मनोजकुमार खाली	203
रम्या रामायणीकथा/ प्रीति त्रिपाठी	207
अज्ञेय के काव्य में सौंदर्य-बोध/ सत्यपाल	210
स्वामी भीष्म का साहित्य आज भी है प्रासंगिक/ डॉ० सुशील कुमार	216
स्वतंत्रता-आंदोलन में जनसंचार की परंपरागत माध्यम भजन-मंडलियाँ :	
एक अध्ययन/ डॉ० सुशील कुमार	221
प्रवासी हिंदी साहित्य में मानवीय संबंध/ डॉ० रीता	226
साहित्य में जीवन-दर्शन की भूमिका/ रुपिंद्र शर्मा	230
क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' में नारी-जीवन/ डॉ० विद्या चौधरी	238
क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' में विस्थापन का दर्द/ डॉ० विद्या चौधरी	242
बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों के उपन्यासों में सामाजिक चित्रण/ श्रीमती पुष्पा	246
कमलेश बख्शी का उपन्यास साहित्य/ प्रा० संजय प्रह्लाद महाजन	251
हरियाणवी लोकगीतों में नारी-भावना/ डॉ० सुनीता देवी	258
इक्कीसवीं सदी में हिंदी भाषाविषयक चिंतन और चुनौतियाँ :	
मीडिया (संचार माध्यमों) के विशेष संदर्भ में/ डॉ० सुनीता देवी	262
मीराबाई के काव्य में प्रेम-निरूपण/ डॉ० सुनीता देवी	268
जयशंकर प्रसाद के काव्य में लोकमंगल की भावना/ डॉ० सुनीता देवी	273
परसाई, जोशी एवं त्यागी व्यंग्य दृष्टि/ पंकजकुमार डी० पटेल	278
जनपद हापुड़ में नगर पालिकाओं की भूमिका भूमिका/ निधि रानी	284
भारत में जनाधिक्य : कारण और दुष्परिणाम/ संजय खर्ब	301
पितृसत्तात्मकता और भारतीय महिलाएँ/ डॉ० सुभाषचंद्र लोहान/संजयकुमार	306
एक शैक्षिक चिंतक के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती के शिक्षादर्शन का मूल्यांकन/ डॉ० आदित्यकृष्ण सिंह चौहान/श्रीमती प्रवीता चौहान	310
तिलक का धर्म तथा अध्यात्म : एक अध्ययन/ डॉ० नीलू कपूर	315
मेरठ तहसील में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक विकास में भूमिका/ डॉ० नीरज तोमर	319

नई समीक्षा का शास्त्र

विद्याचस्पति प्रोफ़ेसर (डॉ०) आदित्य प्रचंडिया डी०लिट्०

साहित्यकार युगीन संवेदनाओं को सतत नवीन सांस्कृतिक परिष्कार देता है। मानव संबंध युगानुरूप नए साँचों में ढलते रहे हैं। समाज के विकास के साथ मानव-संबंध में बदलाव होता रहता है और समाज की विशेष परिस्थितियों की विशेषताएँ उनमें प्रकट होती रहती हैं। साहित्य में उभरते नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठापना और मूल्यांकन हेतु समीक्षा के चले आ रहे मानदंडों पर उठते सवालों के उत्तर में नई समीक्षा का आविर्भाव हुआ। छायावाद के अंतर्मुखी स्वरूप की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद की बहिर्मुखी काव्य-चेतना का प्रकाशन हुआ। प्रगतिवाद की अतिशय बहिर्मुखता की प्रतिक्रिया के रूप में अतिव्यक्तिवादी काव्य-चेतना का अभ्युदय हुआ। परिणामस्वरूप नई समीक्षा का जन्म हुआ। काव्य की अपनी आंतरिकता, गुणवत्ता और बंध के प्रति नए प्रयोग नई समीक्षा को प्रामाणिक बनाते हैं। भारतीय मानस विशेषकर मध्य वित्तीय जनसमूह की संपूर्ण मानसिकता-आशा-निराशा, भय-विश्वास, मृत्यु, स्वप्न, सुख-दुःख, चिंता, उद्वेग, आवेश, आक्रोश, विद्रोह-हिंदी साहित्य में परिलक्षित है। साहित्य में एक ओर साहित्यकार का सौंदर्यबोध, आत्मरति, अहंकार और आत्मविश्वास बोलता है, तो दूसरी ओर मानव-संवेदना के कारण पीड़ितों का वह पक्षधर भी है। रचनाकार की स्वानुभूतियों ने नवीन मानवमूल्यों और संबंधों को जन्म दिया। नवीन साहित्य-बोध की इन प्रवृत्तियों को हिंदी के नए साहित्य ने अभिव्यक्ति दी है। ऐसे साहित्य के मूल्यांकन हेतु समीक्षा के क्षेत्र में नूतन प्रतिमान प्रस्थापित और स्वीकृत हुए, जिन्होंने नई समीक्षा को जन्म दिया।

स्वाधीनता के बाद का समय नवलेखन, नई कविता, नई कहानी, नई समीक्षा आदि का अर्थात् 'नए' का समय है। 'नव' और 'नया' विशेषण लगाकर सैकड़ों समीक्षा-पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। शब्द जरूर अलग-अलग प्रयुक्त हुए हैं जैसे 'परंपरा और प्रयोग', 'परंपरा और प्रगति', 'परंपरा और आधुनिकता' आदि, पर इनका मूल अर्थ एक ही है अर्थात् नया बनाम पुराना। कहना न होगा कि 'नया' और 'आधुनिक' को बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों, औद्योगिक सभ्यता और पश्चिमी शिक्षा के संदर्भ में रखकर परिभाषित किया गया तथा परंपरा को प्राचीन धर्म-व्यवस्था पुराने मूल्यों, पुरानी जीवन-पद्धति तथा रूढ़ियों के संदर्भ में देखने की कोशिश की गई। नई भौतिक दृष्टि और पुरानी आध्यात्मिक दृष्टि के संदर्भ 'यथार्थवाद' और 'आदर्शवाद' जैसे विचार बिंदु समीक्षा में शुरू से छाए रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध और स्वाधीनता-प्राप्ति ने भी चिंतन के बौद्धिक क्षितिज उद्घाटित किए। शिक्षा, संस्कृति, उद्योग, प्रशासन आदि सभी क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान बुद्धि के प्रकोष्ठ में ही तलाशने थे। अतः चिंतन और मनन का लिपिबद्ध उत्कृष्ट रूप साहित्य-सृजन स्वतः बौद्धिकता से प्रभावित हुआ। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध और

उत्तरार्द्ध की रचना-समीक्षा में हृदय के स्थान पर बुद्धि तथा भाव के स्थान पर विचार का आग्रह प्रबल हुआ, यह अंतर अत्यंत महनीय है। साहित्य-समीक्षा में बुद्धि के प्राबल्य ने रचनाकार को आत्मावलोकन के लिए प्रेरित किया और अपने परिवेश, व्यक्तित्व, अपनी मान्यताओं अनुभूतियों को नए सिरे से जाँचने-परखने लगा। यहीं से साहित्य-समीक्षा में नए का शुभारंभ हुआ।

सन् 1910 में स्पिगार्न ने 'नई समीक्षा' शीर्षक से अपने भाषण में अकादमीय समीक्षा का विरोध किया तथा रचना के रूपात्मक वैशिष्ट्य को रेखांकित किया। जॉन क्रवेरेंसम की पुस्तक नई समीक्षा 'द न्यू क्रिटिसिज़्म' 1941 में प्रकाशित हुई और इसी के साथ 'नई समीक्षा' नाम रूढ़ हो गया। एज़रा पाउंड, टी०एस० इलियट, एंपसन, हल्मे, आइ०ए० रिचर्ड्स आदि की समीक्षात्मक कृतियों में यह समीक्षा पूर्णरूपेण विकसित हुई। एज़रा पाउंड का केंद्रबिंदु काव्यशास्त्र है। उनके मत में—साहित्य सिर्फ भाषा है जिसमें अर्थवत्ता अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई होती है। इसके अतिरिक्त वह शब्दगत मितकथन, बिंब तथा विडंबना आदि का भी संकेत करते हैं। इलियट भी अपने आलेखों में कविता के भाषिक विश्लेषणों पर बल देता है। समीक्षक का कार्य भाषिक विवेचन तथा पाठकों की अभिरुचियों का परिष्कार करना है। अज्ञेय ने भी कलाकार का पहला और आखिरी कार्य कला की समस्याओं से जूझना माना है। आई० ए० रिचर्ड्स काव्यानुभूति या सौंदर्यानुभूति के विश्लेषण के लिए सामान्य जीवन के अनुभवों को काम में लाने के पक्षधर हैं। नई समीक्षा कृति को स्वनिष्ठ इकाई मानकर चलती है और उसका एकमात्र विवेच्य काव्यगत शब्द हैं। क्लीन्थ ब्रुक्स, आइवर विटर, ब्लेकमूर आदि समस्त सुविज्ञ साहित्य की पड़ताल साहित्य की अपनी शर्तों पर करते हैं। साहित्येतर आयाम इन्हें मान्य नहीं हैं। साहित्य की भाषिक संरचना ही उनके विवेचन का केंद्रीय बिंदु है। रैन्सम कविता में टेक्चर और स्ट्रक्चर का तनाव देखते हैं, एक तरह का द्वंद्व है इन दोनों के बीच। क्लीन्थ ब्रुक्स के मत में काव्य-संरचना का आधार विसंगति और विडंबना है। वस्तुतः कविता अनुभूति है जिसे अभिव्यक्त करने के लिए विशिष्ट भाषा की आवश्यकता होती है। संस्कृताचार्यों ने इसे ही 'विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्' कहा है। वक्रोक्ति संप्रदाय विसंगति, विडंबना जैसे तत्त्व पर ही आधृत है। एलन टेट ने कविता में तनाव के सिद्धांत को स्वीकारा है। शब्दार्थ के दो तत्त्व हैं—विस्तार और घनत्व। इन दोनों के तनाव से कविता जन्मती है। विस्तार अभिधा है और घनत्व लक्षणा-व्यंजना है। अज्ञेय ने पश्चिम की समस्त समीक्षा-तकनीक को ग्रहण कर अपने मौलिक चिंतन के आधार पर तारसप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक के माध्यम से प्रयोगवादी कविता का काव्यशास्त्र प्रस्तुत किया और हिंदी-समीक्षा में व्यक्ति और समवाय के बीच के अंतःसंबंध को स्वस्थ पृष्ठभूमि में काव्यभाषा के आत्यंतिक महत्त्व को दर्शाते हुए समीक्षा के नए प्रतिमान की आवश्यकता का अनुभव कराया। गिरजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, रघुवंश और लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस नई समीक्षा को परिपुष्ट किया। नई समीक्षा में कविता के कथ्य को केंद्र में रखकर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक महत्त्व देते हुए कविता की मौलिक प्रतिभा और उसकी सर्जनात्मकता को भलीभाँति आँका गया है। नई समीक्षा को रूपात्मक समीक्षा भी कहा गया है। रूपात्मक समीक्षा काव्य की स्वतंत्र सत्ता की पक्षधर है और भाषिक संरचना उसका विवेच्य है। इस प्रकार नई समीक्षा ने साहित्य की स्वतंत्रता और स्वायत्तता पर सवाल उठाते हुए आगे की समीक्षाओं के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। असल में नई समीक्षा काव्येतर अनुशासनों से मुक्त होने की कोशिश है।

हिंदी की नई समीक्षा के प्रमुख सैद्धांतिक आधार हैं—वैयक्तिकता, निर्वैयक्तिकता, क्षण का महत्त्व, लघुमानवतावाद, आधुनिकताबोध और शैलीवैज्ञानिक स्वरूप। हिंदी के छायावादियों और पश्चिम के रोमांटिक कवियों और समीक्षकों के अनुसार व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही काव्य है। इस धारणा के विरोध में निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत पनपा। सर्जन-प्रक्रिया के निर्वैयक्तिक सिद्धांत का निरूपण करते हुए इलियट व्यक्तित्व से मुक्ति पाने पर बल देते हैं, उसकी 'अभिव्यक्ति' करने पर नहीं, क्योंकि व्यक्तित्व स्वयं अपने लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। इलियट ने वैयक्तिकता का निषेध कर निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत को परंपरा से जोड़ा है और निर्वैयक्तिकता के दो रूप स्वीकारे हैं। पहली निर्वैयक्तिकता के शिल्पी की होती है और दूसरी जिसे प्रौढ़ कलाकार अधिकाधिक मात्रा में सुलभ कराता है। काव्य में दूसरे प्रकार की निर्वैयक्तिकता स्वीकार्य है, जिससे काव्यकार तटस्थ भाव से सार्वजनिक भावों को अभिव्यक्त कर सकता है। रिचर्ड्स की मान्यता है कि कलाकार अपने क्षणिक, अजनबी और व्यक्तिगत संबंधों को दबाकर एक महत्तर व्यक्तित्व को अर्थात् निर्वैयक्तिकता को पाने की चेष्टा करता है। काव्यकार का व्यक्तित्व निर्लिप्त रहता हुआ भी संवेगों और भावों में अपने व्यक्तित्व को मिलाकर नई सृष्टि करता है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने व्यक्तिवादी अहं और सामूहिक अहं के समन्वय को ही नई कविता के कवियों की अनुभूति माना है।³ धर्मवीर भारती के मतानुसार कलाकार सृजन के विशेष क्षण को प्राप्त कर एक निर्वैयक्तिक रचना का माध्यम बन जाता है।⁴ अज्ञेय सृजन की प्रक्रिया को कलाकार के व्यक्तित्व का बृहद इकाई में विलय मानते हैं। अंतःप्रेरणा की सहज अभिव्यक्ति प्रेषणीय होकर कलाकृति बन जाती है। रचना कलाकार की मानवीय संवेदना या चेतना की अपने से इतर अर्थात् विषय के साथ परस्पर प्रतिक्रिया में जाग्रत वस्तु है। सृजन की यह प्रक्रिया आत्मतुष्टि या आत्मरति की नहीं, अपितु आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया है, कला उसी का साधन है। निर्वैयक्तीकरण इस नई चेतना की मूल आधारभूमि है।

अस्तित्ववादी दर्शन प्रत्येक क्षण को महत्त्व देता है। इस दर्शन की मान्यता है कि क्षण जिस रूप में सामने है, दुबारा उसी रूप में सामने नहीं आ सकता। यह क्षणवादी भावना वर्तमान को समग्रता से जीने की भावना को प्रेरित करती है। सृजनात्मकता का यह क्षण मूल भविष्य और वर्तमान का संगम बिंदु है। यह क्षण लघु होते हुए भी विराट है और महत्ता का अधिकारी है। क्षणभंगुर संसार में प्राणी का क्षणभोगी हो जाना स्वाभाविक ही है। कितने ही क्षण हैं, कितनी ही स्थितियाँ हैं, जो प्रत्यक्षतः असंबद्ध लगती हैं, पर कुल मिलाकर हमारे चेतन-अचेतन में लहर पर लहर इस एक बिंदु को उभारती रहती हैं और संपूर्ण जीवन-प्रक्रिया एक क्षण से संबंधित हो जाती है। भारतभूषण अग्रवाल 'क्षण को अभिव्यक्ति का स्वभाव मानते हैं।'⁶ सृजन के क्षण में एक संगति, एक अर्थ और एक क्रम होता है। इस क्षण को मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा और मानवमूल्यों की खोज तथा उन्हें आत्मसात् करने की प्रक्रिया द्वारा अर्थवान बनाया जाता है। सत्य की प्राप्ति तब तक नहीं की जा सकती, जब तक कि क्षण को भोगा नहीं जाता। उसकी मर्मांतक पीड़ा को झेला नहीं जाता, उसके दायित्व को स्वीकारा नहीं जाता और आत्मविवेक तथा आत्मदर्शन से उसे पहचाना नहीं जाता है। इस प्रकार हिंदी की नई समीक्षा में सृजन के क्षण का विशेष महत्त्व है, जिससे मनुष्य आत्मोपलब्धि प्राप्त करता है।

हिंदी की 'नई समीक्षा' में जनवादी परंपरा एवं समाज की सापेक्षता वाले व्यक्ति की

स्वातंत्र्य चेतना के आधार पर लघुमानववाद की प्रतिष्ठापना हुई। लघुमानव की स्थापना 1948 से लेकर 1956 के बीच जो हिंदी के कुछ नए एवं तरुण लेखकों का सहचिंतन था, उसकी उपलब्धि थी। लघुमानव एक संज्ञा थी, जिसे समस्त व्यापक मानव-आत्मा का लघुतम आत्मबोध कहा जा सकता है। लघुमानव प्रत्येक क्षण के यथार्थ को जागरूक चेता प्राणी के स्वरूप में पूर्णरूप से भोगता है, अतः वह महान है। मूल्यबोध के आधार पर विचारते हुए जगदीश गुप्त 'महामानव' अथवा 'लघुमानव' को स्वीकार न करके सहज मानव को महत्त्व देते हैं।⁷ गजानन माधव मुक्तिबोध जनसाधारण से लघुमानव बन जाने की बात कहते हैं।⁸ लघुमानव विघटित मान-मर्यादाओं, खंडित प्रतिमानों तथा अपूर्ण भोग की स्थितियों के कार्यों को भी स्वीकार करता है। साहित्यकार ही मानव के बाहरी नियंत्रणों तथा सामाजिक रूढ़िगत कुंठाओं से मुक्ति दिलाकर उसमें आंतरिक दायित्व के भाव को जाग्रत करता है। नए साहित्य के कर्णधारों ने इस पीड़ा को जाना-पहिचाना है, जो आंतरिक दायित्वभाव को जगाने में समर्थ है। इसी के माध्यम से आज के विघटन की निवृत्ति तथा व्यक्ति और समाज के मूल्यों में समन्वय संभव है।

आधुनिकताबोध प्रत्येक युग के साहित्य का प्रमुख तत्त्व और मानदंड होता है, किंतु अब इस शब्द को कुछ विशेष आंतरिक और मूल्यगत भाव के अर्थ में स्वीकार किया जाता है, जो एक विशेष जीवनदृष्टि का द्योतक बन गया है। अपने समाज, प्रकृति एवं संपूर्ण मानवता के संदर्भ की सापेक्षता में रहनेवाला, छायावाद का स्वतंत्र व्यक्ति, अंतश्चेतना के 'केस हिस्ट्री' तथा 'कामरेड' से भिन्न, पर नितांत अकेले रहने की इच्छा वाले मानव की विवेक-सम्मत सहज संवेदनशीलता का बोध आधुनिकताबोध है। आधुनिक जगत में नवीन परिवर्तनों के फलस्वरूप अनेक भावधाराएँ मानव-जीवन में विविध रूपों में आई हैं, जो सभी आधुनिक भावबोध के घटक तत्त्व हैं। वे तत्त्व, जो ऐतिहासिक दायित्व के साथ मानव-जीवन को आगे बढ़ाते हैं, समसामयिक दायित्व को बल प्रदान करते हैं, विकास में बाधा या स्थिरता नहीं आने देते, आधुनिकता के प्रधान अंग हैं, क्योंकि मानव में आस्था आधुनिकता का विशेष गुण है।⁹ आधुनिकता युग का विशेष गुण है। समसामयिकता स्थिति-विशेष का आयाम है। आधुनिकता एक ऐतिहासिक विशेषता है, जो हमें देशकाल का बोध देती है। समसामयिकता देशकाल के बोध के साथ सक्रियता का भी पुष्टिकरण करती है। जिस देशकाल में भी हम हैं, उसकी सीमाओं और विस्तार को हम समसामयिकता के यथार्थ द्वारा अनुभव करते हैं। प्रत्येक युग अपने समय में आधुनिक युग रहा है। लेकिन शायद कोई भी युग अपने आधुनिक होने के प्रति इतना सचेत नहीं रहता है, जितना कि वर्तमान युग। इतना विराट विघटन और दूसरी ओर सम-सामयिकता का इतना गहन दायित्व ये आधुनिकबोध के ऐसे पक्ष हैं, जो आज तक इतिहास में कभी नहीं उदित हुए। वस्तुतः आधुनिकता परिवर्तित भावबोध की वह स्थिति है, जिसका प्रादुर्भाव यांत्रिक तथा वैज्ञानिक विकास-क्रम के वर्तमान बिंदु पर आकर हुआ है।

लेखक समाज में रहता है। वह समाज भाषा के निर्मित ढाँचे का प्रयोग अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति के लिए करता है। वह अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा की संरचनात्मक प्रक्रिया में परिवर्तन भी उपस्थित कर देता है। लेखक द्वारा अपनाई गई यह भाषा संरचनात्मक प्रतिक्रिया की परिवर्तन शैली, शैलीविज्ञान के अध्ययन की विषय-वस्तु बनती है। शैली भाषिक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट ढंग है, जो प्रयोक्ता के व्यक्तित्व तथा विषय

से संबद्ध होता है तथा जो विचलन, चयन, सुसंयोजन, समानांतरता एवं अप्रस्तुत-विधान आदि सामान्य अभिव्यक्ति के लिए असुलभ उपकरणों पर आधृत होता है। शैली का संबंध भाषा के प्रयोगगत रूप के साथ इस प्रकार जोड़ा गया है कि उसके अंतर्गत ध्वनि से लेकर वाक्य तथा उससे संबद्ध अन्विति और संपूर्ण रचना तक को समाहित किया जाने लगा है। इस दृष्टि से भाषा प्रयोग के वर्णनात्मक अध्ययन को शैलीविज्ञान कहा गया है। यह वर्णनात्मक अध्ययन प्रेषणीयता की क्षमता को वहन करनेवाली भाषा तक भी सीमित हो सकता है और साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाली भाषा तक भी सीमित हो सकता है। नई समीक्षा के रूपवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत काव्य के सर्जनात्मक रूप का विश्लेषण करने के लिए दो शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से होता है—स्ट्रक्चर अर्थात् अर्थविधान और टैक्चर अर्थात् शब्दविधान। अर्थविधान से अभिप्राय है भावार्थ या अर्थसंगति का, जिसके आधार पर काव्यकृति का निर्माण होता है और शब्दविधान का अर्थ है कविता का मूर्त रूप।¹⁰ समीक्षाशास्त्र में अर्थविधान का कार्य महत्वपूर्ण है, किंतु काव्य में शब्दविधान का। शब्दविधान में अर्थात् काव्य में प्रयुक्त शब्द के अर्थ के जटिल और अतर्कित संबंधों में संगति का संधान करना ही नई समीक्षा का रूपवादी दृष्टिकोण है। इस प्रकार भाषा के सभी तत्त्वों को मिलाकर भाषा की व्यवस्था-प्रक्रिया की एक सामूहिक सौंदर्यानुभूति से युक्त मानस को प्रभावित करने वाली एक विशिष्ट आर्थिक क्षमता होती है, जो मन में भाव-बोध का बिंब उपस्थित कर पाठक को प्रभावित करती है, वही प्रक्रिया लेखक की विशिष्ट शैली बनती है और उस प्रक्रिया का विश्लेषण ही नई समीक्षा में साहित्य की शैली-वैज्ञानिक समीक्षा है। हिंदी की नई समीक्षा के समीक्षकों ने रस के महत्त्व को किसी-न-किसी रूप में स्वीकार किया है। रस सिद्धांत की निष्पत्ति के स्वरूप को नकारते हुए भी उन्होंने रस के स्वरूप बदलते हुए संदर्भ और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में स्थापित करने का सुझाव दिया है।

समीक्ष्य कालखंड की हिंदी-समीक्षा के विकास में योगदान देने वाले समीक्षक मुख्य रूप से दो वर्गों में विचारणीय हैं। प्रथम वर्ग सर्जक समीक्षकों का है और दूसरा वर्ग आचार्य समीक्षकों का है। सर्जक समीक्षकों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, रामदरश मिश्र, विश्वंभरनाथ उपाध्याय आदि प्रमुख हैं तथा आचार्य समीक्षकों में नंददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नगेंद्र, विद्यानिवास मिश्र, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, रामविलास शर्मा, नामवरसिंह, शिवकुमार मिश्र, मैनेजर पांडेय, रामचंद्र तिवारी, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, परमानंद श्रीवास्तव, प्रभाकर श्रोत्रिय, चंद्रकांत वाँदिवडेकर, अजीत कुमार, राममूर्ति त्रिपाठी आदि का स्थान अग्रगण्य है। इनके अतिरिक्त गिरजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुरसिंह, नेमिचंद्र जैन, विजयदेवनारायण साही, अशोक वाजपेयी, रमेशचंद्र शाह, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चनसिंह, रमेश कुंतल मेघ, लक्ष्मीसागर वाष्णीय, प्रेमशंकर, पुष्पपाल सिंह आदि आचार्य समीक्षक स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-समीक्षा में उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-समीक्षा के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का प्रदेय महनीय है। स्वातंत्र्योत्तर युग में अनेक विश्वविद्यालयों ने अपनी शोध-पत्रिकाएँ प्रकाशित करना आरंभ किया। इनमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'हिंदी अनुशीलन', महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक से प्रकाशित 'साहित्यानुशीलन', क०मु० हिंदी भाषाविज्ञान विद्यापीठ से प्रकाशित 'भारतीय साहित्य' आदि का समीक्षा के क्षेत्र में अवदान महत्त्व का है। साहित्य संदेश, आलोचना, प्रकर, निकष,

वीणा, नई धारा, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, अभियान, आजकल, कल्पना, जीवन साहित्य, नया जीवन, भारती, ब्रजभारती, नवनीत, कादंबिनी, अक्षरा, परिषद पत्रिका, शोधदिशा, शोधार्णव, ज्ञानोदय, साक्षात्कार, मधुमती, बात, इंद्रप्रस्थ भारती, संवाद, समकालीन भारतीय साहित्य, आकलन, वागर्थ, पहल, दस्तावेज, तद्भव, राष्ट्रभाषा संदेश, विश्व हिंदी दर्शन, साहित्य अमृत, समीक्षा समन्वय, सम्मेलन पत्रिका आदि असंख्य नई-पुरानी पत्रिकाओं में रचनात्मक साहित्य के साथ-साथ समीक्षा को प्रोत्साहित किया गया है।

साहित्य समीक्षा और सांस्कृतिक बोध का एक-दूसरे से गहरा संबंध है। हमारा सौंदर्यबोध, नीतिबोध आदि दृष्टि विशेष से नियंत्रित रहता है। युगों की सांस्कृतिक यात्रा में यह दृष्टि क्रमशः वर्धित और विकसित होती है, वह बदलती भी है। पुरानी आस्थाओं और मूल्यों के विघटन की दृष्टि से शायद हमारा युग पुराने सब युगों से आगे है। साहित्यकार संस्कृति से ही स्थाई तत्त्वों को ग्रहण कर श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करता है। असल में साहित्य अपने रचयिता की सांस्कृतिक समृद्धि का संवाहक होता है।¹¹ नई समीक्षा में पुस्तक समीक्षा का श्रेष्ठ स्वरूप प्राप्त होता है और टीका पद्धति का पूर्ण हास-सा दिखलाई पड़ता है। खंडन-मंडन व्यक्ति-विशेष को केंद्र बनाकर अधिक नहीं, किंतु समीक्षकों के भिन्न मतों के आधार पर गुटबंदी के अनेक खेमे बन गए हैं। हिंदी की नई समीक्षा के समीक्षकों का नवीन दृष्टिकोण पश्चिमी साहित्यिक विचारधारा से प्रभावित है। अस्तित्ववादी दार्शनिक विचारधारा ने पश्चिमी साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया। अस्तित्ववाद पश्चिमी देशों की बौद्धिक शून्यता और सर्वव्यापी युद्धजन्य अव्यवस्था की स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में उपस्थित हुआ। अस्तित्ववादी चिंतकों-लेखकों ने एकाकीपन, अजनबियत, उबकाई, असंगति, त्रास, पदार्थीकरण, वेदना, निरर्थकता आदि शब्दों के द्वारा जिंदगी को एक नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। उन्होंने मनुष्य को अपनी भोगी हुई अनुभूतियों के बल पर समझने-समझाने का प्रयत्न किया। सामाजिक चेतनावाले साहित्यकार अपने युग-जीवन को धरती पर खड़े होकर समाज की सामूहिक आशाओं-आकांक्षाओं के मध्य अपने विराट मानव को प्रस्तुत करते हैं। समीक्षा की इस दिशा को अपनाने वाले समीक्षक कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित हैं। मार्क्सवाद में 'कला, कला के लिए' सिद्धांत स्वीकार नहीं है। यहाँ उपयोगितावादी कला को ही सार्थक माना गया है। ये समीक्षक व्यक्ति को समाज से संबद्ध रखते हुए साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। हिंदी की नई समीक्षा पर अमेरिका की नई आलोचना का भी प्रभाव पड़ा है। 'नव लेखन' शब्द इंग्लैंड में प्रचलित 'न्यू राइटिंग' का ही अनुवाद है। समीक्षा में भाषाई विश्लेषण को महत्त्व देना अंग्रेजी रूपवादी समीक्षा का प्रभाव है।

इस प्रकार हिंदी की नई समीक्षा समसामयिक साहित्य में अभिव्यक्त भावानुभूति को आधार मानकर चलती है। इसके केंद्र में व्यक्ति-विशेष है, समाज-विशेष न होकर वह मानव है, जो समाज की रीढ़ है। नई समीक्षा किसी कल्पना अथवा कला को महत्त्व न देकर मानव की भावानुभूति को महत्त्व प्रदान करती है। इस क्षणानुभूति के अभाव में रचा गया साहित्य जनसाधारण का साहित्य नहीं बन सकता है। इन्हीं अनुभूतियों की महत्ता साहित्य में निर्वैयक्तिकता और सह-अनुभूति की स्थापना करती है। नई समीक्षा ने काव्यशास्त्र और साहित्य-संबंधी मान्यताओं की रूढ़ियों के कठघरे को तोड़कर साहित्यालोचन के क्षेत्र में नवीन दृष्टिकोण का विस्तार किया है। समीक्षा के क्षेत्र में नवीन मानदंडों की स्थापना हिंदी की नई समीक्षा की उपलब्धि और बदलती

हुई भूमिका है।

संदर्भ

1. डॉ० विश्वनाथप्रसाद तिवारी, अक्षरा, अक्टूबर-दिसंबर 2000, पृ० 8
2. डॉ० तारकनाथ बाली, पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० 283-293
3. डॉ० लक्ष्मीकांत वर्मा, नए प्रतिमान-पुराने निकष, पृ० 155-156
4. डॉ० धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य, पृ० 101
5. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ० 330
6. मानवमूल्य और साहित्य, पृ० 35
7. डॉ० जगदीश गुप्त, नई कविता-स्वरूप और संभावनाएँ, पृ० 391-92
8. गजानन माधव मुक्तिबोध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ० 59
9. लक्ष्मीकांत वर्मा, नई कविता के प्रतिमान, पृ० 249
10. डॉ० नगेंद्र नई समीक्षा, साप्ताहिक हिंदुस्तान, 27 सितंबर 1970 पृ० 11
11. डॉ० देवराज, साहित्य समीक्षा और सांस्कृतिक बोध, पृ० 14

□ मंगलकलश
394, सर्वोदयनगर,
आगरा रोड, अलीगढ़ 202001 (उ०प्र०)
दूरभाष : (0571) 2410486

सामाजिक प्रस्थिति और नाटककार

पंडित राधेश्याम कथावाचक

डॉ० अशोक उपाध्याय

अध्यक्ष हिंदी विभाग

बरेली कॉलेज, बरेली

समाज मानवीय अंतःसंबंधों के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष जीवन-तत्त्वों से परिपूर्ण शारीरिक एवं मानसिक क्रिया-कलापों का प्रत्यक्ष एवं व्यापक स्वरूप है। सामाजिक संरचना अपने वास्तविक रूप में हमारे शरीर की संरचना के समान ही जटिल एवं आकर्षक है। यदि हम इस जटिल स्वरूप को सही प्रकार से जानना चाहते हैं, तो हमें इसके आधारतत्त्व मनुष्य का आकलन उसके समस्त जीवन-संदर्भों एवं क्रिया-कलापों की उपयोगिता-अनुपयोगिता के निकष पर निरपेक्षभाव से करने की आवश्यकता है। समाजशास्त्रीय भाषा में इसे 'प्रस्थिति' का नाम दिया गया है। 'हलिवर एंड मैरिल' नामक विद्वानों ने इसकी व्याख्या में स्पष्ट किया है— 'किसी व्यक्ति की प्रस्थिति का तात्पर्य उस पद से है, जो उस समूह में अपने लिंग, आयु, परिवार, वर्ग, व्यवसाय, विवाह और उपलब्धियों के आधार पर प्राप्त करता है, और वह भूमिका है, जो वह किसी विशेष पद से प्राप्त होने के कारण प्रतिपादित करता है।' इसके द्वारा उसकी व्यक्तिगत अभिलक्षणाओं के साथ-साथ सामाजिक कार्यों के द्वारा गृहीत प्रभाव, प्रतिष्ठा तथा सम्मान के सब प्रतिमानों का सुनिश्चित समाजशास्त्रीय अध्ययन की इकाई के रूप में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यह प्रदत्त और अर्जित नामक दो भागों में विभाजित है।

प्रो० आर०एन० मुकर्जी के अनुसार, 'किसी भी समाज में प्रत्येक व्यक्ति की एक या एकाधिक प्रस्थितियाँ होती हैं। यहाँ तक कि नवजात शिशु की भी परिवार के नए मेहमान के रूप में एक प्रस्थिति या पद होता है। बड़ा होकर वही समाज में एकाधिक प्रस्थितियाँ या पद प्राप्त कर लेता है—वह पिता, पति, पुत्र, बाबा, ताऊ, मामा, स्कूल का प्रधानाचार्य, वकील या किसी राजनीतिक दल का सदस्य बन सकता है। इन सभी प्रस्थितियों के साथ कुछ-न-कुछ क्रियाएँ अवश्य जुड़ी होती हैं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक प्रस्थिति से संबंधित कुछ निश्चित कर्तव्य या भूमिकाएँ होती हैं, जिनके निभाए जाने की उस व्यक्ति से समाज आशा करता है।' इनकी सीमित अथवा व्यापक परिधि, स्वरूप और प्रकृति का निर्धारण उसके रहन-सहन तथा आचार-विचार को प्रभावित करने वाले वातावरण एवं संस्कारों से होता है। पंडित राधेश्याम कथावाचक का जन्म 25 नवंबर सन् 1890 ई० को हुआ और मृत्यु हुई 26 अगस्त 1963 ई० को। उस समय बरेली में गाने-बजाने की व्यापक परंपरा थी। ग्रामांचल की अपेक्षा शहरी जीवन में खुशहाली अधिक थी।

सामाजिक और धार्मिक पुनरुत्थान का समय था। आवश्यकताएँ कम होने के कारण सामान्य आमदनी में समस्त परिवार का पालन-पोषण होने के साथ-साथ यथावसर सदुपयोग हेतु बचत हो जाती थी। खान-पान की सादगी और निश्चितता से परिपूर्ण जीवनशैली ने सामाजिक जीवन को नाटक, स्वांग, नृत्य, गीत, संगीत, भजन-कीर्तन, कथा-पूजा इत्यादि के आनंद की ओर सहज ही उन्मुख कर दिया था। 'घर-घर में ढोलक बजा करती थी-रामायण गाई जाती थी।³ कई प्रसिद्ध नाटक कंपनियाँ बरेली आती रहती थीं। इनके गाने और संवाद लोगों की भावनाओं और भाषाशैली के विशेष आकर्षण बनते जा रहे थे। यहाँ के नाटककारों ने भी इस प्रकार के प्रयास किए। इनमें औलादअली की जुबली कंपनी को काफ़ी प्रसिद्धि मिली। इसके गायक कलाकारों के 'छाती तोड़' गाने⁴ साज-आवाज़ और भाव की दृष्टि से बहुत अच्छे लगते थे। 'न्यू अल्फ्रेड' नाटक कंपनी के नाटकों को देखने के लिए 'भिशितियों का मशकें बेचना'⁵ आज तक प्रसिद्ध है। मुसलमानों की रुचि नाटक कंपनियों में अधिक थी और हिंदुओं में रासलीला तथा रामलीला मंडलियों का प्रचार-प्रसार अधिक था। पंडित राधेश्याम के पिता पंडित बाँकेलाल जी 'नाटक प्रेमी तो नहीं थे-पर गाने के शौकीन जरूर थे, कई रागिनियाँ भी जानते थे-आवाज़ पायदार थी, खूब गाते थे। रामलीला में वे जब चौपाइयाँ गाते थे-तो धूम मच जाती थी। उन दिनों चंग बजाकर लावनी गाने का भी बड़ा रिवाज था-पिताजी इसमें भी बड़ी दिलचस्पी लेते थे।'⁶ इस प्रकार परिवार के धार्मिक संगीतमय वातावरण तथा नगर के सामाजिक जीवन के राग-रंग, मौज-मस्ती तथा आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण मध्यवर्गीय वातावरण में राधेश्यामजी के जीवन का सम्यक् विकास हुआ।

प्रदत्त प्रस्थिति

यह सामाजिक परंपराओं तथा संस्कारों से प्राप्त होने वाली जन्मजात प्रस्थिति है। इसमें अनायास प्राप्त होनेवाले पारिवारिक अधिकार का भाव भी रहता है। लिंग, आयु, जाति तथा संबंधीगण इसके निर्धारण के प्रमुख आधार हैं। माता-पिता और अन्य संबंधी गणों की संपन्नता-विपन्नता भी किसी-ने-किसी स्तर पर इसे प्रभावित करती है।

लिंग एवं आयु

स्वनामधन्य पंडित राधेश्याम कथावाचक जी का जन्म बरेली नगर के मोहल्ला बिहारीपुर की गली कामारथियान में पंडित बाँकेलाल जी एवं श्रीमती रामप्यारी देवी के घर में हुआ था। इनका आयुकाल है-25 नवंबर 1890 ई० से 25 अगस्त 1963 ई० तक। इस प्रकार ये 72 वर्ष 9 महीने तक जीवित रहे। इनके बचपन का नाम लल्लू था। इन्होंने अपनी आत्मकथा मेरा 'नाटक काल' में अपने संपूर्ण आयुकाल को छः भागों में विभाजित किया है। इसमें इनके द्वारा 25 नवंबर 1890 ई० से 1902-3 ई० तक बाल्यावस्था, 1903 ई० से 1909-10 ई० तक किशोरावस्था, 1910 ई० से 1913 ई० तक तरुणावस्था-पूर्वार्द्ध तथा 1913 ई० से 1940 ई० तक तरुणावस्था उत्तरार्द्ध बताई गई है। इनकी प्रौढ़ावस्था ही इक्यावन वर्ष से पैसठ वर्ष1940-41 ई० से 1955 ई० तक रही और इसके उपरांत आयी वृद्धावस्था में इन्होंने परलोकगमन करके इस लोक में अपने आयुकाल को पूर्णता प्रदान की। भारतीय सामाजिक परंपरा के अनुसार इन्हें भौतिक जीवन की प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में सबसे अधिक बड़प्पन की प्रस्थिति प्राप्त हुई। इस अवस्था के प्रारंभिक वर्षों को अपने जीवन के सबसे अच्छे दिन मानते हुए इन्होंने लिखा है कि निश्चय

ही इस अध्याय के शुरू के कई बरस-मेरे जीवन के सबसे अच्छे बरस बीते हैं—इतने अच्छे बरस शायद ज़िंदगीभर में नहीं मिले। स्वास्थ्य भी उत्तम रहा और आत्मिक शांति खुराक भी यथेष्ट मिलती रही। ख़ूब गंगा नहाया, ख़ूब संतसेवा की।”

जाति

सामाजिक परंपरा के अनुसार जन्मकाल से इन्हें लल्लू उर्फ़ राधेश्याम पुत्र बाँकेलाल जाति ब्राह्मण की प्रस्थिति प्राप्त हुई। ब्राह्मणों की दूसरों के हाथ से बनाए गए खान-पान के प्रति संकोच की प्रवृत्ति विश्वप्रसिद्ध है। पंडितजी भी इसके अपवाद नहीं थे। वंश-परंपरा से निर्गत इस मनोवृत्ति के अनुरूप आचरण को स्वीकृति देते हुए इनके द्वारा स्वयं स्पष्ट किया गया है, कि ‘आजकल के नौजवान हँसेंगे—पर बात तो ऐसी ही है कि मैंने अपनी जवानी में दोपहर की कच्ची रोटी (दाल-रोटी) परदेश में अपने ही हाथ से बनाकर खाई है। हाय री सनातनी ब्राह्मण परिवार की पैदायश।” सुधारवाद के युग में इनको पंडित कहने का महत्वपूर्ण कारण यह भी था।

संबंधीगण

श्री मूलचंद कामरथी राधेश्यामजी के पिता बाँकेलाल जी के नाना थे, जो कि ब्राह्मण वृत्ति में धार्मिक पुरुष थे। बिहारीपुर की गली कामारथियान उन्हीं के नाम पर है। उनकी सात पुत्रियों में से एक कोकिलादेवी इनकी दादी थीं। इनके पिताजी की मौसेरी बहिन थीं—श्रीमती रुक्मिणी बीबी। ‘जो ‘बाल विधवा’ थीं, बड़ी तपस्विनी, बड़ी हरिभक्ता, बड़ी आचरण की ऊँची, मीराबाई जैसी। अपने मकान को उन्होंने एक मंदिर बना लिया था, जो अब तक है। मेरे पिता (अपने मौसेरे भाई) को, और मेरी माता (श्रीमती रामप्यारी देवी) को उन्हीं रुक्मिणी बीबी ने अपने मंदिर वाले मकान में—पूजा सेवा करने के लिए रख लिया था।” राधेश्यामजी के साले का नाम था पंडित रामशरण शर्मा, जो कि आगरा ज़िले के अछनेरा के निकटवर्ती ‘राइवा’ ग्राम के निवासी थे। इनके पिता के परम मित्र थे बाबू रामस्वरूप खत्री, जो कि पंडित श्री मोतीलाल नेहरू जी के अच्छे परिचित थे। उन्हीं के माध्यम से पंडितजी के परिवार की पहुँच आनंद भवन तक हो गई थी। इनके छोटे भाई का नाम मदनमोहन लाल था।

अर्जित प्रस्थिति

अर्जित प्रस्थिति मनुष्य के व्यक्तिगत प्रयासों का प्रतिफल होती है। प्रायः उसके संसाधनों के मुख्य स्रोत शिक्षा, विवाह, व्यवसाय एवं संपत्ति, राजनीतिक प्रभाव तथा विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों में निहित होते हैं। व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रतियोगिता एवं प्रतिस्पर्धा भी इसके महत्वपूर्ण कारण हो सकते हैं। मनुष्य की तीव्र इच्छाशक्ति एवं परिश्रम की मात्रा से यह सहज रूप में उच्चता की स्थिति को उपार्जित कर लेती है।

शिक्षा

राधेश्याम जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर इनके पिताजी के सान्निध्य में हुई। ‘रुक्मिणी बीबी’ की इच्छा के अनुरूप इन्हें हारमोनियम बजाकर तुलसी-रामायण चौपाइयाँ तथा रुक्मिणी मंगल इत्यादि कथाओं के गीत गाने की शिक्षा दी गई। ये मेधावी थे, इसलिए लगभग आठ वर्ष की अवस्था में हिंदी-उर्दू अच्छी तरह सीख गए थे। भजन और गीत बनाना भी सीख लिया था।

‘दही वाली का तौर दिखाना’ के वजन पर बनाया गया इनका सबसे पहला गीत था— ‘करो कृपा गुरु महाराज’¹⁰ धीरे-धीरे ये सीधी-सादी भाषा में कविता और कथा कहने में प्रवीण हो गए। इनसे संबंधित विषयों को ठीक तरीके से सीखकर अपने भीतर समाहित करने की इनमें तीव्र आकांक्षा तथा रुचि थी। समाचारपत्रों का अध्ययन विभिन्न प्रकार के ज्ञान तथा भाषा-शैली की समझ के लिए अत्यंत उपयोगी है। पंडितजी का प्रिय अखबार था ‘रोहिलखंड गजट’ जिसे वह बड़ी रुचि से खरीदकर पढ़ते थे। अन्य प्रसिद्ध समाचार-पत्र संभवतः उन्हें अपने पिताजी के इष्ट मित्रों से मिल जाते होंगे। यही नहीं प्राचीन एवं सामयिक उर्दू तथा हिंदी के साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़ने की इच्छा भी धीरे-धीरे विकसित हुई। कलकत्ता, पटना, काशी, लखनऊ तथा लाहौर इत्यादि प्रसिद्ध स्थानों से बड़ी मात्रा में पुस्तकें क्रय करके अल्मारियों में एकत्रित कीं। उन पुस्तकों का ये स्वयं तो अध्ययन करते ही थे, साथ ही दूसरों को भी अध्ययन करने के लिए देकर उनके महत्त्व से परिचित कराते थे। जिन साहित्यकारों की रचनाओं ने इनको सबसे अधिक प्रभावित किया, उनके नाम हैं—भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, श्री बालमुकुंद गुप्त, बाबू देवकीनंदन खत्री, श्री गोपालराय गहमरी, श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी, अकबर इलाहाबादी, चकबस्त लखनवी, शोला अलीगढ़ी, शिवव्रत लाल वर्मन, श्री माधवराव सप्रे, ख्वाजा हसन निजामी तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि।

राधेश्याम जी ने संगीत की शिक्षा अपने पिताजी से प्राप्त की थी। उन्होंने इन्हें आठ वर्ष की अवस्था में ही गीत-संगीत और हारमोनियम की शिक्षा देकर इतना प्रवीण बना दिया कि जब इनके द्वारा रामलीला में चौपाइयों का गायन किया गया, तब खूब प्रशंसा हुई और बरेली के प्रसिद्ध वकील पंडित शालग्राम जी ने इन्हें नक़द पुरस्कार तथा आशीर्वाद प्रदान किया। ब्रह्मपुरी निवासी पंडित बहादुरलाल ने भी इनको हारमोनियम वादन की शिक्षा प्रदान की थी। उन दिनों हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों में भी संगीत के प्रति गहरी रुचि परंपरागत रूप में विद्यमान थी। दोनों ही विरादरियों के लोग एक-दूसरे का यथासंभव सम्मान करते थे। पंडितजी ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है, ‘हिंदू होकर भी-कुछ तर्जें सीखने के लिए मोहल्ला जखीरा के उस्ताद ‘राहत अली के मकान पर अक्सर गया हूँ—और उन्होंने अपने पुत्र ही की भाँति मुझसे स्नेह व्यवहार किया है तथा हारमोनियम सिखाया है।’¹¹ इन्होंने पारसी नाटक कंपनियों द्वारा खेले जाने वाले नाटकों का व्यावहारिक ज्ञान बाबू नानकचंद खत्री की ‘न्यू अल्बर्ट’ से प्राप्त किया। जब कंपनी बरेली आई तब अपने ‘रामायण नाटक’ के संशोधन के संदर्भ में खत्री जी इनसे मिले। संशोधित किए अंशों की सही परख के लिए ये दिन मे नित्य तालीम या रिहर्सल देखने जाते थे और रात में थियेटर देखने जाते थे। इसमें कॉमिक पार्ट करनेवाले नायक, डायरेक्टर रहीमबख्श तथा वास्तविक रूप में डायरेक्टर का दायित्व निर्वाह करनेवाले ‘ट्रेजिकपार्ट’ के लिए प्रसिद्ध अब्दुल रहमान काबुली, गायकी और एक्टिंग के लिए प्रसिद्ध रहमत अली एवं निसार के नाम भी इस संदर्भ में स्मरणीय माने जा सकते हैं। हारमोनियम मास्टर मियाँ नवाब तथा तबला मास्टर गुलाम हुसैन से भी इन्होंने कुछ-न-कुछ प्रेरणा अवश्य प्राप्त की होगी। कथानक, चरित्र-चित्रण, अभिनेय दृश्यों के अनुक्रम तथा गानों के प्रभाव इत्यादि का सफल ज्ञान भी इन्हें ‘रामायण नाटक’ के संशोधन से प्राप्त हो गया। ‘न्यू अल्फ्रेड’ के डायरेक्टर सोराबजी ओग्रा से भी इनको तत्कालीन रंग-मंच के संबंध में बहुत कुछ सीखने को मिला, इसे स्वीकार करते हुए इन्होंने लिखा है कि ‘वाक्यों की

स्वाभाविकता पर जोर, झटकों के साथ-साथ स्पष्ट उच्चारण में 'सोराब जी' मुझे पूर्ण ही जँचते थे। मानो वे अपने सेंटेंसेज दर्शकों के कानों में इस प्रकार डालते थे—जैसे श्रावण में किसी बाग के भीतर शीतल मंद पवन हमें झकोरों द्वारा स्वतः आनंद देती है। मैंने उनके शब्दोच्चारण' को शिष्यवत् माना।¹² व्याख्यानवाचस्पति पंडित दीनदयालु शर्मा तथा भारतभूषण महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के व्याख्यानों से भी इनको विविध विषयों की उपयोगी शिक्षा मिली। नाट्य-निर्देशन की कला के महत्त्वपूर्ण आयामों की चमत्कारशीलता के लाभकारी मंत्र भी इन्हें, 'न्यूअल्फ्रेड' में सोराबजी ओग्रा से प्राप्त हुए। इसीलिए इन्होंने अपने नाटककाल के अनुभवों के आधार पर नाटकलेखकों से निवेदन किया है। कि 'नाटक के लेखक को स्टेज का पूरा ज्ञान होना चाहिए। उच्चारण-संगीत की भी जानकारी होनी चाहिए। कवित्व (पिंगल के अनुसार) भी खूब जानना चाहिए। कई भाषाएँ पढ़ने के बाद उन भाषाओं की अधिक-से-अधिक पुस्तकें पढ़ते रहना चाहिए।'¹³ पोस्ट ऑफिस के रिटायर्ड डिप्टी साहब दिलग्राम हरदोई निवासी सूरज जी इनके योग गुरु थे। ये समय मिलने पर इनके आश्रम में योग-शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। इनकी व्यावहारिक शिक्षा का आधार विभिन्न प्रकार के हिंदी-उर्दू के पत्र भी थे, जो कि डाक से इनके घर गली कामारथियान, मुहल्ला बिहारीपुर के पते पर आया करते थे। इनमें हिंदी-उर्दू के मासिक—'जासूस', 'जमाना', 'देवनागर', 'कमला' और 'सरस्वती' प्रमुख थे। साप्ताहिकों में मुख्य रूप से आने वाले पत्र थे—'तफ़रीह, अभ्युदय, हिंदी बंगवासी, आनंद, श्री वेंकटेश्वर समाचार तथा हिंदी केसरी। दिल्ली से प्रकाशित आफ़ताब एवं कलकत्ता से प्रकाशित भारतमित्र इनके प्रिय दैनिक समाचार-पत्र थे।

विवाह

राधेश्याम जी का विवाह आगरा ज़िले में अछनेरा के निकट 'राइवा' नामक ग्राम में हुआ था। इस समय इनकी अवस्था तेरह वर्ष थी, और पत्नी कलावती की अवस्था ग्यारह वर्ष। दोनों विवाह का उद्देश्य भी ठीक से नहीं समझते थे। यदि समझते थे तो केवल यह कि माता जी दोनों समय रसोई में परिश्रम करती हैं। अतः उनकी सहायता हेतु घर-गृहस्थी सँभालने के लिए एक बहू चाहिए। इनकी पत्नी के भाई प्रसिद्ध पंडित रामशरण शर्मा जी पौरौहित्य वृत्ति के थे। काफ़ी बड़ी यजमानी आगरा से मुरादाबाद एवं बरेली के आस-पास के कस्बों में विद्यमान थी। एक वृद्ध साधु के आशीर्वाद और ताबीज़ से इनके दो पुत्र हुए। पहला सन् 1910 ई० में, जिसका नाम घनश्याम था और दूसरा सन् 1914 ई० में जो कि बलराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सन् 1947 ई० में घनश्याम का देहावसान हो गया तथा इनकी पत्नी उसके वियोग वात्सल्य की पीड़ा से आहत होकर निरंतर रुदन करते हुए लंबी बीमारी के उपरांत कालकवलित हो गई। इनकी पत्नी की एक बहिन भी थी, जिसका नाम था अनंदा। उसके भगवतकिशोर नामक एक पुत्र था, जो कि सदैव के लिए घर छोड़कर चला गया था।

व्यवसाय एवं संपत्ति

पंडितजी का पैतृक व्यवसाय था कथावाचन। इसमें इन्हें अपार सफलता और धन की प्राप्ति हुई। दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, राँची, पूना, अहमदाबाद तथा नेपाल इत्यादि तक इनकी कथाओं के माध्यम से सनातन धर्म का जयघोष हुआ। इनका दूसरा व्यवसाय था पारसी नाटक

कंपनी में वैतनिक नाटककार के रूप में कार्य। इसमें भी इन्हें कथावाचन-जैसी ख्याति एवं सफलता प्राप्त हुई, लेकिन धनोपार्जन की मात्रा संभवतः उससे कम रही होगी। इस व्यवसाय में ये स्वेच्छा से अपने परिवार की वरिष्ठ सदस्या 'रुक्मिणी बीबी' की अनिच्छा के बावजूद आए थे। बाल्यकाल में ही 'न्यू अल्फ्रेड' के डायरेक्टर सोराबजी ओग्रा इन्हें अपनी नाटक कंपनी में इनके पिताजी की सहमति से भरती करना चाहते थे, लेकिन रुक्मिणी बीबी ने मना कर दिया। पंडितजी ने इस घटना की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'बीबी रुक्मिणी को जब यह मालूम हुआ कि 'लल्लू' (मेरा बचपन का प्यार का नाम लल्लू भी था।) थियेटर कंपनी में भरती हो रहा है, तो मेरे पिता पर गरज उठी—'यह क्या अनर्थ कर रहे हो? इसे कथा बाँचने वाला बनाओ—नाटक का ऐक्टर नहीं।' मेरे पिता उनकी बात काट न सके। बड़ों की बात काटना या जवाब देना उन दिनों बुरा समझा जाता था। आज्ञा ज्यों कि त्यों मान लेना ही अदब था। उसी अदब के पालने में वे उनके आगे झुक गए—तपस्विनी की जय हुई। अगले दिन पिताजी मुझे साथ लेकर चंदौसी (बरेली के समीप एक बड़ी मंडी) चले गए, जहाँ उनके मित्र आदती थे। वहाँ एक मास पिताजी ने 'रुक्मिणी मंगल' की कथा कही। कथा के गीत मैं गाता था—और अर्थ पिताजी किया करते थे। बरेली तब लौटे जब 'न्यू अल्फ्रेड' बरेली से चली गई थी। 'न्यू अल्बर्ट' के नानकचंद खत्री कारोनेशन नाटक कंपनी के 'महबूब', 'जुबली' नाटक कंपनी के औलाद अली तथा 'रिपन' कंपनी के गेहरजी इत्यादि के प्रभाव से पंडितजी की अंतरात्मा में निहित नाटक-लेखक हिलोरें लेने लगा। आगाहश्र कश्मीरी एवं सोराबजी ओग्रा के सम्मिलित रंगकर्म ने उनके उत्साह को और अधिक साकार रूप प्रदान करने के लिए विवश कर दिया। इनके द्वारा स्वयं स्वीकार किया गया है कि वास्तव में उनके प्रसिद्ध नाटक 'खूबसूरत बला' को देखकर ही मुझे अब उत्कट उत्कंठा हो गई कि इस दरिया में कूदूँगा। 'हिंदी प्रेम' तो मेरा बड़ ही रहा था—'हिंदी' ही के नाटक का तोंबा छाती के नीचे रखकर इस दरिया में तैरने का मंसूबा बाँध रहा था। निश्चय ही संस्कार यह आग पैदा कर रहा था—या भावी बोल रही थी।¹⁵ इन्होंने 'न्यू अल्बर्ट' में रामायण नाटक के संशोधन का पारिश्रमिक संभवतः नहीं लिया था। इसीलिए कंपनी के मालिक नानकचंद जी ने तीन सौ अस्सी रुपए का हारमोनियम इनके पास 'मोहब्बत का नज़राना' कहकर भिजवा दिया था। यह घटना सन् 1910-11 ई० की है। सन् 1913 ई० में 'न्यू अल्फ्रेड' ने इनका 'वीर अभिमन्यु' सौ रुपए अग्रिम धनराशि देकर तीन सौ रुपए में ख़रीद लिया। इस नाटक का प्रदर्शन बसंत पंचमी के दिन फरवरी 1916 ई० को हुआ, जो कि अत्यंत प्रशंसनीय सफलतापूर्ण रहा। 15 नवंबर 1924 ई० में ये विधिवत् 'न्यू अल्फ्रेड' कंपनी के वैतनिक नाटककार बन गए। यह भाग्य का ही चक्कर है कि जिस कंपनी से एक नाटक 'वीर अभिमन्यु' का मूल्य 300 रुपया मिला था, अब उसी कंपनी ने इन्हें घर बैठे 300 रुपया मासिक देने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण इन्होंने 21 फ़रवरी 1930 को कंपनी से इस्तीफ़ा दे दिया। इस समय इनका मासिक वेतन 750 रुपया तथा इनके छोटे भाई मदनमोहन लाल सहायक नाटककार का वेतन 100 रुपए मासिक था। इस समय के प्रमुख नाटक थे—श्रीकृष्णावतार, श्रवणकुमार, ईश्वरभक्ति और द्रोपदी स्वयंवर। इस्तीफ़ा देते हुए इन्होंने लिखा कि 'मुझे हर्ष है कि मैंने इन नाटकों द्वारा हिंदी की सेवा की है, हिंदुत्व को बढ़ाया है और धार्मिक भावों का प्रचार किया है।'¹⁶ इन्होंने कंपनी में अभिनेता और नाट्य-निर्देशक के रूप में सराहनीय कार्य किया था।

कथावाचक जी के जन्म के समय की संपत्ति थी—इनके पिताजी पंडित बाँकेलाल जी का 'कच्ची दीवारों का खपडैल और छप्परो वाला' ¹⁷ मकान। 'वीर अभिमन्यु' की व्यावसायिक सफलता ने इनके लिए वैभव के द्वार खोल दिए। इन्होंने अपने घर से पूरब दिशा वाला 'राजा चित्रकूट का महल वाला मकान' खरीद लिया। इसका पुनः निर्माण करवाकर अधिक धनलाभ प्राप्ति हेतु इसमें 'राधेश्याम प्रेस' की स्थापना की। यही नहीं पुराने छप्पर और खपडैल वाले मकान का भी पुनः निर्माण करके उसमें 'राधेश्याम पुस्तकालय' स्थापित कर दिया। इनके इन दोनों कार्यों से सोराबजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्हें मुबारकबादी देते हुए कहा कि, 'तुमने जब उस भगवान की मर्जी से—पारसी स्टेज पर हिंदी में महाभारतकाल के चरित्रों को अच्छे रूप में पहुँचाया—तो शायद उस मालिक को तुम्हारी 'नौकरी' ठीक जँची और पुरस्कार में यही मकान तुम्हें दे दिया, देशव्यापी नाटककार की पदवी भी दे दी। और वह भी एक ही नाटक से।'¹⁸ नाटककार के रूप में इन्हें धनोपार्जन का अत्यंत सुंदर और सौभाग्यपूर्ण अवसर मिला। खूब संपत्ति आई। शेर खरीदे, बाग़-बगीचे, विशाल राधेश्याम भवन, बाग की राधेश्याम कोठी, गढ़ मुक्तेश्वर का ब्रिज हाल्ट घाट—कुल मिलाकर एक बड़ी संपत्ति उपार्जित की। इसमें इनकी ब्राह्मण-जीविका ने भी खूब उपार्जन कराया। इनके अनुसार 'ब्राह्मण जीविका बुरी नहीं है—बहुत ही अच्छी है, इस जीविका में—भोजन, वस्त्र, बर्तन, जेवर, नकदी, स्थान और सेवकों की सेवा तथा सम्मान सभी कुछ मिलता है, पर मिलता तभी है—जब ब्राह्मणत्व निभाता हुआ ब्राह्मणपन की रक्षा करता हुआ, 'ब्राह्मणजीविका ही की दृष्टि से उसे करता है।'¹⁹ पंडितजी इस कार्य में भी कुशल नाटककार के समान सफल थे। इसीलिए बरेली ज़िले के धनाढ्य वर्ग में विशेष रूप से सात्विक मनोवृत्ति के धनीमानी व्यक्तियों में इनकी उत्तम प्रतिष्ठा थी। आज भी इनके पौत्र पंडित काशीनाथ शर्मा तथा पौत्री श्रीमती शारदा भार्गव बरेली के उद्योग जगत के प्रतिष्ठापूर्ण गौरव तथा विभिन्न समाजसेवी संस्थाओं के सम्मानपूर्ण प्रतिनिधि हैं। इनके अभिन्न मित्र पारसी रंगमंच के प्रसिद्ध नाटककार बाबू चंद्रनारायण सक्सेना के सुपुत्र श्री जे०एन० सक्सेना भी बरेली के प्रसिद्ध एडवोकेट एवं बुद्धिजीवी समुदाय के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि हैं। 'न्यू अल्फ्रेड' के मालिक बाबू नानकचंद खत्री, 'न्यू अल्फ्रेड' के पहले मालिक माणिक जी, जीवन जी मास्टर और परवर्ती मालिक मेहरबान जी मणिकशा तथा पारसी रंगमंच के गौरव प्रसिद्ध रंगकर्मी अभिनेता एवं नाट्य-निर्देशक सोराबजी का पंडितजी के नाट्य-व्यवसाय को चमकाने में विशेष योगदान था। 'न्यू अल्फ्रेड' के अभिनेता एवं सहनाट्य निर्देशक भोगीलाल, अभिनेता सोराब जी ढूँढ़ी, 'व्याकुल भारत' नाटक कंपनी के मालिक 'लाला विश्वंभर सहाय व्याकुल, मदनमोहन वकील, 'भ्रमर' मासिक के संपादक सतीश कुमार, वैतनिक विश्वासी पंडित 'न्यू अल्फ्रेड' तथा 'भ्रमर' के दूसरे संपादक पंडित गोपीवल्लभ शालग्राम उपाध्याय, अभिनेता फिदा हुसैन, गंगा प्रसाद गवैया, रामकृष्ण चौबे नंदकिशोर, 'न्यू अल्फ्रेड' के सहनाटककार छोटे भाई मदनमोहन, नाटककार बाबू चंद्रनारायण सक्सेना एडवोकेट तथा ललित गोस्वामी इनके व्यावसायिक सहकर्मी थे। इनके हलवाई मित्र बन्ने तथा नौकर बनारसी मास्टर का सहयोग भी इस संदर्भ में स्मरणीय है।

राजनीतिक प्रभाव

तत्कालीन भारतीय राजनीति के महत्त्वपूर्ण स्तंभ पंडित मोतीलाल नेहरू के आनंद भवन में राधेश्याम जी किशोरावस्था में ही जाने लगे थे। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के प्रति इनके

मन में असीम अनुराग था। सन् 1919 ई० से 1929 ई० तक ये इस पार्टी के कार्यक्रमों में अत्यंत उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे और विभिन्न अधिवेशनों में भी 'पार्टी डेलिगेट' के रूप में सम्मिलित हुए। काँग्रेस के अतिरिक्त ये किसी अन्य पार्टी के सदस्य कभी नहीं बने। इनके द्वारा रचित 'ईश्वर भक्ति' नाटक का उद्घाटन भी पंडित मोतीलाल नेहरू ने उस समय किया, जिस समय वह काँग्रेस के अध्यक्ष थे। इस अवसर पर श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उनके साथ थीं। इससे इनकी ऊँची राजनैतिक पहुँच एवं प्रतिष्ठा के साथ-साथ देशभक्ति की भावना का परिचय भी मिल जाता है।

विभिन्न उपलब्धियाँ

पंडितजी की सबसे प्रशंसनीय उपलब्धि थी एक नाटक 'वीर अभिमन्यु' से समस्त देश में पारसी रंगमंच के नाटककार के रूप में प्रतिष्ठा अर्थात् 'देशव्यापी नाटककार की पदवी'। 'माधुरी' में मुंशी प्रेमचंदजी ने लिखा कि 'इससे पहले इतने हिंदीत्व का कोई नाटक पारसी कंपनियों के स्टेज पर नहीं आया। इस नाटक का हास्यवाला भाग (कॉमिक) भी बड़ा शिक्षाप्रद और अश्लीलता से रहित था। यह उस ज़माने में पहली बार स्टेज पर आया, जिस ज़माने में, कितने ही उर्दू के नाटककारों ने ऐसे गंदे कॉमिक स्टेज पर पहुँचाएँ, जो कि माताओं और बहनों को थियेटर में ले जाते हुए भी लज्जा आती थी। माता को स्त्री ओर स्त्री को माता कहलाना तो उन दिनों के उर्दू नाटककारों का मानो धर्म हो रहा था। खैर 'वीर अभिमन्यु' को पूर्ण सफलता मिली, महामना मालवीय जी तक ने इसे देखा और प्रशंसा की।

पश्चिम बंगाल कोलकत्ता में 2 जनवरी 1927 ई० को स्थानीय हिंदी नाट्यपरिषद् की ओर से इनका अभिनंदन किया गया। दैनिक 'विश्वमित्र' में इस संदर्भ में छपे संपादकीय समाचार में यह बताया गया है कि 'गत ता० 2 जनवरी 1927 की रात को 8.30 बजे स्थानीय हिंदी नाट्य परिषद् की ओर से मुक्रीम निवास में बरेली निवासी 'पंडित राधेश्याम जी काविरत्न महोदय को अभिनंदन पत्र प्रदान किया गया। उपस्थिति अच्छी थी। सभापति का आसन 'मतवाला' संपादक श्रीयुत बा० नवजादिकलाल श्रीवास्तव महोदय ने सुशोभित किया था। आरंभ में पंडित विजयकृष्ण शुक्ल ने सुललित स्वर में मंगलगान गाया। अनंतर हिंदू पंच संपादक पंडित ईश्वरीप्रसाद जी शर्मा ने तथा 'नारायण' संपादक पं० नरोत्तम व्यास ने श्री काविरत्न जी का परिचय कराते हुए आपकी नाट्यकला और रामायण प्रवचन द्वारा हिंदी-प्रचार की भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर परिषद् के अध्यक्ष माधव जी शुक्ल ने शीशे में जड़ा हुआ स्वर्णांकित अभिनंदन पत्र पढ़कर पंडितजी को भेंट किया। उत्तर में धन्यवाद देते हुए पंडितजी ने हिंदीभाषा और पारसी नाटक मंच के संबंध में बड़े ही सारगर्भित शब्दों में विवेचना की...।'²¹ यहाँ उनके द्वारा अखिल भारतवर्षीय हिंदी नाट्यमंच की स्थापना की आवश्यकता पर जोर देते हुए हिंदी नाट्य परिषद् का इस दिशा में सक्रिय होने का प्रोत्साहनपूर्ण परामर्श प्रदान किया। यहाँ की 'बजरंग परिषद्', द्वारा भी पंडितजी का अभिनंदन 4 जनवरी 1927 ई० को किया गया। भारतमित्र में श्री रघुनाथसिंह संयुक्त मंत्री के माध्यम से दिए गए समाचार में यह लिखा गया है कि 'गत ता० 4 जनवरी 1927 को रात्रि के 8.30 बजे स्थानीय बजरंग परिषद् की ओर से परिषद् भवन में बरेली निवासी पं० राधेश्याम जी शर्मा काविरत्न महोदय को अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया गया। उपस्थित सज्जनों में निम्नलिखित सज्जनों का नाम विशेष

उल्लेखनीय है—पं० ईश्वरीप्रसाद जी शर्मा, पं० सूर्यकांत जी त्रिपाठी, नरोत्तम जी व्यास, पं० गांगेय नरोत्तम जी शास्त्री, पं० पुरुषोत्तमरावजी, पं० माधवजी शुक्ल, सरदारसतनामसिंह जी, बा० मूलराज जी कपूर आदि। सभापति का आसन पं० ईश्वरीप्रसाद जी शर्मा ने ग्रहण किया। सर्वप्रथम पं० सूर्यकांत जी त्रिपाठी 'निराला' ने अपने सुमधुर स्वरों में मंगलाचरण किया। पं० नरोत्तम जी व्यास ने पंडितजी का परिचय कराते हुए आपकी नाट्यकला तथा रामकथा द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाओं की प्रशंसा की। फिर परिषद् के उपाध्यक्ष पं० गांगेय नरोत्तम जी शास्त्री ने स्वर्णांकित अभिनंदन-पत्र पढ़कर पंडितजी को भेंट किया.....सभा रात्रि के 11 बजे विसर्जित की गई।²² अलवरनरेश तथा नेपाल नरेश ने भी पंडितजी को यथासंभव दान-दक्षिणा देकर सम्मानित किया था। नाटकों के संदर्भ में इनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि थे पंडित मदनमोहन मालवीय, पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री इंद्रजी विद्यावाचस्पति और दिल्ली क्लाइमिल्स के मालिक सर श्रीराम। इन्होंने अलवर नरेश के सान्निध्य को अपनी विशेष उपलब्धि इसलिए भी माना, क्योंकि इनके बुजुर्ग अलवर के ही एक गाँव से बरेली में आकर बस गए थे। न्यू अल्फ्रेड के नाटक इनके नाट्य मंच के शौक की उपलब्धि थे। इनके द्वारा इसे स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि 'जिन भाइयों का यह ख्याल रहा है कि राधेश्याम कमाई के लिए न्यू अल्फ्रेड में गया, उन्हें बता दूँ कि ऐसा नहीं है। कमाई तो नाटक से ज्यादा कथा में हुई है, और कथा तथा नाटक से भी ज्यादा रामायण के प्रकाशन में हुई है, जो आज तक जारी है। 'मेरा नाटक काल' तो मेरे शौक की चीज रही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पंडित राधेश्याम जी की जन्म से प्रदत्त सामाजिक प्रस्थिति सामान्य प्रतिष्ठापूर्ण थी क्योंकि इन्होंने मध्यवर्गीय कथावाचक परिवार में जन्म लिया और इनका पारिवारिक व्यवसाय था—कथावाचन धीरे-धीरे इनके इस व्यवसाय में उन्नति हुई। न्यू अल्फ्रेड के वैतनिक नाटककार के रूप में मिली देशव्यापी प्रसिद्धि एवं धनोपार्जन तथा राधेश्याम प्रेस ने इनकी अर्जित सामाजिक प्रस्थिति को उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बना दिया था। ये ऐसे अभिजात वर्ग के सम्मानित प्रतिनिधि भी हैं, जो जनता की सेवा के साथ यथेष्ट मात्रा में धनोपार्जन करता रहता है।

संदर्भ

1. इलिट एंड मैरिल सोशल डिसऑरगेनाइजेशन, पृ० 1
2. प्रो० आर०एन० मुकजी, समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृ० 26
3. पंडित राधेश्याम कथावाचक, मेरा नाटक काल, पृ० 2
4. वही, पृ० 14
5. वही, पृ० 3
6. वही, पृ० 2
7. वही, पृ० 270
8. वही, पृ० 45
9. वही, पृ० 10
10. वही, पृ० 11
11. वही, पृ० 14, 15

12. वही, पृ० 43
13. वही, पृ० 303
14. वही, पृ० 11
15. वही, पृ० 24
16. वही, पृ० 204
17. वही, पृ० 1
18. वही, पृ० 73
19. वही, पृ० 270
20. मुंशी प्रेमचंद, माधुरी वर्ष 8, पृ० 6 मेरा नाटक काल, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, प्रथमावृत्ति 1957 ई०, पृ० 144-45
21. संपादकीय समाचार, दैनिक विश्वमित्र, कलकत्ता, 3 जनवरी 1927 ई०
22. संपादकीय समाचार, भारत मित्र, कलकत्ता 3 जनवरी 1927 ई०
22. संपादकीय समाचार, भारत मित्र, कलकत्ता, 3 जनवरी, 1927 ई०
23. पंडित राधेश्याम कथावाचक, मेरा नाटक काल, पृ० 178
24. वही, पृ० 69

□ 6/7 खन्ना भवन, सुभाषनगर,
बरेली (उ०प्र०)

कवि नीलकंठ के काव्य में पर्यावरण के प्रति चिंता

डॉ० चंद्रकांत मिसाल

प्रमुख, हिंदी विभाग

एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे

मानव-जीवन का पर्यावरण व प्रकृति से परस्पर पूरक संबंध हमेशा ही रहा है, वे समस्त जीवन में एक-दूसरे के पोषक, संरक्षक, सहचर रहे हैं, लेकिन आज का मनुष्य भौतिक वैज्ञानिक उपलब्धि की अंधी दौड़ में प्रकृति और पर्यावरण का विध्वंसक बन बैठा है, जिस कारण पर्यावरण तेजी से असंतुलित हो रहा है। कवि नीलकंठ के काव्य-संग्रह 'जंगलों को गाने दो' में चेतावनी दी गई है कि प्रकृति और पर्यावरण के साथ की जा रही यह छेड़खानी समस्त मानव-जाति को ले डूबगी। पर्यावरण की चिंता को लेकर 'आज के आनंद' की यह जानकरी वाकई में विचारणीय है—

21 सदी के अंत तक यदि ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन इसी तरह जारी रहा, तो सदी के आखिर तक धरती का औसत तापमान 12 डिग्री तक बढ़ सकता है, जो कि सारे प्राणी-जगत के लिए बेहद खतरनाक होगा। धरती की सतह का 11 फीसदी हिस्सा ही खेती में इस्तेमाल होता है। हर साल 14 बिलियन पाउंड कचरा समुद्र में फेंका जाता है, जबकि 84 फीसदी हाउसहोल्ड कचरा ऐसा होता है, जिसे रिसायकल किया जा सकता है। कुल ऊर्जा का एक तिहाई हिस्सा लोग केवल घरों में ही इस्तेमाल करते हैं। ज्यादातर परिवार हर साल 88 पाउंड कचरा प्लास्टिक का फेंकते हैं। 100 मिलियन से ज्यादा अमेरिकन ऐसे शहरी क्षेत्रों में रहते हैं, जहाँ की वायु को साँस लेने के लिए ऑफिशियली असुरक्षित घोषित कर दिया गया है। एक सर्वे के मुताबिक घरों में बने लॉन और गार्डन में हर साल 80 मिलियन पाउंड्स कैमिकल पेस्टीसाइड्स और 70 मिलियन टन फर्टिलाइजर डाला जाता है, जो धरती को बुरी तरह प्रदूषित करता है। 20 से 50 मिलियन मीट्रिक टन इलेक्ट्रॉनिक कचरा हर साल दुनिया में जनरेट होता है। अमेरिका प्रदूषण फैलाने में आगे है, लेकिन वह ईकोफ्रेंडली एनर्जी जनरेशन पर भी काफ़ी काम कर रहा है। 10 सालों में वह ऐसा देश बन जाएगा, जहाँ कुल उर्जा का 20 फीसदी विंड पावर से जनरेट होगा। यदि पूरी दुनिया के लोग औसत अमेरिकन की तरह रहें, तो हमें पर्याप्त संसाधन जुटाने के लिए 5 ग्रहों की ज़रूरत होगी। दुनिया का 1 फीसदी ताज़ा और शुद्ध पानी ही मानव-उपयोग के लिए आसानी से उपलब्ध है। यू एस में प्रतिदिन इतना कचरा प्रोड्यूस किया जाता है कि उसका वज़न एंपायर स्टेट बिल्डिंग के बराबर होता है। भारत में प्रतिदिन 0.1 मिलियन टन म्यूनिसिपल सॉलिड वेस्ट जनरेट होता है, जो कि सालाना 36.5 मिलियन टन होता है।'

आज के आनंद में प्रकाशित ये मुद्दे चिंताजनक होने के साथ एक सवाल खड़ा करते हैं कि कहाँ खो रहा है हमारा पर्यावरण। क्या हम विनाश के कगार पर खड़े हैं? क्या माया कलैंडर की भविष्यवाणी, जो अभी तक सच नहीं हुई, आनेवाले समय में सच हो जाएगी? मुमकिन है, क्योंकि दिन-पर-दिन बढ़ती जनसंख्या और उससे उपजता प्रदूषण आनेवाले समय के लिए घातक है, जिस पर वक्त रहते विचार करना अति आवश्यक है।

‘जब तक भूमंडल पर्वतों तथा वनों से घिरा रहेगा, तब तक पृथ्वी पर जीव-जंतुओं एवं मनुष्यों का जीवन सुख-शांति तथा समृद्धिपूर्ण बना रहेगा।’²

धरती की सतह से तीव्रगति से समाप्त होते वन-प्रांतों, फैलते हुए रेगिस्तानों, बढ़ते हुए शहरीकरण, प्रदूषण व उनके दूरगामी दुष्प्रभावों, औद्योगिककरण, जीव-जंतुओं व वृक्षों की प्रजातियों के विलुप्त हो जाने तथा पृथ्वी पर प्राणीमात्र के जीवन के दिन-प्रतिदिन दारुण होते जाने जैसी बातों पर गहन चिंता साहित्य में भी व्यक्त की गई है। धरती पर प्रकृति के विविध तत्वों के बीच संतुलन तभी बना रह सकता है, जब धरा का कम-से-कम 33 प्रतिशत भाग वनों से परिपूर्ण हो। किसी भी राष्ट्र के लिए वन-प्रदेश पारिस्थितिक, आर्थिक और पर्यावरणिक संपदा के अक्षुण्ण भंडार होते हैं। देश की सुख-शांति व समृद्धि, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वन-संपदा पर आधृत होती है। वन्य प्रदेश वस्तुतः जैविक संघटकों का एक समुच्चय होता है, जिस पर पारिस्थितिक व वातावरण संबंधित संतुलन निर्भर होता है। प्राकृतिक वनों में जैव-अजैव पदार्थों, पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों के बीच अत्यंत सूक्ष्म अंतःसंबंध बना होता है। एक घटक के नष्ट हो जाने पर दूसरे घटक स्वतः समाप्त हो जाते हैं। जैसे वनों को काटा जाए, तो उन पर निर्भर पशु-पक्षियों व कीट पतंगों का स्वतः नष्ट हो जाना स्वाभाविक है। अतः इसे समझना और जहाँ तक संभव हो, इनके सहज प्राकृतिक स्वरूप को संरक्षित करना हमारा कर्तव्य है। वन के अंतर्गत क्षेत्र-विशेष के वृक्ष लताएँ, झाड़ियाँ, घास-फूस, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, कवक, केंचुए, सूक्ष्म जीव, मिट्टी, मृदा, पानी आदि सभी जैव-अजैव वस्तुएँ आ जाती हैं। इनका अंतःसंबंध इतना सूक्ष्म व आद्य है कि आज भी बहुत-सी बातें वैज्ञानिक नहीं समझ पाए हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् अनेकानेक कारणों से हमारे देश में वनों का भारी विनाश हुआ है। 50 प्रतिशत वनाच्छदित राष्ट्र की केवल 11 प्रतिशत भूमि पर ही वन हैं और जंगल भी तीव्र गति से समाप्त होते जा रहे हैं, यह अत्यंत शोचनीय बात है। इससे हमारा वातावरण-संतुलन गड़बड़ा गया है। ऋतु-चक्र नष्ट हो गया है। नदियाँ, झरने, सरोवर सूख गए हैं और हर वर्ष वातावरण में गर्मी बढ़ती जा रही है।

भारतीय संस्कृति वस्तुतः ‘अरण्य-संस्कृति’ है। हमारे जीवनमूल्य वनों के सुरम्य-शांत वातावरण में विकसित हुए हैं। हमारा धर्म मूल्य-आधृत है, आचार-आधृत नहीं। इसीलिए यह जड़ीभूत ‘संप्रदाय’ नहीं बना। इसका पंथ के रूप में रेजिमेंटेशन नहीं हुआ। ‘अरण्य’ जैसी विविधता व सहिष्णुता, लोककल्याण भाव और सहअस्तित्व जैसे तत्त्व इसमें स्वयं ही अंतर्निहित हैं।

पृथ्वी हमारे लिए आराध्य है, माता है। माता से भला प्रतियोगिता कैसी? माता को जीतने की होड़ कैसी? आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की लालसा उपभोगवृत्ति प्रधान नहीं है। त्याग करते हुए भोग करो। लालसाओं की सुरसा सभी कुछ निगल जाने की क्षमता रखती है। वह प्रकृति को जीतना चाहती है। उसका पूरा-पूरा दोहन करना चाहती है। दोहन करते-करते दूध की जगह खून उतर आता है। गोमाता घायल हो जाती है। आज यही स्थिति हमारी धरती की है। धरा का

इतना अधिक दोहन-शोषण हुआ कि वह घायल हो चुकी है। भारतीय दृष्टि में वृक्ष हमारे परिजन हैं, मित्र हैं, आप्त-बंधु हैं। हमारे बहुत से धार्मिक तथा सामाजिक संस्कार वृक्षों से जुड़े हैं।

वृक्ष अपनी संपूर्णता के साथ हमारे जनजीवन में रचे-बसे हैं। तुलसी तो हमारे आँगन का पौधा है। पीपल और वटवृक्ष, आँवला और शमी, बिल्वी और ढाक, आम और नारियल, कदली और बकुल इन्हें केवल उपयोगिता के लिए नहीं उगाया जाता। इन वृक्षों के पलने में हमारी दृष्टि उपयोगितावादी कभी नहीं रही। उपयोगितावादी दृष्टि का उपयोगिता दृष्टि में बदल जाना सहज स्वाभाविक है।

मानव की घोर अंध स्वार्थवृत्ति एवं भोग-लिप्सा ने प्रकृति-चक्र को ध्वस्त किया है। तीव्र औद्योगिकरण, शहरीकरण, युद्धों के उन्माद, जनसंख्या-विस्फोट आदि प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप प्रकृति का स्वरूप विकृत हुआ है। आज विश्व की कोई भी प्रमुख नदी प्रदूषणमुक्त नहीं है। मनुष्य-जाति ने झीलों, सरोवरों, नदियों और समुद्रों और भूमिगत जल-संसाधनों तक को दूषित किया है। मनुष्य के जीवन-विधान का भी प्रकृति पर असर पड़ता है। विकसित देशों की जनता पृथ्वी के 80 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग करती है और बाकी विश्व की 80 प्रतिशत जनता 20 प्रतिशत संसाधनों पर गुज़ारा करती है। बिजली, पेट्रोल, डीज़ल, रसायन, उर्वरक, कीटनाशक, विस्फोटक आदि संसाधनों का जितना अधिक उपयोग होगा, उतना ही अधिक प्रदूषण फैलेगा।

वनप्रदेश वायु एवं जल के भंडार हैं। औषधियों के खज़ाने हैं। इन्हें समाप्त करना स्वयं हमारे लिए व आगामी पीढ़ियों के लिए व व्याधियाँ, संकट और मृत्यु को आमंत्रित करना है। जंगलों के अबाध गति से कटने के कारण धरती का तापमान प्रतिवर्ष बढ़ रहा है। रेगिस्तान फैल रहे हैं। अधिक-से-अधिक धरती सूखे की चपेट में आती जा रही है। आगामी बीस वर्षों में मानव-जाति को पानी की कमी का भारी संकट झेलना होगा। भावी युद्ध जल के लिए होंगे। पानी के लिए खून बहेगा। इसके आसार आज भी गुजरात, राजस्थान, तेलंगाना, रायलसीमा, उड़ीसा आदि में दिखाई पड़ने लगे हैं।

आज विश्व में बृहत वृक्षारोपण की नितांत आवश्यकता है। ग्लोबल वार्मिंग के दिन हमारे सिर पर मँडरा रहे हैं। वृक्ष एकमात्र ऐसे 'नीलकंठ' हैं, जो वातावरण से बढ़ी हुई कार्बन-डाई आक्साइड को सोख सकते हैं। वातावरण को पुनः स्वस्थ, निर्मल व आनंदवर बना सकते हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश सारे विश्व में वृक्षों के काटने की गति तीव्रतर होती जा रही है। दुनिया के सधन वर्षा वनों का बुरी तरह से सफ़ाया हो रहा है। यदि धरती वनाच्छादित नहीं रहेगी, तो रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया तीव्रतर होगी। मानव-जाति का संकट और गहराता जाएगा।

हमारे देश में बहुत भूमि है, जिसमें वृक्षारोपण किया जा सकता है। यह भूमि दो प्रकार की है-संस्थागत और उन्मुक्त। संस्थागत भूमि के अंतर्गत रेलवे के अधीन बहुत भूमि है। इस ख़ाली ज़मीन पर वर्षाकाल के आरंभ में बृहत वृक्षारोपण किया जाए, तो यह एक सकारात्मक कदम होगा। कॉलेजों, उद्योगों, नदी-तटों, सरोवर-तटों की भूमि पर वृक्षारोपण अनिवार्य रूप से किया जाए तो सफलता अवश्य मिल सकती है। इस उपाय से निश्चित ही पाँच वर्षों में भारत भूमि हरी-भरी हो जाएगी। वातावरण स्वयं बदलेगा। आँगन में पेड़ खिलखिलाएँगे, तो सभी के मन प्रसन्नता से भर जाएँगे।

प्रकृति हमारी धरोहर है। प्रकृति और साहित्य का संबंध बहुत पुराना है। रामायण-

महाभारत आदि में प्रकृति का सुंदर वर्णन मिलता है, तो कालिदास का काव्य भी प्रकृति की छटा बिखेरता दिखाई देता है। किसी कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया, तो किसी लेखक ने उसकी छटा को पन्नों पर जीवित कर दिया। साहित्य ने कभी प्रकृति का मानवीकरण कर उसे मानव के समान बताया, तो कभी उसके जरिये समाज और राष्ट्र को सीख देने का प्रयास किया। कवि कहता है—‘क्या है जंगल के उपकार, मिट्टी पानी और वयार/ सबके जीने के अधिकार।’³

अर्थात् जंगल निस्वार्थ भाव से मिट्टी, पानी और शुद्ध वायु प्रदान कर हम पर उपकार करता है और सबके जीने के लिए साधन उपलब्ध करता है, वह अद्वितीय है।

इंसान की कथनी और करनी के अंतर को दर्शाते हुए कवि कहता है कि हम करेंगे या हम कर रहे हैं, ये कहने से कोई फायदा नहीं होगा। पर्यावरण को शुद्ध रखना है, तो एक पेड़ लगाने से ही फायदा होगा—‘हजार बातें बनाने से भला क्या होगा, एक ही पेड़ लगाने से फायदा होगा।’⁴

जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिककरण, शहरीकरण, चारा, ईंधन व लकड़ी की खपत में बढ़ोतरी से देश की बहुमूल्य वन-संपदा में तेजी से होती कमी को देखकर कवि का हृदय त्राहि-त्राहि कर उठता है। वह प्रकृति को अनवरत मधुर संगीत सुनाना चाहता है और इसीलिए जंगलों को गाने देने का आह्वान करता है—‘जंगलों को गाने दो ताकी गाती रहे, बलखाती रहें पयस्विनी नदियाँ/ फुदकते रहें इठलाते बछड़ों-से झरने/ बहती रहें मलयज शीतल सरसती हवाएँ/ खेलती रहें आँख-मिचौली तितलियाँ रंग-बिरंगी/ पक्षियों के समूह गाते रहें, चहचहाते रहें/ गूँजता रहे प्रकृति का अनवरत वाद्य संगीत/ जंगलों को गाने दो!’⁵

अर्थात् यदि जंगल बने रहेंगे और उनमें पक्षियों का कलरव रहेगा, तो सृष्टि में जल, वायु आदि का प्रदूषण कम होगा। पृथ्वी को बचाने में पेड़ बड़े ही कारगर होते हैं। ये मिट्टी को पकड़कर रखते हैं। अगर ये नहीं हुए, तो सारी सृष्टि समुद्र के गर्त में समा जाएगी। इसलिए कवि इन्हें बचाने का आह्वान करता है। कवि जंगल की उपयोगिता बताते हुए कहता है—

‘जंगलों को गाने दो, जिससे कि उमड़ते रहें कजरारे बादलों के समूह/ बरसते रहें घनधारे कर दें धरा को सराबोर/ हरी-भरी हो उठे, रूखी-निर्जीव माटी/ चेत उठें कण-कण, तृण-तृण हरा दुकूल ओढ़ ले धरा वधू पुनः/ जीवन फिर खुशियों से भर जाए। जंगलों को गाने दो!’⁶

कवि का अभिप्राय है कि यदि जंगल फलते, फूलते, गाते रहेंगे तो काले-काले बादल उमड़कर आएँगे और घनघोर बारिश करेंगे। सारी धरती को अपने प्रेम-रस से सराबोर कर देंगे और इन घटाओं के बरसने से रूखी, निर्जीव माटी भी हरी-भरी हो जाएगी। सृष्टि का कण-कण चेतन हो उठेगा। हरी तृण से बना दुशाला ओढ़कर धरती नववधु की तरह सबके जीवन को खुशियों से भर देगी, परंतु यह सब तभी संभव होगा, जब हम जंगलों का संरक्षण करेंगे। वन प्राकृतिक रूप में स्वयं पनपते, विकसित होते और फलते-फूलते हैं। वे अपने अंदर अनेक लताओं, पक्षियों, जीव-जंतुओं को भी सुरक्षित रखते हैं—‘धरती की शोभा हैं जंगल, ये धरा का हरितांबर हैं/ जीवन के स्पंदन हैं, सुषमा हैं, ऊष्मा हैं, राग हैं/ गीत हैं, संगीत हैं जीवन का परम उत्सव हैं/ नटराज का नर्तन हैं, जीवन का प्रत्यावर्तन हैं/ गाते रहें सदा वन-प्रांत सकल धरा हरखाए/ जंगलों को गाने दो!’⁷

कवि ने इस कविता में प्रकृति का मानवीकरण किया है। कवि जंगल के मधुर गीत को सुनने के लिए कहता है, साथ ही जल के महत्त्व को जताते हुए उसे रस और अमृत कहकर

पुकारता है। कवि को जल की कलकल ध्वनि में, हवा की सरसराहट में और मिट्टी में भी संगीत सुनाई देता है। वह कहता है—‘जंगलों को गाने दो कि जंगलों से जल है/ जल से ही जीवन है, रस है/ अमृत है, भू-संरक्षण है/ उपजाऊ मिट्टी है/ मिट्टी का गीत है, संगीत है/ प्राणवायु का अक्षय कोश है/ प्रवाह सतत/ निसर्ग-चक्र का सहज संचालन/ अनगिनत प्राणियों का संरक्षण है जंगलों को गाने दो।’⁸

कवि जंगल की शोभा का बखान करते हुए उस धरती को हरा-भरा अंबर जता उसके स्पंदन, उसकी सुषमा और ऊष्मा में भी गीत और संगीत सुन जंगल को गाने देने का आह्वान करता है—‘बहुत से झरने, गिरिबालाओं से/बलखाते पेड़ों की जड़ों से चट्टानों से/चुपचाप निकल आएँगे मोतियों की लड़ियों से झलमल-झालर से’⁹

कवि दिन-प्रतिदिन ख़त्म होते जंगलों को देख दुखी होते हुए कहता है—‘सिहर गए हो इसीलिए रुक गए हो बढ़ा आ रहा है बेरहम शहर ढाता हुआ कहर/ लिए हुए बुल्डोजर/ बिजली की आरियाँ, यांत्रिक कुल्हाड़ियाँ।’¹⁰

जंगल बढ़ते हुए शहरों से सिहर गए अर्थात् सिमटते जा रहे हैं और जंगल दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे थे, वे अब रुक गए हैं। जंगलों को काटकर शहरों की सीमा का विस्तार हो रहा है। ऐसा लगता है मानो वे अपने साथ बुल्डोजर, बिजली की आरियाँ और यांत्रिक कुल्हाड़ियाँ लिए उन्हें ध्वस्त करने के लिए बढ़े चले आ रहे हैं।

‘देखते-देखते हो जाएँगे धराशायी गगनचुंबी/ घने-छतनार वृक्ष सकल आश्रयहीन हो जाएँगे पंछी, तितलियाँ और वनचर/ लुप्त हो जाएँगे अनेक पौधे, कई प्रजातियाँ/ पंछी-तितलियाँ वनचर/ उग आएगा हृदयहीन कंक्रीट का कठोर जंगल/ लुप्त हो जाएँगे फुदकते-झरने/ लुप्त हो जाएँगे सरोवर/ सूख जाएँगे तड़ाग-ताल/ भूजल भंडार खत्म हो जाएँगे।’¹¹

देखते-ही-देखते सारे गगनचुंबी वृक्ष धराशायी हो जाएँगे और उसके साथ ही पक्षी, तितलियाँ और वनचर बेघर हो जाएँगे, खो जाएँगे सरोवर और तालाब सूख जाएँगे। इसलिए इस बढ़ते हुए शहरीकरण और औद्योगिककरण को रोकना बेहद ज़रूरी है। कवि खत्म होते जंगलों और बढ़ते प्रदूषण पर चिंता व्यक्त करते हुए कहता है—‘हो जाएगा गगन धुँधुआ, धूली-धूसर होगा/ विषवर्षण फैलेगा साँसों में जहर भरा प्रदूषण/ खो जाएँगे पंछियों के गीत, तितलियों के प्रीत, खो जाएगा प्रकृति का आदिम संगीत। उड़ेंगे बवंडर रेतीले हृदयहीन मरु-भू का होगा विस्तार।’¹²

अर्थात् जब पैड़-पौधे नहीं होंगे, तो कार्बनडाई आक्साइड को प्राणरूपी वायु में बदलने की प्रक्रिया बंद हो जाएगी। आकाश धुँएँ से भरकर जहर की बरसात करेगा और हर जगह प्रदूषण-ही-प्रदूषण दिखाई देगा और इसमें प्रकृति की सुंदरता खो जाएगी। आकाश में तितलियों व पक्षियों का गीत नहीं, बल्कि रेतीले बवंडर ही दिखाई देंगे। प्रदूषण का ही शोर सुनाई देगा। पावन जंगलों और इनके पवित्र वृक्षों का कोई धर्म-संप्रदाय नहीं होता। ये सभी को एक समान रूप से फूल, फल और छाया देते हैं। कवि वृक्ष के इसी धर्म के विषय में कहता है—

‘मैंने पेड़ से पूछा—‘भाई कौन जात हो?’ पेड़ ने कहा ‘नीम’/ फिर मैंने पूछा कौनसा धर्म है तुम्हारा/ हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई या पारसी।’/ पेड़ खिलखिलाया और हँसकर बोला—‘धरती की गहराइयों से जल-कण संचित करना, वायुमंडल से श्वास लेना, प्राणवायु देना, तपते सूरज की किरणों से ऊष्मा प्रकाश लेना और जो भी आएँ उन्हें छाया, फूल, फल देना, पनाह

देना/ चारा, ईंधन देना, बदले में कुछ भी न लेना/ यही हमारा धर्म है।/ 'लड़ते-झगड़ते हो कभी आपस में' मैंने पूछा। कैसी लड़ाई/ क्यों हो अनबन? जहाँ देना ही देना है, लेना नहीं है, वहाँ कैसी लड़ाई? कैसी अनबन?'¹³

अर्थात् जब मैंने पेड़ से उसकी जाति-धर्म पूछा तो वह हँसते हुए बोला कि अपना सर्वस्व दूसरों पर निछावर करना और बदले में कुछ न लेना, यही मेरा धर्म है। जब किसी से कुछ लेना ही नहीं, तो झगड़े का सवाल कहाँ उठता है, परंतु हमारा सभ्य समाज इतना स्वार्थी हो गया है कि देने से ज्यादा लेने में विश्वास रखता है। आज वह जिन जंगलों का जीवन ले रहा है, यह आगे चलकर उसके लिए अहितकारी होगा। कवि वृक्षों के इस उत्तम परोपकारी धर्म को अपनाना चाहता है, तभी तो कहता है—

'संत हो भाई, ऋषि मुनि हो/ तुम्हारा धर्म ही उत्तम है/ लो आज से मैं भी 'वृक्ष धर्म' अपना रहा हूँ/ तुम्हारी शरण में आ रहा हूँ। मुझे भी परोपकार धर्म की दीक्षा दो/ तुम्हारे आश्रय में मैं भी बोधिसत्व बन जाऊँ।'¹⁴

हे वृक्ष तुम्हारा परोपकारी धर्म श्रेष्ठ है। इसलिए तुम मुझे दीक्षा दो, ताकि मैं भी तुम्हारी शरण में आकर सात्त्विक बन जाऊँ। आज का स्वार्थी इंसान रिश्तों में भी स्वार्थ ही देखता है, परंतु वृक्ष, नदियाँ, पक्षी, जानवर जो रिश्ते बनाते हैं वे निस्वार्थ होते हैं।

'जंगलों के, नदियों के, पेड़ों के, पंछियों के, मछलियों के रिश्ते बड़े आदिम हैं/आद्य हैं, पावन हैं, आत्मीय हैं।'¹⁵

अर्थात् जंगल, नदियों, पेड़ों, पक्षियों तथा मछलियों का आपस में बड़ा ही आदिम और घनिष्ठ संबंध है, जो निस्वार्थ, पावन और अपनेपन से भरा हुआ है। कवि अटल, अविचल खड़े वृक्षों से पूछता है—'ओ वृक्ष देवता! इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी/ कैसे जी लेते हो? कैसे सह लेते हो?/ आकाश से बरसती जेठ की आग को/ धूल के बवंडर को, धुएँ को, प्रदूषण को?/ फिर भी मुस्कुराते हो, गाते हो, खिलखिलाते हो कैसे?/ ढेर सारे पंछियों को, तितलियों को पनाह देते हो/ प्यार देते हो, ठंडी छाँव देते हो/ फूलों का मधुरस पिलाते हो/ फिर भी थोथे नहीं होते हो कैसे?/ मुझे भी थोड़ी खुशियाँ दे दो, थोड़ी-सी जिजीविषा कि जीवन की दौड़ में थक न जाऊँ/ रुक न जाऊँ निराश न होऊँ, सदा मुस्कुराऊँ/ मैं भी तुम्हारी तरह उल्लसित होकर नाचूँ-गाऊँ जिंदगी का उत्सव मनाऊँ।'¹⁶

अर्थात् कड़ी सर्दी, तेज़ धूप और मूसलाधार बारिश में पेड़ गाते, खिलखिलाते रहते हैं जबकि मनुष्य ज़रा-से दुख से विचलित हो जाता है। कवि कहता है कि जब पेड़ सबको पनाह, छाँव और अपने फूलों का मधुरस देकर भी ख़ाली नहीं होता, तो मनुष्य अथाह धनसंपत्ति होने पर भी दान क्यों नहीं करता? सिर्फ़ धनसंचय करता है, पर वृक्ष ऐसा नहीं करते। इसलिए कवि उनसे ही खुशियाँ माँगता है और हर परिस्थिति का डटकर मुकाबले की प्रेरणा लेना चाहता है। कवि जंगल में जानेवाले लोगों से निवेदन करते हुए कहता है—

'भीतर से बँधा हुआ अखंड सूक्ष्म सूत्र है/ जंगल में जाना तो बंदूक और कुल्हाड़ी घर पर ही छोड़ जाना/ अपने ही रस में डूबे पेड़ों को चोट मत पहुँचाना/ उन्हें आत्मीयता की ऊष्मा-भरी/ उँगलियों से छूना/ स्पर्श से बढ़कर प्रेम की भाषा नहीं होती।'¹⁷

कवि कहता है कि जब जंगलों में जाओ, तो नफ़रत रूपी बंदूक और कुल्हाड़ी घर पर

ही छोड़कर जाना, ताकि उन मदमस्त पेड़ों को चोट न पहुँचा सको। उन वृक्षों को अपने आत्मीयजनों की तरह प्रेम और स्नेहिल स्पर्श करना, क्योंकि वे भी स्नेहिल स्पर्श-रूपी प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। कवि पेड़ों के अमूल्य बलिदान को आँकते हुए कहता है कि हे मनुष्य! तुम जब जंगल में जाओ तो उनकी कीमत मत आँकना। अपने उपभोक्तावादी नज़रिए को घर में ही छोड़ जाना तभी तुम प्रकृति का रस ग्रहण कर सकोगे।

‘भूलकर भी साथ मत ले जाना/ लकड़ी की, चारे की, फल, फूलों की कीमत मत आँकना/ अपना उपभोक्ता नज़रिया घर पर ही छोड़ आना’¹⁸

कवि स्वार्थी मानव से कहता है कि तुम जब वृक्षों से सब-कुछ लेते हो, तो अपने बच्चों को इसका महत्त्व भी समझाओ ताकि वे वृक्षों से आत्मीयता रखे और उन्हें काटें नहीं।

‘बच्चों की दोस्ती पेड़ों से, गिलहरियों से/ तितलियों से, पंछियों से/ कराना मत भूलना/ दोस्ती क्रमशः आत्मीयता में बदल जाएगी/ तो दुनिया से हिंसा मिट जाएगी, जो पेड़ों को नहीं काट सकता/वह भला आदमी को क्या मरेगा?’¹⁹

कवि वृक्षों से भरे वनों के संगीत सागर में डूबकर मदमस्त होना चाहता है, एकात्म होना चाहता है—‘डूबना-उतराना/वृक्षों की चेतना से एकात्म हो जाना!’²⁰

कवि परोपकारी वृक्षों से नाना प्रकार के सवाल करके उनके अतरंग में स्वयं को डुबाना चाहता है। कैसे वृक्ष अपने ऊपर निवास करने वाले सभी पक्षियों से अपनत्व रखते हैं, निस्वार्थ भाव से मधुर रस पिलाते हैं, कैसे अपना सर्वस्व देने का भाव रखते हैं। कवि चाहता है कि वह भी उनसे प्रेरणा ले, उनकी तरह दुख और सुख को मुस्कुराते हुए झेल सके—

‘अपने छतनार आगोश में/ ढेर सारे पंछियों के समूहों को पनाह देते हो/ सुबह-शाम, उनके शोर में डूब जाते हो/ सुनते हो उनकी चहचहाहट/उनके लड़ाई-झगड़े देखते हो/ साधते हो उनके साथ अपनत्व का भाव कैसे?/ तितलियों को भी तपती धूप में फूलों का मधुर-रस पिलाते हो कैसे?/ कहाँ से लाते हो यह अमृत? कहाँ से पाते हो इतनी जिजीविषा/ इतनी ऊर्जा, इतनी आत्मीयता कहाँ से पाते हो/ इतनी आशा, इतना उत्साह, जीवन की उमंग/ जिसे फूलों-फलों में बरसाते हो? सुहाते हो दिल के दरवाजे खोल अनमोल/ वृक्ष मित्र मुझे भी थोड़ी-सी जिजीविषा का पीयूष प्रसाद दे दो अमृत चखा दो/ मैं भी जीवनभाषा की थकान को/ पराजय को कटुता के आसव को/ प्रतिस्पर्धा की लपटों को/ अर्थहीन ईर्ष्या को, द्वेष को मृतविष को/ जिजीविषा में बदल सकूँ/ आँधियों में भी प्रेमराग गा सकूँ/ तुम्हारी तरह जी सकूँ/ किसी के काम आ सकूँ/ मुस्कराहटों के, खिलखिलाहटों के/ रंग-बिरंगे, खुशबूदार फूल खिला सकूँ/ झूम सकूँ उन्मुक्त होकर/तुम-सा निस्संग, उन्मद हो नाच सकूँ/ नटराज बन सकूँ, अपनी संवेदनाओं को/ शिलीभूत होने से बचा सकूँ/ ओ वृक्ष देवता सुविधाओं की अंधी दौड़ ने/ उपभोक्ता नज़रिये ने गगनचुंबी, आग की भट्टी-सी तपती/ और पथरा गया है हमारा सौंदर्य-बोध।’²¹

कवि शांति का संदेश देते हुए कहता है—‘जिन हाथों में बंदूक हैं/ चलो उन हाथों में एक-एक पौधा थमा आँ/ ताकि वे युद्धों से उजड़ी धरा की छाती पर/ वह पौधा रोप आँ।’

‘देखते-देखते सारा रेगिस्तान/ गाता हुआ जंगल बन जाए/ लोग बंदूकों की भाषा भूल जाएँ/ और पेड़ों के सान्निध्य में जीवन का अर्थ पा जाएँ।’²²

अर्थात् कवि शांति का दूत बनकर बंदूकों की जगह पौधा थमा युद्धों से उजड़ी धरती

को वापस हरा-भरा करना चाहता है। वह बंदूकों की भाषा को भुलाकर प्रेम और शांति की भाषा में जीवन का अर्थ पाना चाहता है। वहीं कवि जिहादियों, तालिबानों, आतंकवादियों को भी शिक्षा देता है। कवि अपनी कविता के माध्यम से प्रकृति के वर्णन में भी सामाजिकता का सार देते हुए नारी की दशा को नदी के माध्यम से बताता है—

‘रातभर मैं सपनों में उस नदी को खोजता रहा, जो उपेक्षित, प्रताड़ित-पीड़ित, सीता की तरह धरती की गोद में चुपचाप समा गई!’

‘पर्णहरित की तरह/पत्तों की नस-नस में/ बहना चाहता हूँ/ सूरज की ऊर्जा को/ अपने भीतर कण-कण समेटना, भरना चाहता हूँ।’

‘मुझे कोई मृत मृतिका से/ जीता-जागता चेतनायुक्त प्राणदान कर दे/मेरा अंतस्थल प्रकाश से भर दे/ कि मैं जुड़ जाऊँ सकल चर-अचर से/ पशु-पक्षियों से, कीट-पतंगों से/ और अद्वैत हो जाऊँ/ वृक्षों का मौन प्रणव नाद गूँज उठे/ मेरी आत्मा में/और मैं बोधिसत्व हो जाऊँ।’²³

अतः कहा जा सकता है कि साहित्य और पर्यावरण का अटूट संबंध है। कवि अपने काव्य के माध्यम से जनता को जगाकर पर्यावरण को बचाने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ

1. आज का आनंद, 5 जून, 2013, पृ० 10
2. डॉ० किशोरीलाल व्यास ‘नीलकंठ’, जंगलों को गाने दो, इंदूर हिंदी समिति, पृ० 4
3. वही, पृ० 8
4. वही, पृ० 4
5. वही, पृ० 17
6. वही, पृ० 17
7. वही, पृ० 18
8. वही, 18
9. वही, पृ० 19
10. वही, पृ० 20
11. वही, पृ० 20-21
12. वही, पृ० 21-22
13. वही, पृ० 23
14. वही, पृ० 23
15. वही, पृ० 28
16. वही, पृ० 31
17. वही, पृ० 36-37
18. वही, पृ० 37
19. वही, पृ० 37
20. वही, पृ० 37
21. वही, पृ० 38-40
22. वही, पृ० 42
23. वही, पृ० 42-43

प्रसाद-काव्य में संगीतात्मकता

डॉ० मीना अग्रवाल

काव्य और संगीत, दोनों ही गतिशील कलाएँ हैं और दोनों ही कर्णेंद्रिय के माध्यम से आनंदोद्रेक करती हैं। ध्वनि और लय का प्रयोग संगीत और काव्य में समान रूप से होता है। संगीत जिन भावनाओं की सूक्ष्म और निराकार अभिव्यक्ति करता है, उन्हीं को कविता साकार रूप प्रदान करती है। कविता जब गाई जाती है तो वह अपूर्व आनंद देती है और संगीत जब गीतयुक्त हो जाता है, तब उसमें रसोद्रेक की क्षमता बढ़ जाती है। वैसे तो काव्य के सभी रूपों में संगीत-तत्त्व विद्यमान रहता है, किंतु गीति-काव्य में काव्य और संगीत का समन्वय विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

छायावाद ने गीतिकाव्य को विषय, भाव और वैचित्र्य की दृष्टि से छंद और सांगीतिकता का बहुत बड़ा वैभव प्रदान किया। नवीन छंद, नई ध्वन्यात्मकता, नई उपमाओं और नई अर्थ-शक्ति के समावेश से यह काव्य समृद्ध बन गया। प्रसादजी ने काव्य को एक ऐसा वर्णमय चित्र बतलाया है, जो स्वर्गीय और भावपूर्ण संगीत गाया करता है।¹ यह वर्णमय चित्र सद्यः प्रभावोत्पादक होता है, बोल सकता है और इसमें संगीत की भी योजना हो सकती है।² अतः प्रसादजी कविता के अंतर्गत ऐसे स्वर-विधान को महत्त्व देते हैं, जिसमें भावपूर्ण संगीत गाने की क्षमता हो, जो काव्य में संगीत तथा संगीत से काव्य की रचना करने में समर्थ हो और जो राग-चित्र के निर्माण में भी पूर्ण सहायक हो।

प्रसादजी ने स्वर्गीय संगीत उत्पन्न करने के लिए अपने काव्य में स्वर-विधान की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। स्वरों के संयोग से उन्होंने अपने काव्य को इतना सरस एवं मधुर बनाने का प्रयास किया है कि भले ही किसी पाठक या श्रोता को उनके पद्यों की अर्थ-प्रतीति न हो, परंतु उनको सुनकर ही वह सिर हिलाने लग जाएगा, उसका हृदय आनंद-विभोर होकर बार-बार उसे सुनने की आकांक्षा प्रकट करेगा। इस सरसता एवं माधुर्य का कारण है, उनके गीतों में स्वर-मैत्री की ओर उनका अधिक ध्यान।

काव्य में स्वर-लहरी या राग-चित्र उत्पन्न करने के लिए प्रायः ऐसे वर्णों की योजना की जाती है, जो सरल, सरस, सचिक्कण एवं मृदु हों और जिनके सुनते ही श्रोता का ध्यान आकर्षित होकर वहीं केंद्रित हो जाए। प्रसादजी ने अनेक स्थलों पर स्वर-लहरी के अनुकूल वर्णों की योजना की है, जिनसे काव्य का रागमय चित्र साकार हो जाता है।

अपनी प्रौढ़ रचना 'कामायनी' में प्रसादजी ने स्वरों के आरोह-अवरोह तथा उनके ह्रस्व,

दीर्घ, प्लुत एवं कोमल और तीव्र स्वरूपों का भावानुकूल प्रयोग करके अपनी स्वरविधान-संबंधी निपुणता तथा स्वरों की अंतरात्मा के ज्ञान का यथेष्ट परिचय दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि संपूर्ण 'कामायनी' महाकाव्य गेय है और अपनी संगीतात्मकता के कारण जनमानस पर अद्भुत प्रभाव डालने की क्षमता रखता है। इसका श्रेय प्रसादजी के स्वर-विधान को है। निम्नलिखित पंक्तियों में स्वरों के मधुर संयोग से व्यंजन भी मधुमय संगीत-लहरी प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं—

तुमुल कोलाहल कलह में,
मैं हृदय की बात रे मन
विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना थक-सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन³

'कामायनी' से ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनमें संगीत-तत्त्वों का समावेश बड़ी ही मार्मिकता के साथ हुआ है, किंतु संगीत-ज्ञान के अभाव में ऐसी मार्मिक अभिव्यंजना को लोग समझ नहीं पाते। प्रसाद ने 'कामायनी' के चिंता-सर्ग में कहा है :

महानृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पंदनों की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा होकर अभिशाप⁴

हिंदी-पाठकों की एक बड़ी संख्या यह नहीं जानती कि 'सम' क्या बला है; फिर 'विषम-सम' को समझना तो और भी टेढ़ी खीर है। 'ताल' क्या है; ताल में 'लय' का संचार किस प्रकार होता है; इन-सबके द्वारा ताल-चक्र के आवर्तन से समय में, जो एक अनिर्वचनीय आनंद उत्पन्न होता है अथवा विषम-सम के द्वारा इस आवर्तन में उपस्थित होनेवाले कृत्रिम व्याघातों से श्रोताओं के मानस में आनंद की जो लहर उठती है, उसे समझे बिना प्रसाद की इन पंक्तियों की मार्मिकता को भला कैसे हृदयंगम किया जा सकता है।

संगीत की दृष्टि से प्रसाद की 'लहर' का अपना विशिष्ट स्थान है। 'लहर' की प्रायः सभी कविताएँ सांगीतिकता से परिपूर्ण हैं। इसके अधिकांश गीत ऐसे हैं, जिनमें राग-रागिनियों की आदर्श संयोजना है। श्री रामनाथ 'सुमन' के शब्दों में— 'कवि प्रसाद के संपूर्ण काव्य-विस्तार में 'लहर' सबसे अधिक संगीतात्मक (म्यूज़िकल) है।'⁵

'लहर' का निम्नलिखित गीत अत्यधिक प्रसिद्ध है। सांगीतिक दृष्टि से इसकी शब्दावली इतनी मधुर है, मानो रस छलका पड़ता हो। इसमें प्रसादजी ने एक चित्र-सा खड़ा कर दिया है

बीती विभावरी, जाग री!
अंबर-पनघट में डुबो रही
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,

किसलय का अंचल डोल रहा।
 लो यह लतिका भी भर लाई
 मधु मुकुल नवल रस-गागरी।
 अधरों में राग अमंद पिए,
 अलकों में मलयज बंद किए
 तू अब तक सोई है आली,
 आँखों में भरे विहाग री।⁶

इस गीत के आधार पर कुछ काव्य-रसज्ञों की यह धारणा बन गई है कि राग विहाग संभवतः प्रातःकाल में गाया जाता है, किंतु वास्तव में विहाग रात्रि के द्वितीय प्रहर में गाया-बजाया जानेवाला राग है। इसके स्वरों की विह्वलता से वियोग की मार्मिकता अभिव्यक्त होती है। जो लोग जानते हैं कि विहाग का विशिष्ट स्वर-विन्यास किस प्रकार भावोद्रेक करता है तथा उसका प्रभाव कितना अंतर्व्यापी होता है, वे ही यह समझ सकेंगे कि रात-भर प्रिय की प्रतीक्षा के पश्चात् 'तू अब तक सोई है आली, आँखों में भरे विहाग री!' में कितनी मर्मस्पर्शी व्यंजना छिपी है।

वास्तव में प्रसादजी को इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि कौनसा राग किस समय गाया जाता है। भैरव और भैरवी प्रातःकाल में गाए जानेवाले राग हैं, तभी तो उषःकाल के समान 'भैरवी' जागरण की नवीन तान सुना रही है :

आँखों से अलख जगाने को, यह
 आज भैरवी आई है।
 ऊषा-सी आँखों में कितनी,
 मादकता-भरी ललाई है।
 कहता दिगंत से मलय-पवन,
 प्राची की लाज-भरी चितवन-
 है रात घूम आई मधुवन,
 यह आलस की अँगड़ाई है।
 लहरों में यह क्रीड़ा चंचल,
 सागर का उद्वेलित अंचल
 है पोंछ रहा आँखें छल-छल,
 किसने यह चोट लगाई है?⁷

'आँसू' में गीति-काव्य की सांगीतिकता के सभी प्रधान उपकरण उपलब्ध हो जाते हैं। शब्दों की मृदुलता तो कहीं-कहीं अपूर्व है। विभिन्न शब्दों के एकत्र संयोग से पदों की अभिव्यंजकता बढ़ गई है। अनेक स्थलों पर उनमें एक ध्वनि और एक मीड़-सी उत्पन्न हो गई है—

छिल-छिलकर छाले फोड़े,
 मल-मलकर मृदुल चरण से।
 घुल-घुलकर वह रह जाते,
 आँसू करुणा के कण से।⁸

प्रसाद ने सर्वत्र नाद-सौंदर्य और संगीत का ध्यान रखा है। वे जानते थे कि भाव-जगत् में जो कार्य कल्पना करती है, वही कार्य शब्द-जगत् में राग करता है। संगीत के बिना भाषा में शक्ति, स्फूर्ति और आकर्षक गतियाँ उत्पन्न नहीं होतीं। 'लहर' के प्रस्तुत गीत की शब्द-योजना में कैसी झंकार है, कैसा नाद है? देखिए—

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे,
जब सावन-घन सघन बरसते।
सुरधनु-रंजित नव-जलधर से
भरे, क्षितिज-व्यापी अंबर से,
मिले चूमते जब सरिता के
हरित कूल युग मधुर अधर थे।
प्राण-पपीहा के स्वरवाली
बरस रही थी जब हरियाली
रस जलकन मालती-मुकुल से
जो मदमाते गंध विधुर थे।
चित्र खींचती थी जब चपला,
नील मेघ-पट पर वह बिरला,
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें
खिल उठते वे रूप मधुर थे।⁹

प्रसाद ने अपने नाटकों में भी अत्यंत सुंदर गीत लिखे हैं। उन गीतों में उनकी संगीत के प्रति रुचि एवं स्वर-विधान-संबंधी कुशलता का पता चलता है। 'कामना' नाटक की नायिका कामना द्वारा गाए गए प्रस्तुत गीत में संगीत की मधुरिमा व्याप्त है—

सघन वन-वल्लरियों के नीचे,
उषा और संध्या किरनों ने
तार बीन के खींचे
हरे हुए वे गान जिन्हें
मैंने आँसू से सींचे,
स्फुट हो उठी मूक कविता
फिर कितनों ने दृग मींचे
स्मृति-सागर में पलक-चुलुक से
बनता नहीं उलीचे,
मानस-तरी भरी करुना-जल
होती ऊपर-नीचे।¹⁰

बाँसुरी के संयोग से इस गीत का गायन अत्यधिक कर्णप्रिय हो जाएगा। तभी तो प्रसादजी ने अपने नाटक के पात्र विलास से बाँसुरी बजवाई है।

'स्कंदगुप्त' नाटक के प्रथम अंक में नर्तकियों द्वारा गाए गए निम्नलिखित गीत को यदि

राग विहाग में गाया जाए तो इसकी अंतर्निहित मधुरता श्रोता-वर्ग को मुग्ध कर लेगी—

न छेड़ना उस अतीत स्मृति से,
खिंचे हुए बीन-तार कोकिल
करुण रागिनी तड़प उठेगी,
सुना न ऐसी पुकार कोकिल
हृदय धूल में मिला दिया है,
उसे चरण-चिह्न-सा किया है,
खिले फूल-सा गिरा दिया है,
न अब वसंती बहार कोकिल!¹¹

सहगान की दृष्टि से 'चंद्रगुप्त' नाटक का प्रस्तुत गीत अपनी मधुरिमा और भाव-सबलता के लिए प्रसिद्ध है। भारत-भूमि की उज्ज्वल कीर्ति को प्रकट करनेवाला यह गीत अपने आकर्षक स्वरों से श्रोताओं को सहज ही अपनी ओर खींचता है—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को,
मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्व विभा पर
नाच रही तरु शिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर
मंगल कुमकुम सारा¹²

प्रसाद के गीत संगीत की भारतीय प्रणाली पर अवस्थित हैं। डा० भोलानाथ के अनुसार 'प्रसाद के गीत संगीत की शास्त्रीय पद्धति पर गाए जाने-योग्य हैं।'¹³ सूर, तुलसी और मीरा की गीति-शैली से उनमें विशेष भेद नहीं है। यद्यपि पंत और निराला ने प्रचलित प्रणाली से भिन्न संगीत की सृष्टि की। उन्होंने गीति-काव्य में संगीत के नए प्रयोग किए, परंतु प्रसाद ने अपनी प्राचीन परंपरा का ही निर्वाह किया।

प्रसाद-काव्य में अनेक स्थलों पर संगीत-संबंधी उल्लेख भी किए गए हैं। संगीत के गायन-वादन और नृत्य, तीनों ही अंगों से संबंधित सामग्री का विवरण उनके साहित्य में मिलता है। उनके साहित्य के अंतर्गत संगीत-संबंधी ये उल्लेख संगीत के भेद-प्रभेदों, अंग-उपांगों, राग-रागिनियों, वाद्य-यंत्रों, नृत्य-संबंधी विविध प्रसंगों के अंतर्गत उपलब्ध होते हैं।

संगीत के पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से प्रसाद के काव्य में नाद, तान, सप्त-स्वर (मध्यम-पंचम आदि), शुद्ध-विकृत स्वर (कोमल-तीव्र स्वर), मीड़, सम, श्रुति, लय, विषम-सम आदि शब्दों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यथा—

1. स्वर उठता है कोमल मध्यम,
कभी तीव्र होकर भी पंचम।¹⁴
2. शुद्ध नाद था बड़ा सुरीला,

- कोई विकृति न थी उसमें।¹⁵
3. चेतन सागर उर्मिल होता,
यह कैसी कंपनमय तान।¹⁶
 4. सप्त स्वर सप्त सिंधु में उठे,
छिड़ा तब मधुर साम-संगीत।¹⁷
 5. पद-पद पर तांडव नर्तन हो,
स्वर-सप्तक होवे लय सारा।¹⁸
 6. महानृत्य का विषम-सम।¹⁹
 7. आने दो मीठी मीड़ों से नुपूर की झनकार।²⁰
 8. लय-सीमा में यह कंपनी।²¹

प्रसाद-काव्य में 'राग-रागिनी' शब्दों के अतिरिक्त विभिन्न रागों का भी उल्लेख किया गया है। उदाहरण-स्वरूप कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

1. नया तुम्हारा राग मनोहर श्रुति सुखकारी।²²
2. फूलों पर आनंद-भैरवी गाते मधुकर-वृंद।²³
3. बजने लगी उदास पहाड़ी रागिनी।²⁴
4. आँखों से अलख जगाने को,
यह आज भैरवी आई है।²⁵
5. पथिक उनींदी श्रुति में किसने,
यह विहाग की तान उठाई।²⁶

प्रसादजी को अनेक वाद्य-यंत्रों का ज्ञान था। उन्होंने अपने काव्य में विभिन्न स्थलों पर बाँसुरी, बीन, वीणा, मृदंग, वेणु, मुरली, विपंची (वीणा) आदि वाद्य-यंत्रों का उल्लेख किया है। जैसे—

1. कुंज में वंशी बजती है।²⁷
2. वंशी को बस बज जाने दो।²⁸
3. मुरली मुखरित होती थी,
मुकुलों के अधर विहँसते।²⁹
4. बजा दो वेणु मनमोहन, बजा दो।³⁰
5. जीवन वंशी के छिद्रों में,
स्वर बनकर लहराया।³¹
6. मीड़ मत खींच बीन के तार।³²
7. उषा और संध्या किरनों ने,

- तार **बीन** के खींचे।³³
8. विमल वाणी ने **वीणा** ली,
कमल कोमल कर में सप्रीत।³⁴
9. गान में कुछ **वीणा** की सुंदर,
मिली झनकार है।³⁵
10. बजती **वीणा** न वहाँ **मृदंग**।³⁶
11. **वीणे!** पंचम स्वर में बजकर मधुर मधु,
बरसा दे स्वयं विश्व में आज तो।³⁷
12. मुद **मृदंग** मनोज्ञ स्वर में,
बज रहा है ताल में।
कल्पना **वीणा** बजी,
हरएक अपने ताल में।³⁸
13. शिथिल **विपंची** मिली विरह-संगीत से।³⁹

गायन-वादन के अतिरिक्त प्रसाद-काव्य में नृत्य का उल्लेख भी एक अन्य विशेषता है, क्योंकि संगीत में नृत्य भी गायन-वादन की भाँति अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। नृत्य के दो प्रकार हैं— तांडव और लास्य। नृत्य उत्कट हो तो तांडव और मधुर तथा सुकुमार हो तो 'लास्य' कहलाता है। तांडव पुरुषत्व का और लास्य नारीत्व का द्योतक है। प्रसाद के काव्य में दोनों प्रकार के नृत्यों का उल्लेख किया गया है। उदाहरणस्वरूप उनकी प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

1. भैरव संगीत बना, **तांडव-नृत्य**-सा
होने लगा गुर्जर में।⁴⁰
2. **नाचती** है नियति नटी-सी,
कंदुक-क्रीड़ा-सी करती।⁴¹
3. हाँ, मृत्यु **नृत्य** करती,
मुसक्याती खड़ी अमरता।⁴²

नृत्य में नूपुरों का अपना विशिष्ट आकर्षण होता है। इनकी झंकार मानो जड़ और चेतन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। प्रसादजी ने भी नूपुरों की ध्वनि से आकर्षित होकर अनेक स्थानों पर इनका प्रयोग किया है। जैसे—

1. मणि **नूपुरों** की बीन बजी, झनकार से,
गूँज उठी रंगशाला इस सौंदर्य की।⁴³
2. तभी कामना के **नूपुर** की,
हो जाती झनकार।⁴⁴
3. **नूपुरों** की झनकार घुली-मिली जाती थी।⁴⁵

इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने काव्य में गायन, वादन एवं नृत्य, तीनों के सफल समन्वय

द्वारा संगीत और काव्य के सम्मिलन की परिभाषा को सार्थक कर दिया है।

संगीत की दृष्टि से प्रसादजी ने छंद-योजना में भी नवीनता का ध्यान रखा है। उन्होंने संगीत-लहरी प्रवाहित करनेवाले स्निग्ध छंदों के प्रयोग के साथ-साथ विषयानुकूल विविध छंदों का प्रयोग किया है। अकेले 'कामायनी' में ही 15-16 तरह के छंद प्रयुक्त हुए हैं। गीतिकाव्य के कवि को भाषा की सुकोमलता और पेशलता के साथ छंदों की सरसता का भी ध्यान रखना होता है। इड़ा सर्ग में टेक के साथ गीति-पदों की सृष्टि करके कवि ने अपनी गीति-पद्धति का पूरा-पूरा प्रमाण प्रस्तुत किया है।

अस्तु, प्रसाद-काव्य में भाव, भाषा, राग व छंद का उत्तम संगीत उपलब्ध होता है। उन्होंने यद्यपि संगीत का नियमित अभ्यास या ज्ञान प्राप्त नहीं किया था, परंतु संगीतकारों के निरंतर संपर्क और उनके गायन-वादन को सुनकर उनमें एक संगीतज्ञ के गुण उत्पन्न हो गए थे। इसलिए उनके काव्य में संगीत-कला का पूर्ण वैभव है। उनके सभी गीतों को संगीत की संपूर्ण मधुरिमा के साथ गाया जा सकता है। उनमें गति है, प्रवाह है, और है भावना की प्रचुरता। लगता है, जैसे कोई संगीतकार तानपूरा लिए पूर्ण मस्ती के साथ अपनी हृदयस्थली में भावनाओं को नवीन तान दे रहा हो, नवीन स्वर दे रहा हो।

निश्चय ही कविवर प्रसाद एक ऐसे क्रांतदर्शी गीति-साधक थे, जो काल की सीमा को लाँघकर जीवन के एक ऐसे बिंदु पर जा पहुँचे थे, जहाँ भूत, वर्तमान और भविष्यत एक रस हो जाते हैं। इस 'सारस्वत' कलाकार की वाणी में भारतीय मनीषा के शाश्वत् तत्त्व सलोनी शैली में साकार हुए हैं। उन्हें पहली बार ऐसा आवास मिला है, जो जन-जीवन की चेतना और स्फूर्ति से प्रकाशमान है। हिंदी-साहित्य ने प्रसाद की रचनाओं में साहित्य के चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया है। हम भारत की इस अमर विभूति को कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं।

संदर्भ

1. स्कंदगुप्त, पृष्ठ 21
2. इंदु, कला 2, किरण 1, श्रावण शुक्ला 2, संवत् 1967 पृष्ठ 20
3. कामायनी, पृष्ठ 216
4. कामायनी चिंता सर्ग, पृष्ठ 19
5. कवि प्रसाद की काव्य-साधना, छठा संस्करण-पृष्ठ 100
6. लहर, पृष्ठ 19
7. लहर, पृष्ठ 17
8. आँसू, पृष्ठ 11
9. लहर, पृष्ठ 27
10. कामना, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 9
11. स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, पृष्ठ 19
12. चंद्रगुप्त, पृष्ठ 100
13. हिंदी-साहित्य, डा० भोलानाथ, पृष्ठ 336
14. विशाख, प्रसाद-संगीत, पृष्ठ 40
15. जनमेजय का नाग-यज्ञ, पृष्ठ 48

16. चंद्रगुप्त, पृष्ठ 186
17. स्कंदगुप्त, पृष्ठ 144
18. ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ 34
19. कामायनी, चिंता-सर्ग, पृष्ठ 29
20. झरना, पृष्ठ 30
21. लहर, पृष्ठ 49
22. कानन, कुसुम, पृष्ठ 54
23. अजातशत्रु, पृष्ठ 76
24. प्रसाद-संगीत, पृष्ठ 129
25. लहर, पृष्ठ 20
26. स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, पृष्ठ 147
27. विशाख, प्रसाद-संगीत, पृष्ठ 15
28. स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, पृष्ठ 85
29. आँसू, पृष्ठ 26
30. स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, पृष्ठ 123
31. ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ 37
32. अजातशत्रु, पृष्ठ 55
33. कामना, पृष्ठ 9
34. स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, पृष्ठ 144
35. कानन-कुसुम, पृष्ठ 48
36. लहर, पृष्ठ 48
37. झरना, पृष्ठ 34
38. कानन-कुसुम, पृष्ठ 99
39. प्रसाद-संगीत, पृष्ठ 129
40. लहर, पृष्ठ 65
41. आँसू, पृष्ठ 51
42. आँसू, पृष्ठ 64
43. लहर, पृष्ठ 76
44. झरना, पृष्ठ 16
45. लहर, पृष्ठ 60

16 साहित्य विहार
 बिजनौर (उ०प्र०) 246701
 मो० 07838090237

हिंदी की उषा प्रियंवदा तथा मराठी की सानिया के उपन्यास में चित्रित बदलती नारी प्रतिमा : तुलनात्मक अध्ययन डॉ० सुनील बाबुराव कुलकर्णी

साठोत्तरीय हिंदी तथा मराठी साहित्य में नारी-विमर्श की लेखिकाओं ने अपना एक स्वतंत्र स्थान निर्मित किया है। हिंदी में उषा प्रियंवदा, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, राजी सेठ, सूर्यबाला, चंद्रकांता आदि के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं, तो मराठी में सानिया के अतिरिक्त मेघना पेठे, कविता महाजन, गौरी देशपांडे, नीरजा, प्रभा गणोरकर आदि प्रमुख नारी लेखिकाएँ हैं। अब तक जिस नारी को लिंग के नाम पर पुरुषसत्तात्मक समाज ने हाशिए पर रखा था, वह नारी उत्तर-आधुनिक दौर में दोनों भाषाओं की स्त्री-लेखिकाओं की चिंता और चिंतन का विषय बनी हुई दिखाई देती है। औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रचार-प्रसार तथा अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं सदी के आरंभ में नारी-उत्थान हेतु विभिन्न आंदोलन चलाए गए। उसी के परिणामस्वरूप आज नारी न केवल सबला बल्कि कई बेरोजगार पुरुषों और आर्थिक विपन्नावस्था से ग्रस्त परिवारों का आधार बन गई है। आज विश्व में स्थित ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जहाँ उसने अपने कार्य की छाप न छोड़ी हो। परिणामस्वरूप जिस नारी को पहले केवल घर-परिवार तक सीमित रखा गया था, आज कई भूमिकाओं में उसका व्यक्तित्व विभाजित होता हुआ दिखाई दे रहा है। हिंदी की उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास 'अंतर्वशी' में और मराठी की सानिया ने अपने उपन्यास 'अवकाश' में नारी के इस बदलते स्वरूप का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

जिस प्रकार उषा प्रियंवदा साठोत्तरीय हिंदी महिला-उपन्यासकारों में प्रमुख हस्ताक्षर मानी जाती हैं, उसी प्रकार सानिया भी मराठी की साठोत्तरीय महिला-उपन्यासकारों में विशेष स्थान रखती हैं। उषा प्रियंवदा ने 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'भया कबीरा उदास', 'अंतर्वशी' आदि-उपन्यासों का सृजन कर हिंदी-उपन्यास विधा को अत्यंत समृद्ध किया है, तो सानिया ने 'आवर्तन', 'स्थलांतर', 'अवकाश' आदि उपन्यासों में नारी की बदलती प्रतिमाओं को सृजित कर, मराठी-उपन्यास विधा को समृद्ध करने का प्रयास किया है। दोनों लेखिकाओं के लेखन के केंद्र में मध्यवर्गीय परिवार में स्थित वे नारियाँ हैं, जो आधुनिककाल में थोड़ी-बहुत पढ़-लिखकर अर्थार्जन हेतु घर की चारदीवारी को लाँघकर विविध भूमिकाओं का निर्वाह कर रही हैं। परिणामस्वरूप दोनों की स्त्री-प्रतिमा निरंतर बदलती हुई दिखाई देती है।

'अंतर्वशी' उपन्यास में उषा प्रियंवदा ने आधुनिक स्त्री की कई प्रतिमाओं को रेखांकित किया है, जिसमें नायिका 'वाना' के अतिरिक्त सारिका, अंजो, बिट्टो, शालिनी, क्रिस्तीन, सारा,

जमीला बुआ, एल्लमा, देवप्रिया, ग्रेस आदि नारी प्रतिमाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। वाना घरेलू पत्नी, माता होने के साथ-साथ घर बेचनेवाली एक कंपनी में एजेंट और कार्यालयीन कामकाज करनेवाली महिला है। सारिका हॉस्पिटल में रेसीडेंट है, अंजो घर पर ही सिलाई-मशीन का काम कर निर्वाह करनेवाली सर्वसाधारण महिला है। बिट्टो उर्फ रत्ना अनपढ़-गँवार परंतु राहुल पर निःसीम प्यार करनेवाली प्रेयसी है। शालिनी पी-एच०डी० करने के बाद शिकागो में नौकरी करती है, वह 'आसरा' नाम की शाखा में विशेषज्ञ है, क्रिस्तीन किसी कॉलेज में अध्यापिका है, सारा ट्रेव्हल कंपनी में काम करती है, जमीला बुआ घर पर काम कर बच्चों को सँभालने वाली महिला है, एल्लमा फल बेचकर जीवन-यापन करनेवाली सर्वसाधारण महिला है, देवप्रिया पढ़ी-लिखी औरत है और ग्रेस घर बेचने और खरीदने वाली कंपनी की मालकिन है। मराठी की लेखिका सानिया ने भी अपने उपन्यास 'अवकाश' में नारी की कई प्रतिमाओं को रेखांकित किया है, जिसमें नायिका जाह्नवी एक सर्वसाधारण घरेलू पत्नी और माता होने के साथ-साथ अर्थाजर्ज हेतु ट्यूशन करनेवाली स्त्री है। गायत्री स्वच्छंद जीवन जीनेवाली सुशिक्षित महिला होने के साथ-साथ समाजसेविका है। वनीता इंस्टीट्यूट में अध्यापिका है। चित्ती एक विधवा है। मनी एक साधारण महिला है। सुधा ताई पाठशाला में शिक्षिका है। मालिनी कॉलेज की लड़की है। अम्मा जाह्नवी की माँ पुराने ख्यालात की सर्वसाधारण महिला है। रोहिणी कंपनी में नौकरी करनेवाली सुशिक्षित लड़की है। विस्तार-भय से प्रस्तुत शोध-निबंध में हमने केवल 'अंतर्वशी' उपन्यास की नायिका 'वाना' तथा 'अवकाश' उपन्यास की नायिका 'जाह्नवी' की प्रतिमा में सुप्त महत्वाकांक्षा के कारण, स्त्री-मुक्ति-आंदोलन में काम करनेवाली महिलाओं के संपर्क में आने के कारण, पति द्वारा बार-बार प्रताड़ित होने के कारण, पति से निरंतर असंतुष्ट होने के कारण तथा पति के कमजोर होने के कारण किस प्रकार से उनकी प्रतिमा में बदलाव आए हैं, उस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। साथ ही पति-पत्नी के बीच के संबंध, संतान-प्राप्ति तथा परवरिश, स्त्री-स्वाधीनता, विवाह, बाह्य संबंध, विचार और सोच के स्तर पर उस बदलाव का स्वरूप कैसा रहा है, इस पर भी यथावकाश प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

साहित्य और समाज सदैव एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। जिस प्रकार समाज साहित्य को प्रभावित करता है, उसी प्रकार साहित्य भी समाज को प्रभावित करता है। यही कारण है कि साहित्य को समाज का दर्पण तथा प्रत्येक काल का साहित्य अपने-अपने समय की उपज माना जाता है। समाज में घटी प्रत्येक घटना और आंदोलन का प्रतिबिंब हम साहित्य में सहजता से देख सकते हैं। नारी-मुक्ति के लिए चलाया गया आंदोलन भी उसके लिए अपवाद नहीं है। आज सारी दुनिया में स्त्री की पहचान की ज़रूरत ध्रुवीकरण की शक्ति ग्रहण कर रही है। स्त्री की अस्मिता को केंद्र में लाने का श्रेय अधिकांश मात्रा में स्त्री-मुक्ति हेतु चलाए गए आंदोलनों को देना चाहिए। जगदीश चतुर्वेदी तथा प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका सुधासिंह के मतानुसार महिला-आंदोलन के संघर्षों और कुर्बानियों का ही नतीजा है कि स्त्रियाँ आज गर्व के साथ अपने हक की लड़ाई लड़ रही हैं। एक ज़माना था, स्त्रियाँ चुप थीं। आज स्त्री ने चुप्पी तोड़ने का बीड़ा उठा लिया है। स्त्री-अस्मिता के संघर्ष को प्रभावी बनाने के लिए ज़रूरी है कि स्त्रियाँ बोलें, लिखें और एक मनुष्य और स्त्री के रूप में अपनी स्थिति को जानें, उसे बदलें और नए विकल्पों का निर्माण करें। दोनों लेखिकाओं के उपन्यास इस कसौटी पर शत-प्रतिशत खरे उतरते हैं। स्वतंत्रता-आंदोलन के

परिणामस्वरूप मध्यवर्गीय स्त्री की घरेलू स्थिति में किस प्रकार बदलाव आया है, उस पर प्रकाश डालते हुए श्री प्रणय कृष्ण लिखते हैं—‘स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान मध्यवर्ग की स्त्रियों का जीवन राजनीतिक आंदोलनों के बाहरी दायरों से अलग घरेलू दायरे में ही तेजी से बदला। सौ वर्षों में मध्यवर्गीय महिलाओं की हर पीढ़ी अपनी पिछली पीढ़ी के जीवन तक उल्लेखनीय भिन्नता को व्यक्त करती रही है। इस आंदोलन के बाद ही स्त्री-जीवन में सुधार के लिए विवाह, संपत्ति, मताधिकार, अवसरों और तनख्वाह में बराबरी संबंधी क़ानून बनाने की बात सोची गई।² इन क़ानूनों का परिणाम यह हुआ कि पढ़ी-लिखी स्त्री अपने बारे में सजग होकर सोचने लगी। बहुचर्चित नारीवादी लेखिका प्रभा खेतान का मानना है—‘एक ज़माने में भारतीय स्त्री के लिए पत्नी और माँ की भूमिका ही सर्वश्रेष्ठ भूमिका थी और हर स्त्री इसे निभाने में ही अपने जीवन का चरम आदर्श मानती थी। आज की स्त्री को इन भूमिकाओं में भी कुछ कमियाँ नज़र आती हैं। वह पत्नी और माँ होने के साथ-साथ बाहरी जगत् में एक कर्मठ नागरिक भी होना चाहती है। वह अपने बारे में निर्णय लेती है कि उसे किस दिशा में आगे बढ़ना है। अपने विवाहित जीवन के साथ-साथ बाहरी जीवन की अन्य अपेक्षाओं यानी कैरियर का, कामकाज का कैसा समन्वय किया जाए, इस पर चिंतन करती है।³ प्रभा खेतान के इस विचार पर दोनों लेखिकाओं की नायिकाएँ खरी उतरती हैं। हिंदी की उषा प्रियंवदा ने ‘अंतर्वशी’ उपन्यास में अपनी नायिका ‘वाना’ को शिवेश की पत्नी, आकाश और विकास की माँ, सारिका, क्रिस्तीन, अंजों की सहेली, बाहरी जगत् में घर बेचनेवाली कंपनी की एजेंट तथा ऑफ़िस में काम करनेवाली महिला के रूप में चित्रित किया है, तो मराठी की सानिया ने ‘अवकाश’ उपन्यास में अपनी नायिका ‘जाह्नवी’ को राघवन की पत्नी, विक्रम और कार्तिक की माँ, सुदर्शन, अनिकेत और अंत में सदाशिवन की प्रेयसी, गायत्री, वनीता की सहेली और बाहरी जगत् में ट्यूशन लेकर अर्थार्जन करनेवाली महिला आदि अलग-अलग भूमिकाओं में चित्रित किया है। दोनों सांसारिक ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए अपने बारे में निर्णय लेती हैं कि उन्हें किस दिशा में आगे बढ़ना है? इस संबंध में दोनों चिंतन करती हुई दिखाई देती हैं। अब हम क्रमशः ‘अंतर्वशी’ उपन्यास की नायिका ‘वाना’ के नारी-प्रतिमा तथा ‘अवकाश’ उपन्यास की नायिका ‘जाह्नवी’ की बदलती नारी-प्रतिमा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए, अंत में दोनों नायिकाओं में समानता और विषमता का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

अंतर्वशी की वाना की बदलती नारी-प्रतिमा

‘अंतर्वशी’ उपन्यास की नायिका वाना एक मध्यवर्गीय परिवार में जन्मी सामान्य महिला है। नौवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद पिता त्र्यंबक पांडे उसकी शादी अमरीका में फैलोशिप पाकर अनुसंधान कर रहे शिवेश मिशिर के साथ कर देते हैं। आँखों में कई सपने लेकर शादी के तुरंत बाद वह पति शिवेश के साथ अमरीका चली जाती है। आरंभिक दिनों में वह पक्की भारतीय पत्नी की तरह घर-गृहस्थी चलाती है। लेकिन बाद में स्त्री-मुक्ति-आंदोलन से प्रेरित सुशिक्षित महिलाओं के संपर्क में आने के कारण धीरे-धीरे उससे विन्मुख होने लगती है। सुप्त महत्वाकांक्षा, पति का कम-कुशल तथा कमज़ोर होना, निरंतर उससे असंतोष, बाहरी जगत् से संपर्क आदि उसकी प्रतिमा में धीरे-धीरे बदलाव आने के मुख्य कारण रहे हैं। उपन्यासकार उषा प्रियंवदा ने फ्लैश बैक शैली के द्वारा कई जगह वाना की प्रतिमा की भीतर आए इस बदलाव को रेखांकित किया है।

प्रथमतः यह बदलाव वेशभूषा तथा भाषा के स्तर पर दिखाई देता है। वाना जब बनारस में थी, तब उसकी वेशभूषा में और जब अमरीका चली जाती है, तो उसकी वेशभूषा में अमूलाग्र परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन को रेखांकित करते हुए उषा प्रियंवदा लिखती हैं—‘पश्चिमी ताने-बाने में वह पुरानी, बनारस के साक्षात्कार की वनश्री झाँक उठी, शरमाई-शरमाई आँखें, आधे खुले होंठ, एक ओर को हलका-सा झुका सर, उसकी साड़ी मोटे सूत की थी, गंगा में धुलते-धुलते उसकी सफ़ेदी मटियाली हो गई थी। सुबह-सुबह के उजियाले में तुलसी-घाट की सीढ़ियों पर खड़ी वनश्री ने अपने को कब यह अमरीकी वाना बना लिया?’⁴

अमरीका आने के बाद अपने भीतर आए इस बदलाव पर स्वयं वाना भी आश्चर्य व्यक्त करती है। राहुल जब वाना से पूछता है—‘साड़ी पहनना एकदम छोड़ दिया?’ तब वाना अपनी छोटी स्कर्ट को नीचे खींचने की कोशिश करते हुए कहती है, ‘सब पुरानी हो गई हैं, फटफुट गईं। अब इसी में आराम रहता है।’ ‘अंतर्वेशी’ उपन्यास की लेखिका उषा प्रियंवदा ने वाना में आए इस बदलाव को रेखांकित करते हुए लिखा है—‘उसे पोएटिक का मतलब नहीं मालूम, चुनमुन से बंसरी, बंसरी से वनश्री। अमरीकन मालकिन ने उसे वाना ही बना दिया। लहंगे-फरिए से फ्रॉक, फ्रॉक से साड़ी और अबकी स्कर्ट-ब्लाउज व क्रिस्टीन की दी हुई, छोटी कसी काले चमड़े की स्कर्ट और सफ़ेद ब्लाउज, कालर पर हल्की-सी चुन्ट। बाल एकदम छोटे सलीक़ेदार, सँवारी भौंहें, लिपिस्टिक जैसे किसी ने पकी जामुन को कुचल दिया हो। कितने दिन अटपटा लगा था, आगे न पल्ला, न दुपट्टा, जाँघों से लेकर नीचे तक खुली टाँगें, फिर आदत पड़ गई—अच्छा लगने लगा, जैसे किसी के वाना पुकारने पर हाँ कहने की आदत पड़ गई।’⁶

विदेश चले जाने के बाद वेशभूषा की तरह वाना की बोलचाल की भाषा में भी बदलाव आता है। उसकी भाषा में आए परिवर्तन को व्यक्त करते हुए राहुल कहता है—‘वाना की अँग्रेजी भी नाम और पहनावे के अनुरूप ढल गई है, शत-प्रतिशत अमेरिकन। फ़ोन पर सुनो तो पहचान भी न सको कि यह वनश्री है, बनारसवाली वनश्री।’⁷ विदेश में चली जाने के बाद वाना मेहनत से क्लास लगाकर अँग्रेजी भाषा का थोड़ा-बहुत ज्ञान अर्जित करती है और घर बेचनेवाली कंपनी में एजेंट की नौकरी करने लगती है।

दूसरा बदलाव वाना में तब आता है, जब उसका परिचय सारिका, शालिनी, क्रिस्टीन, ग्रेस, अंजो आदि पढ़ी-लिखी औरतों से होता है। इनके बीच रहते हुए उनसे बातें करते हुए वाना की पूरी सोच और विचार ही परिवर्तित हो जाते हैं। इनसे परिचय के पूर्व वाना विदेश में रहते हुए भी पक्की भारतीय पत्नी की तरह सोचती और विचार-विमर्श करती है। पति, घर-बच्चे आदि तक ही उसका जीवन सीमित रहता है। इनसे परे उसकी अपनी स्वयं की भी कोई जिंदगी हो सकती है, यह ख़याल भी उसके मन में नहीं आता। पति कहता है आगे नहीं पढ़ना, वह मान लेती है। पति कहता नौकरी नहीं करना, वह मान लेती है। पति जब चाहे तब उसके मन के विरुद्ध संभोग करता है, तब भी वह विरोध नहीं करती। पति की हर मुराद पूरी करना, बच्चों की परवरिश करना, घर आए अतिथि तथा पति के दोस्तों का आदर-सत्कार करना, उनकी सेवा-सुश्रूषा करना ही उसकी वास्तविक जिंदगी होती है। सारिका पहली महिला है, जो वाना को अँग्रेजी का क्लास लगाकर अपना कैरियर बनाने की सलाह देती है। वाना जब उसे बताती है कि उसकी भी यह इच्छा है कि स्कर्ट ब्लाउज और ऊँची एड़ी का जूता पहनकर नौकरी पर जाऊँ। मेरी अपनी गाड़ी

हो। तब सारिका उससे पूछती है, तो उसमें बाधा क्या है? वाना उसे बताती है कि शिवेश ने पहले ही कह दिया है, उसे बाहर नहीं निकलने देंगे। इन्हें पंसद नहीं है। तब सारिका कहती है—‘ऊफ़! वाना सारिका खीज रही है, यह ज़िंदगी है किसकी? तुम्हारी न! यह शरीर किसका है, किसने दो-दो बच्चों को जन्म दिया? तुम्हें अपने जीवन पर उतना ही अधिकार है, जितना शिवेश को है।’⁸ वाना जब उसे बताती है कि वह अभी तीसरी संतान नहीं होने देना चाहती, परंतु वह अपने पति के आगे मजबूर है, तो सारिका उसे छिपकर गर्भ निरोधक गोलियाँ लेने की सलाह देती है। इस प्रकार सारिका वाना को आधुनिक विचारों से अवगत कराकर उसे परंपरागत विचारों की दलदल से बाहर निकलने में मदद करती है। जब लाख समझाने के बावजूद भी वाना अपनी घर-गृहस्थी में संतुष्ट रहकर पति और दोनों बेटे के लिए अपना जीवन समर्पित मानती है, तब सारिका उसे पूछती है, ‘और यही खुशी है तुम्हारी’ तब वाना कहती है, अभी तो यही हैं। सारिका उसे पूछती है और आगे?’ तब वाना कहती है, ‘आगे भी यही रहेगी’ तब सारिका स्त्री में निरंतर होते बदलाव की ओर वाना का ध्यान आकर्षित करते हुए उससे पूछती है, ‘आर यू श्योर, हम दिन-दिन क्षण-क्षण बदलते हैं। बाहर की दुनिया हमें आह्वान देती रहती है। किशनजी की बंसी की धुन सुनकर गोपियाँ भी सारे बंधन तोड़कर घर से निकल पड़ी थीं।’⁹ सारिका की आकस्मिक मृत्यु के बाद वाना का सारा जीवन ही बदल जाता है। पति शिवेश की कमियाँ उसे बार-बार खलने लगती हैं, क्रिस्तीन के संपर्क में आने के बाद उसे और हवा मिलती है। सारिका की मृत्यु के हादसे से बाहर निकालने के लिए क्रिस्तीन उसे एक रात अपने घर लेकर जाती है, वहाँ उसके साथ शराब पीती है और समलैंगिक संबंध भी करती है। क्रिस्तीन के साथ दुतर्फे संबंधों में उसे पहली बार अपने शारीरिक अंगों की सुंदरता का एहसास होता है। अब-तक पति शिवेश के साथ किए गए एकतरफ़ा शारीरिक संबंध उसे बार-बार खलने लगते हैं। वह क्रिस्तीन से पूछती है—‘जैसे इस पुराने घर का जीर्णोद्धार हो रहा है, क्या व्यक्तियों का भी हो सकता है।’¹⁰ बाद में क्रिस्तीन उसे, उसकी प्रेमिका बनकर रहने का आग्रह करती है, परंतु वाना भारतीय संस्कृति में पली-बढ़ी होने कारण उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। वाना की बदलती प्रतिमा में उसकी सहेली साकिरा, क्रिस्तीन, शालिनी, अंजो, वह जिस कंपनी में नौकरी करती है, वहाँ की ग्रेस और शिवेश के दोस्त राहुल का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। उपन्यास के अंत में जब शिवेश ड्रग्स बनाने और बेचने के बुरे गोरख धंधों में लगता है और लगभग छः माह तक पुलिस से बचता फिरता है, तो वाना आरंभ से ही आसक्त राहुल की ओर आकर्षित होकर उसके साथ शारीरिक संबंध कर लेती है। उसके पेट में राहुल का गर्भ पलता है। शिवेश जब एक दिन लौटकर आता है, तो वह शिवेश को तलाक़ देने का फैसला सुनाती है, तब शिवेश आत्महत्या कर लेता है। वाना राहुल से शादी कर ऑस्ट्रेलिया जाने का फैसला लेती है। उपन्यासकार उषा प्रियंवदा ने भारतीय संस्कृति में पली-बढ़ी वाना के विदेश चले जाने के बाद वेशभूषा, भाषा, विचार तथा आचार के स्तर पर आए बदलाव का यथार्थ चित्रण बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है।

अवकाश की जाह्नवी की बदलती नारी-प्रतिमा

जाह्नवी मराठी की प्रसिद्ध लेखिका सानिया द्वारा लिखित उपन्यास ‘अवकाश’ की नायिका है, जिसका जन्म एक सुशिक्षित परिवार में होता है। मुंबई जैसे शहर में वह महाविद्यालयीन शिक्षा ग्रहण करती है। विज्ञान शाखा में बारहवीं तक पढ़ने के बाद मेडिकल में एडमिशन लेकर

डॉक्टर बनना उसका एकमात्र सपना है, परंतु उसके भाई श्रीनिवास की आकस्मिक मृत्यु के कारण उसे मुंबई शहर छोड़कर वापस मद्रास जाना पड़ता है, जहाँ उसके चाचा पेरिपा तथा चाची पेरिमा की देख-रेख में जैसे-तैसे उसकी बी०एस-सी० तक की शिक्षा पूरी होती है। अंतिम वर्ष की परीक्षा के दस दिन पहले ही उसकी शादी राघवन जैसे सामान्य, कमजोर और परंपरागत ख्याल वाले इंसान से तय कर दी जाती है। वह अपने माँ-बाप को लाख समझाने की कोशिश करती है कि वह सुदर्शन से प्यार करती है, अतः उसी से शादी करेगी। शादी के पहले वह एकदिन सुदर्शन से मिलकर उसके शारीरिक स्पर्श को भी अनुभव करती है। शादी के अंतिम समय तक उसे लगता है कि सुदर्शन आएगा, तो वह उसके साथ भागकर शादी करेगी। परंतु सुदर्शन के न आने के कारण मजबूरन उसे राघवन से शादी कर लेनी पड़ती है। शादी के कई दिनों तक वह राघवन से अपने-आपको दूर रखती है, लेकिन जब मालिनी उसे बताती है कि सुदर्शन ने आत्महत्या कर ली, तो वह उस ग़म को दूर करने हेतु राघवन में सुदर्शन की प्रतिमा देखकर उससे शारीरिक संबंध रखने की कोशिश करती है। राघवन आरंभ में तो विरोध करता है, परंतु देर रात में भूखे शेर की तरह उस पर टूट पड़ता है। फिर कुछ ही दिनों बाद उसे सर्वप्रथम विक्रम और बाद में कार्तिक दो बेटे हो जाते हैं। शादी के बाद वह राघवन के सामने आगे पढ़ने की इच्छा व्यक्त करती है, लेकिन राघवन उसे मान्यता नहीं देता। गायत्री तथा सदाशिवन जैसे पढ़े-लिखे समझदार स्त्री-पुरुष के साथ जब उसकी मुलाकात होती है तब वे दोनों उसे घर की चार-दिवारी से बाहर निकलकर स्वयं के जीवन के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। दोनों उसके घर-गृहस्थी को चलाने में तथा बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने में भरपूर सहयोग देते हैं। अंत में गायत्री की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है। राघवन भी लंबी बीमारी के कारण प्राण त्याग देता है। बच्चे उच्च-शिक्षा पाने तथा नौकरी के लिए किसी दूसरे शहर में जाकर बसते हैं, तब जाह्नवी सदाशिवन से शादी कर, विदेश में जाने का फ़ैसला लेती है। उपन्यासकार सानिया ने बड़ी सफलता के साथ बचपन में मुंबई जैसे महानगर में पत्नी-बढ़ी जाह्नवी की प्रतिमा, शादी के बाद मद्रास, वेल्लभ बंगलौर शहर में जीवन-यापन करते हुए कैसे बदलती है, उसका वास्तविक चित्र पाठकों के सम्मुख चित्रित किया है।

जाह्नवी के जीवन में पहली बार मोड़ तब आता है, जब उसके भाई श्रेणी उर्फ़ श्रीनिवास की अचानक मृत्यु हो जाती है। उसके पहले जाह्नवी की प्रतिमा अत्यंत प्रतिभावान, अत्यंत सजग, अत्यंत बोलू लड़की की रही है। बारहवीं के बाद मेडिकल में एडमिशन लेकर डॉक्टर बनना उसका एकमात्र सपना होता है। वह अँग्रेज़ी भाषा में कविताएँ भी रचती है। उसकी अम्मा जब-जब भी एक स्त्री होने के कारण उसकी स्वतंत्रता पर रोक लगाना चाहती है, तब-तब जाह्नवी आधुनिक नारी की तरह अपनी अम्मा का प्रतिरोध करती है। जाह्नवी देखने में अत्यंत सुंदर होने के कारण उसकी अम्मा हमेशा उसे उपदेश देती रहती है कि लड़कियों का बोलना, लड़कियों का चलना, लड़कियों का पहनना-ओढ़ना कैसा होना चाहिए, इस संबंध में वह हमेशा उसे हिदायतें देती रहती है। मासिक-धर्म के समय जब उसकी कमर दुखती है, पैर दर्द करने लगते हैं, वह थक जाती है तो उसकी अम्मा उसे इस स्थिति की आदत डालने की सलाह देते हुए कहती है—‘बार-बार ऐसी शिकायतें नहीं करनी चाहिए, उससे क्या दुःख कम होता है?’ तब जाह्नवी उसे लाड़ से कहती है, ‘लेकिन फिर तुम ऐसा पास आकर थोड़ी बैठती हो?’ तब उसकी

अम्मा उसे कहती है—‘इतनी बड़ी हो गई वह क्या यों ही? और दुलार क्या करें अब? स्वयं ही स्वयं का दुःख सहने की आदत डालनी पड़ती है औरत को। हम अपेक्षा करें तब हमारे घरवाला मनुष्य थोड़ी उपस्थित रह सकता है? और यदि रहा भी करीब, तब भी यह दुःख उसके न पल्ले पड़ेगा।’¹¹ नारी के मासिक-धर्म के बारे में उसकी अम्मा उसे जब इस तरह बताती हैं, तो जाह्नवी अपनी माँ से कहती है, ‘जब वह डाक्टर बन जाएगी, तब जरूर अनुसंधान कर इस बात का पता लगाएगी कि इसका कारण क्या है।’¹² जब माँ उसे महिला की तक्रदीर के बारे में बताती हैं, तो वह अपनी माँ का विरोध करते हुए कहती है, ‘व्यर्थ बकवास मत करो, पुराने जमाने की हुई अब तुम; हम हमारी तक्रदीर स्वयं भी लिख सकते हैं।’¹³ पड़ोसन सुधा ताई का व्यवहार अपने पति के आने के बाद अचानक क्यों बदल जाता है? यह जाह्नवी के लिए जिज्ञासा का विषय बन जाता है? इस संदर्भ में जब वह अपनी अम्मा से पूछती है, तो अम्मा उसे फटकारते हुए ऐसे विषय में ध्यान न देने की सलाह देती है।

जाह्नवी के जीवन में दूसरा बदलाव तब आता है, जब जबरदस्ती उसकी शादी राघवन जैसे साधारण, कमजोर, पुराने खयालात के और शक्की इंसान से कर दी जाती। आरंभिक दिनों में वह पति से शारीरिक संबंध नहीं रखती, परंतु अपने प्रिय सुदर्शन की मृत्यु के बाद उसमें बदलाव आता है। एकदिन वह राघवन के करीब जाकर उसे सहलाने की कोशिश करती है। राघवन उस समय तो उसका विरोध करता है, लेकिन देर रात उसे एहसास होता कि राघवन उसके शरीर के साथ खेलने की कोशिश कर रहा है। जब बात उसकी समझ में आती है, तो उसका प्रतिरोध खत्म हो जाता है। उसे पल-भर ऐसा लगता है कि राघवन उससे इतने दिन तक सताने का बदला ले रहा है। उस प्रसंग का वर्णन करते हुए सानिया लिखती हैं—‘राघवन ने उसे पास नहीं आने दिया। स्वयं की इस दुःखद यातना में कब नींद लग गई, उसे पता ही नहीं चला। देर रात अचानक उसे कुछ एहसास हुआ, तब उसने देखा कि राघवन उसके शरीर से छेड़छानी कर रहा है। जब पता चला, तब उसने प्रतिकार करना छोड़ दिया। अब उसकी आवश्यकता न थी। परंतु उस रात राघवन से उसे जो मिला उसमें आवेग न था, केवल वासना की भूख थी, स्वामित्व की भावना थी।’¹⁴ जाह्नवी को लगा, आगे इसमें बदलाव आएगा, परंतु उसके हाथ बाद में भी निराशा ही लगी। पत्नी होने के नाते सब-कुछ देने के बाद भी राघवन के स्वभाव में कुछ भी परिवर्तन नहीं आया।

उसकी दृष्टि में पत्नी की कोई क्रीमत ही नहीं थी। वह बार-बार जाह्नवी को अपमानित करता, प्रताड़ित करता, कुछ भी पूछने पर तुम्हें क्या करना है? ऐसा कहकर वह उसका अपमान करता रहता। जाह्नवी पूरी तरह हताश-निराश हो जाती है। ऐसे में उसके जीवन में गायत्री और सदाशिवन आते हैं और उसका जीवन पुनः एक नया मोड़ लेता है।

गायत्री जाह्नवी को घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर स्वयं के बारे में सोचने और विचार करने के लिए प्रेरित करती है। उसे तथा उसके बच्चों को सतत उपहार देती, उसकी कविताओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा करती है। एक दिन जाह्नवी और मनी उसे तथा सदाशिवन को घर पर खाना-खाने के लिए बुलाती हैं। दोनों पुरुषों का खाना समाप्त होने के बाद गायत्री जाह्नवी से कहती है—‘यह कैसी पुरानी पद्धति है स्त्री-पुरुषों के अलग-अलग खाना खाने की! तुम्हें पंसद है जाह्नवी? तुम तो थोड़ी-बहुत आधुनिक जगत में रही हो’¹⁵ एक दिन गायत्री उसे

बंगलौर ले जाती है, उसके साथ शॉपिंग करती है, घूमती-फिरती और अपने बारे में, अपने जीवन के बारे में नए सिरे से सोचने का आग्रह करती है। गायत्री राघवन के स्वभाव के संदर्भ में जान्हवी से बातें करते हुए कहती है—‘मुझे पता है राघव किस प्रकार का इंसान है। कुछ आदमी होते हैं ऐसे जो एक टिपिकल साँचे में ही जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं, अन्य कोई भी रंग उन पर चढ़ता ही नहीं, सच है ना?’ जान्हवी कहती है—‘क्या पता! मेरा ही ढाँचा टिपिकल होगा शायद, अन्यों से क्यों अपेक्षा करनी चाहिए?’ तब गायत्री उसे निरंतर स्त्री में होते परिवर्तन के संदर्भ में अवगत कराते हुए कहती है—‘ऐसा क्यों? तुझ जैसी लड़की ने ऐसा कहना चाहिए? अपने अंदर की एक आवाज़ होती है। हमसे पूर्व की अनेक स्त्रियों ने नहीं सुनी वह आवाज़। कुछ स्त्रियों ने उस आवाज़ को दबा डाला। लेकिन अब समय आ गया है कम-से-कम स्वयं को सुनने की, उस पर अमल करने की।’¹⁶ गायत्री के साथ बिताए दो दिन जान्हवी के भीतर कई बदलाव लाते हैं। गायत्री के रहन-सहन और कार्य से जान्हवी खूब प्रभावित होती है। इस बीच उसकी मुलाक़ात अनिकेत और वनिता से भी होती है। वनिता के भीतर आए बदलाव को देखकर स्वयं जान्हवी भी आश्चर्यचकित हो जाती है। अनिकेत के प्यार में पागल होकर वह उसे अपना शरीर तक समर्पित कर देती है। गायत्री की अचानक मौत के कारण पुनः जान्हवी की प्रतिमा में अमूलाग्र परिवर्तन होता है। इस बीच राघवन भी एक दुर्घटना में घायल हो जाता है। उसे अस्पताल में भरती करना पड़ता है। लाख कोशिशों के बाद भी उसकी स्थिति में परिवर्तन नहीं होता। लंबे अंतराल के बाद एकदिन अचानक उसकी मृत्यु हो जाती है। इन बुरे दिनों में सदाशिवन उसकी खूब मदद करता है, जिससे जान्हवी धीरे-धीरे उसकी ओर आकर्षित होकर अंत में उसके साथ शादी करके विदेश चली जाती है। अब हम ‘वाना’ तथा ‘जान्हवी’ की बदलती नारी-प्रतिमा में स्थित समानता और विषमता पर वस्तुनिष्ठ पद्धति से प्रकाश डालेंगे।

वाना और जान्हवी की प्रतिमा में स्थित समानताएँ

‘अंतर्वशी’ उपन्यास की नायिका ‘वाना’ तथा मराठी उपन्यास ‘अवकाश’ की नायिका जान्हवी दोनों की प्रतिमाओं में बहुत-सी समानताएँ दिखाई देती हैं, जिन्हें वस्तुनिष्ठ पद्धति से निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. दोनों मध्यवर्गीय परिवार में पली-बढ़ी हैं।
2. दोनों के दो-दो बेटे हैं।
3. दोनों के पति कम कुशल तथा किसी और के अधीन हैं। जैसे वाना का पति शिवेश राहुल के, तो जान्हवी का पति राघवन सदाशिवन के अधीनस्थ है।
4. दोनों को घर-गृहस्थी चलाने में काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।
5. जिस प्रकार वाना शिवेश की मृत्यु के पश्चात् राहुल से शादी करती है, उसी प्रकार जान्हवी राघवन की मृत्यु के पश्चात् सदाशिवन से शादी करती है।
6. वाना के बुरे दिनों में जिस प्रकार राहुल उसकी मदद करता है, उसी प्रकार जान्हवी सदाशिवन जान्हवी के बुरे दिनों में उसकी मदद करता है।
7. जिस प्रकार वाना को सारिका तथा क्रिस्तीन मुक्त जीवन जीने के लिए प्रेरित करती हैं, उसी प्रकार जान्हवी को गायत्री मुक्त जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है।

8. शिवेश से शादी करने के बाद जिस प्रकार वाना का जीवन परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार श्रीनिवास की मृत्यु के पश्चात् जाह्नवी का जीवन परिवर्तित हो जाता है।
9. जिस प्रकार वाना देखने में सुंदर है, उसी प्रकार जाह्नवी भी देखने में अत्यंत सुंदर है।
10. जिस प्रकार वाना केवल शरीर से अपने पति के साथ शारीरिक संबंध रखती है, मन से नहीं; उसी प्रकार जाह्नवी भी अपने पति के साथ केवल शरीर से संबंध रखती है, मन से नहीं।
11. जिस प्रकार वाना के भीतर घर-परिवार के विकास की लालसा है, उसी प्रकार जाह्नवी के भीतर भी घर-परिवार के विकास की लालसा दिखाई देती है।

वाना और जाह्नवी की प्रतिमा में स्थित विषमताएँ

1. वाना केवल नवीं कक्षा तक पढ़ी है, उसकी तुलना में जाह्नवी विज्ञान शाखा में बी०एस-सी० उत्तीर्ण है।
2. वाना शिवेश से शादी करने के तुरंत बाद विदेश चली जाती है, तो जाह्नवी उम्र के पचासवें साल में सदाशिवन से दूसरी शादी कर विदेश जाती है।
3. वाना विदेश में जाने के बाद थोड़ी-बहुत अँग्रेजी सीखकर घर बेचने की कंपनी में एजेंट का काम करती है, तो जाह्नवी शादी के बाद अर्थार्जन हेतु ट्यूशंस लेती है।
4. वाना क्रिस्तीन के साथ एक बार समलैंगिक संबंध भी कर लेती है, जाह्नवी और गायत्री के बीच के संबंध उस प्रकार नहीं दिखाई देते।
5. जिस प्रकार जाह्नवी शादी के पूर्व सुदर्शन से तथा विवाह के बाद बाह्य शारीरिक संबंध रखती है, जबकि वाना राहुल के अतिरिक्त किसी से भी शारीरिक संबंध नहीं रखती है।
6. अंतर्वशी की वाना का बाह्य परिवेश विदेश है, तो 'अवकाश' की जाह्नवी का बाह्य परिवेश भारत का ही है।
7. वाना के मन में शिवेश से शादी के बाद एक बार भी परपुरुष से संबंध रखने का ख्याल नहीं आता है, जबकि जाह्नवी पढ़ी-लिखी होने के बावजूद शादी के बाद अनिकेत के प्यार में बह जाती है।

अतः सारांश रूप में कहा जा सकता है कि दोनों महिला-उपन्यासकारों ने मध्यवर्गीय समाज में स्थित नारी की प्रतिमा में स्त्री-मुक्ति-आंदोलन के परिणामस्वरूप, शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण, आधुनिक विचारों के प्रभावस्वरूप जो बदलाव आया है, उसे सफलता के साथ शब्दबद्ध किया है। अंत में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि आधुनिक नारी की बदलती प्रतिमा में स्त्रीमुक्ति-आंदोलन ने अपनी अहं भूमिका निभाई है।

संदर्भ

1. स्त्री-अस्मिता, साहित्य और विचारधारा, जगदीश चतुर्वेदी/सुधासिंह, पृ० 07
2. उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिंदी साहित्य, प्रणय कृष्ण, पृ० 260
3. नारीवाद से जुड़े सवाल, प्रभा खेतान प्रगतिशील वसुधा, पृ० 39-48
4. अंतर्वशी उपन्यास, उषा प्रियंवदा, पृ० 10
5. वही, पृ० 11
6. वही, पृ० 16

7. वही, पृ० 11
8. वही, पृ० 68
9. वही, पृ० 72
10. वही, पृ० 107
11. अवकाश, सानिया, पृ० 12
12. वही, पृ० 12
13. वही, पृ० 13
14. वही, पृ० 29
15. वही, पृ० 34
16. वही, पृ० 60

□प्रपाठक हिंदी तुलनात्मक भाषा एवं
वाङ्मय विभाग
उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय,
जलगाँव (महाराष्ट्र) 245001
मो० 09422217600

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के ग़ज़ल-संग्रह 'आदमी है कहाँ' में आदमी की खोज

प्रा० डॉ० शिवाजी नामदेवराव देवरे, निदेशक
दीपक विश्वासराव पाटिल, शोध-छात्र
अ०यु०क० संचालित शिक्षणशास्त्र महाविद्यालय, धुले (महाराष्ट्र)

जिंदगी में यों तो सब मेरे लिए आसान था
गर कोई मुश्किल लगा तो आदमी मुश्किल लगा।¹

हिंदी ग़ज़लकारों में डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का नाम शीर्ष ग़ज़लकारों में है। वह किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। फिर भी अपने पारिवारिक व्यवसाय को छोड़कर साहित्य के विश्व में प्रवेश इतना आसान कार्य नहीं है, वह भी तब जब अपने दोनों भाई अपना पैतृक व्यवसाय संभाल रहे हों, लेकिन डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने साहित्य के इस तकलीफ़देह मौसम में अपना एक स्थान क़ायम किया है। इन्होंने समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए तथा विवादों से परे और पुरस्कारों की भीड़ से अलग रहकर अपने साहित्य-सृजन का कार्य किया है। इनकी पहली पुस्तक 'तीर और तरंग' नाम से 1964 में प्रकाशित हुई थी और तबसे वे अनवरत साहित्य-साधना में रत हैं। साहित्य की प्रत्येक विधाओं में डॉ० अग्रवाल ने लेखन किया है, जिनमें ग़ज़ल साहित्य, हास्य-व्यंग्य, नाट्यसाहित्य, कहानी, ललित निबंध आदि मुख्य हैं स्पष्ट है कि डॉ० अग्रवाल ने बहुआयामी साहित्यिक लेखन किया है।

2010 में प्रकाशित 'आदमी है कहाँ' ग़ज़ल-संग्रह में डॉ० अग्रवाल हमें आदमी की खोज करते नज़र आते हैं। आज का मानव अपनी संस्कृति, सभ्यता को भूलकर दिखावे को अपना वैभव मानकर बैठ गया है। वह गाँव की मिट्टी को छोड़ शहर की गंदगी में अपना अस्तित्व खोज रहा है। 'आदमी की सरलता, सहजता, निश्छलता महानगरीय विद्रूपताओं में विलीन होती जा रही है। कंकरीट के उगते जंगलों में मानवीय रिश्ते जंगली जानवरों जैसी प्रवृत्तियों में बदलते जा रहे हैं, दोस्ती और भाईचारे के प्राचीन अर्थ खंडित हो रहे हैं, छल, प्रपंच, स्थार्थ और विश्वासघात के कीटाणु वातावरण में फैल रहे हैं। खोखली मुस्कान, भौतिक आकर्षण, विभाक्त वातावरण, भीड़भाड़ और बढ़ते हंगामों के बीच अपनी पहचान खोता जा रहा है आदमी।²

इसीलिए डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल कहते हैं—

खेत खाली पड़े हुए हैं यार
आदमीयत में आदमी बो दो।³

आज व्यक्ति के सामने बाह्य चुनौतियों से अंतः चुनौतियाँ अधिक हैं। सामने समाज का

परिवर्तित स्वरूप भी है।⁴ फिर भी आज का युवक सच्चाई से मुँह फेरकर सपनों की दुनिया में जी रहा है, वह सपने देखता है, लेकिन उनको हकीकत में उतारने के लिए प्रयास नहीं कर रहा है, इसीलिए डॉ॰ अग्रवाल कहते हैं—

स्वप्न को रूप दे हकीकत का
सिर्फ सपनों से प्यार क्या करना।⁵

समय किसी के लिए नहीं रुकता है। समय बड़ा ही बलवान है, समय का सदुपयोग करना आदमी की ज़रूरत है। यदि आदमी को अपने सपनों को सच में साकार करना है तो वह समय के साथ चलना सीखे। अगर हर कार्य समय पर हो तो आदमी स्वयं ही अपनी तक्रदीर बना सकता है। आज का आदमी सपने देख रहा है, लेकिन अपने घर में ही वह सपना बनकर रह गया है। वह घर-आँगन में तो रहता है, पर वह अपनापन, वह प्यार नहीं है, वह अपने ही घर में परायों-सा रहने लगा है। डॉ॰ अग्रवाल कहते हैं—

एक ही आँगन में रहते हैं, मगर हैं अजनबी
अब न वैसे रिश्ते-नाते, अब न वैसा घर रहा।⁶

आदमी कितना बदल गया है। कहाँ पूरे परिवार में आदमी खुशी के गीत गाता था, दादा-दादी, नाना-नानी, फूफा-फूफी, बुआ, माँ-पिताजी, बच्चे किस-किस तरह का हरा-भरा परिवार हुआ करता था, और आज एक ही आँगन में रहकर भी आदमी, आदमी से अजनबी, पराया सा व्यवहार कर रहा है। वह भाई-भाई का प्यार, बहना का दुलार, बच्चों के प्रति स्नेह, बड़ों के प्रति सम्मान सब-कुछ बदल गया है। अब वैसे रिश्ते-नाते तो बस किताबों में पढ़ने मिलते हैं और अब वह स्नेह से भरा घर भी सिर्फ फ़िल्मों में देखने के लिए मिलता है। फिर भी डॉ॰ अग्रवाल यह आशा करते हैं कि वह आदमी खोजा जाए, जो दूसरों के दर्द को अपना दर्द समझे। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल कहते हैं—

सोचता हूँ आदमी तब आदमी होने लगे
दर्द जब इक-दूसरे का ज़िदगी होने लगे।⁷

आज जो भी हमें देखने मिलता है बड़ा अजीब-सा लगता है, आज कोई भी आदमी खुद के स्वार्थ को छोड़ना नहीं चाहता, तो दूसरों का दुःख दर्द बाँटना तो दूर की बात है, लेकिन डॉ॰ गिरिराजशरण आदमी की खोज करते हुए कहते हैं कि जब एक आदमी दूसरे के दुःख-दर्द नहीं समझेगा, तब तक आदमी की खोज अधूरी है, इसीलिए डॉ॰ अग्रवाल ऐसा आदमी खोज रहे हैं, जो खुद के साथ-साथ औरों के भी काम आए। इसीलिए वह कहते हैं—

अपने-अपने काम सब आते हैं, मैं भी आप भी
बात तब है दूसरों के काम आना सीखिए।⁸

और

जमाने को अपना ही परिवार समझे
जमाने में कोई पराया नहीं है।

यंत्र के युग का आदमी जी रहा है मगर खुद के लिए। औरों के लिए उसे जीना आता नहीं है, इसीलिए डॉ॰ अग्रवाल कहते हैं कि पूरा ज़माना ही अपना परिवार समझे ज़माने में किसी को भी पराया न समझे जिससे हर कोई आदमी हर आदमी के काम आएगा और डॉ॰ अग्रवाल

का आदमी की खोज का प्रयास सफल हो जाएगा।

आज का आदमी खुद को अकेला महसूस कर रहा है। उसे लगता है, परिवार में उसका कोई महत्त्व नहीं है, न ही उसकी जो समस्या है उसका हल। इसीलिए डॉ० अग्रवाल को कहना पड़ा—

सीखिए अपना बनाने का हुनर कौन है बस्ती में जो अपना नहीं है।

राहगीरो! ढूँढ़ने की बात है, कौन जंगल है, जहाँ रस्ता नहीं।¹²

यह जो भटका हुआ आदमी है जो बाहर प्यार ढूँढ़ता फिर रहा है, उसे डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल कहते हैं कि बस्ती में हर कोई अपना है बस उसे अपना बनाने का हुनर चाहिए क्योंकि ऐसा कौन-सा जंगल है जहाँ आने या जाने के लिए रास्ता नहीं है।

डॉ० अग्रवाल आदमी की खोज करते हुए आगे तक निकल जाते हैं तो वह देखते हैं कि आदमी आज पैसों के कारण बौना होकर बौरा गया है। वह भूल गया है कि पैसा ही सच नहीं। पैसों के बाहर भी एक सच है, जो डॉ० अग्रवाल अपने इस शेर के माध्यम से कहना चाहते हैं—

देह का सूरज भी सच है, मन का सागर भी सच

सिर्फ पैसा ही नहीं, पैसे के बाहर भी है सच।¹³

पैसों से आदमी भौतिक सुख तो जुटा सकता है, लेकिन पैसों से किसी का प्यार नहीं पा सकता, क्योंकि इस चारदीवारों के बाहर भी इक दुनिया है, जो पैसों से नहीं प्यार से चलती है।

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की खोज बड़ी लंबी है। वह स्वयं अपने प्राक्कथन में कहते हैं—मेरी शायरी का एक ही लक्ष्य है—मानव की खोज। आदमी की खोज, जो कहीं अनजाने रास्तों में खो गया है। लेकिन वह है, और जरूर मिलेगा, बस थोड़ी तलाश को तेज करना होगा। साथ मिलकर चलना होगा, आत्मकेंद्रित स्थितियों से मुक्त करना होगा स्वयं को¹⁴ तभी डॉ० अग्रवाल कहते हैं—

शक्तिशाली देवता के बाद है तो आदमी

आदमी को किसलिए लाचार होना चाहिए।¹⁵

ऐसे शक्तिशाली आदमी की खोज डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल हर जगह कर रहे हैं। उनका मानना है कि इस जीवसृष्टि में अगर कोई शक्तिशाली है, तो वह है आदमी तो ऐसे आदमी को परिस्थितियों से हारकर परेशान नहीं होना चाहिए, बल्कि संकटों का डटकर सामना करना चाहिए। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल गजल विधा के सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। वह अपनी गजलों में समाज-जीवन का एक नया रूप हमारे सामने लाते हैं, जिससे पूरा समाज-जीवन उन बातों से रू-ब-रू हो और उसे पता चले जीवन की सही व्याख्या क्या है, इसीलिए डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल अपने गजल-संग्रह में भी आदमी की खोज करते तथा हमें खोजने के लिए प्रेरित करते हैं—

गाँव से चलके आया था, खो गया

शहर की भीड़ में आदमी खोजिए।¹⁶

संदर्भ

1. रोशनी बनकर जिओ, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 29
2. आदमी है कहाँ, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 6
3. भीतर शोर बहुत है, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 34
4. हिंदी ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ, अनिरुद्ध सिन्हा, पृ० 8
5. वही पृ० 27
6. वही पृ० 57
7. वही पृ० 57
8. वही पृ० 59
9. वही पृ० 63
10. वही पृ० 87
11. वही पृ० 87
12. वही पृ० 107
13. वही पृ० 121
14. वही पृ० 9
15. वही पृ० 29
16. वही पृ० 135

□प्लॉट नं० 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा०) 424002
मो० 09766362407

आचार्य कुलपति मिश्र का ध्वनि-निरूपण

गुंजन त्रिपाठी

ध्वनि-निरूपण

आनंदवर्धन के अनुसार जहाँ पर शब्द और अर्थ स्वयं को गौण बनाकर अन्य प्रकार के प्रतीयमान अर्थों को अप्राधान्येन व्यक्त करते हैं, उस काव्य-विशेष को ध्वनि कहा जाता है। साहित्य-जगत् में प्रायः वहीं कविता सहृदय-हृदयहारिणी होती है, जिसमें पिहित कामिनीकुचकलशवत् कतिपय प्रच्छन्न रसादि व्यंग्य (ध्वनि) पदार्थ रसिकजनों को अलौलिक आह्लादजनक प्रतीत होते हैं। उस व्यंग्य रसादि के ऊपर सारा काव्यात्मक सौंदर्य आश्रित रहता है। अतः काव्य में व्यंग्यार्थ का होना नितांत अपेक्षित है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति अभिधा या लक्षणावृत्ति द्वारा न होकर व्यंजनावृत्ति से ही होती है। व्यंजना से प्रतीयमान व्यंग्य रसादि ही काव्य का सर्वस्व है। व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति में शब्द और अर्थ दोनों ही कारण होते हैं किंतु प्रधानता शब्द और अर्थ मेंसे एक ही होती है। प्रतीयमान अर्थ को प्रतिष्ठा सर्वप्रथम ध्वनि-सिद्धांत के अंतर्गत मिली। आनंदवर्धन ने इसे काव्य के महत्त्वपूर्ण आंतरतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया। काव्य अपनी जिस चारूता के कारण सहृदयों के आनंद का हेतु बनता है, उसके मूल में यही प्रतीयमान अर्थ रहता है।

प्रतीयमान अर्थ के प्रकार

ध्वनिकार का अनुसरण करते हुए ध्वनिवादियों ने प्रतीयमान अर्थ के तीन रूपों को स्वीकार किया है—1. वस्तुरूप, 2. अलंकाररूप और 3. रसरूप

1. वस्तुरूप प्रतीयमान अर्थ—

जहाँ किसी वस्तु की व्यंजना होती है, वहाँ वस्तुरूप प्रतीयमान अर्थ होता है। जैसे—
तंत्रीनाद कवित्तरस सरस राग रतिरंग।

अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग।'

प्रस्तुत दोहे में वाच्यार्थ के माध्यम से बिहारी ने इस वस्तु को व्यंजित किया है कि काव्य और संगीत आदि का आनंद तन्मयता में ही प्राप्त होता है। आधे मन से दत्तचित्त न होकर इसकी साधना करनेवाले असफल रहते हैं। अतः यहाँ वस्तुरूप प्रतीयमान अर्थ है।

2. अलंकाररूप प्रतीयमान अर्थ—

जहाँ किसी अलंकार की व्यंजना होती है, वहाँ अलंकाररूप प्रतीयमान अर्थ होता है। जैसे—

पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।

नितप्रति पून्योई रहे, आनन-ओप उजास।

यहाँ कवि ने नायिका के मुख-सौंदर्य की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए यह व्यंजित

किया है कि नायिका का मुखंडल पूर्णिमा के चंद्रमंडल के समान है। अतः उपमालंकार की व्यंजना होने के कारण प्रस्तुत दोहे में अलंकार रूप प्रतीयमान अर्थ की प्राप्ति होती है।

3. रसरूप प्रतीयमान अर्थ—

रसादि की व्यंजना होने पर रसरूप प्रतीयमान अर्थ होता है जैसे—
 परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरू सब कहहिं सभीता।
 पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहंसी एक आली।
 गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी।
 थरि बड़ि रामु उर अने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने।³

प्रस्तुत वर्णन में राम आलंबन और सीता आश्रय हैं। पुष्पवाटिका, सखी का कथन तथा उनका परिहास उद्दीपन, राम के सौंदर्य पर विमुग्ध सीता का निर्निमेष दर्शन अनुभाव है। पिता जनक की प्रतिज्ञा के स्मरण से मन का क्षुब्ध होना, राम को सम्मुख देखकर प्रसन्नता, विलंब के कारण माता का भय आदि संचारी भाव हैं। इन सबके संयोग से शृंगाररस रूप प्रतीयमान अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

व्यंजकत्व वृत्ति

व्यंजकत्व वृत्ति ध्वनिसिद्धांत की अन्य मौलिक स्थापना है। उसकी व्याख्या करते हुए आनंदवर्धन ने सर्वप्रथम काव्य के प्राणभूत तत्त्व प्रतीयमान अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए व्यंजकत्व वृत्ति को अनिवार्य माना है। उनकी व्यंजकत्व वृत्ति ही परवर्ती ध्वनिवादियों का व्यंजना-व्यापार है। अमिधा तथा लक्षणा का कार्य समाप्त हो जाने पर इसका कार्यारंभ होता है। आनंदवर्धन ने वाचकत्व, गुणवृत्ति और व्यंजकत्व के रूप में स्पष्टतः अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना इन त्रिधा शब्दशक्तियों को प्रस्तुत किया है।⁴ परवर्ती आचार्यों ने व्यंजना का विवेचन आनंदवर्धन के व्यंजकत्व व्यापार के अनुरूप ही किया है। अतः यह कहना कि उन्होंने व्यंजना वृत्ति का न कहीं नामोल्लेख किया है, न ही विवेचन, वास्तविकता से दूर तथा भ्रमात्मक है। आनंदवर्धन के अनुसार चारूत्व की प्रतीति के लिए शब्द के अभिधेय रूप से जिसका प्रतिपादन अभीष्ट हो, वह व्यंग्य है और जिस वृत्ति से इसका प्रतिपादन होता है, उसे व्यंजकत्व कहते हैं।

ध्वनितत्त्व

ध्वनिसिद्धांत में ध्वनि काव्य की आत्मा एवं उसका सर्वाधिक अंतरंग तत्त्व है। आनंदवर्धन ने ध्वन्यालोक में ध्वनि को वाच्य, वाचक, शब्दात्मा और काव्य आदि अनेक अर्थों में व्यहृत किया है। इस प्रकार ध्वनि एक ऐसा संश्लिष्ट तत्त्व है, जो काव्य के प्राणभूत तत्त्व प्रतीयमान अर्थ के साथ उसकी अभिव्यक्ति में सहायक तथा उससे संबद्ध काव्य के इतर तत्वों में भी समाहित है।

ध्वनि की परिभाषा

ध्वनिकाव्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए ध्वनिकार ने कहा है कि जिस काव्य में अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अर्थ को गौण करके उस (प्रतीयमान) अर्थ को व्यक्त करते हैं, उस काव्य-विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है—

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो।
 व्यडक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरभिः कथितः।⁵

जहाँ पर वाच्यविशेष अर्थ अथवा वाचकविशेष शब्द अत्यंत चमत्कारजनक व्यंग्यार्थ को व्यक्त करते हैं, वह ध्वनि नामक उत्तम काव्य माना जाता है। समासोक्ति, पर्यायोक्ति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों में ध्वनि के अंतर्भाव की संभावनाओं का खंडन करते हुए आनंदवर्धन ने उन स्थलों में ध्वनिकाव्य की स्थिति स्वीकार नहीं की है, जहाँ व्यंग्य की अप्रधानतया प्रतीति होती है। अतः ध्वनिकाव्य में व्यंग्य की प्रधानतया की तत्परता अपेक्षित है अन्यथा प्रधानरूप से व्यंग्यार्थ की प्रतीति नहीं हो सकती। यहाँ व्यंग्य की स्फुट प्रतीति भी आवश्यक है। आनंदवर्धन ने अंगीभूत (प्रधान) व्यंग्य की स्फुट प्रतीति को ही ध्वनि का पूर्ण लक्षण कहा है।

ध्वनि-भेद

ध्वनिकार ने ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत में ध्वनि के दो भेद किए हैं—

1. विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविध सामान्येन।⁶

प्रथम भेद में वाच्यार्थ की अपेक्षा नहीं होती तथा दूसरे भेद में वाच्यार्थ की विवक्षा रहती है। प्रथम को लक्षणामूला और दूसरे को अभिधामूला ध्वनि कहते हैं। अविवक्षितवाच्यध्वनि के पुनः दो भेद होते हैं—1. अर्थांतर संक्रमित और 2. अत्यंत तिरस्कृत

अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्त वा तिरस्कृतम्।

अविवक्षितवाचस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधामतम्।⁷

विवक्षितान्यपरवाच्य के भी दो भेद होते हैं—1. संलक्ष्यक्रम तथा 2. असंलक्ष्यक्रम। प्रमुखता से प्रकाशित होने वाला ध्वनितत्त्व (व्यंग्यार्थ) ही काव्य की आत्मा है। वह कभी क्रम से प्राप्त होता है और कभी अक्रम से। असंलक्ष्य क्रम से रस, भाव, रसाभास, भावभास, भावाशांति, भावशबलता तथा भावोदय आते हैं। रस चाहे एकत्र स्थित होकर चमत्कारी हों, और चाहे अंशभूत में प्रयोजक होने के कारण चमत्कारी हों, वह इसी कोटि में आते हैं—‘यद्यपि च रसेनेव सर्वे जीवितकाव्यतम् तथापि तस्य रसस्यैक धनचत्कारात्मनोदपि कुताश्चिर्देशाप्रयोजकीभूतादधिको सो चमत्कारो भवित’।⁸ भावोदय आदि अंगीभाव-से प्रतीत होते हुए ध्वनि के आत्मरूप होते हैं।

रसभाव-तादाभास-भावशान्त्यादिरक्रमः। ध्वनेरात्माग्निभावेन भासमानो व्यवस्थित।⁸

किंतु प्रमुख रूप से जहाँ कोई, दूसरा अर्थ प्रधान हो जाता है तथा रसदितत्त्व उसके चारूतत्त्व की अभिवृद्धि करते हैं, वहाँ रसवत् अलंकार माना जाता है। इस प्रकार ध्वनि से रसवदादि पृथक् हो जाते हैं।

रीतिकाव्य

हिंदी साहित्य में ध्वनि-सिद्धांत का शास्त्रीय विश्लेषण रीतिकालीन आचार्यों में प्राप्त होता है। यद्यपि ध्वनि और गुणीभूतव्यंग्य काव्य का संकेत तुलसी के रामचरितमानस में मानस रूपक प्रसंग में मिलता है। तुलसी ने ध्वनिकाव्य को उत्तम तथा गुणीभूत व्यंग्य को मध्यम काव्य की कोटि में रखकर हिंदी साहित्य में ध्वनि का सर्वप्रथम अभिनिवेश किया है। तुलसी के काव्य में यह ध्वनितत्त्व गुणों पर आधारित है—

धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँति।¹⁰

ध्वनि का सैद्धांतिक विश्लेषण कुलपति मिश्र ने सर्वप्रथम किया था। चिंतामणि और कुलपति के पूर्व ध्वनिकाव्य का संकेत सेनापति के कवित्त-रत्नाकर में मिलता है—

दोष सौ मलीन, गुण-हीन कविता है, तौ पै,
 कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहैं।
 बिन ही सिखाए, सब सीखिहैं, सुमति जो पै,
 सरस अनूप रसरूप यामै धुनि है।¹¹

इस छंद में सेनापति ने अपने काव्य को अनुपम रसध्वनि (असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि) का निदर्शन कहा है। यद्यपि कवित्त-रत्नाकर के अंत में चित्रकाव्य-संबंधी कुछ उदाहरण भी मिलते हैं, जो शब्दकौतुकप्रधान हैं तथापि सेनापति को ध्वनि-संप्रदाय का अनुयायी माना जा सकता है।

केशवदास एक अलंकारवादी आचार्य थे। इसलिए उनके काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में ध्वनि को स्वीकार नहीं किया गया है। इस प्रकार चिंतामणि से पूर्व कोई भी ध्वनि-विवेचक ग्रंथ हिंदीकाव्य में नहीं मिलता है।

कुलपति मिश्र का ध्वनि-विवेचन

आचार्य कुलपति ने 'रसरहस्य' के तृतीय वृत्तांत में ध्वनि का निरूपण किया है। ध्वनि की प्रधानता, गौणता तथा अस्फुटता के आधार पर ही काव्य के उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद किए जाते हैं। अतः कुलपति की दृष्टि में ध्वनि का विवेचन आवश्यक है—

कवित्त होते ध्वनिभेद ते उत्तम मध्यम और
 तातैं ध्वनि बरनन करौं, है औसर एहि ठौर।¹²

उन्होंने ध्वनि के दो भेद किए हैं—1. अविवक्षितवाच्य या लक्षणामूला तथा 2. विवक्षित वाच्य या अभिधामूला। उन्होंने अविवक्षित को लक्षणामूलक गूढ़ व्यंग्य प्रधान बतलाते हुए उसे दो भागों—अर्थान्तरसंक्रमित और अत्यंततिरस्कृत में विभक्त किया है। इन दोनों को उन्होंने क्रमशः वाच्यार्थ का अन्य अर्थ में मिलना तथा वाच्यार्थ की कोई गणना न होना कहा है—

मूल लक्षणा है जहाँ गूढ़ व्यंग्य परधान।
 अर्थ न काहू अर्थ को सो ध्वनि जानहु जान।
 जहाँ अर्थ नहिं काम को सो ध्वनि द्वै विधि होय।
 अर्थ और सों मिलि रहै अर्थहि गने न कोय।¹³

कुलपति ने व्यंग्य के काम आने वाले वाच्यार्थ (विवक्षितान्यपरवाच्य) को दो भागों में विभक्त किया है—1. जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के क्रम से प्रच्छन्नता रहती है (असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य) तथा (2) जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का क्रम परिलक्षित होता है। (संलक्ष्यक्रम व्यंग्य)।

अर्थ व्यंग्य के काम को जहाँ सु ध्वनि द्वै भाँति।
 प्रथमहिं क्रम नहिं जानिए दूजे है क्रम काँति।¹⁴

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य में उन्होंने रस, भावादि का विस्तृत किया है। रस की अनुभूति में विभावादि की प्रतीति का क्रम होने पर भी उसकी प्रतीति न होने से उसको असंलक्ष्यक्रम कहा गया है। उसे अक्रम व्यंग्य नहीं कहा जा सकता—

जेहि ठाँ क्रम नहिं जानिए सो ध्वनि बहुत प्रकास।
 नवरस भाव अनेक विधि पुनि तिनके आभास।
 साँति संधि अरु सबलता उदय भव विधि और।

तहाँ बिराजत नाँव यह ते ही प्रभु जेहि ठौर।¹⁵

जहाँ रसादि की प्रतीति प्रधान रूप से होती है, वहाँ रसादि अलंकार्य होते हैं तथा जहाँ रसादि अंगरूप होते हैं तथा किसी प्रधानवस्तु अथवा अलंकार रूप वाक्यार्थ के अंग बन जाते हैं, तब इन्हें अलंकार कहा जाता है। रसवत्, प्रेयस, ऊर्जस्वित् तथा समाहित चार प्रकार के रसबदलंकार होते हैं, ध्वनिकार रसध्वनि के अपरांग होने पर गुणीभूत व्यंग्य स्वीकार करते हैं।¹⁶ मम्मट ने चारों को गुणीभूतव्यंग्य माना है। कुलपति ने भी रसबदलंकारों को गुणीभूत व्यंग्य से अपृथक् माना है। वह ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य दो ही वस्तु को स्वीकार करते हैं। रसबदलंकार वाच्य और वाचक अर्थ अथवा शब्द के उपकारक न होकर साक्षात् रसादि के उपकारक होते हैं।

अन्यत्र तु प्रधाने वाक्यार्थे यत्रान्नाभूतो रसादिस्तत्र गुणीभूतव्यंग्ये रसवत्,

प्रेमऊर्जस्विसमाहितादयोऽलंकाराः। ते च गुणीभूतव्यंग्याभिधाने उदाहरिष्यन्ते।¹⁷

इसीलिए उनमें अलंकार के लक्षण अभिघटित नहीं होते। अलंकार प्रत्यक्षतः वाच्य-वाचक के उपकारक और परंपरया रस के उपकारक होते हैं। कुलपति ने मम्मट की परंपरा का पालन किया है।

संलक्ष्यक्रम व्यंग्य का लक्षण देते हुए उन्होंने कहा कि जहाँ शब्द, अर्थ एवं शब्दार्थ के व्यंग्यार्थ की प्रतीति झाँई-सी हो अर्थात् व्यंजक एवं व्यंग्य की प्रतीति का क्रम 'रणन और अनुरणन' की भाँति हो वहाँ संलक्ष्यक्रम व्यंग्य होता है। संलक्ष्यक्रम व्यंग्य के तीन भेद हैं—शब्दशक्त्युद्धव, अर्थशक्त्युद्धव तथा शब्दार्थशक्त्युद्धव।

सब्द अर्थ पुनि दुहुन ते झाँई सी परतीति।

व्यंग्य होय तिन हाथ ही जहाँ सुक्रम ध्वनि रीति।¹⁸

अर्थशक्तिमूलक ध्वनि के स्वतः संभवी, कविप्रौढोक्तिसिद्ध तथा कविनिबद्धमात्र प्रौढोक्ति सिद्ध ये तीन भेद होते हैं। पुनः इन तीनों के वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार, अलंकार से वस्तु और अलंकार से अलंकार चार भेद होते हैं। इस प्रकार अर्थशक्त्युद्धव ध्वनि के बारह भेद होते हैं। शब्दार्थ शक्तिमूलक ध्वनि का मात्र एक भेद होता है—

अर्थ रूप कवि को कियों बक्ता उक्ति विचारि।

होय अर्थ ते सिद्ध जो सो ध्वनि तीन प्रकार।

अलंकार अरु वस्तु पुनि व्यंग्य परस्पर होत।

एक-एक के चारि हैं, बारह भेद उदोत।¹⁹

इस प्रकार शब्दशक्तिमूलक 2, अर्थशक्तिमूलक 12 तथा उभयशक्तिमूलक 1 भेद मिलकर संलक्ष्यक्रम के 15 भेद हो जाते हैं—

सब्द अर्थ ते जौ भई सो ध्वनि येके भाँति।

संलक्ष्यक्रम व्यंग्य औ पंद्रह विधि सुभकार्ति।²⁰

ध्वनि के इस विवेचन में अविवक्षित के 2 तथा विवक्षित के 16 (संलक्ष्यक्रम 15, असंलक्ष्यक्रम 1) भेद मिलकर कुल 18 भेद होते हैं। संसृष्टि तथा संकर भेदों से यह गणना 10455 तक पहुँचती है, किंतु विस्तारभय के कारण 18 भेदों का ही निरूपण करते हैं—

पद समूह पदबंध ध्वनि संकर और संसृष्टि।

डरपि ग्रंथ बिस्तार ते करीन तिनसों दृष्टि।²¹

ध्वनि के भेदोपभेद

आनन्दवर्धन ने निम्नलिखित आधारों पर भेद-प्रभेद किए हैं—1. प्रधान व्यंग्य, 2. वाच्य की विवक्षा में निहित शब्दशक्ति, 3. व्यंजक उपकरण तथा 4. मिश्रता।

प्रधान व्यंग्य की दृष्टि से ध्वनि के तीन भेद होते हैं—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि और रसध्वनि। वस्तुध्वनि मात्र तथ्यों की व्यंजना तक ही सीमित नहीं है, अपितु विचार व्यंजना भी उसके अंतर्गत आती है। तथ्यों की व्यंजना द्वारा ही रचनाकार पाठकों को विचारों की दुनिया में ले जाता है, अतएव वस्तुध्वनि को विचारध्वनि भी कहना अनुचित न होगा।

वाच्य की विवक्षा में निहित शब्दशक्ति के आधार पर आनन्दवर्धन ने ध्वनि के अविवक्षितवाच्यध्वनि तथा विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि दो भेद किए हैं। जहाँ वाच्य की विवक्षा नहीं होती है, वहाँ अविवक्षितवाच्यध्वनि है और जहाँ वाच्य की भी विवक्षा होती है, वहाँ विवक्षितवाच्यध्वनि होती है। प्रथम में प्रधानभूत व्यंग्यार्थ रूप ध्वनि जिस वाच्यार्थ के माध्यम से आता है, वह बाधित होने के कारण अनुपपन्न तथा अनुपयोगी होता है। इसलिए उसमें वक्ता की विवक्षा का अभाव होता है। इसके मूल में शब्द की लक्षणाशक्ति कार्यरत रहती है, अतः इसे लक्षणामूला ध्वनि भी कहते हैं। दूसरों में प्रधान व्यंग्यार्थरूप ध्वनि जिस वाच्यार्थ के माध्यम से प्राप्त होता है, वह बाधित न होकर उपपन्न एवं उपयोगी होता है। वहाँ वक्ता की मूल विवक्षा ध्वनि रूप अर्थ में ही होती है तथा वाच्य भी उसकी विवक्षा से युक्त होता है। अतः उसे विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि कहते हैं। इसके मूल में अभिधा शक्ति कार्य करती है, अतः इसे अभिधामूला ध्वनि भी कहते हैं।

अविवक्षित वाच्यध्वनि

अविवक्षितवाच्य ध्वनि के दो भेद होते हैं—1. अर्थान्तर संक्रमित वाच्य तथा 2. अत्यंत तिरस्कृतवाच्य।

अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि

अर्थान्तरसंक्रमित का अर्थ है दूसरे अर्थ में संक्रात हो जाना। अर्थात् जहाँ शब्द वाच्यार्थ को छोड़कर किसी दूसरे अर्थ में परिणत हो जाता है, जहाँ मुख्यार्थ के बाधित हो जाने के कारण वाच्यार्थ की विवक्षा (उपयोग) न होने पर वाच्य अपने दूसरे अर्थ में संक्रमण (बदल) कर जाता है, उसे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य कहते हैं। जैसे—

स्वामस्मि वच्मि विदुषा समवायोजव तिष्ठति।

आत्मीया मतिमास्थाय स्थितिमत्र विधेहि तत्²²

आचार्य कुलपति मिश्र ने उपदेश की व्यंजना कराते हुए प्रस्तुत उदाहरण दिया है—

यह समयो पैहे न फिर कहै बैन समझुय।

निज हित मन में समुझि के जीति परन के दाँय²³

यहाँ कोई सखी मानिनी नायिका को उपदेश करते हुए कहती है कि ऐसा समय पुनः नहीं मिलेगा, अतः दूसरे के द्वारा फेंके गए दाँव को बुद्धिमानी से जीतकर अपने हित की रक्षा करे। इस उदाहरण में 'यह समय' रतियोग्य निरापद अवसर का व्यंजक है। 'कहै' क्रिया में सामान्य कथन की अपेक्षा सुहृद् परामर्श निहित है, जिससे वक्ता की अंतरंगता, प्रगाढ़ता तथा विशेष हितभावना व्यंजित होती है। दूसरे के दाँव को जीतने का अभिप्राय नायक को अन्य नायिका की

आसक्ति से मुक्त कराना है। अतः सुखी मान त्यागने का उपदेश देती है, क्योंकि मान त्याग देने से नायक का अन्यत्र गमन बंद हो जाएगा। इस प्रकार इस छंद में अनेक पद अपने मुख्यार्थ को छोड़कर अर्थांतर में संक्रमण कर रहे हैं।

अत्यंत तिरस्कृत वाच्यध्वनि

जहाँ पर शब्द अपने वाच्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार (परित्याग) करके अपने से भिन्न अर्थ में परिणत हो जाता है, उसे अत्यंत तिरस्कृतवाच्यध्वनि कहते हैं। अत्यंत तिरस्कृत वाच्य में शब्द वाच्यार्थ को एकदम छोड़कर भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसमें वाच्यार्थ पूर्णतः बाधित होकर अन्य चमत्कारजनक अर्थ की अभिव्यक्ति करने लगता है। वाच्यार्थ के सर्वथा परित्याग के कारण ही से जहत्स्वार्था भी कहते हैं। इसमें लक्षणलक्षणा का सहारा लिया जाता है।

कुलपति मिश्र ने लक्षणलक्षणा का सहारा लेकर नायक के लिए भ्रमर, नेत्र के लिए चकोर तथा मुग्धा नायिका के लिए कली शब्द का प्रयोग का वाच्यार्थ के सर्वथा तिरस्कार का उदाहरण प्रस्तुत किया है। गुरुजनों के मध्य चौर्यरति के लिए तैयार नायिका को प्रबोध कराने के लिए उसकी सखी की यह उक्ति ध्यातव्य है—

है किधौं नाहिनै संभ्रम भौक्त सु देत रहे रस कौन कली कौ।
जानि परै जब होय विकास सखी भलो मानिय बात भली कौ।
भौरन को मन भायौ करो न डरो सुनि लेहु सिखायो अली कौ।
आनँदपुंज चकोरन देहु प्रगास करो किनि कुंज गली कौ।²⁴

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि

जहाँ पर वाच्यार्थ की प्रतीति के पश्चात् व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो, उसे विवक्षित वाच्यध्वनि कहते हैं। इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा रहती है। इसमें वाच्यार्थ अपने स्वरूप-प्रदर्शन में उन्मुख न होकर रमणीय व्यंग्यार्थ को प्रकट करता है। इसे अभिधामूलाध्वनि भी कहते हैं। इस ध्वनि में विवक्षा अन्यपरक होती है, इसलिए इसे विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि भी कहते हैं।

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि के दो भेद होते हैं—1. असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य 2. संलक्ष्यक्रम व्यंग्य।

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य का अर्थ है, जहाँ पर वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ में पूर्वापर क्रम न जाना जाय, अर्थात् जहाँ वाच्य और व्यंग्य का क्रम हो तो, किंतु शीघ्रता के कारण यह प्रतीक न हो, उसे असंलक्ष्यक्रम कहते हैं। इसके अंतर्गत रस, भाव, रसाभाव, भावाभास, भावोदय, भावशांति, भावसंधि तथा भावशबलता आदि का भी समावेश किया जाता है। रसादि को असंलक्ष्यक्रम इसलिए माना जाता है, क्योंकि उसमें विभावादि द्वारा रसप्रतीति का पूर्वापर क्रम प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसमें व्यंग्य-प्रतीति इतनी जल्दी होती है कि उसके पूर्वापर क्रम का ज्ञान ही नहीं रहता। जैसे-शतपत्रदल अर्थात् कमल की पंखुड़ियों का खिलना इतनी शीघ्रता से होता है कि उसमें यह नहीं ज्ञात होता कि कौन सी पंखुड़ी पहले खिली और कौन सी बाद में। इसी प्रकार असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य में भी पूर्वापर क्रम का ज्ञान नहीं रहता।

संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि

जहाँ पर वाच्यार्थ के प्रथम ज्ञान होने के पश्चात् व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो, उसे संलक्ष्यक्रम व्यंग्य कहते हैं। यह व्यंग्य वस्तु और अलंकाररूप होता है।

अर्थशक्तिमूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि वहाँ होती है, जहाँ रचना के अर्थबल से क्रमपूर्वक ध्वनि की प्रतीति होती है। यह वस्तु, अलंकार और रसरूप तीन प्रकार की होती है।

वस्तुध्वनि

जहाँ किसी शब्द से अलंकार रहित वस्तु का बोध होता है, उसे वस्तुध्वनि कहते हैं। मम्मट ने काव्यप्रकाश में वस्तुध्वनि के दो उदाहरण दिए हैं।

पथिक् नात्र स्त्रस्तरमस्ति मानक् प्रस्तरस्थले ग्रामे।
उन्नत पयोधर प्रेक्ष्य यदि वससि तद्वस।
शनिरश्निश्च तमुच्चै निहिन्ति कुप्यसि नरेन्द्र यस्मै त्वम्।
यत्र प्रसीदति पुनः स भात्युदारोऽनुदारश्च।²⁵

कुलपति मिश्र ने उद्धव द्वारा प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म के विरुद्ध प्रेमाभक्ति की उपासिका गोपियों की उक्ति द्वारा योगमार्ग और प्रेममार्ग के सर्वथा विरुद्ध भाव का प्रतिपादन कराया है। गोपियों की दृढ़ आसक्तिरूप वस्तु की व्यंजना इस उदाहरण में कराई गई है—

ध्यान करो व्यापक विमल सुख जोत हरी,
रावरी चलायो चहचरू कैसे मानिए।
वे ही रूप रई कीट भ्रंगी कैसी भाँति भई,
ध्यान हूँ तौ कीजै जो पै दूजो कोऊ जानिए।
जोग करि पाइहौं बतावत हौं दूरि इहाँ,
पल न विचोग यह नीके उन आनिए।
गुनिन पै निगुन ठगौरी कहूँ परी सुनी,
ठगई हूँ कीजै ऊधौ ठौर पर जानिए।²⁶

अलंकारध्वनि

जहाँ किसी शब्द से अलंकार प्रधान रूप से प्रतीत होते हैं वहाँ अलंकारध्वनि होती है। काव्यप्रकाश में मम्मट ने उपमा, विरोधाभास तथा व्यतिरेकालंकार ध्वनि के तीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। एक में प्राकरणिक राजन् तथा अप्राकरणिक इंद्रपक्ष के उपमेय-उपमान भाव की कल्पना द्वारा उपमालंकार व्यंग्य है। दूसरे उदाहरण में युद्धकौशल एवं वैभवसंपन्न राजा के उत्कर्ष के निरूपण में विरोधाभास की प्रधानता विवक्षित है तथा तीसरे में तूलिकाद सामग्री तथा आधारभित्ति के बिना नानाकार जगतरूप चित्र का निर्माण करनेवाले शिव की वंदना की गई है। यहाँ उपमान की अपेक्षा शिवरूप चित्रकार उपमेय में गुणों का आधिक्य कहने से व्यतिरेकालंकार व्यंग्य है।

हिंदी आचार्यों में कुलपति ने व्याजस्तुति तथा विरोधाभास के सहारे दो उदाहरण, कुमारमणि ने उपमा के सहारे एक, सोमनाथ ने वृत्त्यनुप्रास के सहारे एक, जनराज ने उपमा के सहारे एक, प्रतापसाहि ने कैतवापन्हृति तथा विरोधाभास के सहारे दो तथा ग्वाल ने श्लेषपुष्ट लुप्तोपमा के सहारे एक उदाहरण अलंकारध्वनि के प्रसंग में प्रस्तुत किया है।²⁸

रसध्वनि

रसात्मक बोध के लिए ध्वनिवादियों ने व्यंजनाव्यापार की आवश्यकता स्वीकार की है। यद्यपि धनंजय, धनिक, प्रतिहारेंदुराज तथा भट्टनायक आदि ध्वनिविरोधी आचार्यों ने रसात्मक चमत्कार की उपादेयता स्वीकार करते हुए भी व्यंजना का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। अभिनवगुप्त ने रस को व्यंग्यरूप स्वीकार करके ध्वनि की पुनः प्रतिष्ठा की तथा मम्मट ने ध्वनि के असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य नामक भेद के अंतर्गत रस, भाव तथा रसाभास आदि का अंतर्भाव किया। रसध्वनि के संबंध में अभिनव तथा मम्मट की धारणाओं में पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ता है। अभिनवगुप्त एकमात्र रसध्वनि को ही उत्तमकाव्य की कसौटी मानते हैं, जबकि मम्मट रस को व्यंग्यार्थयुक्त काव्य का भेदमात्र मानते हैं। रीतिकाल के ध्वनिवादी आचार्यों में कुलपति, सोमनाथ, जनराज, कुमारमणि, प्रतापसाहि तथा ग्वाल ने असंलक्ष्यक्रम ध्वनि में रसों को अंतर्भुक्त किया है। आचार्य का रसध्वनि विषयक उदाहरण दर्शनीय है—

कबहूँ विनोद सों विलोकत उमंग भरे
संग ही सरस किए भूषन सँवारने
सोमनाथ रीझि पिएँ अवर पियूष ऐसी
सोम कित पाई रतिमदन गँवारने।
छाई अजौ नैननि निकाई आजु दंपति की,
हेरत हिराई री किए है प्रान वारने।²⁹

कुलपति मिश्र के रसध्वनि के उदाहरण में समाधिक अलंकार की झलक मिलती है। उन्होंने प्रस्तुत छंद में भानवती नायिका के भावमोचन की स्वतः उद्भूत व्यंजना कराई है।

भूमि झके बदरा चहुँ ओर से दामिनी रूप अनूप दिखाई।
फूल कमान चढ़ी लखि कै सुनि कै सखि मोरनि कूक सुनाई।
कारी हरी सितपीत घटा छवि सीरी सुगंध समीर सुहायो,
अंतहूँ मान रहैगो न प्यारी करै किन प्रीतम को मनभावयो।³⁰

संदर्भ

1. बिहारी-सतसई, दोहा 91
2. वही, दोहा 165
3. तुलसीदास, रामचरितमानस 1-5, 8
4. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, पृ० 265
5. वही, 1/13
6. वही, पृ० 68
7. वही, 2/1
8. अभिनव गुप्त, ध्वन्यालोचन, पृ० 175
9. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, 2/3
10. तुलसीदास, रामचरितमानस, 1-37-8
11. सेनापति, कवित्त रत्नाकार (संपा०पं० उमाशंकर शुक्ल), 1/7
12. कुलपति मिश्र, रसरहस्य, 3/1

13. वही, 3/2-3
14. वही, 3/6
15. वही, 3/7-8
16. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, 2/4-5
17. मम्मट, काव्यप्रकाश, 4/26
18. कुलपति, रसरहस्य, 3/106
19. वही, 3/116-117
20. वही, 3/130
21. वही, 3/133
22. मम्मट, काव्यप्रकाश, 4/58-59
23. कुलपति मिश्र, रसरहस्य, 3/4
24. वही, 3/5
25. मम्मट, काव्यप्रकाश, 4/58-59
26. कुलपति मिश्र, रसरहस्य, 3/115
27. मम्मट, काव्यप्रकाश, 4/54, 56-57
28. कुमारमणि, रसिकरसाल, 2/21
29. सोमनाथ, रसपीयूषनिधि, 8/3
30. कुलपति मिश्र, रसरहस्य, 3/56

□ 61/1 सी, तिलक नगर
अल्लापुर, इलाहाबाद 211006

वैदिक एवं जैन साहित्य में नारी

डॉ० (श्रीमती) चंद्रा तलेरा जैन
हिंदी अध्ययन परिषद्, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर (म०प्र०)

डॉ० पुष्पा शाक्य
सहा० प्रा० हिंदी मे०जी० बा०शा०स्ना०क०महा०
इंदौर (म०प्र०)

भारतीय संस्कृति में नारी का सम्मान प्राचीनकाल से एक आदर्श के रूप में ऐसे शील और सौजन्य को प्रस्तुत करता है, जो मर्यादा के प्रतीक के रूप में सदैव पूजनीय रहा।

विश्व की अन्य पुरातन संस्कृतियों में, जिन्हें आधुनिक युग में विकसित कहा जाता है, नारी को वह स्थान प्रदान नहीं किया गया था, जिसकी वह वास्तविक अधिकारिणी थी। भारतीय समाज में नारी के प्रति सहज निष्ठा और श्रद्धा हर युग में देखी गई। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' यह उक्ति भारत में नारी की महिमा को स्पष्ट कर देती है।

वेद मानव-मस्तिष्क से प्रादुर्भूत अक्षय ज्ञान के ऐसे आदिकालीन प्रामाणिक ग्रंथ हैं, जिनके प्रमुख विषय ज्ञान, कर्म और उपासना है और जो समस्त मानव-जाति के लिए हैं ज्ञान के भंडार वैदिक साहित्य में नारी के महत्त्व को प्रकाशित करने वाले विषय भी सामने आते हैं, वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इनमें से ऋग्वेद में अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जो प्राचीनकाल से चली आ रही आर्य नारी की सभ्यता और संस्कृति पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं। भारतीय धर्म की पृष्ठभूमि में नारी की भूमिका को यज्ञादि अनुष्ठानों के साथ-साथ विद्या, यश और समृद्धि का महत्त्वपूर्ण प्रतीक माना गया।

वैदिकयुग में भारतीय नारी अपने विकासक्रम की उन ऊँचाइयों पर पहुँच गई थी, जहाँ वह देवी-स्वरूपा, मानी गई। वैदिकयुग में नारी परिवार की सम्राज्ञी होती थी। सम्राज्ञी स्वशुरेषु भवः सम्राज्ञयुत देवा। (ऋग्वेद, 1085/46)

ऋग्वेद की नारी पुरुष-सत्ता से कहीं कम नहीं है। साधारण गृहस्थ से लेकर प्रत्येक देवता की अपनी पत्नी है। वह सदैव यज्ञों में अपने पति देवता के साथ आहूत होती है। वैदिककालीन नारी गृहस्वामिनी, कल्याणकारी तथा उत्तमोत्तर होती थी। कुछ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणों के कारण तथा मंत्रों का साक्षात्कार करनेवाली ऋषिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं।

जिस तरह धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की दुर्गा एवं विद्या की देवी सरस्वती है, वैसे ही अदिति, उषा, इंद्राणी, होला, इला, माही, भारती आदि वैदिक देवियाँ अनेक तत्त्वों की

अधिष्ठात्री हैं। इन्हें कहीं देवमाता और कहीं देवकन्या कहा गया है। इनमें अदिति को विश्वकल्याणकारी सर्वशक्तियुक्त और स्वतंत्र माना गया है।

ऋग्वेद की नारी जिस महत्ता और गरिमा से अधिकारपूर्वक बोलती है, वह अन्यत्र लगभग दुर्लभ है। इंद्राणी कहती है, अहं केतुरहं मूर्धामुग्राविवाचिनी अर्थात् मैं ही ध्वजा हूँ, मैं ही ऊपर शिखर पर विराजमान हूँ। मैं ही सशक्त स्वर में आदेश देती हूँ।' इस प्रकार शक्ति की पर्याय शक्तिरूपा नारी प्राचीनकालीन अन्य किसी सभ्यता में उपलब्ध नहीं होती है।

ज्ञान से संबंधित जिन तीन देवियों का उल्लेख ऋग्वेद में है, उनमें इला, माही, भारती, वास्तव में ज्ञानरूपिणी देवियों के नाम हैं।

आर्यजाति में प्राचीनकाल से ही नारी का सदैव समादर होता आया है, साथ ही अनेक स्थलों पर उसका यशोगान भी मिलता है। संगीत, युद्ध आदि में भी वैदिक नारी निपुण होती थी। वैदिक साहित्य में अनुशीलन से यह भी सिद्ध होता है कि पहले कि स्त्रियाँ वेद पढ़ती थीं और यज्ञोपवीत भी धारण करती थीं। इनके साथ ही ऋग्वेद में संकेत मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि संभवतः यह संपन्न परिवारों की प्रथा रही होगी। एक पत्नी-प्रथा के कारण ही पुरुष की सामाजिक प्रतिष्ठा उच्चतम थी। आर्य युद्धप्रिय थे, इसलिए पुत्र का जन्म पुत्री की अपेक्षा प्रियकर होता था। अथर्ववेद में भी पुत्र का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, फिर भी पुत्री के संस्कार भी पुत्र की तरह होते थे। पुत्री-प्राप्ति की कल्पा भी पुत्र की तरह की जाती थी। पुत्री का विवाह वयस्क अवस्था में किया जाता था, जिसके कारण कन्याएँ गृहकार्य दीक्षित हो जाती थीं। कन्या का विवाह सुशिक्षित वर के साथ होता था। जहाँ तक पर्दा-प्रथा का प्रश्न है, ऋग्वैदिक काल में नारी स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करती थी।

माता के रूप में नारी का स्थान प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। यहाँ तक कि माता ही संतान की प्रथम गुरु मानी गई, और आजीवन सेवा करके भी संतान उसके ऋण से मुक्त नहीं हो सकती है। जहाँ तक सती-प्रथा की बात है, वेदों में यह मरण-प्रथा मालूम नहीं होती है। इस प्रकार वैदिकयुग में सर्वोच्च शिखर पर आसीन पुरुषों के समान अधिकारों की स्वामिनी नारी महाभारत, रामायणकाल तक आते-आते केवल शिखर पर रह जाती है। धीरे-धीरे उसका पतन आरंभ हो जाता है और वह अधिकार खोती हुई पुरुष के लिए मात्र दीन-हीन दासी हो जाती है। मनु नारी की स्वतंत्रता पर रोक लगाकर कहते हैं—

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षति स्थविरे पुत्रान् न स्त्री स्वतंत्र्यमर्हति।

अर्थात् बाल्यावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्था में नारी क्रमशः पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में रहती है। उसे पूर्ण स्वतंत्र रहने का अधिकार नहीं है। अंततः वैदिककाल के पश्चात् नारी को विकास से वंचित कर दिया गया।

परिणामस्वरूप उसका जो पतन आरंभ हुआ, उसने महाकाव्यकाल के सशक्त प्रहारों और स्मृतिकाल के झंझावातों में नारी की स्थिति का अवमूल्यन किया।

अब प्रश्न है उठता है, कि इस स्थिति का अवमूल्यन क्यों हुआ? इस अवमूल्यन की पृष्ठभूमि में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि अनेक कारणों के साथ ही आध्यात्मिक मूल्यांकन का कारण भी प्रमुख रहा और इसी के चलते वह सदैव पुरुषों के अहं का शिकार होती

रही। अंततः आनेवाले समय में उसकी स्थिति निम्नतर होती चली गई।

जैन-संस्कृति का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिक और वैदिकोत्तर संस्कृति में नारी का प्रमुख रूप से सामाजिक मूल्य आँका गया, वहीं श्रमण संस्कृति में नारी को आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यंत संपन्न माना गया है।

आदिनाथ के युग से लेकर महावीर के समय/युग तक जैनकालीन संस्कृति में नारी की गरिमा, महिमा सतत बनी रही। धर्म की दृष्टि से जैन-संस्कृति में हर आत्मा को कर्म के बंधन तोड़ने का अधिकार है। चाहे वह आत्मा पुरुष की हो या नारी की। अहिंसावादी जैनधर्म में महाव्रत, अणुव्रत तथा गुणव्रत क्रमशः साधु-साधवी तथा श्रावक-श्रविकाओं के लिए है।

जैन-साहित्य में ख्यातिप्राप्त एवं कर्तव्यपरायण स्त्रियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अपनी साधना एवं विद्वत्ता के कारण नारी मल्लिनाथ तीर्थंकर हो गई थी।

गृहस्थ जीवन को परित्यागते हुए जो नारी त्याग-तपस्या के दुर्गम मार्ग पर आगे बढ़ते हुए, अपने कषायों को छोड़कर, जैनाचारों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करती थी, वह साध्वी कही जाती थी। नारी आत्मविकास के इस पथ पर पुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं रही। न ही उसने इस बात के लिए पुरुषों से कभी प्रतिस्पर्धा या विवाद किया।

महाकाव्यकाल के बाद की नारी जहाँ यज्ञकर्म से वंचित कर दी गई थी, वहीं भगवान महावीर ने चंदना का उद्धार कर उसे संघ की प्रवर्तिनी के रूप में प्रतिस्थापित किया। यही चंदना छत्तीस हजार साध्वियों का सफलतापूर्वक नेतृत्व करते हुए जनसाधारण को धर्म का संदेश देकर उनका उद्धार कर रही थी। इस प्रकार चंदना के संघ में प्रवेश से भगवान महावीर ने नारी-जागृति का शंखनाद किया।

तत्कालीन जैन समय की गृहस्थी में नारी को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। आगम साहित्य में प्रमुख उपासकों के साथ प्रमुख उपासिकाओं के नाम भी दिए गए हैं।

जैन साहित्यकाल (आदिनाथ से महावीर तक) में पुत्री का स्थान भी महत्वपूर्ण था। पुत्रीजन्म पर विभिन्न उत्सवों का आयोजन किया जाता था। मल्लि, राजुल, ब्राही, सुदरी, द्रौपदी, अंजना अनेक पुत्रियों का उल्लेख है, जिन्हें माता-पिता का अगाध स्नेह प्राप्त था। अविवाहित कन्याएँ पिता कि घर रहती थीं। आजन्म अविवाहित रहनेवाली जयंती ने उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त किया था। अभिजात कुल की कन्याएँ घर पर ही शिक्षा प्राप्त करती थीं। स्त्रियों द्वारा 64 कलाओं के ज्ञान का उल्लेख मिलता है।

पत्नी के रूप में नारी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। सामान्यवर्ग में बहुपत्नी-प्रथा लगभग नहीं थी। परंतु राज्यकुलों, श्रीमंतों तथा उच्चकुलों में बहु-विवाह-प्रथा प्रचलित होने के कारण पत्नियों का जीवन दुःखपूर्ण रहता था। ये भी उदाहरण मिलते हैं कि धर्म के प्रचार के लिए किसी भी उम्र में पुरुष अपनी पत्नियों का त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर लेता था। जम्बू स्वामी ने सुहागरात के दिन ही आठ पत्नियों का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली थी। मेघकुमार और नेमि ने भी यौवनावस्था में ही पत्नियों को त्यागते हुए दीक्षा स्वीकारी थी। इस प्रकार पत्नी के रूप में नारी की स्थिति उच्चतम थी। दीक्षा से पूर्व माता-पिता से आज्ञा लेना अनिवार्य था। तीर्थंकर की माता को देवता भी नमस्कार करते थे। अन्य धर्मों की तरह जैन-साहित्य में भी नारी के संबंध के परस्पर विरोधी विचार मिलते हैं। सूक्ष्म विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नारी के विषय में

कही गई प्रतिकूल बातें प्रायः मनुष्य को अध्यात्म की ओर अग्रसर करने के लिए कही गई हैं। जैन-साहित्य में नारी को धार्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से गरिमापूर्ण रूप में स्वीकार किया गया है। साथ ही सामाजिक पृष्ठभूमि में भी वह अधिकारों की स्वामिनी है तथा उसका हृदय दुःखाने के लिए पति को मना किया गया है।

तुलनात्मक दृष्टि से नारी की स्थिति को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिकयुगीन नारी की स्थिति सामाजिक मान्यताओं के अंतर्गत अन्य युगों की अपेक्षा सर्वोच्च थी। वहीं जैन युगीन नारी आध्यात्मिक दृष्टि से तत्त्वगरिमा से मंडित थी। बौद्धयुग, ब्राह्मणकाल, महाकाव्यकाल आदि में सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से नारी की स्थिति और निम्न होती गई।

नारी और पुरुष की दृष्टि से यदि हम नारी की स्थिति को देखें तो हम यह पाते हैं कि चाहे वैदिक, उत्तरवैदिक, महाकाव्य स्मृति, बौद्ध अथवा जैन हर युग में नारी की स्थिति पुरुषों से निम्न ही रही है। विभिन्न युगों के इतिहास पर दृष्टि दौड़ाए तो स्पष्ट होता है कि प्रत्येक प्राचीन संस्कृति में पुरुषों का समाज पर वर्चस्व रहा। वैदिकयुग से स्मृतिकाल तक एक भी नारी चक्रवर्ती, बलदेव, सम्राट, राजा, मंत्री जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन नहीं हुई। इसी प्रकार ऋषिमुनि के रूप में भी नारियों के जो नाम मिलते हैं, उन्हें अपवाद कहा जा सकता है।

जैन-संस्कृति में भी साधुओं की अपेक्षा साध्वियों की संख्या तीन गुना अधिक रहने के बावजूद तीर्थंकर पद केवल एक नारी मल्लि ने प्राप्त किया, जो कि जो अपवाद था। प्रत्येक तीर्थंकर के गणधर पुरुष ही रहे, उपाध्याय पद पुरुषों को ही मिला, नारी को नहीं।

इस प्रकार अधिकारों का उपभोग करनेवाले पुरुष-प्रधान समाज में नारी ने अपना कार्य सृजनकर्त्री के रूप में किया और वह विश्वसृष्टा बनी। नारी के लिए हर युग में तलवारें तनीं, युद्ध हुए, किंतु जिसके लिए तलवारें उठाई गईं, उसे कभी तलवार धारण का अधिकार नहीं दिया गया। पुरुषों के लिए नारी सदैव श्रद्धा का पात्र रही है। शक्ति, धन, यश आदि के लिए देवियों की उपासना की गई। यहाँ तक की शंकर ने अपने शीश पर गंगा को धारण किया और इस रूप में भी नारी की गरिमा को सिर-माथे लगाया।

अतः कहा जा सकता है कि पुरुष नारी को पूज सकता था, किंतु उसे अपने समकक्ष अधिकार देने को तैयार नहीं था। प्रत्येक संस्कृति में पुरुषों का वर्चस्व समाज पर रहा और नारी के अधिकार पुरुषों के अहं पर आधारित रहे हैं। जो उदाहरण नारी की विद्वत्ता, शौर्य, साहस, शक्ति, स्वतंत्रता आदि की गाथाओं से उसकी श्रेष्ठता को प्रमाणित करते भी हैं, वे पुरुष की तुलना में अत्यंत नगण्य ही हैं। इस प्रकार नारी की स्थिति में उतार-चढ़ावों के बावजूद उसके अधिकारों एवं कार्य के क्षेत्र के अनुसार परिवर्तन आते रहे हैं और हर युग की नारी परिवार, समाज तथा संपूर्ण संस्कृति में अनेक संभावनाएँ लेकर आती रही है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद 81,179
2. ऋग्वेद 10/85/46
3. भारत का सामाजिक इतिहास, विमलचंद्र पांडेय, पृ० 158
4. पिता रक्षति कौमारो, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ मनुस्मृति 9/3

5. उपासक पृ० 7/227
6. भगवती सूत्र, पृ० 257
7. उत्तराध्ययन टीका, पृ० 32
8. कल्पसूत्र टीका, पृ० 33
9. धर्म और समाज, डॉ० राधाकृष्णन, पृ० 156
10. वेद प्रवेशिका, गुरुदत्त, पृ० 14
11. भारती दर्शन भाग-1 डॉ० राधाकृष्णन, पृ० 234
12. वेद और वैदिककाल, गुरुदत्त पृ० 51 पत्रिकाएँ
13. पुनरुदयपथ अंक 19
14. केंद्रभारती
15. कल्याण नारी अंक
16. धर्मधारा अंक 10

□ जी-17, रेडियो कॉलोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001
मो० 09425944773

समाचार की भाषा एवं प्रयोजनमूलक हिंदी

डॉ० वंदना अग्निहोत्री

विभागाध्यक्ष हिंदी

मा०जी०बा०शा०स्ना०कन्या महा०

मोती तबेला, इंदौर

समाचार मात्र सूचना ही नहीं, ज्ञान एवं प्रेरणा का भी आधार हैं। समाचार को पढ़ते ही सृजन एवं विध्वंस की समस्त संभावनाएँ मूर्तिमान हो उठती हैं। परतंत्र भारत में समाचार तूफानी झंझावतों में फँसा रहा, किंतु देशवासियों का निरंतर मार्गदर्शन कर उसने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आदर्श पत्रकारिता के निर्माण का आधार भी समाचार ही रहा। समाचार ने क्रूर और कठोर शासन की तनातनी की अवहेलना की और राष्ट्रीय आवेश में गलत राह पकड़ने वालों की भी परवाह नहीं की। अत्याचारों का खुलकर विरोध किया। समाचार का हथियार है भाषा। समाचार का अस्तित्व भाषा पर निर्भर करता है।

समाचार-लेखन में वही पत्रकार सफल होता है, जिसका भाषा पर अधिकार हो, जिसकी भाषा सरल हो, जो जटिल वाक्यों से बचता हो और व्याकरण की शुद्धता का ध्यान रखता हो। सामान्य समाचार को रोचक बनाकर प्रस्तुत करना कलात्मक कार्य है। इस कार्य के लिए प्रतिभा, परिश्रम और कलाकारी आवश्यक होती है। सी०पी० स्कॉट लिखते हैं—‘समाचार-संग्रह समाचारपत्र का प्रथम कर्तव्य है, समाचार भले ही उसकी भावना पर चोट करता हो, किंतु उसे समाचार को दूषित नहीं होने देना चाहिए। तथ्य पवित्र है, व्याख्या स्वतंत्र है।’ जो समाचार संयत भाषा एवं प्रेरणादायी शैली में लिखा जाता है, वह समाचार सूचक, शिक्षक और मनोरंजक तो होगा ही, साथ ही अन्याय और दमन का विरोध करने में सक्षम होगा। उसमें रचनात्मकता भी होगी और उद्देश्यपरकता भी। श्री जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है कि जिस समाज में ‘लाभ’ और ‘पद’ सबसे बड़े मूल्य बन गए हों, जिस समाज में बेईमानी, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, सिफ़ारिश, गुंडागर्दी आदि को सम्मान मिलने लगा हो, उसमें यदि समाचार-लेखक में निषेधात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होता तो यह आश्चर्य की बात होगी।’ यह दृष्टिकोण शब्दों की माला पिरोने वाली भाषा से ही संभव है, इसलिए समाचार के लिए प्रयोजनात्मक हिंदी आवश्यक होती जा रही है।

भारतीय साहित्य-कला, ज्ञान एवं संस्कृति को हिंदीभाषा ने न केवल सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है, बल्कि उसे गत्यात्मक भी बनाए रखा है। आंतरिक सौंदर्य भावों की गहराई, अभिव्यक्ति की तीव्रता एवं विविध शैलियों के साथ हिंदी साहित्य अनेक रूपों में प्रवाहित है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हिंदी भाषा की उपयोगिता और प्रयोजन-मूलकता अनेक क्षेत्रों में स्वयंसिद्ध होने से उसके नए रूप में प्रयोजनमूलक हिंदी सर्वोपरि मान्य है। विश्व

में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तेजी से फैले प्रसार के साथ भारत में भी नवीन ज्ञान-विज्ञान और टेक्नालॉजी की अंधी भीड़ उमड़ पड़ी इसके फलस्वरूप हिंदी का एक नवीन रूप बना। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक संदर्भों के बदलाव के साथ, प्रयोजन विशेष के संदर्भ में ज्ञान-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यक्त करने के लिए हिंदी के नए रूप की आवश्यकता पड़ी। ऐसा रूप जो विज्ञान के गुणों, सिद्धांतों तथा नवीन प्रयोग-विधियों को वैज्ञानिक रूप में यथास्थिति अभिव्यक्त कर सके।

पाठक चाहता है कि समाचार दर्पण की भाँति उसके सामने स्पष्ट हो। क्योंकि समाचार सभी वर्ग के पाठक पढ़ते हैं। अतः भाषा में प्रवाह होना चाहिए तथा शैली में आडंबर नहीं होना चाहिए। समाचार-पत्र पाठकों को नए शब्द, मुहावरे, व्याकरण, ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, के विकास के बारे में बताकर उनके ज्ञान में वृद्धि करता है। हिंदी भाषा के समस्त मानक रूपों का प्रयोग प्रयोजनमूलक हिंदी में होता है। उसमें सुनिश्चितता, एकता एवं स्पष्टता अनिवार्य होती है। उसमें विशिष्ट तकनीकी शब्दावली व पदावली होती है, जो ज्ञान-विज्ञान, कंप्यूटर, अंतरिक्ष-विज्ञान, मानविकी, शासकीय कार्यालय आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। प्रयोजनमूलक हिंदी की अर्थवत्ता एवं मूल्यवत्ता स्वयंसिद्ध है, जो कि तर्कसम्मत वैज्ञानिक तथा सार्थक मानी जा सकती है। प्रयोजनमूलक का पारिभाषित अर्थ है—‘एक ऐसी विशिष्ट भाषिक संरचना से मुक्त हिंदी जिसका प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही किया गया हो।’ प्रयोजनमूलक हिंदी के रूप का उद्भव और विकास ज्ञान-विज्ञान के उत्पादन और उनके व्यावहारिक वितरण एवं प्रयोग से संबंधित माना जा सकता है।

विचारों का जीवंत दस्तावेज भाषा होती है। सशक्त भाषा से दिल और दिमाग में हलचल पैदा हो जाती है। भाषा के एक-एक शब्द में इच्छापूर्ति की शक्ति होती है। वह भावों और विचारों को सार्थकता से अभिव्यक्त करती है। प्रयोजनमूलक हिंदी इस विशेषता से वंचित नहीं है। वह हिंदी भाषा के इतिहास और संस्कृति से भी हमें जोड़ती है। हिंदी का स्वरूप में श्री पराडकर जी ने लिखा है—‘उन शब्दों में अर्थ की अपेक्षा उनकी ध्वनि में हमारी आत्मा प्रस्फुटित होती है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न प्रांतों में एक ही शब्द का उच्चारण भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है और कहीं-कहीं इनके प्रयोगों में भी भेद दिखाई देता है। इन भेदों में प्रांतीय विशेषता है और यह विशेषता बहुत प्राचीनकाल से धीरे-धीरे हमारे जातीय-जीवन के साथ-साथ विकसित हुई है। हमारी जातीय आत्मा और हमारी भाषा, हमारी संस्कृति और हमारी बोली, हमारी मानसिक विशेषता और हमारे उच्चारण ये सब एक-दूसरे से संबद्ध हैं। एक-दूसरे के आश्रित हैं और एक-दूसरे के बिना जी नहीं सकते।’ भाषा की इस समन्वयवादी प्रक्रिया ने जहाँ राष्ट्रीय मानस की एकता एवं अखंडता को सुनिश्चित किया है। वहीं यह भाषा समाचार निर्माण में भी सहायक रही है। अतः प्रयोजनमूलक हिंदी समाचार के इस समन्वयवादी दृष्टिकोण में भी सहयोग प्रदान करती है।

सामान्य जनता का भाषा से सीधा संबंध होता है, न उसे चिंतन की गहराई से मतलब है, न कल्पना की उड़ान से। भाषा से उसकी आत्मीयता सरल सहज माध्यम के रूप में होती है। उसे चमत्कार या अलंकार से मतलब नहीं होता अतः समाचार-पत्र की भाषा अपने पाठकों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखकर निश्चित की जाती है। कुछ पाठक भाषा के ज्ञाता एवं विद्वान

भी होते हैं, तो कुछ को भाषा के संदर्भ में सामान्य जानकारी होती है। अतः वे चाहते हैं कि भाषा अत्यंत सरल व बोधगम्य हो। समाचार में शब्दों का ऊटपटाँग प्रयोग भाषा और भाव दोनों को नष्ट कर देता है। इसीलिए समाचार में सौंदर्य और स्वाभाविकता दोनों होने चाहिए, उसमें अनुवाद की गंध नहीं आनी चाहिए।

शब्द-संपदा में बढ़ोतरी करने तथा विदेशी शब्दों को हिंदी में लिए जाने हेतु प्रयोजन-मूलक हिंदी के प्रयोग से समाचार पठनीय एवं ग्राह्य बन सकेगा 'पत्रकारिता को लिटरेचर-इन-हेस्ट। शीघ्र साहित्य माना जाता है। इस शीघ्र साहित्य से हमारी भाषाएँ विकसित और संपन्न हुई हैं। बाबूराव विष्णु पराङ्कर ने ऐसे कितने ही सरल शब्दों से हिंदी को संपन्न बनाया। नेशन के लिए राष्ट्र तथा इंफ्लेशन के लिए मुद्रास्फीति जैसे शब्द प्रचलित हो गए।' भाषा समाचार के निर्माण में प्रयुक्त होती है। वह जनता से जुड़ाव पैदा करने वाली होनी चाहिए। उसमें राष्ट्रियता की झलक मिलनी चाहिए भाषा चाहे साहित्य की हो चाहे समाचार की उसका एक संस्कार होता है। संस्कृति होती है, जो निःसंदेह पाठक के हृदय में आनंद का संचार कर देती है। शब्दों का एकार्थक, सुनिश्चित और दुविधाहीन होना आवश्यक है। सामाजिक मर्यादा तथा नैतिक मूल्यों का भी ध्यान रखा जाये ताकि वह संस्कारी घरों में पढ़ा जा सके। समाचार-पत्र में भाषा का लचीलापन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

समाचार पत्रों में काम करने वाले पत्रकारों की अध्ययनगत पृष्ठभूमि भी भिन्न ही होती हैं। लिखा है—'एक ओर जहाँ अँग्रेजी पत्रों की तुलना में हिंदी पत्रों की कुछ सीमाएँ हैं वहीं दूसरी ओर पत्रों के कुछ विशेषाधिकार भी हैं। हिंदी के समाचार पत्र लोकप्रिय भी होते हैं तथा समाज के सभी वर्गों द्वारा पढ़े जाते हैं। वे जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक, खेलकूद एवं चलचित्र आदि सभी पक्षों को प्रस्तुत करते हैं, तथा औसत भारतीय परिवार के सभी सदस्यों, अर्धशिक्षित और शिक्षित तथा बच्चों, महिलाओं और व्यस्कों तक के लिए पठनीय सामग्री प्रस्तुत करते हैं। अतः पत्रकार विविध स्तंभों की भाषा के स्वरूप रचना के समय सभी वर्गों की ओर दृष्टि रखता है। वर्तमान जीवन की नव्यतम स्थितियों को सबसे पहले लिखित रूप से पाठकों तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व दैनिक समाचारपत्रों का है। किसी घटना या स्थिति विशेष के लिए शब्द भाषा या अभिव्यंजना पद्धति की गठन की समस्या का सामना सर्वप्रथम समाचार पत्र ही करते हैं। इसके लिए उन्हें अनेक बार प्रचलित पद्धति से हटना पड़ता है।' तभी समाचार पत्र सर्वसाधारण के उपयोग की वस्तु बनते हैं। समाचार पत्र सर्वजन सुबोध हो, भाषा में व्यापकता आए, इसके लिए समाचारपत्रों में कार्यरत कर्मियों को प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग करना श्रेयस्कर होता है। इस दिशा में प्रयोग की संभावनाएँ भी पर्याप्त हैं।

पाठक की रुचि के अनुकूल समाचार की भाषा होनी चाहिए ताकि पाठक उसे सहज में समझ सके। कोई भी समाचार पत्र नीरस एवं बोझिल भाषा को नहीं अपनाएगा। हमारे देश में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ रहा है। अतः समाचार पत्रों की भाषा में साहित्यिक गरिमा और गठन का गुण स्वतः ही आने लगा है। समाचार पत्रों की भाषा अधिकाधिक स्पष्ट हो इसलिए प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग अपेक्षित है, क्योंकि समाचार पढ़ने वाला जीवन संग्राम से जूझने वाला व्यक्ति व्यस्त होता है। वह कम-से-कम समय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। उसका समाचार पर इतना विश्वास होता है, कि उसमें जो कुछ छपता है वह उसे

स्वीकार कर लेता है। यदि उसमें प्रयोजनमूलक हिंदी हो तो वह समाचार पत्र को पढ़कर देश का सही चित्र दिल और दिमाग में स्पष्ट रूप से उभार सकता है। हरदान हर्ष ने लिखा है—‘विज्ञान और तकनीकी के इस युग में विश्व सभ्यता के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना, मानव को मानव मूल्यों से जोड़ना, आज के आदर्श निर्देशन है। जिनको मानते हुए आज के लगभग सभी पत्र-पत्रिकाएँ प्रगति के रास्ते पर हैं। चिंतन और विचारों की समृद्धि को यदि उत्कृष्ट ढंग से अभिव्यक्ति देनी हो तो सर्वाधिक आवश्यकता है कौशल की कौशल से साज सज्जा की छबि उभरती है और विचार तत्त्व पर पर्दा नहीं पड़ता है। डॉ० ठाकुरदत्त शर्मा ने लिखा है—‘भाषा जीवंत बोलचाल की भी परिचायक होती है। भाषा के परिप्रेक्ष्य में शब्दों का अपना एक विज्ञान होता है। भाषा के जीवंत होने एवं उसकी प्रबल भाव तरंगों का बोधा होना, पत्रकार के लिए आवश्यक होता है।’

संदर्भ

1. प्रयोजनमूलक हिंदी प्रक्रिया और स्वरूप, डॉ० कैलाशचंद्र भाटिया
2. प्रयोजनमूलक कामकाजी हिंदी, डॉ० कैलाशचंद्र भाटिया
3. प्रयोजनमूलक हिंदी के विविध रूप, डॉ० राजेंद्र मिश्र, डॉ० राकेश शर्मा
4. समाचार फीचर लेखन एवं संपादन कला, डॉ० हरिमोहन
5. संपादन कला, एन०सी० पंत
6. हिंदी का स्वरूप, श्री विष्णु पराड़कर

□ 194, सुखदेव नगर
एरोडूम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001
मो० 09926477787

‘आवाँ’ उपन्यास में स्त्री-संघर्ष

कुमारी संध्या

हिंदी एवं पत्रकारिता विभाग

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री-संघर्ष एवं स्त्री-विमर्श को लेकर अनेक उपन्यासों की रचना हुई है, परंतु चित्रा मुद्गल द्वारा रचित ‘आवाँ’ उपन्यास पूँजीवादी व्यवस्था में नारी की नियति के यथार्थ सच का चित्रण है। यह उपन्यास स्त्री-प्रधान होते हुए भी श्रमिकों एवं पूँजीपतियों के बीच हो रहे वर्ग संघर्ष की गाथा है। ‘आवाँ’ उपन्यास में लेखिका ने जहाँ स्त्री-संघर्ष की गहरी पड़ताल की है, वहीं दूसरी तरफ़ किसी महिला कथाकार द्वारा यूनियन और मज़दूर आंदोलनों पर लिखित संभवतः पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में जीवन की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं को व्यक्त किया गया है। चित्रा मुद्गल ने जिन पात्रों के माध्यम से स्त्री-संघर्ष की प्रकृति पर जोर दिया है, उनमें नमिता, किशोरी बाई, सुनंदा, हैदराबाद प्रशिक्षण के दौरान उसकी सेविका नीलम मुख्य हैं। आवाँ में नारी-चेतना और उसका संघर्ष श्रमिक आंदोलनों में संतरण करता हुआ विकसित होता है। चित्रा मुद्गल ने आवाँ के संदर्भ में कहा है कि—‘ट्रेड यूनियन का इतिहास-अंकन मेरे मानस का दबाव नहीं। उसे लिखने की ज़रूरत नहीं, वह तो श्रमिकों के मलिन मुख पर हरफ़-दर-हरफ़ अंकित है।’ लेखिका का स्पष्ट मानना है कि श्रमिकों का इतिहास उनके मलिन मुख पर स्पष्ट रूप से चित्रित है।

इस उपन्यास में स्त्री-संघर्ष की यात्रा नमिता के नौकरी तलाशने से प्रारंभ होती है। नमिता के पिता देवीशंकर पांडेय एक कारखाने में काम करते हैं और वह ट्रेड यूनियन के कार्यशील सदस्य हैं। परंतु वह पूँजीपतियों के आक्रमण का शिकार हो जाते हैं, और आजीवन लकवाग्रस्त होकर ज़िंदा लाश बन जाते हैं। नमिता पढ़ना चाहती है, लेकिन घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उसे पढ़ाई छोड़कर काम करना पड़ता है। उसके ऊपर अपने परिवार की ज़िम्मेदारी है। आर्थिक अभाव को पूरा करने के लिए ‘श्रमजीवा संस्था’ में पापड़ बेलती है। फाल लगती है। यथा—‘एक दिन में एकाध फाल लगा लेती हूँ। सौ-सवा सौ के करीब पापड़ बेल लेती हूँ। दो ट्यूशन पढ़ाती हूँ। जिस इलाक़े में हम रहते हैं, लोगों की सामर्थ अधिक पैसा दे पाने की नहीं।’

नमिता को ‘कामगार अधड़ी’ में अन्ना साहब की मदद से नौकरी मिलती है। वह उस नौकरी को करना नहीं चाहती है। लेकिन आर्थिक स्थिति ख़राब होने के कारण उसे वहाँ नौकरी करनी पड़ती है। वह स्वीकार करती है कि असमानता का विरोध ही उसके संघर्ष का लक्ष्य है और अपने वर्ग के मोर्चे के लिए स्वयं को तैयार कर लेती है। वह अपने पिता के सपनों को साकार करने के लिए स्वयं तैयार होती है। देवीशंकर का एक ही सपना था—

‘दाल चाहिए, भात चाहिए और बच्चों की शिक्षा।

है बुनियादी हक़ की लड़ाई, नही माँगते भिक्षा।’³

पवार सभी में दोष देखता है। उसके प्रत्येक शब्द में सुई की चुभन है। उनका मानना है कि स्त्री पुरुषों के प्रति हिंसा जगाती है। इसलिए स्त्री-पुरुष के बीच सामंजस्य संभव नहीं है। पवार अन्ना साहब को छलने की तैयारी में है। उसको अपने बुद्धिचातुर्य पर गर्व है। वह स्त्रियों को घर से सीमित रखना चाहता है। स्त्री को घर-परिवार में ही प्रतिष्ठित करना चाहता है, उसे लगता है कि स्त्री के जीवन में कोई कमी नहीं। वह परिवार में योग्य वर के संग सुरक्षित है। पवार अपनी इस निम्न मानसिकता के कारण ही नमिता को ‘कामगार अघाड़ी’ में देखकर उससे ईर्ष्या करता है और कटाक्ष करता है। ‘इस जगह बैठने का अधिकारी वही शख्स होता है, जिसने ट्रेड यूनियन में अपना आधा जीवन खपा दिया है, खानदानी संपत्ति नहीं ‘ट्रेड यूनियन’ जो हाथ-पैर हिलाए उत्तराधिकार में मिल जाए। पैतृक संपत्ति नहीं बना लिया है लोगों ने, और बात है।’⁴

श्रमिकों के जागरण एवं उनके अधिकारों के लिए ‘कामगार अघाड़ी’ प्रयत्नशील है। उसी से ‘अघाड़ी महिला मोर्चा’ संगठन भी जुड़ा है, जो स्त्रियों से जुड़ी समस्याओं के लिए संघर्षशील है। नमिता इस संस्था से कुछ समय के लिए जुड़ती है और उनकी समस्याओं को सुनकर वास्तविकता की तह तक जाने की कोशिश में लगी थी। वह महिला-चेतना मुहिम की अगुवा बनती है। उसे घर-घर जाकर स्त्रियों को चेतना-संपन्न बनाना है, जो अपने प्रति हो रहे भेद-भावपूर्ण व्यवहार और घोषणा के खिलाफ़ आवाज़ उठा सकें। स्त्रियों की दुःखद गाथा को देखने और सुनने के बाद उसके मन में स्त्रियों एवं मजदूरों के लिए संघर्ष करने की चेतना जागती है।

परंतु ‘कामगार अघाड़ी’ में पिता समान अन्ना साहब द्वारा जब उसका शोषण होता है, तो वह मानसिक रूप से तार-तार हो जाती है। अन्ना साहब को उसने सुना ही नहीं, प्रत्यक्ष देखा भी है। अन्ना साहब ने जो उसके साथ अपराध किया है, उसके लिए उन्हें कोई आत्मग्लानि नहीं। वह सफ़ाई देते हैं कि उसने कुछ भी ऐसा नहीं किया जो उसकी अस्मिता पर आँच लाए। वह गृहस्थ होते हुए भी वैरागी जीवन जी रहे हैं उनका मानना है—‘मेरे भीतर कोई ऐसा भाव नहीं उठ रहा है, जो मुझे बाध्य करे कि मैंने जो किया, अपराध किया है।’⁵

वह नमिता को पुत्री-समान अवश्य मानते हैं, लेकिन पुत्री नहीं मानते हैं। उसका सहयोग न करने पर उसको धमकी देते हैं—‘दोस्त की बेटी हो तुम, बेटी नहीं हो मेरी। पिता समान हूँ मैं तुम्हारे, पिता नहीं हूँ। नियंत्रण में न ही रहूँगा तो कह नहीं सकता क्या होऊँगा। तुम्हारी देह के साथ खेलवाड़ नहीं करूँगा अपनी देह के साथ खेलने के लिए स्वतंत्र हूँ।’⁶

यद्यपि वह अन्ना साहब के व्यवहार से खिन्न होकर कामगार अघाड़ी की नौकरी छोड़ देती है। बचपन की याद उसे ताज़ा हो जाती है अपने ही मौसा द्वारा किया गया व्यभिचार तथा अन्ना साहब दोनों में ही उसे स्त्री को केवल देह मात्र मानने वाली विकृत सामंती मानसिकता नज़र आती है।

नमिता के संघर्षरत जीवन के अगले मोड़ पर अंजना बासवानी मिलती हैं। जो उसकी जीवन-परिस्थितियों एवं मजबूरियों का फ़ायदा उठाकर उसके शोषणा का एक नया जाल बुनती हैं। वह नई नौकरी और नया परिवेश पाकर अत्यंत प्रसन्न है। परंतु उसके अंदरूनी रहस्यों से अनभिज्ञ है। वासवानी अपने आभूषणों के प्रदर्शन के लिए उसे मॉडल बनाती है, ताकि वह उसे

संजय कनोई के सामने पेश कर सके। संजय कनोई नमिता को मॉडलिंग के लिए ले जाता है। वह एक हाथ से दूसरे हाथ में मात्र वस्तु बनकर रह जाती है। फ़ोटोग्राफ़र सिद्धार्थ जब नमिता से पोर्टफ़ोलियो बनाने के बदले उसका शरीर चाहता है, तब वह उसके प्रस्ताव पर थूकती है और उसका घोर विरोध करती है—‘मैं आपके प्रस्ताव पर थूकती हूँ, सिद्धार्थ जी। शुभ चिंतक को तो अपने भविष्य की ज़िम्मेदारी सौंपी जा सकती है, दलाल को नहीं। दलाल को तो हर औरत रंडी नज़र आती है। बेहतर होगा आप फ़ोटो ग्राफ़ी छोड़कर चकला खोल लें।’ नीद में सो रही नमिता को जब संजय कनोई उसके शरीर को बलात् स्पर्श करके चुंबन करता है, तो उसे पुनः अन्ना साहब दिखाई देने लगते हैं।

संजय कनोई उससे प्रेम का ढोंग करके मात्र केवल उससे संतान पाना चाहता है, जो उसको उसकी पत्नी से नहीं मिली। वह अपनी पत्नी को पत्नी नहीं, प्रतियोगी बताता है, जो उसकी इच्छाओं का बिल्कुल ख़्याल नहीं रखती है। नमिता देह की नई भाषा समझने में अक्षम है। वह उसके झूठे प्रेम में पड़कर उसके सख़्त हाथों में मोम-सी पिघल जाती है। कनोई और उसमें प्रेम की अंतिम परिणति उसे हैदराबाद में प्रशिक्षण के दौरान मालूम होती है कि वह संजय कनोई के बच्चे की माँ बनने वाली है। यह सूचना पाकर संजय कनोई खुशी से पागल होने लगता है। यह उसके जीवन का सबसे सुखद क्षण है। वह अपने मर्द होने पर अब गर्व कर सकता है, जो उसके तेरह वर्षों के दांपत्य जीवन में नहीं हुआ था। नमिता के कारण हुआ।

वह कुँवारी है तो क्या, उसे इस बच्चे को जन्म देना है। वह जन्म लेते ही बच्चे को गोद लेगा। निर्मला के साथ तलाक़ मात्र बहाना है। बच्चे के साथ किसी भी प्रकार के खिलवाड़ पर वह तंदूर-कांड की धमकी देता है, क्योंकि तब वह सुशील शर्मा और नमिता नैना साहनी होगी। वह सारी सामाजिक वर्जनाओं के बावजूद बच्चे को जन्म देने के लिए तैयार हो जाती है, परंतु अन्ना साहब की मृत्यु की ख़बर सुनकर उसका गर्भपात हो जाता है। कनोई को उस पर विश्वास नहीं होता है। उसकी आवेशपूर्ण प्रतिक्रिया नमिता को सत्य के धरातल पर ला पटकती है। उसके गर्भ में पल रहा पूँजीवाद का बीज नष्ट हो जाता है। लेकिन वह एक महान मज़दूर की बेटी है, जिन्होंने अपने जीवन की आहुति संघर्ष करते-करते दे दी। उसका अपना लक्ष्य है। अभी उसे जिंदगी में संघर्ष करना है। वह पाश कवि की कविता से प्रेरणा लेकर लड़ने एवं संघर्ष की चेतना लिए अपनी स्नेहमती माँ की भूमिका निभाने वाली किशोरीबाई के पास चली जाती है।

आवाँ उपन्यास में सुनंदा किशोरी बाई की इकलौती संतान है। वह चाली में पत्नी-बढ़ी प्रखर चेतना की स्त्री है। वह स्त्रियों के हक़ एवं अधिकारों से परिचित है। वह अपने अधिकारियों के लिए लड़ने को सदैव तत्पर है। सुनंदा एक मुस्लिम लड़के सुहैल से प्रेम करती है। वह अपना धर्म परिवर्तन करके विवाह नहीं करना चाहती है। वह अपने बच्चे को जन्म अपने बल पर देती है। वह स्पष्ट कहती है कि ‘मेरा मातृत्व विवाह के टुच्चे प्रमाण-पत्र का मोहताज नहीं।’⁸ वह अपनी जचकी के बाद कंपनी से छुटियाँ और सुविधाएँ माँगती है। इस संदर्भ में वह कंपनी-प्रबंध को प्रार्थना-पत्र भी देती है। जवाब के नोटिस से जब उसे यह सूचना मिलती है कि वह कुँवारी माँ है और जचकी की सुविधा की कानूनन अधिकारिणी नहीं है तो स्वयं लड़ने के लिए तैयार हो जाती है—‘सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को लेकर है, न कि कुँवारी माँ या व्याहता माँ के विशेषणों के लिए। कुँवारी माँ क्या व्याहता माँ के ही समान जचकी के

घोर कष्टों से होकर नहीं गुज़रती? उसे आराम की ज़रूरत नहीं होती? माँ बनना किसी के निजी मामले के बजाय कंपनी का मामला कैसे हो सकता है।⁹

सुनंदा का साहसिक व्यक्तित्व अपने बच्ची की परवरिश के लिए तैयार है। वह स्त्री के माँ बनने के अधिकार के साथ-साथ कुँवारी माँ बनने पर प्रश्न करने वाली संकुचित मानसिकता की कठोर निंदा करती है। वह नमिता से ही नहीं बल्कि पूरे भारत से प्रश्न करती है कि—‘मैं औरों की सुख-संतुष्टि के लिये अपने सच को घोंट दूँ या अपने ‘स्व’ के संरक्षण के लिये उसके उगने को देह भरने दूर, उसे पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूँ।¹⁰ सुनंदा की हत्या उसके ही धर्म-संप्रदाय द्वारा साज़िश के तहत कर दी गयी। उसकी हत्या स्त्री के जागरूक एवं संघर्षशील समाज की हत्या है। वह स्त्रियों के अधिकार एवं अपने हक़ की लड़ाई लड़ते-लड़ते मौत का वरण करती है।

किशोरी बाई ने भी कभी नमिता के पिता देवीशंकर पांडेय से प्रेम किया था। बाद में उसके पिता की स्वीकारोक्ति से बहुत सारी बातों का पता चलता है। किशोरी बाई की बेटी सुनंदा उसकी अपनी बहन है। किशोरी बाई ने अपने इन संबंधों को बड़ी गंभीरता और ईमानदारी से निभाया। अपने पति के मरने पर अपने पाँव के बिछुए नहीं उतारे, लेकिन देवीशंकर की मृत्यु पर अपने बिछुए पुडियों में बाँधकर चिता में रखने के लिए नमिता से भिजवाती है। उसकी अस्वस्थता में अपने मन पर अंकुश रखकर उन्हें देखने आने से बचती है, लेकिन स्वास्थ्य यज्ञ में ‘समिधा’ अवश्य भिजवाती है। वह अपनी बेटी की मृत्यु के बाद उसकी एकमात्र निशानी को पालने-पोषने के लिए तत्पर है।

स्मिता बिल्कुल अलग तरह की लड़की है। वह चुलबुली एवं चंचल अवश्य है, मगर मन की खोटी नहीं हैं। वह स्वतंत्र प्रवृत्ति की है लड़के-लड़कियों में अंतर उसे बिल्कुल पसंद नहीं। वह आर्थिक रूप से संपन्न होने के कारण भी तनावग्रस्त है। वह पुरुष-विरोधी है। इसका एकमात्र कारण उसका पिता है। उसका पिता अपने ही परिवार के साथ राक्षसी व्यवहार करता है। वह मुंबई का मटका किंग है। वह उसकी माँ को हमेशा शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करता रहता है। दारू के नशे में अपनी बेटी तक को नहीं छोड़ता। वह अपनी बहन का कई बार गर्भपात करा चुकी है। पिता के कारण ही उसकी बहन मनोरोगी बन गई है। इससे दुःखी होकर नशे में धुत्त पिता को सीढ़ियों से ढकेलकर मार डालती है। स्मिता बिल्कुल व्यावहारिक, स्वतंत्र एवं संतुलित है। अपने प्रेमी के साथ हुए संबंधों को खुलकर स्वीकार करती है।

नीलम्मा पति की मृत्यु के बाद अपने बच्चों और बूढ़े ससुर के साथ रहती है। अपने प्रति किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती का सामना पूरे साहस के साथ करती है। राघव जब उसे परेशान करके विवाह के लिए ज़ोर देता है और उसके बच्चों को अपने दादी-दादा के साथ छोड़ने के लिए कहता है तो वह स्पष्ट कह देती है कि—‘बच्चे उसके ऊपर बोझ नहीं होंगे, कमाएंगी और उनके पेट में दाने डालेंगी। बूढ़े सास-ससुर को छोड़ सकती है। अपने जनों को नहीं। वे तो उसी का हाड़-मांस ठहरे।¹¹

प्रौढ़, कामांध, अमीर स्त्रियों के सेवा-मालिश की अनैतिक कमाई के लिए उसका सहज नैतिक विवेक अधिकारता है—प्रलोभनों में फँसकर पतन के जिस गर्त में धँसती चली जा रही है, कहाँ ले जाएगा उसे। केवल देह बेचकर कमाना ही रंडीबाज़ी है? जो वह कर रही, उसे क्या नाम

देंगे? मानो पैसों के बिना जिंदगी सड़क पर पड़े खुजहे कुत्ते-सी लावारिश हो उठती है। जिस रास्ते वह चल पड़ी, आसान ज़रूर है। पर उस रास्ते ने दिया क्या हर क्षण झूठ और संशय से घिरी चौकनी, बुसी जिंदगी, जिसने उसके तन-मन से संतुष्टि और बेफ़िक्री की अलमस्ती छीन ली है।¹²

सारी परिस्थितियों के बारे में जानकर नीलम्मा नमिता की सच्ची सहायिका बनती है। वह स्त्री के दर्द को पहचानती है। नमिता की निष्ठापूर्वक सेवा करती है। अचानक नर्सिंगहोम में जाने पर नमिता के अस्पताल का बिल चुका देती है और उसके आग्रह करने पर भी पैसे नहीं लेती है। नीलम्मा के लिए नैतिक-अनैतिक का द्वंद्व ही उसकी शक्ति बनकर एक साहसिक, मानवीय और गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए स्वतंत्र है।

अतः चित्रा मुद्गल के आवाँ उपन्यास की स्त्रियाँ परिश्रम और संघर्ष के सहारे, पिता और परिवार की भरपूर सहायता करते हुए अपने भविष्य की दिशा खोजती हैं। अपने इन संघर्षों के बीच ही उसे बोध होता है कि स्त्री की मुक्ति मानव-मुक्ति का ही एक अंश है। उसे पुरुष के विरोध में खड़े होकर नहीं, बल्कि उसके साथ जुड़कर एक संपूर्ण लड़ाई के रूप में लड़ा जा सकता है। इस उपन्यास की अधिकांश स्त्री-पात्र स्त्री-संबंधी समस्याओं से जूझती हैं, लड़ती हैं, मुक़ाबला करती हैं, लेकिन हार स्वीकार नहीं करती हैं। औरत का क्रांतिकारी होना पुरुष को बर्दाश्त नहीं उसे स्त्री केवल सहमी-सिमटी पराधीन ही अच्छी लगती है। जहाँ स्त्री ने साहस दिखाया, वहीं उनके तेवर बिगड़। इस प्रकार 'आवाँ' हिंदी साहित्य और समाज का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कथात्मक दस्तावेज़ है।

संदर्भ

1. आवाँ, चित्र मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ० 10
2. वही, पृ० 20
3. वही, पृ० 92
4. वही, पृ० 93
5. वही, पृ० 136
6. वही, पृ० 136
7. वही, पृ० 295
8. वही, पृ० 111
9. वही, पृ० 110
10. वही, पृ० 112
11. वही, पृ० 516
12. वही, पृ० 516

□ सुपुत्री श्री हरिप्रसाद
म०नं० 1175, आवास विकास कालोनी
कुनराघाट, गोरखपुर 273008 (उ०प्र०)
मो० 09455671156

‘एक ज़मीन अपनी’ उपन्यास के विज्ञापन जगत में स्त्री-यथार्थ

कुमारी संध्या

हिंदी एवं पत्रकारिता विभाग

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उत्तर औपनिवेशिक परिस्थितियाँ तथा भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में स्त्री-जीवन और उसकी सोच पर जो नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, वह विज्ञापन के वैश्विक बाजारीकरण के कारण ही है। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की ओर अग्रसर देशों में स्त्री की जो पहचान उभर रही है, वह पाश्चात्य संस्कृति एवं उसकी सभ्यता की नक़ल नहीं है, बल्कि स्त्री-जीवन की नई भूमिकाओं एवं उनसे उभरी स्त्री-शक्ति के कारण है। इसके बावजूद व्यापक स्तर पर स्त्री को जिस असमानता एवं असुरक्षा का सामना करना पड़ रहा है, वह व्यापक स्तर पर फैले विज्ञापनों के कारण ही है। आज विश्व में बाजारीकरण की प्रक्रिया इतनी तीव्र है कि किसी भी वस्तु को बाज़ार में लाने के लिए सबसे मुख्य साधन विज्ञापन है। उपभोक्ताओं को आकृष्ट करने के लिए वस्तुओं के प्रचार के लिए बहुप्रतिष्ठित कंपनियाँ नामी-गिरायी कलाकारों एवं मॉडलों का प्रयोग करती हैं। विज्ञापन-क्षेत्र में स्त्री का उपयोग धड़ल्ले से हो रहा है और उपभोग की मानसिकता की शिकार होनेवाली भी स्त्री ही है। विज्ञापन जगत में स्त्री का शोषण मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार से हो रहा है। इसका स्पष्ट एवं खुला यथार्थ चित्रण चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना ‘एक ज़मीन अपनी’ में किया है।

‘एक ज़मीन अपनी’ में लेखिका ने विज्ञापन-जगत में हो रहे स्त्री के शोषण का यथार्थ वर्णन किया है। इस उपन्यास की दोनों स्त्रियाँ विज्ञापन कंपनियों में कार्यरत हैं, जो विज्ञापन-जगत के बाजारीकरण की चकाचौंध में स्त्री-स्वतंत्रता के यथार्थ का सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं। विज्ञापन जगत के खुरदुरे यथार्थ को स्पष्ट करते हुए के० वनजा ने कहा है कि—जनता के मानस-पटल में आकर्षण और चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला विज्ञापन है। वह हमें स्वप्नलोक की परियाँ बनानेवाला है, लेकिन इसका छद्म एवं भक्षक रूप हमें अत्यंत दुःख प्रदान करने वाला है। इसके दल-दली मुखौटे को निकालने पर हम उस भयानक लोक की सत्यता से अवगत हो जाएँगे, तब हम उस मायावी और आकर्षक संसार से घृणा करने लगेंगे।’

इस उपन्यास में कई ऐसी कंपनियों का जिक्र है, जो अपनी कामयाबी के लिए स्त्री का उपयोग वस्तु के समान करती हैं। लेखिका एक तरफ़ विज्ञापन का स्थान और उससे जुड़ी ज़्यादातियों, छल-कपट इत्यादि की कटु आलोचना करती है, तो दूसरी तरफ़ स्त्री-शरीर को विज्ञापनबाज़ी का उपकरण बनाने वाली जो संस्कृति विकसित हो रही है, उसके यथार्थ को

संजीदगी से व्यक्त करती है। विज्ञापन जगत् में स्त्री को मॉडल बनाकर उसके नग्न सौंदर्य को प्रदर्शित करने के साथ ही साथ कंपनियों के विनिमय को साध्य एवं सुगम बनाने के लिए अपने ग्राहकों को उसका शरीर परोसने की वृत्ति भी इस क्षेत्र में खूब चलती है। इसमें बिल्कुल संदेह नहीं कि इस कथा की नब्ज विज्ञापनबाजी और स्त्री-विमर्श का यथार्थ है।

‘एक ज़मीन अपनी’ उपन्यास की दोनों स्त्रियाँ अंकिता और नीता विज्ञापन-क्षेत्र में कार्यरत हैं। अंकिता को प्रारंभिक दौर में इस क्षेत्र में कोई विशेष स्थान नहीं मिला, जिसके कारण वह केवल स्वयं को पहचान-भर लेती है। ऐसा नहीं कि उसमें प्रतिभा और कार्यकुशलता का अभाव है। उसे लगता है कि इस क्षेत्र में ज़बरदस्त प्रतिस्पर्धा है। वह नीता की तरह मिलनसार नहीं है। वह प्रतिभा-संपन्न है। अंकिता के संदर्भ में ‘वह मिलनसार कतई नहीं है, जो इस दुनिया में फलने-फूलने की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योग्यता है। इस रंगीन दुनिया में सिफारिश जैसी चामत्कारिक पूँजी का नितांत अभाव है। विज्ञापन-जगत में उसका कोई गॉड फादर नहीं, जिसके इशारे काम उस तक चलकर आए।’²

अंकिता को अपनी क्षमता और प्रतिभा पर पूर्ण विश्वास था। उसका विश्वास था कि प्रतिभा कभी-न-कभी व्यक्ति की पहचान बनाती है। जब वह फ़िल्मरस में थी, तब मैथ्यू की आब्जर्वेशन एडवर्टाइजिंग कंपनी में काम मिला था। उसका विश्वास था कि यह उसकी प्रतिभा की वजह से मिला है। मैथ्यू उसकी प्रतिभा के साथ-साथ उसका शरीर भी बेचकर अपना बिजनेस करना चाहता है। अंकिता को यह सब स्वीकार नहीं। सक्सेना तब अंकिता की शिकायत करता है। यथा-कैसी-कैसी बेशऊर लड़कियाँ भर लेते हो तुम अपनी एजेंसी में, जिन्हें सोसायटी में उठने-बैठने की तमीज ही नहीं।³ विज्ञापन के क्षेत्र में स्त्री को अपनी प्रतिभा के साथ-साथ अपनी अस्मिता तक को बेचना पड़ता है। यह विज्ञापन के क्षेत्र का कड़वा यथार्थ है।

इस कथा के विज्ञापन जगत में यदि मैथ्यू-जैसे स्त्री-प्रतिभा और उसकी अस्मिता के खरीदार और दलाल हैं, वहीं इस क्षेत्र में भोजराज जैसे महान व्यक्तित्व भी हैं, जो स्त्री की क्षमता, प्रतिभा और उसकी अस्मिता को सम्मान देते हैं। भोजराज अंकिता की प्रतिभा को पहचान कर अपनी ‘माध्यम’ कंपनी में कार्यकारी अधिकारी बना देता है। वह अपनी प्रतिभा के दम पर विज्ञापन-जगत की नामी वनिता बन जाती है। अंकिता विज्ञापन के क्षेत्र में मजबूरीबस आई है, वह अपने पुरुष मित्र हरिंद्र से विज्ञापन-जगत के दलदल को व्यक्त करती है-मैं इस क्षेत्र में मजबूरीबस आई हूँ, अगर आ गई हूँ, तो अब यह मेरे लिए चुनौती और प्रतिष्ठा का प्रश्न है कि इसे इसके गुण-दोषों के साथ स्वीकार करूँ। लिखना मैं बंद नहीं करूँगी, लिखना ही मेरा बोलना है, एक जागरूक व्यक्ति की भाँति।⁴ यहाँ पत्रकारिता और विज्ञापन-क्षेत्र दोनों को साथ लेकर ताना-बाना बुना गया है। अंकिता को दोनों क्षेत्रों की विशेष पहचान है। उसका आत्मांश बुलंद है।

मि० पंकज भी मैथ्यू जैसे धूर्त के धोखे का शिकार हो गए हैं। वह अपने प्रति हुए व्यवहार से भिन्न हैं। वह ‘माध्यम’ के पास बड़ी उम्मीद लेकर आते हैं। इस परिस्थिति में अंकिता उसकी मदद करती है। सोच-विचारकर धोखा देने वालों से वह विक्षुब्ध और संतप्त हो गई है। उसे लगता है कि इस क्षेत्र का सुधार करना मुश्किल है। वहाँ नख से शिख तक स्वार्थ में डूबे हुए लोग हैं। उसकी भावना और संवेदना का कोई मोल नहीं है। विज्ञापन-क्षेत्र की यही विशेषता है कि यहाँ भावनाओं और संवेदना को खरीदा और बेचा जाता है। यहाँ के मोटी चमड़ी वाले उतने ही असंवेदनशील होते हैं। अंकिता का मित्र हरिंद्र स्पष्ट रूप से उसे समझता है। यथा-‘यह आँखे

खोले हुए लोगों का खेल है, तुम लड़ना चाहती हो, संक्रामक रोग-सी फैली हुई विज्ञापन-संस्कृति के घातक कीटाणुओं के विरुद्ध, जो लोगों को अपने विष-दंश से व्यक्ति को वस्तु में परिवर्तित करती जा रही है।⁵

अंकिता ने चकाचौंध के मायाजाल के विरुद्ध संघर्ष करते हुए 'माध्यम' कंपनी को ऊँचाई पर पहुँचाया। किंतु मैथ्यू, सक्सेना और शैलेंद्र जैसे बीमार मानसिकता के लोग स्त्री की कामयाबी को स्वीकार नहीं कर सकते और उनके कार्यों में कमियाँ और झूठा दोषारोपण करते ही रहते हैं। अंकिता अपने ऊपर लगे झूठे आरोप के चलते आहत होती है। वह स्त्री की देह की नुमाइश पर अपने लिए रोटी सेकने के लिए तैयार नहीं है, और अपना त्याग-पत्र भोजराज को पहुँचा देती है। अपने अस्तित्व के सत्य को स्पष्ट करना कम साहसिक कार्य नहीं है। उसने मनुष्यता के गुण को आत्मसात किया। भोजराज का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण सम्मान-जनक है। वह उसके त्याग-पत्र को स्वीकार न करके उसके घर आकर पुनः अर्मात्रित करते हैं—'यूँ अपने अधिकार को छोड़कर चल देना स्वाभिमान की रक्षा नहीं, संघर्ष ही उसकी रक्षा की लड़ाई है।'⁶

इस प्रकार अंकिता विज्ञापन-जगत् के दलदल के बीच रहकर भी अपने कलंकहीन व्यक्तित्व को बचाने में कामयाब हो जाती है और अपनी स्त्री-शक्ति और अस्मिता की रक्षा करती है। वहीं नीता अंकिता से बिल्कुल विपरीत है। उसने अपने को स्थापित करने के लिए जो मार्ग अपनाया है, वह शारीरिक मांसल प्रदर्शन और उच्छृंखलता का है। नीता अपना शरीर देकर सक्सेना से मैथ्यू के लिए खाता वापस लेती है और उसके बदले आब्जर्वेशन एडवरटाइजिंग कंपनी में मैथ्यू उसकी स्थायी नियुक्ति कर देता है, जो पहले अंकिता का पद था। नीता स्पष्ट कहती है कि—'डॉट वरी, मुझे रख लीजिए। मेरे साथ वो वर्जना नहीं है, जो अंकिता के साथ है।'⁷

नीता के माध्यम से भी विज्ञापन-जगत् की धिनौने दलदल की परत खुलती है, परंतु नीता को यह सब आधुनिकता की माँग लगती है। वह अंकिता से तर्क करती है और इस क्षेत्र में अपने को स्थापित करने के लिए मार्ग बताती है। यथा—'नौकरी और प्रतिभा दो अलग-अलग चीजें हैं। कभी-कभी वे दोनों को एक साथ, एक मंच पर होने का अवसर और सम्मान देती हैं, लेकिन अक्सर नहीं।'⁸

नीता का मानना है कि मैथ्यू जैसे लोग ख़रीदार हैं, और वह जब चाहे, जैसा चाहें बुद्धि और प्रतिभा ख़रीद सकते हैं। उसके लिए स्थाई नौकरी देने की आवश्यकता नहीं है। वह प्रेमिका, मित्रसंबंधी या लेन-देन के आधार पर किसी को भी रखकर कृतज्ञ कर सकते हैं। न जाने कितने प्रतिभाशाली फ्री लॉसिंग करते हुए उनकी दयादृष्टि का मोहताज होकर अधार में पड़े सड़ रहे हैं, केवल महत्त्वपूर्ण पदों पर वही सुशोभित हो रहे हैं, जो ग्लैमरस हैं। उनकी अवधारणा है कि—'यह ग्लैमरस की दुनिया है, यहाँ जीने के लिए पहली शर्त है विशिष्ट दिखाना, विशिष्ट करना, विशिष्ट होना, विशिष्ट होना जो वास्तविकता नहीं है।'⁹

नीता 'आम्रपाली' पोशाक के विज्ञापन में अपने पूरे शारीरिक सौंदर्य की नग्नता को कैमरे में कैद करा लेती है। पोशाक के विज्ञापन में वस्त्रों की अपेक्षा नग्नता को अधिक महत्त्व मिला है। वर्तमान समय में वस्तु-प्रदर्शन के विज्ञापनों में भी स्त्री की नग्नता का अच्छा प्रयोग किया जाता है। जहाँ पुरुष पूरे फुल सूट में स्क्रीन पर आते हैं। वहीं नाम-मात्र के वस्त्रों के साथ स्त्री का प्रदर्शन होता है। यहाँ नीता लोगों की दृष्टि में आकर्षण का केंद्र बन जाती है या यूँ कहें गिद्ध दृष्टियों के बीच मांस का केवल टुकड़ा बन जाती है। लोगों की बधाइयाँ पाकर अपने आपको एक सफल स्त्री

मानती है। अंकिता उसे स्पष्ट रूप से समझाती है—‘अपने कमरे के भीतर आप नंगे रहिए, कौन झाँकने, टोकने जाता है, किसे आपत्ति हो सकती है? मगर घर से बाहर आप मात्र एक व्यक्ति नहीं होते, समाज होते हैं।’¹⁰ लेकिन नीता अपने नग्न प्रदर्शन को स्त्री-स्वतंत्रता का परिचायक मानती है।

नीता अपने-आपको आधुनिक समझकर, मॉडल बनकर विज्ञापन जगत में तितली के समान उड़ती है, सुधीर गुप्ता के प्रेमजाल में फँसकर छली जाती है। विज्ञापन-जगत् के मायाजाल में फँसकर अपना सब-कुछ खो बैठती है। विज्ञापन-क्षेत्र के छद्मरूपों को सत्य मानकर अपने को बर्बाद कर लेती है। अंत में अपने जीवन से तंग आकर आत्महत्या कर लेती है, और अपनी मासूम बच्ची को अंकिता के पास छोड़ जाती है। सुधीर के लिए नीता मात्र एक विज्ञापन फ़िल्म बनकर रह जाती है। यह केवल नीता का ही नहीं बल्कि विज्ञापन-जगत् से जुड़ी उन सभी स्त्रियों का यथार्थ है, जो इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। वह इस क्षेत्र के लिए और यहाँ के लोगों के लिए मात्र एक क्षणिक फ़िल्म है।

अतः इस उपन्यास में दोनों नायिकाएँ अपने-अपने जीवन के स्त्री-यथार्थ को लेकर चलती हैं। जहाँ अंकिता प्रारंभ से लेकर अंत तक स्वतंत्र होकर अपनी स्त्री की गरिमा को बचाए रखती है। वहीं दूसरी तरफ़ नीता अपनी वास्तविकता से भटककर अपना सब-कुछ गवाँ बैठती है। स्त्री जहाँ होगी, वहाँ उसे आकर्षित करने के लिए मायाजाल अवश्य होंगे। परंतु उसकी वास्तविकता को पहचानना स्त्री का धर्म है। स्त्री को अपने सौंदर्य से नहीं, अपनी प्रतिभा और कार्यकुशलता से प्रत्येक क्षेत्र में विजय हासिल करने की आवश्यकता है। के० वनजा का स्पष्ट वक्तव्य है कि जब स्त्री वस्तु बनती है, तब उसकी जिंदगी दूसरों के हाथ की कठपुतली बनकर बर्बाद हो जाती है।¹¹ आधुनिकता की स्वार्थप्रेरित विज्ञापन-जगत् की व्यापारिक मानसिकता मनुष्य को कहाँ पहुँचा रही है, इसका यथार्थ स्पष्टीकरण इस उपन्यास में किया गया है।

संदर्भ

1. चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन, के० वनजा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ० 13
2. एक ज़मीन अपनी, चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृ० 11
3. वही पृ० 34
4. वही पृ० 111
5. वही पृ० 184
6. वही पृ० 235
7. वही पृ० 35
8. वही पृ० 80
9. वही पृ० 80
10. वही पृ० 106
11. चित्रा मुद्गल, एक मूल्यांकन के० वनजा, पृ० 30

□ सुपुत्री श्री हरिप्रसाद

म०नं० 1175, आवास विकास कालोनी

कुनराघाट, गोरखपुर 273008 (उ०प्र०)

मो० 09455671156

हिंदी पुनर्जागरण काल के आधार भारतेंदुयुग के काव्य की समीक्षा डॉ० संजीवकुमार

आधुनिकता की अवधारणा

‘आधुनिकता’ शब्द एक सापेक्ष अर्थ व्यक्त करता है। प्राचीन मूल्यों की सापेक्षता में वर्तमान नवीन मूल्य निश्चय ही आधुनिक हैं, जबकि भावी पीढ़ी इन वर्तमान मूल्यों को पुराने मूल्य कहकर तिरस्कृत करेगी। वस्तुतः आधुनिकता की व्याख्या अतीत की सापेक्षता में ही की जा सकती है। अतीत से नितान्त निरपेक्ष होकर आधुनिकता की कोई व्याख्या नहीं हो सकती। अंग्रेज समीक्षक जी०एस० फ्रेजर के अनुसार—‘आधुनिकता को अपनी सुरक्षा के लिए अतीत से संबंध रखना चाहिए।’ आधुनिकता का मूल्य ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ ही है। पुरातन मूल्यों एवं ऐतिहासिक बोध का मानसिक प्रत्यक्षीकरण करके ही हम आधुनिकता की अवधारणा से परिचित हो सकते हैं। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार, ‘आधुनिकता का मूल आधार मानवतावादी दृष्टि है। यह दृष्टि ही सुविचारित आधुनिक दृष्टिकोण है और मानवमुक्ति से किसी-न-किसी रूप में अवश्य जुड़ी होती है।’

आधुनिककाल का प्रथम चरण भारतेंदुयुग अथवा पुनर्जागरण काल के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदुजी के रचनाकाल को ध्यान में रखकर इस काल की समयावधि संवत् 1925 वि० से 1950 वि० (1868-1893 ई०) तक मानी है। वस्तुतः भारतेंदुयुग ‘कविवचन सुधा’ के प्रकाशनकाल (1868 ई०) से लेकर ‘सरस्वती’ पत्रिका के प्रकाशनकाल (1900 ई०) तक माना जा सकता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जनता को उद्बोधन प्रदान करने के उद्देश्य से जातीय संगीत अर्थात् लोकगीत की शैली पर सामाजिक कविताओं की रचनाओं पर बल दिया।¹

भारतेंदुयुग वस्तुतः हर क्षेत्र में पुनर्जागरण का युग है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रों में कुछ नयापन एवं सक्रियता दिखाई दे रही थी। इसकी परिणति विषय-चयन में नवीनता, व्यापकता एवं विविधता के रूप में काव्य में परिलक्षित हुई। रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ ह्रासोन्मुख हो गईं और देश-प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, बाल-विवाह का निषेध, शिक्षा-प्रसार और मद्य-निषेध जैसे विषयों पर रचनाएँ लिखी जाने लगीं। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय भावना का उदय भी इसी काल में हुआ। भारतेंदुयुग की राष्ट्रीय चिंतनधारा के दो पक्ष हैं—देश-प्रेम और राजभक्ति। प्रथम पक्ष के अंतर्गत उन्होंने हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान’ का गुणगान किया।²

आर्थिक, औद्योगिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण की प्रक्रिया से तत्कालीन साहित्य-चेतना में नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने और मुद्रण-यंत्रों के विस्तार

ने समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से जन-जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

भारतेंदुजी ने काव्य-क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बँधी-बँधाई परिपाटी से कविता को मुक्त कर आधुनिकयुग का द्वार खोल दिया। उनके युग के अनेक साहित्यकार कवि होने के साथ-साथ समाजसुधारक एवं प्रचारक भी थे। वे प्रायः किसी-न-किसी पत्रिका से जुड़े हुए थे तथा इन पत्र-पत्रिकाओं में अपने विचार, कविताओं तथा निबंधों के माध्यम से व्यक्त करके समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों पर प्रहार करते थे।

भारतेंदुयुगीन कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थीं। इस काल में भी कविगण राधा-कृष्ण के मधुर प्रेम को आधार बनाकर शृंगारी कविताएँ लिख रहे थे तथापि उनका ध्यान नवीन विषयों की ओर भी आकृष्ट हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार भारतेंदुजी 'एक ओर तो पद्माकर एवं द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते हैं, तो दूसरी ओर स्त्रीशिक्षा और समाजसुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते हैं।'

भारतेंदुयुगीन काव्य-प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रप्रेम की भावना—भारतेंदुयुगीन कवियों ने अपनी सजग राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप विदेशी शासन के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता में देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता जगाने का प्रयास प्रारंभ कर दिया था। भारतेंदुजी ने अँग्रेजों द्वारा किए गए शोषण का चित्र उतारते हुए जनता को इन शब्दों में सचेत किया—

भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि के तन-मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहि अँग्रेज।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अँग्रेजी शासन के गुणों की चर्चा करते हुए भी उनके द्वारा किए जाने वाले शोषण का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया है—

अँग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।

सामाजिक दुर्दशा का निरूपण

रीतिकालीन कवियों ने भारतीय समाज एवं जनजीवन के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया, क्योंकि रीतिकालीन कविता में समाज एवं जनता की पीड़ा से कोई सरोकार दिखाई नहीं पड़ता। भारतेंदु ने 'प्रबोधिनि' शीर्षक कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रत्यक्ष रूप में प्रेरणा दी है। इसलिए पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क में देश के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भी उन्होंने शासकवर्ग द्वारा देश के आर्थिक शोषण का विरोध किया है।³ वहीं भारतेंदुयुग के कवियों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं का डटकर विरोध किया। नारीशिक्षा के वे समर्थक हैं, विधवा-विवाह को वे प्रोत्साहित करते हैं तथा बाल-विवाह की भर्त्सना करते हैं। इसी प्रकार सतीप्रथा, छुआछूत आदि के वे विरोधी हैं। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखंड, स्वार्थपरता आदि का चित्रण उन्होंने बेहिचक किया है।

शृंगारिकता

भारतेंदुयुग में रीतिकालीन पद्धति पर शृंगार का विशद चित्रण हुआ है। राधा-कृष्ण की

प्रेमलीलाओं का चित्रण इन्होंने नायक-नायिका की सामान्य चेष्टाओं के रूप में ही किया है। भारतेंदुजी की रचनाओं-प्रेम-माधुरी, प्रेम-तरंग, प्रेम-फुलवारी में शृंगार की मधुर अभिव्यक्ति हुई है।

भारतेंदु की रचनाओं में भक्ति-शृंगार एवं विशुद्ध शृंगार दोनों का समावेश है। 'प्रेमघन' की रचनाओं में भी शृंगार वर्णन प्रमुखता से उपलब्ध होता है। भारतेंदुजी ने सौंदर्य, प्रेम, विरह नख-शिख वर्णन के माध्यम से शृंगार-चित्रण किया है। कहीं-कहीं तो इनका शृंगार-वर्णन घनानंद जैसी सरसता से युक्त है-

सिसुताई अजौं न गई तन तैं तरु जीवन-ज्योति बटोरैं लगी।
सुनिकैं चरचा हरिचंद की कानन कूक दै भौंह मरोरैं लगी।
बचि सासु जेठानिन सौं पिय तैं दुरि घूँघट में दृग जोरैं लगी।
दुलही उलही सब अंगन तैं दिन द्वै तैं पीयूष निचोरैं लगी।

भक्ति-भावना

निर्गुण भक्ति इस काल की मुख्य साधना-दिशा नहीं थी। फलस्वरूप कुछ कवियों ने परंपरा के प्रभावस्वरूप संसार की नश्वरता⁴, माया-मोह की व्यर्थता⁵ विषयासक्ति की निंदा⁶ आदि विषयों पर तो उपदेशात्मक ढंग से विचार व्यक्त किए हैं।

भारतेंदु और राधाकृष्णदास द्वारा बिहारी और रहीम के कुछ दोहों का कुंडलियों में भाव-विस्तार किया जाना और अबिकादत्त व्यास द्वारा 'बिहारी-बिहार' में इस शैली को अपनाना भी उल्लेखनीय है। भारतेंदु ने उर्दू-छंदों में 'काव्य-रचना'⁷ के साथ ही 'प्रात-समीरन' कविता में बंगला के 'पयार' छंद का प्रयोग किया है।

भारतेंदुजी पुष्टिमार्ग में दीक्षित कृष्णभक्त थे। ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए वे अपनी दीनता का उल्लेख इन पंक्तियों में करते हैं-

उधारौ दीनबंधु महाराज।
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहीं और सौं काज।

प्रकृति-चित्रण

भारतेंदुयुगीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छंद रूप में चित्रण किया है। उन्होंने वसंत, वर्षा आदि ऋतुओं के मनोहारी चित्रण किए तो दूसरी ओर गंगा-यमुना, चाँदनी का सुंदर चित्रण अपने काव्य में किया। 'चंद्रावली नाटिका' में यमुना-वर्णन है। यमुना के तट पर खड़े तमाल वृक्ष कैसे लगे रहे हैं, इसका चित्रण निम्न पंक्तियों में है-

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सौं जल परसन हित मनहु सुहाए

बँधी-बँधाई परिपाटी पर प्रकृति का आलंबन रूप और अलंकृत रूप ही भारतेंदु की कविता में अधिक मिलता है।

हास्य-व्यंग्य की प्रधानता

भारतेंदुयुगीन कवियों में हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी प्रमुखता से उपलब्ध होती है।

भारतेंदुयुग के कवियों की सबसे बड़ी विशेषता प्राचीन और नवीन का समन्वय करने में है।⁸ अँग्रेजी शासन, पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों को इन्होंने अपने व्यंग्य का विषय बनाया। भारतेंदुजी के एकांकियों एवं नाटकों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का निरूपण किया गया है।

शिल्प-विधान

भारतेंदुयुगीन कवियों ने काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया, यद्यपि गद्य की भाषा खड़ीबोली थी। इनकी भाषा रीतिकालीन कवियों की भाँति परिष्कृत तो नहीं है, किंतु उसमें स्वाभाविकता एवं प्रवाहमयता विद्यमान है। उसमें उर्दू के चलते हुए शब्द भी प्रयुक्त हैं। आलंकारिकता की प्रवृत्ति भी इन कवियों में विद्यमान है। भारतेंदुयुग में सामयिक विषयों में फुटकर पद्य लिखे गए। अधिकांश कवियों ने मुक्त शैली में काव्य-रचना की। भारतेंदुयुग हिंदी-गद्य के बहुमुखी विकास का युग है। इसके पूर्व जिन गद्य-लेखकों राजा लक्ष्मणसिंह (1826-1896), राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद (1823-1825), नवीनचंद्र राय (1837-1890) और श्रीराम फिल्लौरी का उल्लेख इतिहास-ग्रंथों में किया गया है, उनकी कृतियों का साहित्यिक महत्त्व नहीं के बराबर है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं, नवीनचंद्र राय के साहित्य की मूल प्रेरणा धार्मिक है और श्रद्धाराम फिल्लौरी भी धार्मिक व्यक्ति थे। राजा लक्ष्मणसिंह का 'अभिज्ञान शाकुंतल' का अनुवाद (1863) अवश्य एक उत्तम अनुवाद-कृति है, किंतु इसका प्रचार इसकी शुद्ध भाषा-नीति के कारण ही हुआ। वस्तुतः उपर्युक्त लेखकों का महत्त्व खड़ीबोली-गद्य के स्वरूप-विकास के क्रम में अदा की गयी भूमिकाओं के कारण है।⁹ दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, रोला, कुंडलिया जैसे छंद अधिक प्रयुक्त हुए।

निष्कर्ष

भारतेंदुयुगीन कविता की सबसे बड़ी देन यही है कि इन्होंने कविता की रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके उसमें आधुनिकयुग की समस्याओं को अभिव्यक्ति दी। राष्ट्र और समाज को जाग्रत करने में भी इन कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

संदर्भ

1. कविवचन सुधा, मई, 1879, भारतेंदु हरिश्चंद्र की विज्ञप्ति, पृ० सं० 22
2. प्रतापनारायण मिश्र के अनुसार—
चहहु जु साँचहु निज कल्याण, तौ सब मिलि भारत संतान।
जपो निरंतर एक जवान, हिंदी हिंदू हिंदुस्तान
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है
अँगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख़वारी।
4. भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है—
साँझ-सवरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब हक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है।
5. प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा है—

साधो मनुषां अजब दिवाना।

माया मोह जनम के ठगिया, तिहके रूप भुलाना।

6. राधाकृष्णदास ने लिखा है—

जो विषया संतन तजी, ताहि मूढ़ लपटात।

जो नर डारत वमन करि, स्वान स्वाद सों खात।

7. भारतेन्दु-ग्रंथावली, भाग 2, पृ० सं० 203, 209, 747, 853, 855, 857-860

8. प्रेमघन-सर्वस्व, प्रथम भाग, परिचय, पृ० सं० 9

इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह कथन द्रष्टव्य है—‘उस संधिकाल के कवियों में ध्यान देने की बात यह है कि वे प्राचीन और नवीन का योग इस ढंग से करते थे कि कहीं से जोड़ नहीं जान पड़ता था, उनके हाथों में पड़कर नवीन भी प्राचीनता का ही एक विकसित रूप जान पड़ता था।

9. हिंदी-प्रदीप, जनवरी 1882, पृ० सं० 17

□ पो० कमोदा, तह० पिहोवा,

कुरुक्षेत्र 136119

मो० 9813152436, 9050115786

‘मन के जीते जीत’ उपन्यास शक्ति-संपन्न मन की आवाज़ डॉ० रूबी जुत्शी

समकालीन महिला उपन्यासकारों में सुषमा अग्रवाल एक जानी-मानी उपन्यासकार हैं। आपने अभी तक छः उपन्यास लिखे हैं—‘नया रास्ता’, ‘प्रतीक्षिता’, ‘आसरा’ (2006), ‘अनोखा उपहार’ (2008), तीन बीघा ज़मीन (2009) और ‘मन के जीते जीत’ (2012)

‘मन के जीते जीत’ उपन्यास में इन्होंने कई समस्याओं पर लेखनी चलाई है और कहीं-कहीं पर उनका समाधान भी किया है। आलोच्य उपन्यास की मुख्य कथा का ताना-बाना एक बालिका से बुना गया है। स्वाति एक पोलियो-ग्रस्त बालिका है, जिसका एक पैर व हाथ पोलियो से ग्रस्त है, किंतु सौभाग्य से इसका दाँया हाथ सही था और उस पर मस्तिष्क का अनुपम भंडार भी था। वह अपनी मेहनत एवं लगन से हमेशा कक्षा में प्रथम आती थी। जब भी अपने पोलियो ग्रस्त हाथ-पैर को देखकर उसके मन में हीनभावना पनपती थी, तभी माता-पिता विशेष तौर पर संस्कारी माँ तरह-तरह की सीख देकर हीनभावना से वंचित रखते थे। स्कूल में खेलकूद के आयोजन पर जब स्वाति मन से निराश हो गई थी तब सुमधर सा गीत गाकर वह सबकी प्रशंसा का पात्र बनती है और मन में बसी हीनग्रंथि से उबर पाती है।

दृढ़ इच्छाशक्ति उसने अपने जीवन में सब-कुछ वहीं प्राप्त किया, जो एक स्वस्थ लड़की प्राप्त कर सकती है। पहले बी०एस-सी०, एम०एस-सी०, पी०एच-डी०, की फिर एक वैज्ञानिक के पद पर उसकी नियुक्ति हुई और साधारण मानव की तरह विवाह के बंधन में बंध गई। फिर एक वैज्ञानिक की हैसियत से कई विशिष्ट पुरस्कारों से पुरस्कृत हुई।

इस मनोविज्ञान उपन्यास में बालमन के व्यवहार का अध्ययन किया गया। बालकपन से ही मनुष्य अपनी अभिवृद्धि की शुरुआत करता है, लेकिन आगे चलकर परिपक्वता के बाद वह पूर्ण मानव बनकर अलग-अलग रूपों में विकसित होता है, अच्छे बुरे इंसान के रूप में बालमन में अधिकतर बच्चे निःस्वार्थ, छल-कपट एवं रागद्वेष से रहित होते हैं। पोलियोग्रस्त स्वाति भी एक ऐसी ही बालिका है, जो अपनी अपूर्णता एवं बालमन के कारण छल-कपट, रागद्वेष से अलग है। अपनी सखी खुशबू की बेइज्जती उसके लिए असहनीय है—‘खूशबू की स्थिति देखकर व अनुभव करके स्वाति के हृदय की प्रसन्नता रफूचक्कर हो गई.....जिसे ईश्वर ने सब-कुछ दिया हो परंतु कुछ एक महत्वपूर्ण चीज़ न मिलने पर उसे उसकी कमी का अहसास मन में खटकता रहता है।’ (पृ० 45)

वह उसकी सहायता के लिए अपनी गुल्लक से पैसे निकालकर स्कूल की फीस भर देती है और घर बुलाकर पढ़ाई की विधि भी समझाती है। क्योंकि पिताहीन बालिका की आर्थिक

स्थिति ना के बराबर होती है। माँ पिता जी के आफिस में काम करती है दिन-भर थकी-हारी मुश्किल से घर में खाना बनाकर बच्चों को खिलाती है, किंतु बच्चों की पढ़ाई के प्रति अधिक ध्यान नहीं दे पाती।

स्वाति जीवन के हर पहलू में अच्छी तो हैं, पर बालमन कभी-कभी उछलने भी लगता है। जहाँ वह अपने से उच्चवर्ग के बच्चों के पास आकर्षक चीज़ को देखती है, तो मन ललचा जाता है, और उसे उठाकर अपने पास रखने में नहीं कतराती। 'मुझे ये पेंसिल बहुत अच्छी लगी। उसने काम करते-करते अपनी पेंसिल बाहर छोड़ दी, मैंने उसे उठाकर अपने पेंसिल बॉक्स में रख ली। (पृ० 23)

किंतु कुशल माँ की सीख से ऐसी बुरी आदत से छूट जाती है। स्वाति की माँ अपनी बेटी के लिए प्रेरणास्रोत बनकर सदैव उसके साथ रही। यहाँ इस बात का अनुभव भी होता है, भिन्न वर्गों के बच्चों की अपेक्षा समान वर्ग के बच्चों की आपस में अच्छी बनती है और संतुलित रहते हैं।

आज का मानव बदलते हुए परिवेश के अनुरूप कुछ नया सृजन करना चाहता है। मूल्य परवान चढ़ रहे हैं, विशेष तौर पर पितृपक्ष के रिश्ते दिनप्रति दिन लुप्त हो रहे हैं, परंतु मातृपक्ष के अधिकतम रिश्ते फिर भी अभी जीवित हैं।

आलोच्य उपन्यास में संगीता एवं उसके बच्चे ननिहाल को कभी अलग घर नहीं समझते हैं और न ननिहाल वाले उनको अपने से अलग मानते हैं— 'देखो बच्चो मैं सबुह ही एक पेटी डाल के आम लाया हूँ। बस अब तुम सब खा लेना।' (पृ० 82)

इसके विपरीत कुछ बेटियों को लगता है कि उनके मायके में उनके माता-पिता का आदर-सत्कार नहीं होता है तो विदा की गई बेटी की बात ही नहीं, ऐसी बेटिया अंगर पति सुख से वंचित भी होगी और भारी संकट भी झेल रही होगी, फिर भी मायके जाने की इच्छुक नहीं होती हैं—'अब तुम ही बताओ मेरा एक ही भाई है, वह मेरे माँ पिताजी का ही कर ले यही काफ़ी है। यदि मैं उनपर बोझ बनी होती तो कैसे होता?' (पृ० 58)

जब इन्हीं परिवारों में जवान बेटी के विवाह की बात चलती है तो उस समय पूरे परिवार में सन्नाटा सा छा जाता है कि उनका अनमोल रत्न पराए घर जा रही है, किंतु समय के साथ-साथ कैसे दूर होती जाती है इसका विद्रोह करते हुए लेखिका का कथन है—'जिस आँगन में पूरा बचपन बीता, वही आँगन लड़की कितने सहज भाव से सदा के लिए छोड़ देती है और जिस सहजता से माँ का आँगन छोड़ती है, उतनी ही सहजता से पति के घर का आँगन भी स्वीकार कर लेती है। फिर तो वही आँगन उसे अपना लगने लगता है। यह भी इस समाज का कैसा नियम है? (पृ० 88) जब बेटी की शादी हो जाती है तो माँ दर्दनाक स्थिति से गुजरती है, क्योंकि उसको लगता है कि उसकी अंतरंग सखी उससे बिछड़ गई।

लड़की के साथ और एक विडंबना यह भी है, चाहे वह कितनी ही पढ़ी-लिखी, उच्च अधिकारी के पद पर क्यों न हो फिर भी ससुराल में खाना बनाना, खिलाना-पिलाना उसका परम दायित्व है।

स्वाति बेचारी पोलियोग्रस्त है, किंतु विवाह की बात अभी उठी थी तो माँ समझाने लगी : 'लड़कियों के लिए तो यह काम सीखता अति आवश्यक है अपनी ससुराल जाकर यह काम

तो सभी लड़कियों को करना पड़ता है, चाहे कोई कितनी ही पढ़ी-लिखी क्यों न हो, रोटी तो सबको बनानी ही पड़ती है।' (पृ० 80)

इक्कीसवीं सदी में भी पुरुष नारी को वह अधिकार नहीं देना चाहता है, जिसकी वह हकदार है जबकि वर्तमान नारी पुरुष से कंधा मिला कर चलती है। जहाँ भी पुरुष नारी को अपने से आगे देखता है वहीं काट देता है। यह सोचकर कि नारी न पुरुष से ज्यादा पढ़ी-लिखी होनी चाहिए न ही उच्चअधिकारी, क्योंकि पुरुष घर में दांपत्य जीवन में मूल्यहीन हो सकता है बल्कि यह सोच केवल गाँव के युवको की ही नहीं महानगर के युवको की सोच भी दकियानूसी ही है। 'ये तो बहुत अच्छा है कि तुम बी०एस०सी० में पढ़ रही हो। पत्नी की शिक्षा पति से अधिक हो तो ठीक नहीं रहता।' (पृ० 113)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए सामाजिक नियमों का पालन करना भी अति आवश्यक है। हमारे धर्म, कर्म, रीति-रिवाज, विवाह आदि सब सामाजिक नियम हैं। विवाह एक ऐसा संस्कार है, जिसका पालन करना मनुष्य का धर्म है किंतु आज की शिक्षित एवं आत्मनिर्भर युवती इस धर्म को नकारती है। जिसका लेखिका विरोध करती है— 'आत्मनिर्भर होना अति आवश्यक है। परंतु आत्मनिर्भर होने के बाद विवाह का विचार त्याग देना भी उचित नहीं।' समाज में अभी तक यही धारणा चली है कि बेटे दूसरे के घर जाती है तो बहू घर में आकर बेटे की रिक्तता को भर देती है, किंतु आज तक 80 प्रतिशत बहुएँ ऐसी हैं, जो ससुराल में बेटे रिक्तता नहीं भर सकती है, कहीं-कहीं पर सास-ससुर बहू को स्वीकारते ही नहीं हैं। दोनों पक्ष एकल को ही पसंद करते हैं।

लेखिका प्रेम को महत्त्व देते हुए कहती है कि प्रेम की डोर में बँधे बिना जीवन वास्तव में जीवन नहीं होता है। हर रिश्ता चाहे प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी, माँ-बेटे, पिता-पुत्र भाई-बहन का हो, एकदूसरे के प्रेम में बँधे होना चाहिए। जब किसी भी रिश्ते में ज़रा जी दरार आ जाती है तो नज़दीक से नज़दीक रिश्ते बिखरने लगते हैं जिससे समाज में कई और समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। मनुष्य को सीख देते हुए कहती हैं—'वही मानव मनुष्य कहलाने योग्य होता है, जिसके हृदय में प्यार ही प्यार बसा होप्रेम से हमारा समाज स्वर्ग बन जाएगा।

वह केवल रिश्तों एवं समाज के प्रति प्रेम-भावना रखने की इच्छुक नहीं बल्कि देश-प्रेम भावना से भी ओत-प्रोत हैं। वह अपने भारतदेश को अन्य देशों से उच्च देखना चाहती हैं। वह दूसरों की अपेक्षा अपने हाथों से देश की भलाई के लिए बहुत-कुछ करनी चाहती हैं—'भविष्य में तो मैं देश के लिए बहुत कुछ करना चाहती हूँ' कछ ऐसा करना चाहती हूँ, जिससे हमारे देश का नाम ऊँचा हो सके।' (पृ० 138)

'साकेत' की उर्मिला हो या आलोच्य उपन्यास की स्वाति दोनों अपने उदारवादी स्वभाव के कारण समदुखनियों के लिए कुछ न कुछ करना चाहती हैं। उर्मिला समान दुखनियों को बुलाकर उनके दुख को अपने दुख के साथ तादात्म्य करना चाहती है किंतु स्वाति अपने वेतन का आधा हिस्सा समदुखनियों को देकर उनके दुख को बाँटना चाहती हैं—'अपने वेतन के कुछ हिस्से से पोलियोग्रस्त लोगों की मदद करना चाहूँगी।' (पृ० 130)

एक कमी से न मनुष्य धिक्कारा जाता है, न अपनाया जाता है। इंसान का आचार-व्यवहार सही हो तो बड़ी-से-बड़ी कमी को भी नज़रअंदाज़ किया जा सकता है—'भैया स्वाति

तो क्रीमती हीरा है, परंतु इसे परखने के लिए आप-जैसा पारखी ही चाहिए, यदि स्वाति तैयार होगी तो मैं स्वयं को भाग्यशाली ही मानूँगा।’

एक कमी से न मनुष्य धिक्कारा जाता है, न अपनाया जाता है। इंसान का आचार-व्यवहार सही हो तो बड़ी सी बड़ी कमी को भी नज़र अंदाज किया जा सकता है—‘भैया स्वाति तो क्रीमती हीरा है, परंतु इसे परखने के लिए आप जैसा पारखी ही चाहिए...यदि स्वाति तैयार होगी तो मैं स्वयं को भाग्यशाली ही मानूँगा।’ (पृ० 140)

कुल मिलाकर आलोच्य उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता को लेखिका इस तरह सिद्ध करती है कि मन में हारे इंसान की ही हार होती है अर्थात् हारने का अर्थ है, इच्छाशक्ति को त्यागकर पूर्ण निष्क्रिय होकर बैठ जाना। मन कमजोर पड़ने पर हमारी अंतःप्रेरणा हमें उस कार्य को करने के लिए प्रेरित नहीं कर पाती जबकि मन को जीतकर तो हीन भावनाओं का दमन किया जा सकता है—‘मन लगाकर कोई काम किया जाए तो वह असंभव नहीं होता। बेटी! ‘मन के हारे हार है, मन के जीते’ (पृ० 144)

उपन्यासएँ प्रकृति-वर्णन, वर्णनात्मकता, पूर्वदीप्ति एवं उपदेशात्मकता आदि का प्रयोग किया गया है—‘ईश्वर ने जो कुछ दिया, उसी से संतुष्ट रहकर जीवन जीना मनुष्य का धर्म है। (पृ० 5) पूरा उपन्यास प्रवचनों एवं सीखों से भरा है।

लेखिका आस्तिक है, ईश्वर एवं भाग्य पर विश्वास करती है। आज तक उपन्यासों से किसी हद तक भिन्न भी है, क्योंकि यह सामान्य समस्याओं पर आधारित न होकर माता-पिता के सहयोग, जीवन में संघर्ष, प्रेम, देशप्रेम, दुखियों के प्रति सहानुभूति एवं मन को सुदृढ़ बनाने की माँग करता है।

□ द्वारा मनोज पंडित
मीडिया सेंटर, पुलिस कंट्रोल रूम
श्रीनगर 190006
मो० 09419058585

प्रवासी साहित्यकार राष्ट्रकवि ब्रजेंद्रकुमार भगत 'मधुकर' जी की काव्य-यात्रा का संक्षिप्त परिचय

डॉ० ऋषिपाल

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

बी०ए०आर० जनता कॉलेज, कौल

जिला कैथल (हरियाणा)

मो० 09812121009

मॉरिशस के राष्ट्र कवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' अपनी उत्कृष्ट हिंदी रचनाओं के कारण न केवल मॉरिशस बल्कि भारत के साहित्यिक जगत् में भी बहुत लोकप्रिय हैं। इनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य के प्रति असीम प्रेम और निष्ठा की गहरी छाप मिलती है। भारत और मॉरिशस दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक तथा साहित्यिक आदान-प्रदान को निरंतर बढ़ावा देने में 'मधुकर' जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे उन रससिद्ध कवियों में से हैं जिन पर मॉरिशस को ही नहीं बल्कि भारत को भी गर्व है। इनको साहित्य का संस्कार और हिंदी प्रेम परिवार से ही मिला और काव्य-रचना की प्रेरणा में देश की हिंदी काव्य परंपरा ने अपना योगदान दिया। मॉरिशस में दो प्रकार की हिंदीकाव्य परंपराएँ चल रही थीं—एक तो भारत में रची एवं प्रकाशित शैली-शिल्प की दृष्टि से वहाँ के हिंदी कवियों को शिक्षित एवं संस्कारित कर रही थी और दूसरे जो स्वयं मॉरिशस के हिंदी कवियों ने सन् 1913 से 'होली' कविता से निर्मित की थी। 'मधुकर' के सामने ये दोनों काव्य परंपराएँ थीं—मॉरिशस के राष्ट्र कवि ब्रजेंद्र कुमार 'मधुकर' की काव्य-यात्रा का मार्मिक सर्वेक्षण संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है।

'मधुपर्क' इनका पहला काव्य संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1948 में स्वयं कवि ने किया है। इसमें 52 कविताएँ हैं, जिसमें 7 प्रेम कविताएँ हैं। कवि 'आशा' कविता में कहता है—'तेरी आँखों में बस जाएजाएँ, परंतु मिलन नहीं होता तो कवि विहल हो उठता है—

आग बिरह की दहक रही है, आशा प्यासी सिसक रही है,

आज दरश बिन प्रेमनगर की, गलियाँ सभी उदासी।

'मधुकर' का कवि प्रेम-जाल में फँसा नहीं रहता, वह देश-समाज की समस्याओं-चुनौतियों के प्रति अधिक संवेदनशील है। वह 'ईश-वंदना' में ईश्वर से माँगता है 'संतान स्वदेश की सच्ची बने'। 'मधुपर्क' में तीन-चार कविताएँ राम-कृष्ण पर हैं तथा दो-तीन कविताएँ हिंदू त्योहारों पर भी हैं। भारत की स्वतंत्रता, गांधी, जवाहरलाल, तिरंगा झंडा आदि लेखकों पर भी कविताएँ हैं। भारत की स्वतंत्रता में कवि अपने देश के लिए नया संदेश पाता है—'मुक्त बनी अब भारत माता, नवल संदेशा लाई'।

कवि इसे आत्मसात करता है और देशवासियों तक पहुँचता है—‘मुक्ति के है सब अभिलाषी, निर्बल या बलवान’। कवि अपने देश के मजदूरों, किसानों को भी याद करता है। किसान और मजदूर दोनों में अधिकार और मुक्ति की नई चेतना पहुँच चुकी है—

वह वस्त्र बिना थर-थर काँपे, मालिक की गाड़ी भी हाँके,
गर्मी हो चाहे जाड़ा हो, चाबुक चलता बलवानों का,
अब रुक जा ऐ अत्याचारी, कर बंद शीघ्र हिंसा चोरी,
वरना मिट जाएगा पल में, है गान यही मजदूरों का’।

इस प्रकार ‘मधुपर्क’ पहला कविता-संग्रह ही कवि के राष्ट्रप्रेम, हिंदूप्रेम, भारतप्रेम, हिंदीप्रेम, मानवता-प्रेम, स्वाधीनता-प्रेम आदि को प्रस्तुत कर देता है। कवि के सामने प्रवासियों का सुख-दुःख, जीवन, धर्म, संस्कृति, भाषा सब कुछ है।

‘रागिनी’ का प्रकाशन हिंदी प्रचारिणी सभा, धारानगरी (जुलाई 1949) मॉरिशस में हुआ। यह ‘मधुकर’ जी की दूसरी कविता पुस्तक है। इसमें कुल 24 कविताएँ हैं। इस संग्रह में ‘वीररस’ की पाँच कविताएँ हैं जिनमें भारत के तिरंगे झंडे, प्रस्थान-गीत, आजादी और शहीदों तथा दिल्ली पर गीत लिखे गए हैं। कवि कहता है—

तीन रंग का झंडा प्यारा, आजादी का चिह्न हमारा।
तीस कोटि का तन-मन सारा, भारत का है भाग्य सितारा।

इस प्रकार कवि मॉरिशस में भारतीय अस्मिता एवं संस्कृति को जीवित कर देता है। ‘रागिनी’ में श्रृंगार-रस की भी पाँच कविताएँ हैं, करुणरस की तीन कविताएँ हैं, इनमें निर्धनों, अनाथों तथा मॉरिशस के पीड़ित हिंदू प्रवासियों की दर्दनाक कहानी है। उनकी यह संवेदनशीलता और मानवीयता उसकी कविता का महत्वपूर्ण पक्ष है—‘बदन पर न कपड़े न आँखों में आँसू, न रहने की कुटिया गरीबों की होगी’। इस प्रकार ‘रागिनी’ कविता-संग्रह में मध्ययुगीन और आधुनिक दोनों की संवेदनाएँ तथा भाव-बोध मिलते हैं।

‘वीरगाथा’ कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 1949 में नालंदा प्रेस, मॉरिशस से हुआ। यह आठ पृष्ठ की पुस्तिका थी। इस कविता-संग्रह में डॉ० मणिलाल से संबंधित कविताएँ थीं।

‘मधुकर’ कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 1953 में हिंदी प्रचारिणी सभा, लॉग माउंटैन, मॉरिशस में हुआ था। इस कविता-संग्रह में कुल 51 कविताएँ हैं। कवि ने स्वयं इनका विषयगत विभाजन किया है। धार्मिक गीत-7, राष्ट्रीय गीत-11, हिंदी के गीत-6, प्यार के गीत-7, फुटकर गीत-13, चुनाव की चटनी (भोजपुरी)-7 हैं।

‘हमारा देश’ कविता-संग्रह प्रचारिणी सभा मॉरिशस से 1963 में प्रकाशित हुआ। इसमें ‘मॉरिशस है देश हमारा’ शीर्षक से एक लंबी कविता है, जिसमें 37 पद हैं। यह कविता संग्रह मुख्य रूप से कवि के राष्ट्र-प्रेम और देशभक्ति का जीवंत प्रमाण है। मॉरिशस का सौंदर्य और उपलब्धियाँ ही इसका प्राणतत्त्व हैं।

‘रसरंग’ कविता-संग्रह का प्रकाशन प्रेस मॉरिशस से सन् 1963 में हुआ। इसमें कुल 48 कविताएँ हैं हिंदी की और 13 भोजपुरी की। कवि आरंभ में शिव, राम, कृष्ण, गंगा आदि की स्तुति करता है और भारत-मॉरिशस के राष्ट्र नायकों का अभिनंदन करता है। ‘घुरहू मौसा क सनेस’ भोजपुरी कविता-संग्रह ‘रसरंग’ (1963) का ही अंग है।

‘अमर संदेश’ का प्रकाशन भी हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरिशस से सन् 1963 में हुआ। इसमें 38 कविताएँ हैं जिनमें 15 कविताएँ भारत, स्वतंत्रता, संस्कृति, गांधी, चीनी आक्रमण आदि पर 6 कविताएँ मॉरिशस और उसके जीवन पर, 12 कविताएँ हिंदी पर तथा 5 कविताएँ रवींद्रनाथ टैगोर पर हैं। ‘गुंजन’ कविता-संग्रह का प्रकाशन जनवरी 1963 से पूर्व निश्चय ही हो चुका था। ‘गुंजन’ के साथ इसी वर्ष में कवि के 3 और कविता-संग्रह छपे हैं, जिनका प्रधान स्वर राष्ट्र-प्रेम और देशभक्ति है। ‘गुंजन’ पर छायावादी कवियों का गहरा प्रभाव है। इसी कारण से इसमें एक भी कविता देशप्रेम की नहीं है। कवि का यह क्षेत्र पूर्णतः नया है, परंतु उसकी संवेदनाओं और अभिव्यक्ति में प्याप्त परिपक्वता है।

‘रणभेरी’ का प्रकाशन जुलाई 1967 में विमक्रमसिंह रामलला, पोर्ट लुई ने किया है। ‘रणभेरी’ कविता-संग्रह में 40 हिंदी की, 8 भोजपुरी की तथा 2 समर्पण कविताओं को मिलाकर कुल 50 कविताएँ हैं। ‘वंदेमातरम्’ (1967) कविता-संग्रह अब अनुपलब्ध है। ‘मधुकर’ जी के 26.06.2002 के पत्रानुसार इसमें क्रांतिकारी कविताएँ थी और वह एक पंफलेट के रूप में निकला था। ‘एक कहानी कुली की’ का प्रकाशन सन् 1968 में विक्रमसिंह रामलला, पोर्ट लुई, मॉरिशस ने किया। ‘स्वराज्य गीताजलि’ कविता-संग्रह का प्रकाशन मार्च 1968 में विक्रमसिंह रामलला, पोर्ट लुई, मॉरिशस ने किया। इसके बारे में ‘दिनकर’ ने लिखा है—‘ब्रजेंद्र भगत जी केवल हिंदी-प्रेमी ही नहीं, हिंदी के अच्छे कवि भी हैं। उनके छंद शुद्ध होते हैं और पदों में वे चमत्कार भी उत्पन्न कर सकते हैं।’ इसमें कुल 12 कविताएँ हैं।

‘मधुकलश’ का प्रकाशन सन् 1970 में पं० रामदयाल जोशी साहित्य परिषद्, पटना से हुआ। ‘रसवंती’ का प्रकाशन सन् 1970 में सुखदेव ईसर, बोनतेर, वाक्वा, मॉरिशस ने किया। कवि के अनुसार ‘रसवंती’ की प्रेरणा उन्हें कालिदास के शृंगार-वर्णन तथा मॉरिशस के नवयुवक-नवयुवतियों से मिले। कवि का शृंगाररस से ओत-प्रोत यह पहला कविता-संग्रह है। इसमें कवि के प्रेम-दर्शन में निराशा, व्याकुलता और वेदना ही नहीं है उसमें मंगल एवं आशा भी है। यह प्रेम का उदातीकरण है। ‘सर शिवसागर रामगुलाम’ कविता-संग्रह मॉरिशस के राष्ट्रपति डॉ० सर शिवसागर रामगुलाम के जन्मदिवस 18 सितंबर 1970 को प्रकाशित हुआ।

‘मधुबन’ कविता-संग्रह नई दिल्ली से सन् 1970 में प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक रामलाल मंगर भगत को समर्पित है। ‘मधुबन’ में मॉरिशस के 11 प्रमुख प्राकृतिक स्थलों एवं सुषमा-केंद्रों पर कविताएँ हैं।

‘हिंदी गौरवगान’ कविता-संग्रह हितैषी प्रिट्रिंग वर्क्स, नीची बाग, वाराणसी ने सन् 1970 में प्रकाशित किया। कवि ने अपने ‘दो शब्द’ में लिखा है—अँग्रेजी-फ्रेंच गाँव-गाँव में फैलाई जा रही हैं, जबकि हिंदीप्रेमी केवल भाषण-प्रस्ताव से ही अपना हिंदीप्रेम दिखा रहे हैं। इस स्थिति से पीड़ित होने के कारण कवि इस कविता पुस्तक को हिंदी-प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत करता है, जिससे उनकी आँखें खुले और वे हिंदी के लिए कुछ करें।

‘मधुमास’ कविता-संग्रह का प्रकाशन सुखदेव ईसर, वाक्वा, मॉरिशस ने सन् 1971 में किया। इसमें 60 कविताएँ हैं, जिसमें 53 हिंदी की और 7 भोजपुरी की। ‘स्वागत गान’ (1971) कविता-संग्रह नालंदा प्रेस, मॉरिशस से प्रकाशित हुआ। इसे कवि ने ‘इंदिरा प्रियदर्शनी के श्री चरणों’ में तथा ‘जनता की सेवा में’ अर्पित किया है और ‘जयहिंद’ तथा ‘जय मॉरिशस’ कहकर

दोनों देशों का अभिनंदन किया है।

‘गोस्वामी तुलसीदास’ (1973) कविता-संग्रह कवि के पिता लेखमन मंगर भगत ने ‘रामचरितमानस’ की चौथी शताब्दी पूर्ण होने पर मॉरिशस के नालंदा प्रेस से मुद्रित करवाकर प्रकाशित की है। ‘मधुचक्र’ (1973) कविता-संग्रह का प्रकाशन हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी में हुआ है। इसमें कुल 22 कविताएँ हैं, जो हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण हैं। ‘विजयगान’ कविता-संग्रह 1975 में प्रकाशित हुआ था, लेकिन यह अनुपलब्ध है। ‘जय हिंदी’ कविता-संग्रह का प्रकाशन सुकदेव ईसर, मॉरिशस ने अगस्त 1976 में किया था। इसमें 9 कविताएँ हैं, 8 हिंदी में और एक भोजपुरी में हैं। ‘मधुदीप’ कविता-संग्रह डायमंड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली से 1984 में प्रकाशित हुआ। इसमें 37 कविताएँ हैं। ‘अमर कुली गाथा’ कविता-संग्रह का प्रकाशन 1984 में करमचंद ईसर, मॉरिशस ने किया। यह लघु पुस्तिका है जिसमें केवल 3 कविताएँ हैं। कवि ने अपने हिंदू प्रवासियों के मॉरिशस आगमन के 150 वर्ष पूरे होने पर उन्हें श्रद्धाजलि देने के लिए इसकी रचना की है। ‘मधु बहार’ भोजपुरी गीत-संग्रह का प्रकाशन दिसंबर 1985 में पटना में हुआ। इसमें 23 भोजपुरी गीत संगृहीत हैं। इसमें कवि ने मातृभूमि, हिंदूजाति, मजदूर, हिंदी आदि अनेक विषयों पर गीत लिखे हैं। इन गीतों में भी भारतीय जीवन मूल्यों और संस्कृति की प्रमुखता और महत्ता है। ‘मधुश्री’ कविता-संग्रह का प्रकाशन 1985 में वाराणसी से हुआ। यह 1953-84 के बीच प्रकाशित कविताओं में से चुनी गई श्रेष्ठ कविताओं का संकलन है।

‘मधुबाण’ कविता-संग्रह का प्रकाशन डायमंड पब्लिकेशन, नई दिल्ली में 1986 में हुआ। इस कविता-संग्रह से कवि ने हास्य-व्यंग्य के नए क्षेत्र में प्रवेश किया है। इसमें 36 कविताएँ हैं, जो प्रायः दोहा-चौपाई में लिखी गई हैं। इसकी विषयवस्तु व्यापक है। देशकाल के अनेक क्षेत्रों एवं विषयों को कवि ने स्पर्श किया है। ‘मधु-मंजरी’ (1988) कविता-संग्रह कवि की पुस्तक-सूचि में मिलता है परंतु इसके प्रकाशित होने में संदेह है। ‘मधु व्यंजना’ कविता-संग्रह का प्रकाशन डायमंड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली से 1988 में हुआ। कवि ने यह कविता-संग्रह मॉरिशस के स्वतंत्रता के 20 वर्ष पूरे होने पर निकाला है। इसमें 24 कविताएँ हैं। ‘मधु गुंजार’ (1989) बालगीत-संग्रह है। इसे महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरिशस ने प्रकाशित किया है। इसमें ईश-वंदना, देश-प्रेम, अनुशासन तथा आज्ञा-पालन, संस्कृति-रक्षा, हिंदी अनुराग आदि विषयों पर प्रकाश डालने की कवि ने कोशिश की है। ‘माधुरी’ कविता-संग्रह का प्रकाशन 1988-89 में हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी से हुआ है। कवि ने इसे ‘गीतिकाव्य’ कहा है, इसमें 33 कविताएँ हैं। ये सभी कविताएँ नारी पर लिखी गई हैं। नारी के रूप का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—‘तेरे आँचल के निचे है प्रेम सुधा का गागर, तेरे ही कदमों के नीचे सकल सुखों का सागर, एक हाथ में शांति की पताका दूजे में तलवार, नारी सभी रसों का सार’।

कवि के सम्मुख भारत की प्राचीन नारी का आदर्श है। वह इसी उदाहरण आदर्श का समर्थक है। वह आधुनिक नारी का आलोचक है। ‘मधुलिका’ का प्रकाशन सन् 1991 में वाराणसी में हुआ। इसमें 69 गीत हैं, जिनमें अधिकांश भोजपुरी लोकगीत हैं। ‘मातृभूमि जल रही है’ कविता-संग्रह की गति भी वही हुई जो ‘मधुमंजरी’ की हुई है। ‘ललकार’ कविता-संग्रह का प्रकाशन 1993 में वाराणसी से हुआ। कवि के अनुसार यह संग्रह ‘हिन्दू, हिंदी से सम्बन्धित लोकोपयोगी’ गीति काव्य है। कवि ने इसे अपनी पत्नी ‘विश्वेश्वरी’ को समर्पित किया है। यह

कवि का सबसे बड़ा कविता-संग्रह है। इसमें 77 कविताएँ हैं। 'जाग रे हिंदू' (1994) कविता-संग्रह भी कभी छप न सका। 'हिंदी-वंदना' (1995) कविता-संग्रह का प्रकाशन वाराणसी से हुआ। कवि ने इसे 'गीतिकाव्य' कहा है। इसमें 23 कविताएँ हैं जिनका विषय हिंदी में है। कवि मानता है कि मॉरिशस में भोजपुरी हिंदी की जननी है। हिंदी कवि का 'प्राणाधार' है और हिंदी के लिए उसकी भीष्म प्रतिज्ञा है—

'हिंदी का भंडार भरूँगा, हिंदीमय संसार करूँगा,

हिंदी प्राणाधार बनूँगा, हिंदी का व्यवहार करूँगा, हिंदी का उद्धार करूँगा'।

'मधुघोष' कविता-संग्रह वाराणसी से सन् 2000 में प्रकाशित हुआ। इसमें 30 कविताएँ हैं, जो तीन भागों में बाँटी गई हैं—भारत-मॉरिशस, हिंदी और फुटकर।

'मधु वाणी' कविता-संग्रह वाराणसी से सन् 2000 में प्रकाशित हुआ है। इसमें 54 कविताएँ हैं। इसमें अधिकांश कविताएँ हिंदूधर्म, हिंदूदेवताओं एवं त्योहारों से संबंधित हैं। 'मधुहाला' कविता-संग्रह सन् 2000 में वाराणसी से प्रकाशित हुआ। इसमें 46 कविताएँ हिंदू देवताओं तथा शेष कविताएँ मॉरिशस के जीवन के विविध पक्षों पर हैं।

'चुनावी चटनियाँ' कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 2000 में वाराणसी से हुआ। इस कविता-संग्रह में 31 कविताएँ हैं। इसमें कवि का राष्ट्रदर्शन है, जिसमें प्रमुख रूप से राजनीति, जनता, चुनाव, नेता, दल, हिंदू, हिंदी आदि पर कवि के विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। 'मधुसंदेश' कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 2000 में वाराणसी से हुआ। कवि ने इसे हिंदी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों एवं दानियों को समर्पित किया है। 'मधु मंत्रणा' कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 2000 में वाराणसी से हुआ। इसमें कवि की 86 कविताएँ हैं। 'युगपुरुष रामगुलाम की अमर कहानी' कविता-संग्रह का प्रकाशन मॉरिशस में सन् 2001 में हुआ। इसका प्रकाशन स्वयं कवि ने किया है। इसमें तीन खंडों में कविताएँ दी गई हैं। 'मेरी भौजी' कविता-संग्रह का प्रकाशन मॉरिशस में सन् 2001 में हुआ। इस पुस्तक में 7 हिंदी की और एक भोजपुरी की कविता है। कवि ने अपनी कविताओं में पत्नी के ही भौजी होने के रहस्य को छिपाया नहीं है। 'मिलेन्यम पुरुष महात्मा गांधी का पैगाम' कविता-संग्रह का प्रकाशन मॉरिशस में सन् 2001 में हुआ। इसमें 17 हिंदी की तथा एक भोजपुरी की कविताएँ हैं। इसमें महात्मा गांधी के जीवन, उनके कार्य, मानवता की सेवा तथा उनके अवतारी रूप की बार-बार प्रशंसा की गई है। 'मधु मालती' (2001) कविता-संग्रह अप्रकाशित है। 'मधु प्रयाण' अप्रकाशित है।

इस प्रकार ब्रजेंद्रकुमार भगत 'मधुकर' की काव्य-यात्रा के सर्वेक्षण से उनकी लम्बी काव्य-चेतना, काव्य-प्रतिबद्धता, काव्यमूल्य और काव्यदर्शन की मूल प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। 'मधुकर' जी की 65-70 वर्ष की निरंतर काव्य-साधना उनकी अद्भूत सर्जनात्मक क्षमता की प्रमाण हैं। उन्होंने अपनी अंतिम सांसों में भी देश, हिंदूधर्म, हिंदूजाति और हिंदीभाषा की चिंता की है। मॉरिशस, हिंदुस्तान, हिंदू और हिंदी के लिए ही मधुकर जी जीवित रहे और इन्हीं के उदार एवं उत्कर्ष के लिए आजीवन प्रयासरत रहे।

संदर्भ

ब्रजेंद्रकुमार भगत 'मधुकर' काव्य रचनावली, सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, दिल्ली।

बीसवीं शती के अंतिम दशक की प्रमुख हिंदी-कहानियों में सामाजिक व्यंग्य डॉ० (श्रीमती) रेनू सिंह

सामाजिक व्यंग्य का अभिप्राय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और मीडिया के फैलते जाल के कारण अनेक प्रकार से परिवर्तन हुआ, साथ ही अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। शहरी और ग्रामीण परिवेश के जीवनमूल्यों के घात-प्रतिघात संक्रमण और विघटन के कारण सामाजिक संरचना में भी विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। प्राचीन नैतिक मूल्य, धार्मिक आस्थाएँ और आचार संहिताएँ खोखली मानी जाने लगीं, नवीन मान्यताओं को महत्त्व दिया जाने लगा, जिनमें प्रेम, करुण, सोहार्द, ईमानदारी, सत्य और न्याय का स्थान पारस्परिक वैमनस्य और धूर्तता आदि ने ग्रहण कर लिया। आपसी संबंधों तथा रिश्तों की मिठास समाप्त प्रायः हो गयी। भौतिकता में डूबा मन धन को महत्त्व देने लगा, जिससे आर्थिक मूल्यों के साथ-साथ चारित्रिक पतन होने लगा। यौन विकृति और अनैतिक संबंधों को बढ़ावा मिला।

अंतिम दशक के अनेक कहानीकारों ने सामाजिक मूल्यों के पतन और असंतुलन को तीव्र व्यंग्यों द्वारा अनेक रूपों में प्रकट किया। उन्होंने न केवल व्यक्तिगत आचरण वरन् पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक मूल्यों के विभिन्न पक्षों को अनेक रूप में उजागर किया एवं सामाजिक व्यभिचार, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, रूढ़ियों व अनैतिक मान्यताओं पर आक्रोशात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की।

सामाजिक व्यंग्य का लक्ष्य

सामाजिक व्यंग्य का लक्ष्य सामाजिक धरातल पर फैली हुई विभिन्न विसंगतियों, विकृतियों, कुत्सित भावनाओं और पतित मानवमूल्यों को उजागर करके उनमें सुधार लाना है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों जैसे-व्यक्तिगत, पारिवारिक, शैक्षिक, प्रशासनिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी पर साहित्यकार की दृष्टि रहती है और जहाँ-जहाँ भी उसे कुत्सित प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, उन्हीं को वह अपने व्यंग्य का निशाना बनाता है तथा उन विषमताओं का नग्न एवं प्रत्यक्ष रूप प्रस्तुत करके उनमें उत्थान की प्रेरणा देता है।

सामाजिक व्यंग्य के विविध रूप

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की हिंदी-कहानियों में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे पारिवारिक, प्रतिष्ठित व सामान्य व्यक्तियों के रहन-सहन, वर्तमान रीति-नीति, पतित

स्थितियाँ, दूषित मनोवृत्ति, रिश्वत व उधार लेनेवाले व्यक्ति, पुलिस-व्यवस्था, अफ़वाहबाज़ तथा विज्ञापनों पर व्यंग्य किया गया है। इन विविध रूपों में से मैंने पारिवारिक, सामान्य व्यक्तियों के रहन-सहन तथा वर्तमान रीति-नीति एवं पतित स्थितियों पर सामाजिक व्यंग्य को दर्शाया है, जो कि निम्नलिखित है—

सामाजिक व्यंग्य के अंतर्गत पारिवारिक जीवन पर व्यंग्य

परिवार के बिना सामाजिक संरचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवार सामाजिक संरचना के साथ-साथ सामाजिक विकास के लिए भी एक प्रमुख और आवश्यक तत्व है। पारिवारिक जीवन को समाज का केंद्र मानकर व्यंग्यकारों ने अनेक सटीक व्यंग्य किए हैं—

प्रेम जनमेजय की कहानी 'राधेलाल क्या करे'

राधेलाल नामक व्यक्ति प्रॉविडेंट फंड से तीस हजार रुपये अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निकलवाता है और अपनी पत्नी के हाथ में थमा देता है। इसी प्रसंग पर लेखक ने व्यंग्य करते हुए कहा है, 'विवाह के पतझड़ जैसे बसंत देख डाले, परंतु गृहलक्ष्मी ने आज तक तीस हजार की लक्ष्मी के दर्शन नहीं किए थे।' 'इतने सारे पैसे कहाँ से?' पत्नी ऐसे हकला रही थी जैसे थाने में बयान दे रही हो। 'अरे भाग्यवान, तुम ही कहती थीं न कि घर में पड़ोसियों से अच्छा सोफ़ा नहीं है, रंगीन टी॰वी॰ नहीं है, पर्दे ओल्ड फैशन के हैं, ओवन नहीं है, डिनर सेट नहीं है। पड़ोस में तुम्हारी इज़्जत कम हो रही थी कि नहीं! इसलिए मैंने प्रॉविडेंट फंड से तीस हजार रुपए ले लिए हैं, धीरे-धीरे कटता रहेगा।'¹

डॉ॰ बलजीत सिंह की कहानी 'मिलनसारी का मिराक'

परिवार की सामाजिक संपर्क संबंध बढ़ाने की योजना के अंतर्गत लेखक अपने परिवार को लेकर अपने मित्र के घर जाता है। जब वह वहाँ से लौटकर आता है तो पति-पत्नी में झगड़ा होने लगता है। इसी बीच उनके घर श्री सर्वभक्षी जी परिवार-सहित पधार जाते हैं। लेखक कहता है, 'यह अखंड पाठ (लड़ाई का) पता नहीं कब तक चलता रहता, यदि श्री सर्वभक्षी जी पिछले दिन की उनके यहाँ विजिट का लौटती डाक से जवाब देने न आ जाते। उनके साथ उनकी पत्नी श्रीमती मीनमेखनी, दो पुत्र विप्लव तथा उपद्रव व एक भतीजा विनाश भी थे। उनके प्रवेश करते ही हमने अघोषित युद्ध-विराम लागू कर दिया। क्रोधीले चेहरों पर मुस्कान की झालर डालते हुए, कौओं-जैसी काँय-काँय पर सुरीले कंठ की कलम चढ़ाकर पार्टी के स्वागत में जुट गए। अपसेट हुई श्रीमतीजी ने चाय के कप-प्लेटों का नया सेट निकालकर मेज़ पर सेट कर दिया और बिस्कुट, नमकीन आदि प्लेटों में करीने से लगाकर रख ही रही थी कि सर्वभक्षी जी के संकेत पर बच्चापार्टी बड़ी बेबाकी के साथ खाने पर ऐसे टूटी कि दो कप और तीन प्लेटें फ़ैक्चर का शिकार हो गईं।'²

प्रेम जनमेजय की कहानी 'मुझे सी॰डी॰ चाहिये, पापा'

लेखक राधेलाल नामक व्यक्ति के दफ़्तर से घर में प्रवेश करने और उसके पुत्र द्वारा सी॰डी॰ प्लेयर की ज़िद्द करने पर व्यंग्य करते हुए कहता है, 'राधेलाल शाम की चाय पीने के लिए ऐसे तैयार था, जैसे अध्यक्ष माल्यार्पण करवाने के लिए तैयार होता है। उन्होंने चाय को हाथ

में पकड़ा ही था कि उसके बेटे ने दालान में मूसलचंद की तरह प्रवेश किया। 'आप मुझे सी०डी० प्लेयर लेकर देंगे कि नहीं? स्वर में प्रश्न कम, पाकिस्तानी धमकी की गूँज अधिक थी। पिछले कुछ दिनों से बेटे ने सी०डी० प्लेयर की रट लगाई हुई है। पाकिस्तान की तरह बेटा भी यू०एन०ओ० में सवाल उठाता रहता है। राधेलाल ने टालने के स्वर में कहा, देखेंगे.....। 'राधेलाल के इस सरकारी टिकाऊ शब्द को सुनकर बेटे की रगो में खून खौला और उसकी जवानी ने उससे संवाद बुलवाया, 'आप जिंदगी में इसलिए कभी कुछ नहीं कर पाए, क्योंकि आपने सिर्फ देखा, कुछ किया नहीं।'³

दामोदरदत्त दीक्षित की कहानी 'पत्नी-डे'

लेखक ने अपने द्वारा पत्नी-डे मनाने के दौरान दोपहर के खाना बनाए जाने पर व्यंग्य किया है। जब लेखक सब्जी बनाने के लिए गरम तेल में जीरा डालना चाहता था, तब जीरा नहीं मिला। इसलिए 'सारी किचन में तूफान आया था। इसी बीच पत्नी ने दायीं ओर रखे पैर को उलटा। जीरे की कटोरी नीचे रखी थी।... 'बाज आई नाटक से। 'पत्नी-डे' मनाने चले हैं या 'पत्नी डूम्स-डे'। आटा गूँथा, कड़ा हो गया। पानी डाला, गीला हो गया। और आटा मिलाना पड़ा अब वह इतना ज्यादा हो गया कि दो दिन के लिए काम आ सकता था। रोटियाँ बेलीं, तो वे आयताकार, त्रिभुजाकार और न जाने किन-किन ज्यामितीय आकृतियों में बनीं। सिर्फ एक ही आकार नहीं बन सका वृत्ताकार।⁴

शरद जोशी की कहानी 'मेरे क्षेत्र के पति : एक सर्वेक्षण'

लेखक ने अपने क्षेत्र के सर्वेक्षण में पतियों की विशेषताओं को बताते हुए कहा है, 'उनके 'क्षेत्र में कुछ पति बसते हैं। वे न लखपति हैं, न सभापति हैं। वे मात्र पति हैं, शुद्ध पति जो चंद स्त्रियों की किस्मत में लिखे थे और पूर्वजन्म के शर्तनामों के अनुसार इस जन्म में 'अलाट' किए गए। ...उनके गलों में जंजीर बँधी रहती है, जो उनकी औरत के हाथ में रहती है, जो अंदर काम करती है, पर वे भय से छोड़ भी दिए जाते हैं और तब वे सड़क पर भटकते हैं और दफ्तर जाते हैं। ... वे सड़क पर अकेले नज़र आते हैं, पर उनके चेहरों से साफ़ दिखता है कि वे बेचारे नहीं हैं, बल्कि किसी औरत के पति हैं।'⁵

विनोद साव की कहानी 'सुखद दांपत्य जीवन के लिए'

लेखक ने अपने महकमे के एक अधिकारी से हुई बातचीत का उल्लेख किया है, जिसमें वह उनके सुखद दांपत्य का राज़ पूछते हुए कहते हैं, 'सर...शायद आपके सुखद दांपत्य जीवन का यही राज़ है कि हर रोज़ आप अपनी पत्नी व बच्चों के साथ दौड़ लगाते हैं।' जिंदगी तो दौड़-धूप का नाम है। 'पहले वे दार्शनिक भाव से बोले। 'जब दौड़ना है तो अकेले क्यों। पत्नी को भी साथ रखिए, क्योंकि पति और पत्नी गृहस्थी की गाड़ी के दो चक्के हैं और इसे चलाने के लिए दोनों चक्कों का दौड़ना ज़रूरी है। 'अब वे गृहस्थ मुद्रा में आ गए थे।' ...फिर साथ में यह तीसरा चक्का क्यों? उनके बेटे की ओर इशारा करते हुए कहा। बेटा स्टेपनी है। 'जब एक चक्का पंचर हो जाता है तो स्टेपनी काम आती है।' अब वे घोर व्यावहारिकता पर उतर आए थे।⁶

ललितनारायण उपाध्याय की कहानी 'उनकी पत्नी'

लेखक ने किसी दूसरे की पत्नी पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि 'एक पति ने अपनी

पत्नी के कहने पर अपना गला काट दिया। पत्रकारों ने पूछा, 'गला कैसे कटा? क्यों कटा? वह बोली, 'कटा तो कटा पर तिरछा कटा। सीधा नहीं कटा।'

इस प्रकार विभिन्न कहानीकारों ने पारिवारिक जीवन के विविध पहलुओं जैसे, पति-पत्नी की हल्की नॉक-झोंक व आपसी प्रेम, घरेलू झगड़ों, आडंबरपूर्ण संबंध, सुखद दांपत्य जीवन का राज तथा रिश्तों की व्यावहारिकता आदि पर तीखे व्यंग्य किए हैं।

सामान्य व्यक्तियों पर व्यंग्य

बाहर से सामान्य तथा अपने अंदर कुछ नया करने की इच्छा रखनेवाले, अपने तौर-तरीकों तथा कार्यों द्वारा समाज को खुश और परेशान करनेवाले सामाजिक अव्यवस्था में सुधार करने की भावना लिए हुए तथा कुंठित मनोवृत्तिवाले व्यक्ति ही सामान्य व्यक्तियों पर व्यंग्य के पात्र बने हैं। सामाजिक व्यंग्य के अंतर्गत निम्न कहानियों में सामान्य व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है—

डॉ० मनोहरलाल की कहानी 'मिठाई का डिब्बा'

इसमें ऐसे व्यक्ति का उल्लेख किया गया है, जिसके बेटे बीरबल का स्कूटर उसके साहब की दीवार जा टकराता है, किंतु वह बच जाता है। इसलिए वह अपने साहब को सबसे बढ़िया मिठाई का डिब्बा देने जाता है और कहता है, 'सर! मारनेवाले से बचानेवाला बड़ा होता है। सर, यदि आपने भूल से सही, दीवार चिनवाने के लिए सही-सही सीमेंट मिलवा दिया होता, तो कल न दीवार टूटती और न बीरबल बचता।'⁸

गजेंद्र तिवारी की कहानी 'फर्राटासिंह की टैक्सी'

फर्राटासिंह नामक टैक्सी ड्राइवर पर व्यंग्य किया है, जिसका अपनी टैक्सी में पैंतीस सवारियों को बिठाने का रिकार्ड है। उसकी टैक्सी सड़क पर ऐसे चलती है जैसे हवा में उड़ रही हो। लेखक उसकी टैक्सी में बैठने से पहले पूछते हैं, 'फर्राटासिंह, तुम्हारी टैक्सी क्या सचमुच सड़क से ऊपर हवा में चलती है?' 'सड़क के ऊपर हवा है न जी। सारी दुनिया हवा में चलती है, हमारी टैक्सी भी हवा में चलती है, हमेशा तो नहीं, कभी-कभी सड़क को छोड़कर खाली हवा के बीच पहुँच जाती है।' फर्राटासिंह ने कहा।⁹

प्रभाशंकर उपाध्याय 'प्रभा' की कहानी 'टेंशनवीर'

ऐसे टेंशनवीरों का उल्लेख किया गया है, जो कि स्वयं टेंशन न लेकर बेवजह दूसरों की टेंशन का कारण बनते हैं। एक टेंशन वीरांगना पर लेखक व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि 'उस टेंशन वीरांगना को एक शिकार रोज़ चाहिए। जब तक शिकार के सात पुरखों तक को कोस नहीं लेती, उन्हें चैन नहीं पड़ता, परंतु साल में पाँच-दस दिन ऐसे भी जाते हैं, जब लाख ढूँढ़े कोई शिकार नहीं मिलता, तब परिवार के सदस्यों में से किसी की शामत आती है। घरवालों ने ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए एक नायाब तरीका तलाश किया है। जब उन्हें लगता है कि आज कोई शिकार नहीं फँसनेवाला तो उस वीरांगना को तिमंजली हवेली की आखिरी छत पर पहुँचा दिया जाता है और वहाँ से टेंशन-मर्दानी की बेहूदी गालियाँ, फुहड़ कोसने और मुहल्लेवासियों की जिंदगी से संबंधित अललटप्पू अटकलों से भरा वह धाराप्रवाह प्रलाप पूरे मुहल्ले से प्रसारित

होता रहता है, जिसका 'रिसीवर 'खुला हो वह ग्रहण कर लें।'¹⁰

आशा रावत की कहानी 'वन-वे-ट्रैफिक'

लेखिका के घर के साथ-साथ अन्य तीन पड़ोसनों के यहाँ इयर फ़ोन लगाकर काम करनेवाली नौकरानी का वर्णन किया गया है। लेखिका उस नौकरानी को सीधी-सादी समझती थी, किंतु लेखिका की पड़ोसन उन्हें बताती है कि नौकरानी ने उसकी ख़ाली बोतलों के साथ-साथ सॉस की बोतल भी उठा ली है, इसलिए लेखिका नौकरानी से अपनी पड़ोसन के घर की ओर इशारा करते हुए पूछती हैं, उन्होंने तुम्हें दो बोतलें दी थीं। तुम तीसरी क्यों ले गई? इस पर वह सब-कुछ समझने की अदा से बोली, 'उन्होंने तीन बोतलें एक रैक पर रखीं थीं और तीनों का वजन एक बराबर था। घर जाकर देखा तो तीसरी में चुटकी-भर सॉस था। वह भी बेस्वाद...।'¹¹

ईश्वर शर्मा की कहानी 'एक मकान कथा'

लेखक के मित्र वर्माजी के द्वारा नक्शा बनाने के ढंग पर व्यंग्य किया गया है। 'हर स्थान पर स्वयं खड़े होकर और उसका घेरा बनाकर वे नक्शा समझते थे। बैडरूम को बताते तो ऐसा लगता कि वहाँ बस सोने ही वाले हैं और लेट-बात को इस ढंग से बताते कि मानो बस वहीं बैठ जाएँगे। सीढ़ी की स्थिति बताते-बताते वर्माजी अपनी टाँगों को इतना उठा-उठाकर चलने लगे मानो हवा में सीढ़ी पर चढ़ जाएँगे।'¹²

जवाहर चौधरी की कहानी 'दास्तान-ए-अनार सिंह'

इसमें अनारसिंह की दास्तान का उल्लेख किया है। अनारसिंह का पिता कलेक्टर सिंह उसका नाम कमिश्नरसिंह रखना चाहता था, किंतु पंडित ने बच्चे का नाम नरसिंह रख दिया। 'इस घटना के प्रत्यक्ष रूप से दो परिणाम सामने आए, एक बच्चे का नाम कमिश्नरसिंह नहीं रखा जा सका, जिससे सख्त अफ़सोस में कलेक्टरसिंह ने चार दिनों तक प्रकट रूप से खाना नहीं खाया। दूसरा पंडित को देखते ही कलेक्टरसिंह की खोपड़ी पत्थर की सिंगड़ी जैसी गर्म होकर ऊर्जा देने लगती, जिसे ठंडी करने के लिए वे अंगोछा गीला करके सिर पर बाँधते पाए जाते।'¹³

सतीशचंद्र टंडन की कहानी 'पत्नी बनाम प्रेमिका'

दो दोस्तों में पत्नी और प्रेमिका के फ़र्क पर हुई बातचीत को स्पष्ट किया गया है। लेखक ने उनके नाम न बताते हुए दोनों मित्रों में से विवाहित को 'अ' और अविवाहित को 'ब' की संज्ञा दी है। 'ब' एक पार्क में घास पर बैठा हुआ अचानक 'अ' से पूछता है कि पत्नी और प्रेमिका में क्या अंतर होता है?' अ ठहरा अनुभवी और परले दर्जे का चुहलबाज़। अपने प्यारे यार को विवाहपूर्व प्रेम के तमाम किस्से वह रंग-रोगन लगाकर पहले भी सुन चुका था। बोला, 'सुन, पत्नी घर में रहती है और प्रेमिका दिल में।'¹⁴

डॉ० रामप्रकाश सक्सेना की कहानी 'चेक-अप'

रतनलाल नामक स्वस्थ व्यक्ति, अमरीका में रह रहे अपने दो पुत्रों के कहने पर अपना चेकअप कराने के लिए तैयार हो जाता है। अपना ब्लड-प्रेसर चेक करवाने के बाद दंतविशेषज्ञ के पास जाता है। दंतविशेषज्ञ ने सभी दाँतों को ठोक-बजाकर देखा, सभी दुरुस्त थे। फिर भी

उनकी विशेष राय थी, 'आपके दाँत पीले हो रहे हैं। आप क्लीनिंग करा लीजिए।' इसके लिए जब रतनलाल तैयार नहीं हुए, तो डॉक्टर ने समझाते हुए कहा, आप पढ़े-लिखे समझदार हैं। फिर यह बात क्यों नहीं समझते हैं कि सफ़ाई तो अच्छी चीज़ है। दाँत साफ़ दिखेंगे तो आपके व्यक्तित्व में निखार आ जाएगा। रतनलाल जी डॉक्टर की सलाह सुनकर मन-ही-मन सोचकर दाँत पिसपिसा रहे थे।¹⁵ कि इस उम्र में उनके व्यक्तित्व में निखार भले ही आ जाए या न भी आए, किंतु मनचाही फ़ीस लेकर डॉक्टर का चेहरा जरूर चमक उठेगा।

जितेंद्र 'जीतू' की कहानी 'अथ श्री लाइनमैन कथा'

टेलीफ़ोन विभाग के लाइनमैन से लेखक ने साक्षात्कार करते हुए पूछा है कि आपकी ड्यूटी तो डेढ़ घंटा पहले शुरू हो गई थी आप तो लेट हो गए? क्या आप रोज़ डेढ़ घंटा लेट जाते हैं? तब लाइनमैन ने कहा कि उसकी घड़ी में ग़लत टाइम हुआ होगा, लेकिन लेखक की घड़ी बिल्कुल सही टाइम दे रही थी। इसलिए लेखक ने लाइनमैन को 'वाह' कहा और पूछा कि क्या सभी लाइनमैन आपकी तरह ही डेढ़ घंटा लेट ड्यूटी पर जाते हैं? तब लाइनमैन ने लेखक की कलाई में बँधी घड़ी देखकर कहा, 'जिसकी घड़ी में टाइम-अलग हो जाता है, वह ड्यूटी पर चला जाता है। अब अलग-अलग मेक की घड़ियाँ हैं, सभी के पास। हमें घड़ियाँ विभाग तो उपलब्ध कराता नहीं, जो एक ही समय दें।'¹⁶ उपर्युक्त कहानियों में सामान्य व्यक्तियों की मानसिक प्रतिक्रियाओं, तौर-तरीकों, चतुराई, धाराप्रवाह प्रलाप पर उपहास किया गया है।

वर्तमान रीति-नीति एवं पतित स्थितियों पर व्यंग्य

वर्तमान रीति-नीति के अंतर्गत पतित स्थिति, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, गुंडागर्दी, बेरोज़गारी से पीड़ित नवयुवकों की समस्याओं, गिरते हुए मानवीय मूल्य, समाज के खोखले आदर्श, आंदोलनकारी छात्रों तथा स्टेटस सिंबल के नाम पर कुत्ता पालने और एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है।

रत्ना वर्मा की कहानी 'मिसेस पंजवानी के यहाँ'

लेखिका ने ऐसी महिलाओं का वर्णन किया है, जो कि कुत्ता पालने को स्टेटस सिंबल समझती हैं। मिसेस बत्रा, जिनके पास कुत्ता नहीं था, उन्हीं की इस परेशानी पर लेखिका व्यंग्य करते हुए कहती है, 'वे किसी से मिलने में केवल इसलिए कतराती हैं कि उनके साथ कोई कुत्ता नहीं होता। मिस्टर बत्रा को बिजनेस से फुरसत नहीं। लाखों का व्यवसाय चारों तरफ़ फैला दिया है। कई बार घर पर इसलिए झगड़ा हो जाता है कि उन्हें अपनी पत्नी का बिल्कुल ख़याल नहीं है... वे पत्नी के प्रति लापरवाह हैं...कितने दिन हो गए, लेकिन कोई बढ़िया-सा कुत्ता नहीं ला सके पत्नी के लिए...बढ़िया, हाँ, इतना बढ़िया कि मिसेस मलकानी के कुत्ते पर झपट पड़े और उसे नोच खाए। मिसेस पिल्ले की कुतिया उसे देखकर पूँछ हिलाने लगे...हाँ, एक ऐसा रोबदार कुत्ता चाहिए था मिसेस बत्रा को और मिस्टर बत्रा हैं कि पत्नी की पीड़ा, पत्नी का दुःख-दर्द समझते ही नहीं।'¹⁷

बालेंदुशेखर तिवारी की कहानी 'अगली शिक्षानीति का पिछला क़दम'

एक आदर्श शिक्षाविद् होने का ढोंग करनेवाले पांडेय साहब पर व्यंग्य किया गया है।

वह अगली शिक्षानीति विकास के लिए अनेक कलाओं को आवश्यक मानते हुए लेखक से कहते हैं, 'आप तो देख ही रहे हैं प्रियवर! कितनी नई कलाएँ पनप रही हैं। बिल बनाने की कला, साहब को प्रसन्न करने की कला, बहू जलाने की कला, हक मारने की कला, वगैरह-वगैरह। इन सबके इलाके में नियुक्ति की अपार संभावना है। अगली शिक्षानीति में इन सब पर ध्यान देना होगा। इसी तरह कई नए विज्ञान भी हैं, जिनपर आधारित रहेगी हमारे देश की अगली शिक्षानीति।'¹⁸

गजेंद्र तिवारी की कहानी 'साहब का आदमी'

लेखक ने वर्तमान समय में साहब के आदमी की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है, 'साहब को साधो। साहब-साधना ही एकमात्र अर्थवान साधना है। साहब सर्वज्ञ होता है। सर्व शक्तिमान होता है। वह बिगड़ी बना सकता है। बने हुए को तिड़ी-बिड़ी कर सकता है। साहब ही तारक है, साहब ही मारक है। साहब नाम जहाज़ है। जिन्होंने साहब को सिद्ध किया, वे सिद्ध पुरुष बन गए। सिद्धियों के स्वामी बन गए। जिन्होंने साहब-साधना की ओर दुर्लक्ष्य किया, वे हवाई चप्पलें चटकाते रोड-मास्ट्री कर रहे हैं। रखे रहो अपनी अक्लमंदी और शहद लगाकर सेवन करते रहो अपनी प्रतिभा और तेजस्विता को। तुमसे तो वे वैशाखनंदन भले हैं, जिन्होंने वक्त की नब्ब को पहचाना और लाइन से लग गये। 'स्वामी दिन को रात कहें तो हम तारे चमका देंगे।' ऐसे बुलंद हौसलों और संकल्पों के धनी ही कामयाबी की बुलंदियों को स्पर्श करते हैं।'¹⁹

ईश्वर शर्मा की कहानी 'खाली हाथ मत जाइए हुजूर'

इसमें बाहरी दिखावे को स्पष्ट किया गया है। बी०ए० पास एक नवयुवक बेरोज़गारी के कारण लेखक का घर बाहर से ठीक-ठाक होने की वजह से उसके यहाँ चोरी करने के उद्देश्य से जाता है, किंतु घर एकदम खाली होता है। तब लेखक उससे कहता है कि तुम बाहरी दिखावे के कारण अंदर तो आ गए, किंतु बाहर जाकर किसी को घर के खालीपन के बारे में मत बताना, क्योंकि यह हमारे समाज की प्रतिष्ठा का सवाल है। चोर ने पूछा, 'आप कौनसे समाज की बात कर रहे हैं?' तब लेखक ने कहा, 'आम आदमी का समाज। अंदर के खोखलेपन को बाहरी सजावट से ढकने वाला समाज। चार जेबें सिलवाकर हमेशा खाली रहने वाला समाज।'²⁰

हरि जोशी की कहानी 'हमें चाहिए साप्ताहिक शोकसभा'

कर्मचारियों की 'साप्ताहिक शोकसभा' की माँग पर व्यंग्य किया गया है। कर्मचारियों के अध्यक्ष लेखक से शोकसभा करवाने के पक्ष में अपना तर्क देते हुए कहते हैं, 'आप तो जानते हैं, किसी भी कार्यक्रम में इस विभाग के सभी कर्मचारी एकत्र नहीं होते। खेलकूद की प्रतियोगिता में किसी की रुचि नहीं। शोकसभा कभी भी करके देख लें शाम तीन बजे, चार बजे, एक पाँच पर खड़े मिलेंगे, सारे सहकर्मी।'²¹

लतीफ़ घोंघी की कहानी 'कल्याणसिंह खुश है'

अपनी हैसियत का झूठा दिखावा करने वाले समाज पर लेखक ने कटाक्ष किया है। 'आज लोग लंबे पंडाल केवल इसीलिए तान रहे हैं कि उनकी हैसियत का भ्रम जनता में बना रहे। घर में भले ही मूँगफली का दाना न हो, लेकिन उनका पंडाल इतना लंबा होता है कि उसका एक छोर भोपाल में होता है, तो दूसरा दिल्ली में। इस पंडाल के नीचे डिनर होता है। मुर्गा बनता है, सलाद की प्लेटें बिछती हैं और विकास की चर्चा होती है, इसी डिनर टेबल पर। जिसे जितना

खाना है खाओ, लेकिन इसी पंडाल के नीचे खाओगे, तो सुरक्षित रहोगे।¹²²

उपर्युक्त उदाहरणों के माध्यम से कहानीकारों ने वर्तमान समाज की पतित स्थिति, रीति-नीति, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, चुहलबाजी, बाह्य प्रदर्शन तथा आँखों से गिरते मानवीय मूल्यों पर खुले शब्दों द्वारा व्यंग्य किया है।

संदर्भ

1. राधेलाल क्या करे, प्रेम जनमेजय, 1992 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 136
2. मिलनसारी का मिराक, डॉ० बलजीत सिंह, 1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 138
3. मुझे सी०डी० चाहिए पापा, प्रेम जनमेजय, 1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 125
4. पत्नी-डे, दामोदरदत्त दीक्षित, 1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 111
5. मेरे क्षेत्र के पति : एक सर्वेक्षण, शरद जोशी, 1991 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 152
6. सुखद दांपत्य जीवन के लिए, विनोद साव, 1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 154
7. उनकी पत्नी, ललितनारायण उपाध्याय, 1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 151
8. मिठाई का डिब्बा, डॉ० मनोहरलाल, 1992 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 139
9. फर्टासिंह की टैक्सी, गजेंद्र तिवारी, 1994 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 104
10. टेंशनवीर, प्रभाशंकर उपाध्याय प्रभा, 1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 129
11. वन-वे-ट्रैफिक, आशा रावत, 1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 77
12. एक मकान कथा, ईश्वर शर्मा, 1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 95-96
13. दास्तान-ए-अनारसिंह, जवाहर चौधारी, 1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 112
14. पत्नी बनाम प्रेमिका, सतीशचंद्र टंडन, 1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 157-158
15. चेक-अप, डॉ० रामप्रकाश सक्सेना, 1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 141
16. अथ श्री लाइनमैन कथा, जितेंद्र 'जीतू', 1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 115-116

17. मिसेस पंजवानी के यहाँ, रत्ना वर्मा, 1992 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 144
18. अगली शिक्षानीति का पिछला कदम, बालेंदुशेखर तिवारी, 1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 143
19. साहब का आदमी, गजेंद्र तिवारी, 1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 86
20. खाली हाथ मत जाइए हूजूर, ईश्वर शर्मा, 1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 101-102
21. हमें चाहिए साप्ताहिक शोकसभा, हरि जोशी, 1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 170
22. कल्याण सिंह खुश हैं, लतीफ घोंघी (1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 153

□ मन् 108, गली नं० 2,
अंबेडकर नगर
ज्वालापुर (हरिद्वार)

बीसवीं शती के अंतिम दशक की प्रमुख हिंदी-कहानियों में राजनेताओं का चरित्र एवं उनकी कार्यप्रणाली पर व्यंग्य डॉ० रेनु सिंह

व्यंग्य का अर्थ—

व्यंग्य शब्द वि+अ ज्ज+ण्यत् के योग से बना है, जिसका अर्थ है—व्यंजनाशक्ति द्वारा ध्वनित, परोक्ष संकेत द्वारा सूचित।¹

राजनेताओं का चरित्र एवं अनैतिकता पर व्यंग्य

ऐसे व्यंग्यों के अंतर्गत स्वयं को गरीबों का मसीहा कहकर उनका पोषण करनेवाले चरित्रहीन, रिश्वत खोर, छल-कपट, अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार फैलानेवाले और सरकारी खर्च में से निजी स्वार्थों की पूर्ति करनेवाले भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की कूटनीतिक चालों को देखा जा सकता है। जो कि इस प्रकार हैं—

ईश्वर शर्मा की कहानी 'मौत की राजनीति'

विपक्ष के नेता के चरित्र का उल्लेख करते हुए एक कार्यकर्ता विपक्षी पार्टी के नेता को बताता है कि किसी एक वर्ष की मृत्यु भूख से हो गयी है। यह सुनकर वह कार्यकर्ता को निर्देश देते हुए बोले लाश को अभी उठने मत देना...पहले हमारी आम सभा होगी, फिर लाश उठेगी। कार्यकर्ता ने ज्ञान बघारते हुए कहा, 'लेकिन इतनी देर में लाश अकड़ जाएगी। 'तो तुम्हें क्या तकलीफ हो रही है...कौन है उसकी लाश के पीछे रोने वाला? विपक्ष उसके बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देगा। भूख से हुई मौत सत्ता-पार्टी पर कलंक का टीका है.....हम इसकी कालिख सत्ता के चेहरे पर पोत कर रहेंगे।²

घनश्याम अग्रवाल की कहानी 'एकलव्य का अँगूठा'

एक नेता देश में समाजवाद लाने के लिए मतदाताओं की वोट प्राप्त करके राजमहल पहुँच जाता है और वहाँ पहुँचकर एकलव्य को द्रोणाचार्य का अँगूठा लाने को कहता है ताकि एकलव्य को इंसफ दिला सके, किंतु वह राजमहल पहुँचने पर देखते हैं कि द्रोणाचार्य के एक हाथ में इंद्र के व्यक्तिगत कोटे वाला सोमरस तथा दूसरे हाथ में एक कीमती कलश है तभी वह एकलव्य की तरफ देखता है तो नेता को उसके दोनों हाथ खाली दिखाई देते हैं। इसलिए वह एकलव्य का ही अँगूठा काट लेता है। यह सब देखकर द्रोणाचार्य एक बड़ा सा कागज ले आते हैं, कागज पर लिखा था। हमने समाजवाद की और पहला कदम बढ़ा लिया है। वाक्य के नीचे लिखा था—हस्ताक्षर और उसके नीचे एकलव्य। एकलव्य पढ़ा-लिखा नहीं था। वह हर युग में

अँगूठा ही बहादुर रहा। इसलिए नेता जी ने फ़र्श पर पड़े एकलव्य के अँगूठे को उठाया, स्याही में डुबोया और हस्ताक्षर के नीचे, उस जगह पर लगा दिया जहाँ 'एकलव्य' लिखा था।³

हरि जोशी की कहानी 'हमने हाथ ऊँचे कर दिये थे'

लेखक ने छल-प्रपंच करने वाले सांसद पर व्यंग्य किया है सांसद महोदय ने पाँच वर्ष बीत जाने पर भी अपने क्षेत्र में कोई भी प्रगतिशील कार्य नहीं किया। तब उनसे मतदाताओं ने अपने क्षेत्र के भविष्य के बारे में पूछा, उन्होंने बताया कि उन्होंने जो कुछ कहा था कर दिखाया है। यह सुनकर मतदाताओं ने कहा, लेकिन इस क्षेत्र की कोई तरक्की नहीं हुई है। सांसद महोदय मतदाताओं को समाचार-पत्र में अपनी तस्वीर दिखाते हुए बोले, 'स्मरण करें, उस विशाल सभा का दृश्य। पहले हमारे नेताओं ने आपसे आग्रह किया था कि आप वोट मुझे ही दें। आप सभी ने उत्साहपूर्वक तालियाँ बजाई थी और भाषण देने के बाद श्रीखलाब खड़े होकर हमने हाथ ऊँचे नहीं किए थे। क्या मतलब होता है सभी का एक साथ हाथ ऊँचे करने का? नेता जी की दबंगता के सामने मतदाता मिमियाने लगा आपने हाथ तो ऊँचे किए थे, किंतु हम तो यह समझे थे कि आप एकजुट होकर हमारे हित में लड़ाई लड़ेंगे। आप तो हाथ ऊँचे करने का अर्थ कुछ और ही निकाल रहे हैं? हाथ ऊँचे करने का एक ही मतलब होता है, हमारे भरोसे मत रहना। हमने सभी के सामने इस लिये हाथ ऊँचे कर दिए थे कि वोट देने, तक आपका हम पर अधिकार है, उसके बाद हमारे हाथ उठे हुए ही समझे और यदि किसी मतदाता ने ऊँची आवाज में हमसे कुछ कह दिया तो सचमुच में हाथ भी उठा देंगे, सार्वजनिक संकेतो को तो समझा करें। नेता जी बोले।⁴

सूर्यबाला की कहानी 'यह देश और सोनिया गाँधी'

आज के नेताओं की सबसे बड़ी जरूरत सोनिया गाँधी से मिलने जाने का उल्लेख करते हुए एक नेता पर व्यंग्य किया है। वह लेखिका के पूछने पर बताते हैं कि वह सोनिया गाँधी से मिलने ही जा रहा था कि एक मतदाता बीचोबीच रास्ता काट गया। उसने मुझे अपना अमूल्य वोट दिया था। देखते ही पहचान गया। हैरत और गुस्से से भरकर बोला—हमने तुम्हें अपना वोट देकर देश और सरकार का काम करने के लिए भेजा था या सोनिया जी से मिलने के लिए? मैंने उसे बहुत समझाया कि देश का काम ही तो करने जा रहा हूँ। अपने देश का सबसे महत्वपूर्ण काम आज सोनिया गाँधी से मिलना ही तो है। बिना उनसे मिले सरकार कैसे चलाई जा सकती है? उसने आँखे तरेरकर मुझसे पूछा—'देश और सरकार का मतलब जानते हो? मैंने कहा—हाँ, देश अर्थात् गद्दी और सरकार अर्थात् सत्ता-ताक़त। 'उसने क्षोभ से भरकर कहा—नहीं, देश अर्थात् जनता और सरकार अर्थात् जनता की देख-रेख करनेवाली, उसका दुःख-सुख समझने वाली।'⁵

महेश सांख्यधर की कहानी 'एक आवेदन पत्र टिकट के लिए'

भीषण राव नामक व्यक्ति अपनी आयु 20 से 25 वर्ष बढ़वा लेता है और राजनीतिक पार्टी से टिकट प्राप्ति के लिए आवेदन पत्र में अपनी योग्यताएँ लिखता है। उन योग्यताओं में राजनीतिक भ्रष्टाचार का पौधा लहलहाता हुआ प्रत्यक्ष रूप में नज़र आता है। इस राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता पर लेखक ने व्यंग्य किया है। वह व्यक्ति अपने आवेदन पत्र में लिखता है। जब मैं पाँच वर्ष का था तो जाली मतदान करते रोका गया, परंतु मत डालकर भाग गया था, पकड़ा नहीं गया। दस वर्ष की आयु में मैंने चार बूथों पर कब्ज़ा किया। दस स्थानों पर गोली

चलाई, बारह स्थानों पर आग लगाई, सैकड़ों जगह मारपीट की। एफ०आई०आर० की प्रमाणित प्रतियाँ संलग्न हैं। पंद्रह वर्ष की आयु में जेल से जमानत पर आकर चार सांसदों और दस विधायकों को सरेआम जिताया। इस सुकृत्य में मेरे ऊपर कम से कम दस हत्या के और बीसियों के अन्य मुकदमों में पुलिस ने लगाए परंतु अब सब समाप्त हैं।

प्रमाण पत्र देखें। गत चुनाव में भी मैंने टिकट माँगा था, परंतु मुझे इस बार के लिए आश्वासन दिया गया। इसलिये सेवा का अवसर चाहता हूँ।⁶

कस्तूरी दिनेश की कहानी 'स्वतंत्रता संग्राम सेनानी'

स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी संघ के प्रांतीय अध्यक्ष भाऊ जी पर व्यंग्य किया है, जो कि दस हजार रुपए रिश्वत लेकर झूठे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बनाते हैं। नेता भी उनके आगे पीछे घूमते हैं सेनानी बनने के लिए। लेखक उनसे कहते हैं कि ऐसा काम करना देश से गद्दारी करना है। तब भाऊ जी सफेदपोश नेताओं की पोल खोलते हुए स्वयं को गद्दार न समझते हुए कहते हैं, 'अरे चोप....। काहे की गद्दारी...ये जो कुर्सियों पर बैठे हैं सब हरीशचंद्र की औलाद हैं क्या? फिर ये लाटरी रेल इंजन, डिब्बे, बोफोर्स, लैम्प, शेर, घोटाले क्यों होते हैं? कुर्सियों पर चिपके हुए इन कर्णधारों में से छोट सकता है कितने देशभक्त हैं? अपने-अपने तरीके से खसोट रहे हैं। फिर हम ही क्या गलत कर रहे हैं? दसहजार की अदनी-सी राशि खर्च करने पर जीवन भर के लिये पेंशन दिलवाता हूँ उन्हें मैं रेल-बस यात्रा फ्री। बाल-बच्चों को इंजीनियरिंग और मेडिकल में आरक्षण। नौकरी-चाकरी में भी वरीयता। ये सब सेत-मेत में तो नहीं मिलेगा।'⁷

शिवानंद कामड़े की कहानी 'जनता'

लेखक ने जनता की तारीफ़ करते हुए एक हारे हुए नेता पर व्यंग्य किया है। लेखक नेता से कहता है—'तुम लोगों को तो ढग से खड़े होना भी नहीं आता...खड़े होकर जनता को नहीं समझ पाए तो बैठकर समझो। इत्मीनान से। आराम से सोचो। जल्दी क्या है। जनता को समझने में जल्दबाजी नहीं करना चाहिए। 'अरे! पब्लिक को तो हम खरीद लूँगा। ये साली दो कौड़ी की जनता...दारू की बाँटली, नोट की पत्ती में अपने को गिरेगी! जाएगी कहाँ! ऐसा बोलते थे वो। पर क्या हुआ। हो गए न चारों खाने चित्त...। उनको तुम जीतने के बाद कितनी बार ऐसी पटके कुछ ख्याल आता है। छोड़ो! उठो! लो टोपी पहनो। निराश मत हो। जनता तुम्हारी दुश्मन थोड़ी है। ये तो घर की बात है, छिः रोते नहीं पगले...। इस बार न सही, अगली बार...सही पर कंफर्म नहीं। काम देखकर दाम मिलेंगे... जैसी करनी, वैसी भरनी! बस एक बात याद रखना। जनता को बेवकूफ कभी मत बनाना। उसको झूठ से सख्त नफरत है...वादे करो, मत करो, पर जो कहो उसे कर दो। नदी का नाला नहीं बना सकते तो नाले को ही नदी बनाकर दिखा दो।'⁸

इस प्रकार विभिन्न कहानीकारों ने राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता को वाणी प्रदान की है।

राजनेताओं की कार्यप्रणाली पर व्यंग्य

वर्तमान समय में राजनेता राजनीति में जनता की भागीदारी आटे में नमक के समान मानते हैं और अपनी कार्यप्रणाली द्वारा समाज के विकास कार्यों को पूर्ण करने, भ्रष्टाचार, गरीबी व जनता

की परेशानियों को दूर करने का आश्वासन देते हैं, झूठे वायदे करते हैं, किंतु उन्हीं कार्यों को पूरा करते हैं, जिनमें उनका निजी स्वार्थ सिद्ध हो। अब राजनीतिक पार्टियों के नेता पक्ष-विपक्ष की छवि धूमिल करने में लगे रहते हैं प्रत्येक पहलू में मतभेद रखते हैं और एक बात में समान रहकर ग़रीबों के लिए कोई पार्टी सुधार कार्य नहीं करती। नेताओं के स्वार्थी दृष्टिकोण एवं कार्यप्रणाली की यथार्थता को निम्न उदाहरणों द्वारा उजागर किया गया है—

निश्चर खानकाही की कहानी 'यात्राओं में सर्वोत्तम पदयात्रा'

लेखक स्वार्थी राजनेताओं की पदयात्रा पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—'कोई राजनेता जब बैठे-बैठे पूर्णरूप से जड़ होने लगता है, तो निकल उठता है पद-यात्राओं पर। उसके सम्मान में जगह-जगह भीड़ जुटती है, स्वागत-द्वार बनाए जाते हैं। 'जिंदाबाद' और 'अमर रहो' के नारे लगाए जाते हैं। समाचार पत्रों में चित्र छपते हैं, विवरण छपते हैं और देखते-ही-देखते पंजों के बल चलनेवाला पदयात्री जनता-जनार्दन के सिर पर सवार हो जाता है। शव-यात्रा में मुर्दा जीवित लोगों के कंधों पर सवार होता है, जबकि पद-यात्रा में जीवित राजनेता जनता के सिर पर। इस यात्रा की विशेषता यह है कि इसका पात्र, पाँव-पाँव चलकर अपने लिए एकदम विमान यात्राओं की सुविधा जुटा लेता है। जबकि ऐसी पर यात्राओं का स्वागतकर्त्ता धरती पर धूल चाटता रह जाता है।'⁹

लतीफ़ घोंघी की कहानी 'जूते सिलवाते हुए'

लेखक अपने पुराने जूतों के मोह में अपने फैमिली जूता सुधारक से बार-बार अपने पुराने फटे जूतों की रिपेयर कराने जाते हैं, तब जूता सुधारक लेखक से कहता है कि इतनी सेवा के बाद तो विधायक भी कंपलसरी रिटायरमेंट ले लेते हैं फिर यह तो जूता है, यह सुनकर लेखक उससे कहते हैं यह कंपलसरी रिटायरमेंट नहीं है...अपने देश में नेताओं के लिए यह शब्द उपयोग में नहीं लाया जाता। चाहे पूरा देश रिटायर हो जाए, अपने नेता कभी रिटायर नहीं होते खाँसते-खाँसते भी अपनी राजनीति चलाते रहते हैं।'¹⁰

अंतर्दामी प्रधान की कहानी 'समस्यापुर का दुखीदास'

समस्यापुर नामक गाँव का एक व्यक्ति दुखीदास लेखक से अपनी समस्या बताते हुए कहता है कि वह बहुत ग़रीब व्यक्ति है और उसे सरकार पर भरोसा नहीं है क्योंकि सरकार जिस भी समस्या को हल करने लगती है वह समस्या पहले से दुगनी बढ़ जाती है। 'सोने की चिड़िया मिट्टी का ढेर बनती जा रही है जिसमें ग़रीबी के दीमक, बेकारी के बिच्छू, भ्रष्टाचार के अजगर पनप रहे हैं। देश रसातल को जा रहा है।'¹¹

नरेंद्र कोहली की कहानी 'लाल आँखें'

पक्ष की पार्टी के एक कार्यकर्त्ता भोलाराम की आँखे प्याज महँगे होने के कारण लाल हैं। वह लाल आँखों से सरकार को घूरना चाहता है। तभी वहाँ विपक्ष की पार्टी का कार्यकर्त्ता रामलुभाया आ जाता है। उसकी भी आँखें लाल होती हैं। लेखक उससे पूछता है कि तुम्हारी आँखें क्यों लाल हैं? रामलुभाया घूरकर भोलाराम को देखता है और कहता है इनकी पार्टी की करनी को रो रहा हूँ। इन्होंने दुनिया-भर में शोर मचा रखा है कि प्याज महँगे होने के कारण हमारी पार्टी

त्यागपत्र दे। बाढ़ आने के कारण प्याज की फसल नष्ट हो गई। तो सरकार इसमें क्या कर सकती है, यह तो भगवान की इच्छा है। भोलाराम! तुम जनता को हमारे विरुद्ध मत भड़काओ! जहाँ तुम्हारी पार्टी की सरकार है, वहाँ भी प्राकृतिक आपदाएँ आ सकती हैं तुम्हें इस प्रकार हमारी पार्टी पर आई विपत्ति का लाभ नहीं उठाना चाहिए।

यह सुनकर भोलाराम ने रामलुभाया से कहा, 'प्राकृतिक विपदाएँ तो आती ही रहती हैं। इसका अर्थ यह थोड़ी है, कि विरोधी दलों की आलोचना बंद कर दी जाए। शासक में इतनी बुद्धि होनी चाहिए की प्राकृतिक आपदा का उपयोग भी अपने लाभ के लिए करें।'¹²

अश्वनीकुमार दुबे की कहानी 'रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ'

भैया जी की पार्टी पर सूखे के कारण खतरा आ पड़ा। कार्यकर्ताओं द्वारा भैया जी को रिपोर्ट की गई कि उनकी कुर्सी पर खतरा मंडरा रहा है इसलिए वह शीघ्र ही सूखे प्रभावित क्षेत्र का दौरा करने हवाई जहाज से आएँ। उनके आगमन पर 'विपक्षियों ने काले झंडे दिखाए। पार्टी वालों ने स्वागत किया। भैया जी द्वारा सूखे का मुआयना किया गया। उन्होंने एक नंगे बच्चे को गोद में उठाकर फोटो खिंचवाई। कुछ बूढ़े पुराने लोगों से उन्होंने बातचीत भी की। वे गाँव की गलियों में घूमे। अफसरों से बतियाए। खेत की मेड़ पर बैठकर उन्होंने सूखे के लिए चिंता व्यक्त की। राहत कार्यों का जायजा लिया। एक आदिवासी के हाथ से लेकर जंगली फल चखा। इस प्रकार 'सूखा-दर्शन' के पश्चात एक भव्य सभा आयोजित की गई। दूर-दूर से लोगों को ट्रकों में लाया गया था। उन्होंने जिंदाबाद, अमर रहे टाइप के नारे लगाए। फिर भैया जी ने भाषण दिया—'मेरी प्यारी जनता! हम सूखे से लड़ने का पूरा प्रयास कर रहे हैं। आप गुमराह न हो। यह प्राकृतिक विपदा है, जिससे हमें मिल-जुलकर निपटाना है। आपका विश्वास और हमारी योजनाएँ ही वह हथियार हैं, जिनसे हम इस भयंकर सूखे से निपट सकते हैं। हमें दुःख है कि हमारे विपक्षी भाई इस सूखे से राजनीति कर रहे हैं। सूखे को मुद्दा बनाकर लोग तरह-तरह की बातें कर रहे हैं। वे सूखे से राजनीतिक लाभ उठाना चाहते हैं। हम ऐसा नहीं होने देंगे। चाहे सूखा पड़े या बाढ़ आए। लोग भुखमरी से मरें या महामारी से। परंतु सरकार भंग नहीं होगी। (तालियाँ) सरकार अपना काम करती है। नदियाँ अपना काम। सूरज अपना काम। अब सूखा पड़ गया तो क्या सरकार ने पड़वा दिया? व्यर्थ ही लोग सरकार को भंग करने की माँग करते हैं।'¹³

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानी 'राजनीति में अजनतावाद'

अजनतावादी स्वयंसेवी पार्टी के उम्मीदवार होशियारासिंह पर व्यंग्य किया गया है, जो कुछ युवकों के पूछने पर बताते हैं कि 'हमने निजीकरण के इस युग में राजनीतिक क्रियाओं का भी निजीकरण कर लिया है। खुद खड़े हुए हैं, खुद लड़ेंगे, खुद जीतेंगे, इसमें जनता की भागीदारी बस इतनी होगी, जितनी आटे में नमक, जितनी उड़द के दाने में सफेदी। युवकों ने खीजकर तालियाँ बजाई, 'जब जनता की आवश्यकता आपको नहीं है या है तो नाममात्र को, तो फिर आपकी रिकशा वोट क्यों माँगती फिर रही है मतदाताओं से?' 'रिक्शे में कोई आदमी देखा है हमारा?' 'सवाल किया लंबे-तगड़े होशियारासिंह ने। जवाब आया 'नहीं तो फिर?' बोले होशियारासिंह वह यंत्र है टेप रिकार्डर, मात्र एक मशीन। आप ठीक कहते हैं होशियारासिंह जी। 'एक नटखट नौजवान बोला, 'यह यंत्र-तंत्र का युग है, गणतंत्र का नहीं।'¹⁴

चेतन आर्य की कहानी 'दिल है कि मानता नहीं'

लेखक के घरवाले लेखक को राजनीति में प्रवेश करने की सलाह देते हैं ताकि मरने के बाद उनकी आत्मा को शांति मिल सके। एक हारे हुए प्रत्याशी लेखक को राजनीति की रीति- नीति की जानकारी देते हुए आज के राजनेताओं के क्रियाकलापों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, कि राजनीति गंदी नहीं है। वह तो एक पवित्र चीज़ है। स्वार्थी लोगों ने अपने गंदे कर्म और चरित्र को धो-धोकर उसे गंदला कर डाला है। लोग सही राजनीति करें तो सब-कुछ बदल सकता है। एक नया जहाँ बन सकता है। लेकिन खुदगर्ज और लोभी इसकी आड़ में आतंकवाद, अराजकता, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, भाई-भतीजावाद और सत्ता-लोलुपता को पनाह देकर अपनी रोटी सेंक रहे हैं।¹⁵

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राजनीतिक क्षेत्र अब नैतिकता तथा पवित्रता द्वारा जनसेवा करने का स्थान नहीं, अपितु खद्दरधारियों की पद-लोलुपता, घोटालों, वोटों की राजनीति, दलबंदी, जमाखोरी तथा अनेक प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति और रोज़गार प्रदान करने का व्यावसायिक केंद्र बन गया है। राजनीतिक परिवेश का यह सत्य बहुत कड़वा और पीड़ित कर देनेवाला है। ऐसी स्थिति में व्यंग्यकार इस दोषपूर्ण व्यवस्था का विरोध कर दोहरे व्यक्तित्व वाले नेताओं की वास्तविकता का रहस्योद्घाटन करना अपना कर्तव्य समझता है। वह एक सच्चे नायक की भाँति सत्ता, शक्ति, व्यापक हिंसा, तानाशाही, कुर्सी की उठापटक, गुंडागर्दी, झूठी शान, आपाधापी, छल-प्रपंच तथा कूटनीतिक चालों पर व्यंग्य द्वारा अचूक प्रहार करता है।

संदर्भ

1. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आपटे (मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन दिल्ली, सं० 1966) पृ० 983
2. मौत की राजनीति, ईश्वर शर्मा (पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 20-21
3. एकलव्य का अँगूठा, घनश्याम अग्रवाल (पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 36
4. हमने हाथ ऊँचे कर दिए थे, हरि जोशी (1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 173
5. यह देश और सोनिया गांधी, सूर्यबाला, (1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 169
6. एक आवेदन पत्र : टिकट के लिए, महेश सांख्यधर (1991 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 135
7. स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी, कस्तूरी दिनेश (1993 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 105-106
8. जनता, शिवानंद कामडे (1994 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 157
9. यात्राओं में सर्वोत्तम पदयात्रा, निशतर खानकाही (1991 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 127
10. जूते सिलवाते हुए, लतीफ़ घोषी (1992 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 157
11. समस्यापुर का दुखीदास, अंतर्दामी प्रधान (1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 157

अग्रवाल) पृ० 74

12. लाल आँखे, नरेंद्र कोहली (1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ०118
13. रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ, अश्विनीकुमार दुबे (1993 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 97-98
14. राजनीति में अजंतावाद, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 111
15. दिल है कि मानता नहीं, चेतन आर्य (1992 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ, सं० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल) पृ० 124-125

□ म०नं० 108, गली नं० 2
अंबेडकर नगर
ज्वालापुर (हरिद्वार)

‘इतिहास की आवाज़’ बनाम आज की सच्ची तस्वीर

डॉ० स्मृति शुक्ल

डॉ० राजेंद्र मिश्र हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार, प्रखर चिंतक समाज की नब्ज को बड़ी बारीकी से पकड़ने वाले साहित्यकार रूपी चिकित्सक तत्त्वान्वेषी, भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक कुशल संपादक हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, डायरी और समालोचना सहित गद्य की विभिन्न विधाओं पर आपने अपनी कुशल लेखकीय क्षमता की मुहर लगाई है। ‘युयुत्सु’ जैसी लंबी कविता में आपने महाभारत के पात्र युयुत्सु के माध्यम से भारत की समसामयिक समस्याओं को प्रभावी रूप से अभिव्यक्त किया है।

इतिहास की आवाज़ मिश्रजी का चौथा सशक्त उपन्यास है। यह उपन्यास एक व्यापक केनवास पर रचा गया यथार्थवादी उपन्यास है। आजादी के पश्चात से आज तक के भारत के राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक और ऐतिहासिक सरोकारों से जुड़ा यह उपन्यास जीवन का महाभारत है। यह उपन्यास आम आदमी के दुख-दर्द से सीधा रिश्ता बनाते हुए अवसरवादी राजनीति के क्रूर चेहरे को बेनकाब करता है।

इतिहास की आवाज़ केवल रोचक वृत्तान्त नहीं है, वरन् ऊर्जा का अजस्र स्रोत या चेतना का ऐसा बीज है, जो पाठक को वैचारिक ऊर्जा से भर देता है। उसे सोचने के लिए बाध्य कर देता है कि यह रोज़ी-रोटी कमाकर पेट भर लेने या सुख सुविधाएँ जुटाकर आरामतलब जिंदगी जी लेना एक नागरिक के रूप में हमारा कर्तव्य नहीं है। देश और समाज के प्रति भी हमारा कर्तव्य है।

यह उपन्यास एक बौद्धिक उपन्यास है। इसको पढ़ते हुए पाठक को मानसिक श्रम करना पड़ता है, लेकिन एक बार पाठक इस उपन्यास को प्रारंभ करता है तो वह इस उपन्यास की समसामयिक घटनाओं के अरण्य में गहरे पैठता जाता है। यह उपन्यास एक ऐसे स्केनकर की भाँति है जिसमें देश में फैले हुए राजनीतिक भ्रष्टाचार की एक-एक शिरा स्पष्ट नजर आती है। देश की जनता जब इतिहास की आवाज़ सुनेगी, तब इस देश के स्वर्णिम अतीत से आधुनिक भारत के भविष्य का निर्माण होगा तभी हम सच्चे अर्थों में स्वतंत्र होंगे। उपन्यास के नायक विक्रान्त और शैलजा का यह अंतिम संवाद इस उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य है। यह उपन्यास इतिहास से प्रारंभ होकर 21वीं शताब्दी की प्रमुख राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का बयान बड़ी ईमानदारी से करता है। उपन्यास पढ़ने के बाद पाठक सोचने को बाध्य होता है कि राजनीति किस दिशा में जा रही है। कुछ समुदायों का इस्तेमाल नेताओं द्वारा वोटबैंक के रूप में किस तरह किया जा रहा है। कश्मीर की समस्या का समाधान क्या है? यह सारी बातें इस उपन्यास के पाठक के मानस को उद्देलित करती हैं। ‘इतिहास की आवाज़’ नामक इस उपन्यास का सृजन कुछ

ऐतिहासिक कारणों और वर्तमान समस्याओं के योग से हुआ है। राजेंद्र मिश्र ने विशाल सामाजिक तथा राष्ट्रीय घटनाक्रमों के संयोजन से इस महत्वपूर्ण उपन्यास के कथानक का ताना-बाना बुना है। वस्तुतः यह उपन्यास अपनी पूरी कला और इंटेसिटी के साथ समूचे भारतीय परिवेश के आज को बड़े पैनेपन से अभिव्यक्त करता है। यह उपन्यास अपनी साहित्यिक संरचना के साथ सामाजिक और राजनीतिक संरचना भी है। यद्यपि उपन्यासकार ने प्रारंभ में स्पष्ट कर दिया है कि इस उपन्यास में भारतीय राजनीति के तीन विवादास्पद मुद्दों को केंद्र में रखा गया है, किंतु यह राजनीतिक उपन्यास नहीं है। भारत विभाजन की त्रासदी और उसके बाद की स्थितियों के अनुसार इतिहास को भी संदर्भ में रखा गया है, किंतु यह ऐतिहासिक उपन्यास भी नहीं है। इस उपन्यास में विवादास्पद मुद्दों के माध्यम से भारतीय राजनीति का अवसरवादी चेहरा सामने आता है। फिर भी इतिहास की आवाज़ को उपन्यास की भाँति ही पढ़ा जाना चाहिए। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास एक बुद्धिजीवी, संवेदनशील और राष्ट्र हितचिंतक रचनाकार की कलम से जन्मा है। अतीत और वर्तमान के बहुस्तरीय आयामों के साथ बौद्धिक चिंतन और देश में घटित आज के समस्त क्रियाकलापों को, रोजमर्रा के जीवन और राजनीतिक घटनाक्रम की उथल-पुथल में की अवस्था में युवा-वर्ग के आंतरिक अंतर्नाद को, उसके प्रेम और भावनात्मक उथल-पुथल को भी चित्रित करता है और यही इस उपन्यास की खूबी है। 'इतिहास की आवाज़' उपन्यास इस अर्थ में सार्थक है कि वह विक्रांत और शैलजा के मिलने बिछड़ने और फिर से मिलने की कहानी सुनाने तक सीमित नहीं है, वरन यह उपन्यास हमारे आसपास के घटनाक्रम के साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को बड़ी बेबाकी से उठाता है। यह उपन्यास हमें समय का आलोचक बनाता है और अपनी स्वपोषक और आत्मकेंद्रित मानसिकता या आंतरिक दबावों के कारण जिस यथार्थ से आज दूर होते चले आ रहे हैं उसके नजदीक ले जाता है। इस उपन्यास के पात्र विक्रांत, शैल विप्लव, सफीना, विदेशी पात्र जेन और विल आज के शिक्षित युवा हैं, जो अपने व्यक्तिगत जीवन के साथ समाज और राष्ट्र में हो रही अलगाववादी घटनाओं, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और अन्य मुद्दों पर अपनी व्यक्तिगत सोच रखते हैं। इन पात्रों के माध्यम से मिश्र जी ने देश की हालत को पूरी सच्चाई से पाठकों के समक्ष रख दिया है। विक्रांत, शैल, विप्लव, सफीना और एक विदेशी युवा विल और जेन की ज़िदगी के इर्द-गिर्द घूमती इस उपन्यास की कथा एक व्यापक सामाजिक, राजनीतिक फलक को अपने में समेटे हुई है। देश की लगभग सभी समस्याओं जैसे—विभाजन की पीड़ा (1974 के बाद की), आजादी के बाद आमजन के मोहभंग की स्थिति, राजनीतिक भ्रष्टाचार, कश्मीर की समस्या, कश्मीर के पंडितों की समस्या, कश्मीर घाटी में आंतकवाद, रेडिकल इस्लाम, शहीदों के बलिदान को विस्मृत कर उनकी कब्र पर बनते महल, भारत में अलग-अलग मजहबों के लिए अलग-अलग कानून, कश्मीर में धारा 370 का आज तक जारी रहना, अतीतगाथा, नेताओं का महिमामंडन उनकी मूर्ति स्थापना, मीडिया पर पूँजी का वर्चस्व, पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की दोयम दर्जे की स्थिति, पाकिस्तान में हिंदुओं के साथ भेदभाव, तिब्बत की समस्या, अलगाववाद लोकतंत्र बनाम वोटतंत्र की समस्या आदि विभिन्न समसामयिक समस्याओं पर गहराई से अंकित करते हुए इंसानी जज़्बातों, प्रेम की कोमल संवेदनाओं और आपसी सौहार्द को भी बखूबी से चित्रित करता है।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए कभी-कभी पाठक को लगता है कि वह किसी अख़बार

की रिपोर्ट पढ़ रहा है, लेकिन तत्काल ही वह घटना उपन्यास के पात्रों की अंतरात्मा की आवाज़ बन जाती है और पाठक इस उपन्यास में डूब जाता है।

इस उपन्यास की कथावस्तु सुगठित है। पूरे उपन्यास में विचार तत्त्व की प्रमुखता है। उपन्यास का कथानक दो देशों की संस्कृति को अपने में समेटे हुए है। भारत की युवा-पीढ़ी के का प्रतिनिधित्व करने वाला विक्रान्त ग्लोबल मीडिया से जुड़ा है। इसका अपना कोई चैनल नहीं है। विश्वभर के युवाओं की समस्याओं पर यह नेटवर्क खड़ा किया गया है। हर युवा अपनी आशाएँ, आकांक्षाएँ, संभावनाएँ, और प्रेम के सुनहरे पलों को इस नेटवर्क के माध्यम से आपस में डिस्कस करता है। विक्रान्त भारत के नौजवानों का मुखिया है, वह एक बहुत बड़ी ताकत है। जिसकी बात सरकार को भी सुननी पड़ती है। विक्रान्त के इस परिचय के बाद मिश्र जी लिखते हैं कि आज विक्रान्त इतिहास के बहुत पीछे चला गया है। वह सोचता है कि हमारी आजादी की लड़ाई में जनता ही नेता होती, तो इस देश का पार्टीशन न होता। देश विभाजन की त्रासदी के साथ उपन्यासकार आजादी के इतने सालों बाद भी आमजन की हालत न सुधरने में भ्रष्टाचार को सबसे बड़ी बीमारी के रूप में देखता है। विक्रान्त कहता है आजादी के इतने सालों के बाद जनता को क्या मिला है? नेताओं के घर भर गए हैं। हमारा देश करप्शन का अड्डा हो गया है। प्रत्येक नेता अरबपति है। जब चुनाव आते हैं, तब नेताओं को अपनी संपत्ति का ब्योरा देना पड़ता है। वे अपनी संपत्ति जाहिर भी करते हैं, लेकिन यह नहीं बताते कि इतना धन से आया कहाँ से? लेकिन अब जनता जागरूक हो गई है। जो काम सरकारों को करना था, वे अदालतें कर रही हैं।

मिश्र जी ने 'इतिहास की आवाज़' के माध्यम से न केवल भारत बल्कि अरब देश पाकिस्तान, तिब्बत, बंगलादेश, अमेरिका आदि अन्य अनेक देशों की बात की है। इस उपन्यास की नायिका शैलजा विक्रान्त को बताती है कि पाक से कुछ युवा लड़कियाँ इस देश में स्थाय की तरह काम कर रही हैं वे कश्मीर की हैं, पर वे पाक एजेंट बन गई हैं। इस तरह हमारे ही लोगों से ही साजिश का काम कराया जा रहा है। कुछ मुस्लिम युवा जो नेशनलिस्ट हैं वे विक्रान्त और शैलजा से जुड़ गए हैं। उनका कहना है कि कश्मीर पाक में मिलकर क्या करेगा, पाकिस्तान तो खुद अपने ही खड़े किए आतंकवाद से जूझ रहा है? कश्मीर समस्या पर इतिहास की आवाज़ के पूर्व भी कुछ उपन्यास आए हैं। संजना कौल का उपन्यास 'पाषाणयुग' हमारे समाज में पैठी सांप्रदायिक और राजनीतिक हिंसा बड़ी मार्मिक सच्चाई के साथ दर्ज है। 'पाषाणयुग के तमाम जीते-जागते चरित्र ही नहीं, उसकी कथात्मक इस तरह वास्तविक है कि इनमें कश्मीरी पंडितों एवं कश्मीरी मुसलमानों के दर्द अलग-अलग नहीं रह जाते, क्योंकि आतंकवाद कुल मिलाकर कश्मीर की साझा संस्कृति, विरासत और परंपराओं को क्षत-विक्षत करने की कोशिश है। संजना कौल के पाषाणयुग की भाँति इतिहास की आवाज़ में उन लोगों का दर्द कश्मीर की हरी-भरी वादियों की बर्बादी नहीं चाहते और हिंदुओं की मदद करना चाहते हैं, पर लाचार हैं। इतिहास की आवाज़ उपन्यास हमारे देश की बड़ी-बड़ी समस्याओं को बड़ी गहराई और मानवीय संवेदनाओं के साथ उठाता है, वह सार्थक हस्तक्षेप करता है और युवापीढ़ी के माध्यम से इन समस्याओं के हल भी सुझाता है।

राजेंद्र मिश्र की समसामयिक परिदृश्य पर गहरी पकड़ है। वे देश में हो रहे परिवर्तनों और राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों की बड़ी बारीकी से पड़ताल करते हैं। स्त्रियों की

समस्याओं जैसे बहुपत्नित्व (पोलीगेमी), तलाक, अशिक्षा, बुर्का आदि को इस उपन्यास के माध्यम से उठाया गया है। वे लिखते हैं—‘इस्लाम तो मजहब है, अल्लाह मर्दानों और औरतों में भेद नहीं करता। भारत के मुस्लिम एक सिविल कानून का विरोध करते हैं, पर जब महिला आरक्षण की बात आती है, तो अपनी औरतों के लिए भी पॉलिटिकल रिजर्वेशन चाहते हैं।’

हुरियत के लोग खुलेआम भारत में आकर कश्मीर की आजादी की माँगकर रहे हैं और इस देश की सरकार चुप है। सरकार घोटालों में फँसी है। सरकार और विरोधी दलों में दंगल मचा हुआ है। पूरा देश बेहद भटका हुआ और अस्त-व्यस्त लगता है। इस तरह इस देश की तस्वीर बेहद धुँधली है। हिंदुओं को सांप्रदायिक कहना एक रिवाज बन गया है। हर देश सबसे पहले अपने राष्ट्र का ध्यान रखता है। हम तो लोगों को ही बाँटने लगे हैं। यहाँ का मीडिया किसी-न-किसी पार्टी के राजनीतिक पैकेज से काम करता है। अब तो शहीदों की कब्र पर भी महल खड़े किए जा रहे हैं। जो जमीनें शहीदों के परिवारों के लिए हैं, वे नेताओं और नौकरशाहों में बाँटी जा रही हैं। हमारा देश वर्तमान की बजाय अतीत में उलझा है। राजेंद्र मिश्र देश की गंभीर समस्याओं के साथ युवा पात्रों के मानस का भी तलस्पर्शी चित्रण करते हैं। युवापीढ़ी देश की समस्याओं के साथ अपने जीवन के बारे में सपने देखती है। उपन्यास के नायक विक्रांत की इसी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए मिश्रजी लिखते हैं—‘विक्रांत का मन शैलजा के प्रति झुकने लगा। वह अलग से ही जिदगी के ताने-बाने बुनने की सोच रहा था।

युवा-वर्ग अपने देश और संस्कृति के विषय में भी सोचता है। इस उपन्यास की पात्र सफीना जो कि मुस्लिम और विप्लव ठाकुर से विवाह करना चाहती है। विप्लव उसे समझाता है कि तुम्हें मजहब बदलने की जरूरत नहीं है। लेकिन सफीना हिंदू रीति-रिवाज से विवाह करना चाहती है। वह कहती है—‘शादी के बाद केवल प्यार ही नहीं होता और भी बहुत कुछ होता है। संस्कार होते हैं, संस्कृति होती है, रीति-रिवाज होते हैं। एक ही घर में सबकुछ अलग-अलग हो, यह मैं ठीक नहीं मानती। नेचर ने जो कुछ बनाया है, इंसान को उसे मानना चाहिए। इसकी स्वतंत्रता का अर्थ अपने रीति-रिवाज और संस्कृति छोड़ना नहीं है। जो कुछ तुम्हारा है, मैं उस सबको स्वीकार करना चाहती हूँ। मगर इसे गलत न लो तो यह भी कहूँगी कि मैं आखिरी वक्त तक वही सब करना चाहती हूँ, जो मुझे तुमसे अलग न करें विलीन होना चाहती हूँ।’

सफीना के इन शब्दों में विप्लव के प्रति असीम प्रेम और भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध स्नेह झलकता है। सफीना मानती है कि स्त्री की जिदगी केवल पत्नी बनने तक सीमित नहीं है, यह माँ भी बनती है। स्त्री ही परिवार को एक नई खुशी के साथ जोड़ती है। वह कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रेम और विवाह की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। जाति और धर्म के बंधन नहीं होने चाहिए। जीवनसाथी चुनने के मसले पर घरवालों को बच्चों के फैसले का सम्मान करना चाहिए।

सफीना और विप्लव का विवाह इस उपन्यास की महत्वपूर्ण घटना है। विवाह के बाद बच्चे का जन्म और ‘समन्वय’ के रूप में उसका नामकरण प्रतीकात्मक है। दरअसल, समन्वय दो भिन्न धर्मों और संस्कृतियों के मिलन का प्रतीक है। आतंकवादियों द्वारा सफीना (सना) और विप्लव की हत्या, विल और शैलजा का तलाक, शैलजा का विक्रांत से पुनर्विवाह, विप्लव और सना के पुत्र समन्वय के पालन-पोषण की जिम्मेदारी शैलजा द्वारा सहर्ष स्वीकार करना, बड़ी उम्र

में शैलजा का गर्भवती होना और कन्या को जन्म देने का निर्णय लेना, यह सारी घटनाएँ उपन्यास को पूर्णता प्रदान करती हैं। वस्तुतः यह उपन्यास जिन समस्याओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है, मिश्र जी उन समस्याओं को पाठक के सामने बखूबी प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। विक्रांत जैसे युवा मिलकर देश की तस्वीर बदलने की सामर्थ्य रखते हैं। विक्रांत ने अपनी पुस्तक 'इंडिया आफ्टर पार्टीशन : दि वाइस ऑफ हिस्ट्री' के माध्यम से आजाद भारत की यथार्थ स्थिति उजागर की है। तिब्बत की आजादी का प्रश्न, कश्मीर से धारा 370 को हटाए जाने का सुझाव, पाक की संस्था आई०एस०आई०, स्वतंत्रता के बाद भी भारत की पृथक सांस्कृतिक पहचान न बन पाना। विश्वस्तर पर भारत की भाषा हिंदी की उतनी प्रतिष्ठा न मिल पाना जिसकी वह हकदार है, यू०एन०ओ० में पाँच महाशक्तियों को वीटो पावर होने, यू०एन०ओ० जैसी संस्थाओं को किसी भी देश की समस्याओं पर जनता की राय जानने पर जोर देना, नेताओं का काला धन स्विस बैंकों में जमा होना और देश में गरीबी का प्रतिशत बढ़ते जाना, धर्म-जाति के आधार पर लोगों को विखंडित करने का प्रयास, महिलाओं की समस्याएँ आदि मुद्दों पर गहराई से विचार किया है।

'पाषाणयुग', 'जिंदा मुहावरें', 'कितने पाकिस्तान' आदि महत्वपूर्ण उपन्यासों के बाद राजेंद्र मिश्र का उपन्यास 'इतिहास की आवाज़' देश की बहुआयामी समस्याओं पर लिखा गया विशिष्ट उपन्यास है। यह उपन्यास महज एक साहित्यिक कृति नहीं है, वरन 21वीं सदी के भारत का विस्तृत कोलाज है। यह उपन्यास अपने पात्रों से जितना जुड़ा है उससे अधिक समाज और राष्ट्र से जुड़ा है। उपन्यासकार ने इतनी सारी राष्ट्रीय समस्याओं और मुद्दों को तथा देश में घटित क्रियाकलापों को कथावस्तु में इतनी सहजता से पिरोया है कि कहीं भी असहजता या कृत्रिमता का बोध नहीं होता। उपन्यास की कथावस्तु समकालीन राष्ट्रीय चुनौतियों को पाठक के सामने रखती है। पात्रों के आपसी संवाद कहीं-कहीं इतने लंबे हो जाते हैं कि वे व्याख्यान की भाँति लगने लगते हैं, लेकिन उपन्यासकार पुनः सधी हुई कलम से उपन्यास को वापस कथा की रोचकता से जोड़ देता है। विल और जेन, विक्रांत और शैलजा, विप्लव और सफीना इन छह पात्रों के इर्द-गिर्द घूमते इस उपन्यास का आख्यान प्रारंभ से अंत तक रोचकता और जिज्ञासा से पूर्ण है। उपन्यासकार ने प्रेम की भावुकता, तीव्रता और गहनता का भी चित्रण किया है, लेकिन इन वर्णनों को इतनी संयत भाषा में अभिव्यक्त किया है कि इन चित्रणों में अश्लीलता नहीं है। बाजारवाद के चलते आज कथाकारों का ये फैशन हो गया है कि वे अपनी रचनाओं में अतिशय खुले प्रणय दृश्यों की भरमार कर देते हैं। शाब्दिक गरिमा का भी ध्यान नहीं रखते। मिश्र जी ने इस उपन्यास की रचना-प्रक्रिया के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि उपन्यास केवल एक भावदशा या मनोदशा को अभिव्यक्त नहीं करता, बल्कि उनके पीछे रिसर्च और छानबीन की संपूर्ण पृष्ठभूमि उपस्थित रहती है। यह उपन्यास आम आदमी की खामोशी तोड़ने की ताकत रखता है। इस उपन्यास की सार्थकता यही है कि यह महज कहानी सुनाने तक सीमित नहीं है, वरन हमें अपने समय का आलोचक बनना सिखाता है, सचेत करता है। व्यावहारिकता या आत्मकेंद्रिता के कारण हम जिस यथार्थ से आज परे होने जा रहे हैं, हमें उस यथार्थ के करीब लाकर हमसे प्रश्न पूछता है कि हमने राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को कितना निभाया?

इस उपन्यास की भाषा सशक्त है। आज के युवा पात्रों को केंद्र में रखकर लिखे गए इस उपन्यास की भाषा आज के शिक्षित युवावर्ग के निकट है। अँग्रेजी शब्दों के अधिव्यय से

बोझिल हिंदी का प्रयोग इस उपन्यास में है, जो पात्रों को वास्तविकता के साथ प्रस्तुत करती है। इस उपन्यास में अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग के साथ अँग्रेजी के लिटरेरी शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, जो साधारण हिंदी पाठक के पाठकीय आनंद में बाधा पहुँचाते हैं। दिसगाइज, अपारथेड, स्पाय, प्लेबिसाइट, रिजॉल्यूशन, ट्यूटानिक, ऐरोगेंसी, नाइटमेयर डिलेमा, अनवेड, फियरसाइकोसिस जैसे अँग्रेजी के शब्दों का अधिक प्रयोग संभवतः इस उपन्यास की थीम की वजह से है।

समग्रतः 'इतिहास की आवाज़' आज की आवाज़ है। इस उपन्यास में उठाए गए सभी मुद्दे गहरे सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़े हैं। राष्ट्रीय प्रक्रियाओं को अपने उपन्यास 'इतिहास की आवाज़' में प्रतिबिंबित करने में राजेंद्र मिश्र जी ने अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

संदर्भ

1. इतिहास की आवाज़, डॉ० राजेंद्र मिश्र, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उत्तर प्रदेश), पृ० 7
2. वही, पृ० 8
3. बीसवी शताब्दी के अंत में हिंदी उपन्यास, प्रकाश मनु, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 169
4. इतिहास की आवाज़, डॉ० राजेंद्र मिश्र, पृ० 41
5. वही, पृ० 50
6. वही, पृ० 210
7. समयांतर, संपादक पंकज विष्ट, जून 2012, पृ० 75

□ ए 16, पंचशील नगर
नर्मदा रोड, जबलपुर (म०प्र०)
मो० 09993416937

नरेश मेहता के उपन्यासों में नारी-चेतना

डॉ० उषादेवी

नरेश मेहता एक कवि के रूप में खासे चर्चित रहे हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्री मेहता ने कविता के अलावा नाटक, कहानी, एकांकी, निबंध एवं यात्रा विधा पर भी लिखा है, मगर उपन्यासों में उन्होंने जमकर लेखनी चलाई है। इनके कुल दस उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों में चित्रित मानवीय पीड़ा विशेषकर नारी की त्रासदी पर अभी तक कोई शोधपरक कार्य प्रकाश में नहीं आया है। 'डूबते मस्तूल', 'यह पथ बंधु था', 'उत्तरकथा', 'प्रथम फाल्गुन', 'धूमकेतु : एक श्रुति', 'दो एकांत', 'नदी यशस्वी है' आदि उपन्यासों में नारी की वेदना, प्रेमभावना, यौनशोषण और उसकी विवशता, असहाय स्थिति को उद्घाटित किया गया है।

आधुनिकयुग की नारी उच्चशिक्षा और नारी-स्वातंत्र्य के प्रभाव से स्वच्छंद जीवन की ओर अग्रसर हुई है। परंपरागत ग्राहस्थ्य एवं पातिव्रत के परिवेश से निकलकर नारी ने पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर अपने को पुरुष के समान स्वतंत्र घोषित किया है। आधुनिक नारी के व्यवहार एवं सोच दोनों में मूलभूत परिवर्तन आया है, लेकिन नारी ने संपूर्ण रूप से उस परंपरागत परिवेश का त्याग नहीं किया है। मेहता के उपन्यासों में नारी-विषयक प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है। 'डूबते मस्तूल' की रंजना नारी-भावना को ही आदर्श मानती है—'नारी आदर्श भले हीन हो, पर नारी भावना ही आदर्श है, कला है।' ¹ भारतीय समाज में आज भी नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, वह पुरुष के लिए प्रेरणा एवं आदर्श रूप है। उसके बिना घर-परिवार सब अधूरा है। 'दो एकांत' उपन्यास में वानीरा विवेक के बीच मनमुटाव होने पर ऐसी ही स्थिति का आभास मिलता है। संबंधों में निष्प्राणता-सी आ जाती है। 'घर पुरुष के कारण सप्राण नहीं होता वह तो नारी ही होती है, जिसके चारों ओर घर, घर की चीजों की चमक, घर की माया, गृहस्थी का स्वर मँडराता है। जब वही वितृष्ण हो जाए, तो उस स्थिति में पुरुष ऐसा ही दयनीय हो जाता है जैसा कि जल प्लावन का मनु हो गया था।' ² स्त्री-पुरुष दोनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की उपस्थिति या अस्तित्व निरर्थक है।

नरेश मेहता के उपन्यासों में भारतीय नारी के विविध रूप उद्घाटित होते हैं। 'यह पथ बंधु था' में बालासाहब की इकलौती पुत्री इंदु है, जो सामंतीय जीवन जीते हुए भी प्रसन्न नहीं है, इंदु का रिक्त और सूना जीवन उच्चवर्गीय नारी की दुरवस्था को प्रस्तुत करता है। इंदु, विधवा होने के पश्चात् अपना शेष जीवन धार्मिक कार्यों या काशीवास में व्यतीत करती है। इसके विपरीत साधारण मध्यवर्ग की सहिष्णु और सरल स्वभाव की सरस्वती, जीवनभर मौन रहकर कष्ट सहन करती है। सरस्वती में असीम पतिभक्ति, सहज अनुरागपूर्ण हृदय तथा समर्पण का भाव उस वर्ग की नारी के दुर्भाग्य का संकेत देता है, जिनके लिए दिन काम तो ला सकता है, दवा और विश्राम

नहीं। बीमारी से पीड़ित सरस्वती जीवन से संघर्ष करते हुए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। आज हमारे समाज में जहाँ एक ओर सरोज जैसी पतिव्रता और सहिष्णु नारियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर रंजना जैसी नारियाँ भी हैं, जो एक-दो नहीं दस-दस पुरुषों के संपर्क में आती हैं और उनसे विवाह रचाती हैं। रंजना के जीवन में जितने भी पुरुष आते हैं, वे या तो रंजना को छोड़कर चले जाते हैं या नियति उन्हें उससे छीन लेती है। ‘...नारी अन्यथा हुआ करती है। इसीलिए तुम उसे चरित्रहीन भी कह लेते हो। मैं अन्यथा हूँ इसलिए चरित्रहीन भी हूँ। चंद्रमा का कलंक और ग्रहण तुम पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, स्नान-ध्यान से दूर कर लेते हो, किंतु हमारे कलंक को धो सकना तुम्हारे पुरुषार्थ की बात नहीं। तुम मात्र देख सकते हो विजित पांडवों की भाँति कल की पूजा करती हुई नारी दूसरे दिन तुम्हें कोठों पर से निमंत्रण देती है।’¹³ समाज में आज भी नारी का शोषण जारी है, बल्कि बदली हुई परिस्थितियों में वह और भी भयंकर हो गया है। ‘डूबे मस्तूल’ की रंजना बार-बार यौन शोषण की शिकार होती है। अंत में वह कर्नल कुलकर्णी की पत्नी बन जाती है तब भी वह विवाह को कँटीले तारों की बाड़ ही कहती है, क्योंकि उसका पति कुलकर्णी उसे मात्र नारी शरीर ही समझता है। वह साफ़-साफ़ कह देता है—‘जाओ... मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता न कभी थी, न है और न रहेगी। मुझे तुम्हारे शरीर की इच्छा थी और वह मुझे मिला, मैंने उसे शराब के एक पेग से कभी अधिक नहीं समझा।’¹⁴ नारी का दुर्भाग्य ही है कि वह किसी की पुत्री होती है, तो किसी की माँ, किसी की पत्नी होती है, तो किसी की बहन। मगर रंजना जैसी औरतें भी हैं, जो अनेक बार पत्नी बनने के बाद भी पत्नी बनकर न रह सकी और चार-चार संतान पैदा करने के बाद भी माँ नहीं बन सकी। नारी की इस दुर्दशा के लिए मुख्यतः पुरुष ही जिम्मेदार है, क्योंकि पुरुष की इजाजत के बिना वह घर की दहलीज तक नहीं लाँघ सकती। वह नारी को सम्मान न देकर केवल उसे भोग्या मानता है। वह उसे काम-पूति का साधन मात्र मानता है। नारी की तो जैसे अपनी कोई भावनाएँ, इच्छाएँ हैं ही नहीं। जब पुरुष की कामुकता और वासना की हवस पूरी हो जाती है, तो वह उसे कुलटा और वेश्या तक कहने में संकोच नहीं करता। नरेश मेहता की नारी ही नहीं, बल्कि कमोबेश आज की नारी को यह सब झेलना पड़ रहा है। कहीं-कहीं रंजना जैसी नारियाँ हैं, जो विद्रोह का स्वर भी बुलंद करती हैं। ‘मुझे कुलटा, चरित्रहीन नीच समझते हो... और मैं हूँ भी चरित्रहीन...परंतु मैं अकेली ही नहीं, तुम जिस समाज में बैठे हो वह पूरा का पूरा वेश्या का समाज है, दुर्गंध दे रहा है।’¹⁵ इन तमाम विसंगतियों और बुराइयों के कारण ही आज समाज जर्जर बन चुका है। इसी कारण से संबंधों में टकराव, घुटन एवं शिथिलता-सी आ जाती है। ‘दो एकांत’ की वानीरा और विवेक के दांपत्य-जीवन में आया तनाव ऐसे ही माहौल की परिणति है। वानीरा अपने निकट आने वाले शलाका पुरुष मेजर आनंद को अपना सब कुछ दे बैठती है और इस प्रक्रिया में वह विवेक को अनजाने में ही उपेक्षित करती जाती है। ‘क्या वानीरा यह नहीं सोचती कि कोई भी पति अपनी पत्नी के इन आचरणों को कभी भी सहन नहीं करता है?’¹⁶

नरेश मेहता भारतीय संस्कृति और मूल्यों के जबरदस्त वकील हैं। वह अपनी रचनाओं में इन मूल्यों की रक्षा हेतु ऐसे पात्रों की सर्जना भी करते हैं, जो इन मूल्यों के संरक्षण के लिए अपनी जीवन तक कुर्बान कर देते हैं। नारी त्याग और बलिदान की मूर्ति है। उसकी ममता, स्नेह, सच्चरित्रता और सहिष्णुता अमूल्य होती है। आज भी ऐसी नारियाँ हैं, जो देशसेवा के लिए अपना

सर्वस्व होम कर देती हैं। 'यह पथ बंधु था' की रत्ना ऐसी ही नारी की प्रतीक है, जो हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाती है। निसंदेह ऐसी युवतियाँ प्रशंसा के योग्य हैं। आज की युवतियाँ प्रेम में धोखा खाकर आत्महत्या नहीं करतीं, बल्कि 'प्रथम फाल्गुन' की गोपा की तरह गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर देशसेवा, समाजसेवा में लग जाती हैं और अपने संकीर्ण स्वार्थों एवं स्व को भूलकर अपने-आपको विराट 'स्व' में मिला देती हैं। वह प्रेम में असफल होकर अपने फार्म को एक शिक्षा संस्था का रूप देती हैं। गोपा का प्रतिक्रियात्मक खिंचाव इतना हो जाता है कि उसका 'त्याग' राजस त्याग और उसका 'दर्प' तामस दर्प प्रतीत होता है।⁷ इसके विपरीत ऐसी नारियाँ भी हैं, जो अपनी ही जाति को उत्पीड़ित करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ती। 'उत्तरकथा' में सकुलाइन अपनी बहू को कुएँ में धक्का देती है। केवल पर्याप्त दहेज न लाने पाने कारण। त्रयंबक की दूसरी शादी के बाद दुर्गा को भी सकुलाइन दहेज न लाने पर ताने देती है। 'डूबते मस्तूल' की रंजना को उसका पागल पति और ससुर मिलकर पीटते हैं और उस पर घर से और पैसे लाने का दबाव डालते हैं। 'दहेज लोभी दहेज की खातिर दुल्हन को मारपीट, भूखा रखने के अलावा जीवनभर के लिए उसे अपाहिज बना देने से भी नहीं हिचकिचाते। 'यह पथ बंधु था' में गुणी ऐसी ही भोली-भाली बहुओं का प्रतिनिधित्व करती है, जो दहेज में कमी होने पर सास-ससुर के हाथों अपार यंत्रणा पाती है और अंत में पति द्वारा परित्यक्त या सास द्वारा जीवनभर के लिए पंगु अपाहिज बनकर नरक की आग में झुलसती रहती है।⁸ नरेश मेहता ने अपने उपन्यासों में इन्हीं पात्रों के माध्यम से नारी के विडंबनापूर्ण त्रासद जीवन को उद्घाटित किया है।

भारतीय समाज में आज पश्चिमी सभ्यता, पश्चिमी विचारधारा और पाश्चात्य जीवन दर्शन गहरे में प्रवेश कर गया है। पश्चिम में औद्योगिक क्रांति, मशीनीकरण, नगरीकरण और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण जहाँ जीवन में गति आई है, वहीं इस व्यवस्था के कारण अकेलापन, घुटन, कुंठा, हताशा, संत्रास और अजनबीपन भी आया है। भारतीय समाज में भी ये तत्व खूब रच बस गए हैं। 'दो एकांत' की वानीरा इसी अकेलेपन की शिकार है। 'शुरू-शुरू' में वानीरा रात की प्रतीक्षा या किताबें पढ़ते हुए या सितार बजाते हुए या घर को सुषमित करते हुए किया करती थी। प्रत्येक क्षण आहट लेने की चेष्टा करती। जब कोई आती आकृति उसे झुठला जाती है, तो वह लगभग रुआँसी हो जाती। उसे एक ही बात बार-बार घेरती कि क्या अब सदा-सदा के लिए ऐसा ही होना है?⁹ वानीरा अपने अकेलेपन से तंग आ चुकी है। डॉक्टर विवेक विश्वास को अपने मरीजों से ही फुर्सत नहीं है। इसलिए वह अपनी नवविवाहिता वानीरा को पूरा समय नहीं दे पाता और परिणामस्वरूप दोनों में तनाव बढ़ता ही जाता है। वह जानती है कि उसका डाक्टर पति व्यस्त और विवश है, मगर वह उसे अपने से छिना हुआ सा पाकर टूट-सी जाती है। उसे लगता है जैसे कोई समंदर उन दोनों एकांतों के बीच आ गया हो। इतना ही नहीं दोनों काम-संबंधों में भी घुटन महसूस करते हैं। विवेक दिनभर दुकान से थककर आता, लेकिन वानीरा के आलिंगन और मैथुन में रत छवियाँ देखते रहने पर सजीव लगने लगती है मगर वानीरा का नितांत अकेलापन और सूनापन उसके समक्ष अनेक सवाल खड़े कर देता है। 'कैसा एकांत, केवल प्रतीक्षा, असंग मौन का खाली-खाली वातावरण... लेकिन क्यों? किसलिए? अपने चारों ओर बढ़ती इस रिक्तता को वह किस चीज़ से क्या कहकर भरे? समुद्र को देखते रहने से? मंदिर के विशाल प्रांगणों को तथा उसके बाहरी शिखर प्राचीरों में अंकित बंध छवियों को देखते रहने

से? रथयात्रा की स्मृति से? रवींद्र के संगीत से? क्या मन की निबिड़ता वैष्णव पदों की तल्लीनता से दूर की जा सकती है?'¹⁰ उपन्यासकार नरेश मेहता लेखकों के विषय में अपनी झल्लाहट वानीरा के मुख से कहलवाते हैं। 'पता नहीं जाने किस कल्पनालोक के चरित्रों की ये बातें करते हैं। नारी के बारे में लिखेंगे तो बड़ा ही मीठा-मीठा-सा, आदि से अंत तक लिखकर पुरुष को जिज्ञासु बना देंगे कि जैसे नारी न हुई कोई रसगुल्ला है पाने खाने और खाकर अपने भीतर तक केवल मिठास ही अनुभव करे। स्त्री वही है, कभी उसे चौरंगी पर ले जाकर लेखक रोमांस करवा देगा, तो कभी उसे दार्जिलिंग की किसी बर्फीली चोटी के परिपार्श्व में खड़ा कर उसे सर्वश्रेष्ठ सुंदरी घोषित कर देगा। जैसे नारी का अपना तो स्वत्व है ही नहीं।'¹¹

नरेश मेहता के उपन्यासों में नारी की विभिन्न समस्याओं को उठाया गया है। आज के युग की माँग भी है कि नारी के प्रति बदलते दृष्टिकोण को साहित्यकार वाणी दे, क्योंकि सभ्यता के विकास के साथ-साथ नारी के चेहरे भी बदलते रहे हैं और हिंदी उपन्यासों में नारी चित्रण के चित्र बदलती हुई सामाजिक स्थिति के ही अनुरूप हैं। 'प्रेमचंदोत्तर उपन्यास बाल-विवाह, अशिक्षा, पर्दाप्रथा, दहेज, वैधव्य, वेश्यावृत्ति की समस्याएँ प्राचीन आदर्शों के आग्रह से सहज स्वाभाविक समाधान प्रस्तुत नहीं करते। प्रेमचंद के युग में नारी सहानुभूति की पात्र थी और उसे समानाधिकार प्राप्त नहीं थे। यही कारण है कि उपन्यासकारों ने पृथक परिवार या स्वच्छंद प्रेम का समर्थन अपने उपन्यासों में नहीं किया। नारी समस्याएँ पुरुष की दया की आश्रित थी। गांधी युग में उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ और ऐसे आदर्श स्वीकृत हुए, जिनमें प्राचीन और नवीन का पूर्व और पश्चिम का एक विवेकपूर्ण समन्वय था। यही समन्वय देश के सामाजिक राजनीतिक जीवन का मेरुदंड बना। गांधी जी ने बताया कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। स्त्री-पुरुष की गुलाम नहीं सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी और मित्र है। वे मानते थे कि जीवन को अब भी सही दिशा न मिली तो समाज का आधा भाग प्रगति से वंचित रह जाएगा। ...नारी की वैयक्तिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या पर विचार करते हुए उन्होंने पाश्चात्य जीवन का अंधानुकरण हेय माना।'¹² लेकिन नरेश मेहता ने आज की नारी को भी चित्रित किया है, जो पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है और परंपरागत रूप से जो नारियाँ भारतीय संस्कृति और आदर्शों में पूर्ण विश्वास रखती हैं उन्हें भी अपने उपन्यासों का पात्र बनाया। वह आज की नारी के बदलते तेवरों को अभिव्यक्ति देने में पूर्णतया सक्षम हैं।

भारतीय समाज और संस्कृति में नारी हमेशा से पूजनीय रही है। नारी की विभिन्न रूपों में समाज का एक अनिवार्य अंग बनकर उसे दिशा प्रदान करती रही है। भारतीय समाज में चूँकि आज भी संयुक्त परिवार व्यवस्था कायम है और घर-परिवार को जोड़े रखने में नारी की ही मुख्य भूमिका रहती है। इन्हीं घर-परिवारों से समाज को मजबूती मिलती है। व्यक्ति अपने जन्म से ही परिवार का सदस्य बन जाता है। ये परिवार ही उसे विकास और सुरक्षा के लिए आवश्यक वातावरण प्रदान करता है। इसे समाज का छोटा रूप कहा जाता है। परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति तक सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के आधारभूत तत्व पहुँचते हैं। पारिवारिक परिवर्तन ही संपूर्ण सामाजिक ढाँचे में प्रतिध्वनित होता है। भारतीय परिवार केवल दंपती को ही संतान के साथ रहने का उपदेश नहीं देता, बल्कि नाती-पोतों के साथ रहने का भी आग्रह करता है। इस प्रकार संयुक्त परिवार के सभी सदस्य अपना-अपना कर्तव्य पालन कर परस्पर प्रेम से रहते हैं।

पारिवारिक शांति के लिए स्वामी और गृहिणी दोनों अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। आज के युग में आर्थिक दृष्टि से संयुक्त परिवारों में असंतोष की भावना पैदा हो रही है। श्री नरेश मेहता के उपन्यासों के युग में भी अर्थात् स्वतंत्रता से पूर्व संयुक्त परिवार की भावना क्षीण होने लगी थी। संयुक्त परिवार-व्यवस्था में परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, बैर आदि के बीज पल रहे थे। गृहस्वामिनी बनने की प्रतिद्वंद्विता, जेठानी-देवरानी में परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध और दुर्भावना दिखाई देती है। 'यह पथ बंधु था' में सरस्वती और उसकी जेठानी-देवरानी में परस्पर कटुता है। ऐसा नहीं है कि यह बात केवल स्त्रियों तक ही सीमित रहती है, बल्कि पुरुष भी इससे अछूते नहीं रहते और घर-परिवार में तनाव पैदा होता है, रिश्ते टूटते हैं, बिखरते हैं। मगर इस सब में भी नारी की स्थिति दयनीय होती चली जाती है। संयुक्त परिवार में नारी की दुनिया चूल्हे-चौके तक ही सीमित रह जाती है। यदि घर में सास, ननद, देवरानी, जेठानी हैं, तो उसके व्यक्तित्व का विकास पूरी तरह हो पाना संभव नहीं होता। 'आज नारी शिक्षा के व्यापक प्रसार से प्रबुद्ध नारी अपने को पुरुष के समकक्ष मानने लगी है। सामाजिक परिवेश में बंद संयुक्त परिवार का पुरुष अपने परंपरागत अहं, कुल, जाति, पद आदि के कारण स्त्री में स्वतंत्र व्यक्तित्व को नहीं स्वीकारता। 'यह पथ बंधु था' में इसी समस्या को उठाया गया है। इससे सरस्वती का बिखरना तथा दमघोंटू घुटन का अंत चिता की अंतिम आहुति में समाप्त होता है। इस प्रकार निष्ठा और यातना की सहनशक्ति आधुनिक युग में प्राप्त होना दुर्लभ है। सुकुमार आस्थावान स्त्री के पूर्ण तथा पिस जाने की कथा है।¹³

'ठाकुर परिवार में सरस्वती की कष्टगाथा जहाँ एक ओर लेखक सम्मिलित परिवार में सहिष्णु स्त्री को अपमान, कष्ट और यातना की करुण कहानी कहता है। वहाँ श्रीमोहन और श्रीबल्लभ के अलग-गैर द्वारा वह स्पष्ट बता देना चाहता है कि श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी के प्रयत्नों के बाद भी किस प्रकार आर्थिक कारणों से पारिवारिक जीवन टूट रहा है।'¹⁴ वर्तमान दौर में नारी के शिक्षित हो जाने और घर की चारदीवारी से बाहर निकलने पर उसके विषय में बनी परंपरागत छवि टूट रही है। आज वह मर्दों के बनाए उन दकियानूसी एवं रूढ़िवादी नियमों को तोड़ रही है, जो उन्हें केवल घर की शोभा बनाकर रखना चाहते हैं। 'घर की इज्जत' के नाम पर उसे सामाजिक मर्यादाओं का पाठ पढ़ाते हैं। आज वह हर क्षेत्र में जा रही है और सारी वर्जनाओं को तोड़ रही है। वह वही कहती है, जो उसे उचित लगता है। डूबते मस्तूल की रंजना ऐसी ही नारी है। प्रथम फाल्गुन की गोपा अपने जारज संतान होने को भी नहीं छुपाती है। हालाँकि, ऐसा करने से उसका महिम के साथ संबंध खत्म हो जाता है, मगर वह पूरी जिदगी एक 'तपस्विनी' के रूप में जीना पसंद करती है, वह गिड़गिड़ाकर या अनुनय-विनय करके अपने प्रेम को नहीं पाना चाहती। असफल प्रेम और तिरस्कृत सामाजिकता की प्रतिक्रिया में जहाँ आत्महत्या एक प्रमुख विकल्प होता है, वहाँ एक युग में गांधी ने देशसेवा, समाजसेवा की एक नयी ज़मीन दी जिस पर खड़ा होते ही हम अपने 'स्व' को विराट 'स्व' में मिला देते हैं। 'गोपा' इसी का एक उदाहरण है।

नारी जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक कष्ट झेलती है, यातनाएँ भुगतती है, प्रसव-पीड़ा सहन करती है, 'लेकिन पुरुष उसकी वास्तविकता को कभी नहीं समझ सकता। शायद इसीलिए नारी को पुरुष से हर बात के लिए पर्दा करवाना सिखाया जाता है, क्योंकि संपूर्ण नारी को उसके सारे कार्यों को, यातनाओं को और तो और सुख के प्रकार तक को पुरुष कभी नहीं समझ सकता। जन्म लेने वाला कभी-कभी जन्म देनेवाले की बलि ले लेता है।'¹⁵ मगर नारी फिर भी अनेक कष्ट

एवं दुःखों का सामना करते हुए भी मातृत्व एवं दांपत्य-जीवन के मूल्यों का निर्वाह करती है।

अंत में निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिकता के कारण व्यक्तिवादिता की भावना बढ़ी है और व्यक्ति के अर्थ-चेतना के कारण वह आत्मकामी और आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। संयुक्त परिवार की इसी अर्थभावना के बलवती होने के कारण विघटित हो रहे हैं। सामाजिक रिश्ते बिखर रहे हैं, व्यक्तिवादी रिश्तों का सृजन हो रहा है। इस कारण आज असंतोष और विषमता बढ़ रही है। बदले सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में नारी के प्रति धारणा में भी बदलाव आया है। नारी स्वयं भी अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने के लिए घर की चहारदीवारी से बाहर आ गई है। नारी के प्रति समाज का ही नहीं, बल्कि स्वयं नारी का दृष्टिकोण भी बदला है। वह अपने को पुरुष की दासी न मानकर सहधर्मिणी, मित्र और अपने को उसके समकक्ष मानने लगी है। लेकिन आज भी समाज का एक बड़ा हिस्सा इस सामाजिक चेतना से वंचित है। अभी भी समाज में दकियानूसी विचारों के हिमायती देखे जा सकते हैं। नरेश मेहता के उपन्यासों में कई नारी पात्र इसका प्रमाण हैं। उनकी नारी कहीं विरोध करती है, विद्रोह करती है, तो कहीं वह परिस्थितियों और नियति के आगे घुटने टेकती-सी प्रतीत होती है और समझौतावादी प्रवृत्ति अपनाकर अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों और उत्पीड़न को बढ़ावा देती है। कहीं वह बराबरी की बात करती है, तो कहीं वह पुरुष की भोग्या और वेश्या या रखैल बनकर रह जाती है। इस प्रकार नरेश मेहता की नारी में परंपरागत आदर्शों, मूल्यों का पालन करनेवाली नारी भी है, तो कहीं-कहीं इसके खिलाफ़ स्वर उठाती नारियाँ भी हैं, जो अपने ऊपर किसी भी प्रकार के मानसिक, दैहिक या आर्थिक उत्पीड़न सहन करने को तैयार दिखाई नहीं पड़ती।

संदर्भ

1. श्री नरेश मेहता, डूबते मस्तूल, पृ० 45
2. श्री नरेश मेहता, दो एकांत, पृ० 138
3. श्री नरेश मेहता, डूबते मस्तूल, पृ० 95
4. वही, पृ० 230
5. वही, पृ० 90
6. श्री नरेश मेहता, दो एकांत, पृ० 143
7. विवेकी राय, समकालीन हिंदी उपन्यास, पृ० 160
8. शांतिस्वरूप गुप्ता, हिंदी उपन्यास महाकाव्य के स्वर, पृ० 163
9. श्री नरेश मेहता, दो एकांत, पृ० 34
10. वही, पृ० 38
11. वही, पृ० 87
12. ब्रजभूषणसिंह आदर्श, हिंद के राजनीतिक उपन्यास : साहित्यिक प्रदेय और संभावनाएँ, पृ० 546-47
13. नेमिचंद्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ० 264
14. डा० शांतिस्वरूप गुप्त, हिंदी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर, पृ० 157
15. श्री नरेश मेहता, दो एकांत, पृ० 77

□ 3011, सेक्टर 29 डी
चंडीगढ़ (पंजाब)

महादेवी वर्मा का कला-विधान

डॉ० सतकुमार

सामान्यतः 1920 से 1936 तक के काल को साहित्य में छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। इसके आधार स्तंभों में महादेवी वर्मा का स्थान अनुपम है। छायावाद की उन्नत करने वाले कवियों में महादेवी वर्मा स्थान की अधिकारिणी है। अन्य छायावादी कवियों की भांति उनकी मान्यताएं भी गद्य में उपलब्ध होती हैं। उनकी काव्य एवं अन्य कलागत विधाओं से अवगत होने के लिए महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, आधुनिक कवि, दीपशिखा और सांध्यगीत की भूमिकाएँ तथा पथ के साथी आदि पुस्तकें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि कला विषयक उनके विचार संक्षिप्त हैं, फिर भी उनमें मौलिकता की दीप्ति विद्यमान है। महादेवी वर्मा के काव्य में कवि और चित्रहार का सफल सामंजस्य होने के साथ-साथ एक सीमा तक मूर्तिकला और संगीत कला का भी समन्वय प्राप्त होता है। महादेवी का काव्यरूप भी सर्वाधिक फल रहा है। उनके काव्य में मूर्तिकला की छाया भी दिखलाई पड़ती है तथा संगीत और भाव का सुंदर समन्वय भी मिलता है।

‘कला’ शब्द का अर्थ मानवीय क्रिया है, जिसका विशेष लक्षण ‘ध्यान दृष्टि’ से देखना गणना तथा संकलन करना, मनन और चिंतन करना एवं स्पष्ट रूप से प्रकट करना है।¹

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार—‘कला का कार्य अपने समय के सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करना है।’²

श्री जैनेंद्रकुमार का कथन है कि ‘कला शब्द मनुष्य ने बनाया इसलिए कि उनके द्वारा अपने भीतर अनुभूत किसी सत्य को प्रकट करना चाहता है।’³

श्रीमति महादेवी वर्मा के अनुसार ‘बहिर्जगत से अन्तर्जगत तक ऋले और ज्ञान तथा भाव क्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा। कला सत्य को ज्ञान के सिकता विस्तार में नहीं खोजती, अनुभूति की सरिता के तट से एक विशेष बिन्दु पर ग्रहण करती है।’⁴

महादेवी वर्मा के काव्य के विषय में जो मान्यताएँ प्राप्त हैं, वे निसंदेह साहित्य के विधान में अनमोल हैं।

1.2 महादेवी और चित्रकला :

1.1 महादेवी के काव्य में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है।

1.2 ‘माध्यम की दृष्टि से चित्र सूक्ष्म और स्थूल के मध्य में स्थिति रखता है। देश-सीमा

के बंधन में रहते हुए भी वह रंगों की विविधता और रेखाओं की अनेकता के सहारे काव्य को रंग रूपतात्मक साकारता दे सकता है। अमूर्त भाव का जितना वैभव चित्रकला में सुरक्षित रह सकता है उतना किसी अन्य कला में सहज नहीं, इसी से हमारे प्राचीन सूक्ष्मता को भी उतनी ही व्यापकता बाँधे हुए है।⁵

1.3 चित्रकला में ज्ञान को स्पष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। ललित हो या उपयोगी शिल्प सभी को कुछ शीघ्र ही ग्रहण कर लेने की सहज शक्ति है।

1.4 अन्य कलाओं के समान चित्रकला ने केवल विशेष उन्नति ही नहीं की वरन् वह उत्तरोत्तर व्यापक से व्यापकतर होती जा रही है।⁶

2. महादेवी और मूर्तिकला :

2.1 मूर्ति कठिनतम सीमाओं में बँधी होने के कारण अतिरिक्त अंगों की पृष्ठभूमि असंभव कर देती है। उसमें एक ही भाव को मूर्तिमत्ता दी जा सकती है और वह भी रंगहीन।⁷

2.2 मूर्तिकला मनुष्यों के आकर्षण का केंद्रबिंदु है, क्योंकि उसमें कलाकार के अंतर्जगत का भाव ही नहीं, बाह्य आभास भी अपेक्षित रहता है।

2.3 मूर्तिकला न पाषाण बनाता है न छेनी का लोहा वह केवल प्राकृतिक उपादानों और शक्तियों को संयोजित कर अपनी मानसी दृष्टि को साकार और प्रत्यक्ष कर स्वयं संतोष पाता तथा समष्टिगत परिवेश का संवर्द्धन करता है।⁸

स्पष्ट है कि महादेवी का चित्रकला के प्रति विशेष लगाव था, किंतु वे उसे सीख न सकीं, वह मिट्टी की मूर्तियाँ गढ़ने में विशेष निपुण थी उन्होंने स्वीकार किया है कि पत्थर व धातु में अंतर प्रदेश के भावों में प्रत्यक्षीकरण के लिए कितने कठिन प्रयास की आवश्यकता है। मूर्तिकार धातु, पत्थर और मिट्टी को काट-छाँटकर मूर्ति को आकर्षण का केंद्र बनाता है, जबकि कवि व गद्यकार अपनी भावनाओं के द्वारा मूर्ति का निर्माण करता है।

3. महादेवी और संगीत, नृत्य एवं वास्तुकला :

काव्य और संगीत दोनों ही ध्वनि पर आधारित है। संगीत कला का सूक्ष्म नमूना है। भावों की सूक्ष्मतम अनुभूति संगीत के माध्यम से ही संभव है। संगीतकार स्वर तंत्रियों के द्वारा हृदय के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

3.1 'आधुनिक शंकाशील युग में भी उसे विज्ञान से ऐसी स्वीकृति मिल चुकी है कि वह वनस्पति जगत के विकास तथा रोगी व्यक्तियों की चिकित्सा में उपयोगी माना जाने लगा है।⁹

3.2 नृत्य भी शरीर की चेष्टाओं पर आश्रित होने के कारण मूर्ति के बंधनों से सर्वथा मुक्त नहीं। वह एक प्रकार का अभिनय गीत है।¹⁰

सामान्यतः संगीत का प्रभाव इतना व्यापक है कि जंगली से जंगली मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी जगत् तक इसी के वशीभूत है। एक अबोध बालक के मन में भी संगीत के प्रति विशेष लगाव होता है। अपनी इसी फलता के कारण महादेवी ने संगीत कला को चित्रकला एवं मूर्तिकला से सूक्ष्म माना है। नृत्यकला को महादेवी ने शारीरिक चेष्टाओं पर आधारित कला स्वीकारा है। इसमें अंग-प्रत्यंग को उकेरा जाता है। इस प्रकार महादेवी ने प्रत्येक के प्रति अपने विवेकशील विचार प्रकट किए हैं।

4. महादेवी और काव्यकला :

महादेवी ने काव्यकला में काव्य की परिभाषा, तत्त्व प्रयोजन हेतु आदि पर प्रकाश डाला है। उनके काव्य विवेचन में मौलिकता के दर्शन होते हैं। वे काव्य कला को अन्य कलाओं की भाँति श्रेष्ठ मानती हैं। उनकी मान्यता है कि काव्य में स्वरों को सजीवता मिलती है। भारतीय साहित्य में भी काव्य को 'वाक्यं रसात्मक काव्य' कहा गया है।

4.1 कविता मानव-ज्ञान की अन्य शाखाओं की सदैव अग्रजा रही है।¹¹

4.2 'काव्य में कला का उत्कर्ष एक ऐसे बिंदु तक पहुँच गया जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका, क्योंकि सत्य काव्य का साध्य और सौंदर्य उसका साधन है।'¹²

5. महादेवी और कलाओं का संगम :

महादेवी का काव्य कलाओं का संगम-स्थल है। इनके काव्य में विविध कलाएं दिखलाई पड़ती हैं। काव्य और चित्रकला का अंतर स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं— 'दोनों में उतना ही अंतर है, जितना देवता के सामने पुजारी की एकांत रचना और उसके प्रसाद-वितरण में रहता है।'¹³

महादेवी स्वयं को कवयित्री मानती हैं, न की कुशल चित्रकार, क्योंकि सफल कवि और सफल चित्रकार होना दुष्कर है। सच तो यह है कि महादेवी पूर्णतः आस्थावान कवयित्री हैं। वे इस आस्था की अभिव्यक्ति कला और साहित्य दोनों में आवश्यक मानती हैं। उनकी मान्यता है कि जीवनसत्य को अपने सुंदरतम रूप में व्यक्त करने के लिए चित्र, मूर्ति एवं संगीत आदि कलाओं का निर्माण मानव ने किया। फिर भी महादेवी सभी कलाओं अनुभूतियों से परिचालित होने के कारण एक दूसरे से पृथक न मानकर उन्हें एक-दूसरे को पूरक मानती हैं।

निष्कर्ष :

महादेवी की कलात्मक अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। स्थूल और सूक्ष्म के मध्य स्थित चित्रकला को काव्य का सहयोगी माना है। मूर्तिकला में काव्य का आंतरिक व बाह्य दोनों दृष्टिकोण परिलक्षित होते हैं। स्वर व लय संगीत कला का अनुपम रूप है जिससे हृदय व भाव के आधार पर शारीरिक चेष्टाएँ परिलक्षित होती हैं। शरीर की चेष्टाओं पर आधारित नृत्यकला एक प्रकार का अभिनीत गीत है। महादेवी की कला दृष्टि हीगल से प्रभावित जान पड़ती है। कला का उद्देश्य कला की उत्पत्ति, कला के विषय तथा आत्मा को लेकर दोनों में सामंजस्य है। कला की अखंडता को लेकर महादेवी की विचारधारा क्रोचे की विचारधारा में साम्य है। कला के विषय पर भी एक सीमा तक एकता दिखाई देती है। महादेवी की स्वानुभूति, काव्यानुभूति, सौंदर्यानुभूति क्रोचे की सहजानुभूति के निकट जान पड़ती है।'

संदर्भ

1. डॉ० कान्तिचंद्र पांडेय, स्वतंत्र कला शास्त्र, पृ० 5
2. रामचंद्र शुक्ल, कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, पृ० 27
3. जैनेंद्रकुमार, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० 41
4. महादेवी वर्मा, दीपशिखा चिंतन के कुछ क्षण, पृ० 8
5. महादेवी, दीपशिखा, चिंतन के क्षण, पृ० 59

6. महादेवी, क्षणदा, कला और हमारा साहित्य, पृ० 53
7. महादेवी, दीपशिखा, चिंतन के क्षण, पृ० 49
8. महादेवी, संकल्पिता, पृ० 208
9. महादेवी, सन्धिनी, चिंतन के क्षण, पृ० 49
10. महादेवी, दीपशिखा, पृ० 39
11. महादेवी, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध पृ० 49
12. महादेवी, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध पृ० 30
13. महादेवी, दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण, पृ० 60

डॉ० सतकुमार
सहायक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
सी० आर०के० कॉलेज, जी०द

अठारहवीं सदी के हिंदी साहित्य में माधुर्य-भाव

डॉ० सतकुमार

आत्मा और परमात्मा की अद्वैत-साधना का निर्देश करनेवाली मधुर वाणी का मंथर प्रवाह प्राचीन काल से भारत में प्रवाहित हो रहा है। यद्यपि इस काल परम तत्व परमात्मा का नाम स्मरण करवाने वाली अनेक धाराएँ प्रभावित हो रही हैं तथा माधुर्य-भाव की उपासना ही मध्यकाल की सर्वोत्कृष्ट उपासना है। यह इस काल की संत पर्वधारा है। सांस्कृतिक विघटन के बावजूद भारत संतों की पावन भूमि रही है। संतों की अमरवाणी से जो लोकमंगल हुआ है, वर्णातीत है। जगत के जीवों के मंगल के लिए संत सदा जगम तीर्थ के समान धरा-धाम पर संचरण करते रहे। भारती आत्मा को मधुर रस में निमग्न करते रहे।

अठारहवीं सदी का समय राजनीतिक अस्थिरता का काल रहा है, जो मुसलमान भारत में लुटेरा बनकर आए थे। उनकी विचारधारा में कभी बदलाव की स्थिति बन चुकी थी। उनके यहाँ बस जाने के बावजूद भी हिंदुओं को उत्पीड़ित कर लेने वाली उनकी नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, अपितु प्रभुसत्ता स्थापित हो जाने के बाद मुस्लिम शासकों द्वारा हिंदू जनता के शोषण उत्पीड़न और हनन की उनकी नीति और अधिक संगीत एवं व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित की जाने लगी। मुस्लिम प्रशासकों के अत्याचार सहन करके भी हिंदू जनता आत्मरूप से निस्तेज कभी नहीं हुई, वास्तव में भारतीय जनता में ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास की भावना कायम रही। जिससे इस प्रकार के राजनीतिक विप्लव भी उनको हानि नहीं पहुँचा सके। उसका आधार राजनीतिक सत्ता नहीं आध्यात्मिक चिंतन है। इसी की ओर निर्देश करते हुए रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि 'यह बात माननी ही होगी कि राष्ट्रीय साधना भारतवर्ष की साधना नहीं है। एक बार बड़े-बड़े राजा और सम्राट हमारे देश में दिखाई पड़े थे किंतु इनकी महिमा इसी में सीमित रही। देश के सर्वसाधारण ने उस महिमा की सृष्टि भी नहीं की, वहन या भोग भी नहीं किया। व्यक्ति विशेष की शक्ति में ही उसका उद्भव और विलय हुआ। किन्तु भारतवर्ष की एक अपनी साधना है वह है उसके अन्तर की चीज़। सब प्रकार के राष्ट्रीय-विपर्यय के भीतर से भी उसकी धारा बहती रही है।'¹

भारतवर्ष की इसी चीज़ के आराधक और उन्नायक भारतीय संत रहे। उनके संत मत यही प्रमुख स्वर रहा। हिंदी संत-परंपरा में अठारहवीं सदी के दरिया साहेब, सहजोबोई, दयाबोई, पलटू साहेब प्रभृति समावृष्टि होते हैं।

1. दरिया साहेब (बिहार वाले) :

भारत में जब तुर्क शासन की जड़े उखड़ रही थी और मुसलमान आधिपत्य स्थापित कर

रहे थे। उस परिवर्तन काल में कबीर, रैदास और नानक हुए। ऐसे ही एक दूसरे परिवर्तन काल में जब मुसलमानी शासन का अंत और अंग्रेजी शासन का आरंभ हो रहा था, ऐसे ही समय में दरिया नाम के संत महात्मा अवतरित हुए, जिनमें प्रथम दर्जी और द्वितीय धुनिया थे। प्रथम बिहार निवासी थे और द्वितीय मारवाड़ी थे। ये मारवाड़ी संत ही दरिया साहब कहलाए। इनका साहित्य अत्यंत विशाल है। दरियापंथ का नाम इसके प्रवर्तक दरिया साहब के नाम पर पड़ा। वे अपने आपको कबीर का अवतार मानते थे। इनकी विचारधारा कबीर की विचारधारा के साथ मिलती है। ये निर्गुण राम के समर्थक थे। आज भी दरियापंथ में 'वेवाह' शब्द अत्यंत प्रचलित है, जिसमें साईं के नाम का संकेत है। इसके मत से पुरुष और प्रकृति अथवा परमात्मा तथा जीवात्मा वस्तुतः एक है। संत दरिया साहब की माधुर्य-भाव साधना का मध्यबिंदु आत्मा-परमात्मा का चिद्विलास है। इनकी रचनाओं में दांपत्य भाव की झलक सर्वत्र दिखाई पड़ती है, जो इनकी माधुर्य-भाव की भक्ति के कारण ही अधिक संभव है। इन्होंने सार्वभौम सत्ता को व्यक्त करते हुए कहा है—

प्रेम कंवल जल भितरे, प्रेम भंवर लै वास।

होत प्रात सूपट खुलै, भान तेज परगास।²

प्रेम की लगन जब लग जाती है, तब वह छुड़ाए नहीं छूटती। प्रेम वारुणी के इसी नशे के खुमार में संतकवि दरिया ने इस प्रकार कहा है—

प्रेम पियाला पीड़ के, तनम न डारहु वारि।

होहि बेहोस जग से रहो, ज्ञान सरोद विचारि।³

2. सहजोबोई :

सहजोबोई का संतमत में अनुपम स्थान है। इनका जन्म राजपूताना के प्रतिष्ठित दूसर कुल में हुआ था। बचपन में ही वैराग्य होने के कारण चरणदास से दीक्षा ली। इनकी साधना चित तथा मनसा पर आधारित है। एक सगुण उपासक की भाँति अपने पापों को दूर करने के लिए इन्होंने नाना प्रकार से प्रार्थना की है। संसार से विरक्ति तथा भगवान से आसक्ति के लिए बहुत से पद इनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं। सहजोबोई ने प्रेममार्ग के अनेक मार्मिक पद वर्णित किए हैं—

प्रेमदीवाने जो भए, कहै बहकते बैन।

सहजो मुख हाँसी छूटे, कबहूँ टपके नैन।⁴

प्रेम की दीवानी सहजोबोई ने दांपत्य स्नेहसूत्र के सहारे आत्मा और परमात्मा के पावन परिणय एवं मधुर मिलन से संबंधित विविध प्रसंगों का बड़ा ही सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है—

निराकार आकार सब, निर्गुण औ गुनवंत।

है नाही सूं रहित है, सहजों यों भगवंत।

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।

सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरिरूप।⁵

सहजोबोई संतों की भाँति गुरु को सर्वोपरि मानती हैं। बड़े भाग्य से सहजोबोई को प्रेम का पियाला सद्गुरु ने दिया। इसे पान करके वह रसमय हो गई—

चरनदास सतगुरु दियो प्रेम पियाला पान।

सहजो मतवारे भये, तुरिया तत गलतान।⁶

3. दयाबाई :

संतमत में प्रवाहित होनेवाली अन्य महिलाओं में दयाबाई का स्थान अनुपम है। सहजोबाई की भाँति दयाबाई भी संत चरणदास की शिष्या थीं। वे सहजोबाई की समकालीन थीं। इसीलिए इनका समय भी 18वीं सदी के अंतिम भाग में माना जाता है। इनके काव्य में सहजता एवं स्वाभाविकता का गुण बड़ी मात्रा में है। इन्होंने गुरु चरणदास का नाम भावपूर्वक लिया है—

चरणदास गुरुदेव है, दया रूप भगवान।

इंद्रादिक जो देवता देत तिन्है सनमान।⁷

दयाबाई की साधना प्रेम पर आधारित है। 'प्रेम' अंक मन में लगाकर, भावपूर्वक अपने प्रिय से स्नेह स्थापित कर जो पढ़ता है, वही सच्ची शिक्षा है। इस मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए 'मन' को लगाना जरूरी है—

प्रेम की प्रीति सँ जो पढ़ै, सरधा करि मन देत।

सुफल काम सब होत हैं, नेक लगाए हेत।⁸

वे कहती है गुरु का ज्ञान ही संसार रूपी कूप से बाहर निकाल सकता है जिससे अन्धकार रूपी रात्री समाप्त हो जाती है।

भोर भयो गुरु ज्ञान से, मिटी नींद अज्ञान।

रैन अविधा मिट गई, प्रगट्यो अनुभव ज्ञान।⁹

4. संत पलटूदास :

संत पलटूदास का प्रादुर्भाव 18 वीं के अंतिम चरण में हुआ था। इन्होंने कबीरदास, रैदास व पीपा का नाम बड़े ही आदरपूर्वक लिया है। इनके समय में राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त थी। हिंदू का मुसलमानों के अतिरिक्त अँग्रेजजाति भी भारत का शोषण कर रही थी। यद्यपि मुसलमान शासित थे, लेकिन हिंदूजाति भी अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती थी। दोनों का आपसी संघर्ष जीवित था। पलटूदास ने जाति-विहीन समाज की कल्पना की है, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा मुसलमान इत्यादि किसी में भेद नहीं है। कोई जाति न पूछे हरि को भजे सो ऊँचा है। कहकर उन्होंने जाति-पाति के भेद को मिटाने का प्रयत्न किया है।

पलटूदास की भक्ति प्रेम पर आधारित है। मजीठ के रंग में रंगे हुए कपड़े की तरह अपने प्रेमी के रंग से दिल को रंग लेना चाहिए। संत पलटूदास के विचार में प्रेम की मंजिल बहुत दूर है। ऐसा ही प्रेम-रंग-रस माता अलमस्त आशिक आठो पहर प्रेम की मस्ती में गर्वित होकर उस परम ज्योति के घर को जीतता है—

पिया है प्रेम का प्याला।

हुआ मन मस्त मतवाला।

गया दिल होस से भाई।

बेहोसी जगत बिसराई।¹⁰

उपसंहार :

अतः संत एवं महात्मा प्रत्येक युग एवं समाज की आध्यात्मिक संपत्ति होते हैं। अध्यात्म देश व काल की सीमाओं का उल्लंघन कर युगानुगत सामाजिक भाव को पावन करता रहता है। राजनीतिक अस्थिरता और हिंदू की घोर पराजय के कारण हिंदूधर्म को आघात पहुँचा। ऐसे घोर

निराशा के युग में संतों की दिव्य वाणी ही भारतीयों के कंठों का आधार बनी। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक पहुँचते-पहुँचते सहजोबोई, दयाबाई, पलटूदास आदि प्रमुख महात्माओं ने अपनी दिव्य वाणी के द्वारा हिंदुओं को निराशा के चुंगल से बचाया।

संदर्भ

1. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सूरसाहित्य, पृ० 43
2. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सूरसाहित्य, पृ० 281
3. डॉ० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, संतकवि दरिया साहेब एक अनुशीलन, पृ० 201
4. सहजप्रकाश, पृ० 2
5. सहजोबोई की बानी, पृ० 4
6. सहजोबोई की बानी, पृ० 10
7. सहजोबोई की बानी, पृ० 58
8. सहजोबोई की बानी, पृ० 41
9. दोहावली, पृ० 56
10. पलटू साहेब की वाणी, पृ० 102

डॉ० सतकुमार
सहायक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
सी० आर०के० कॉलेज, जी०द

पंडित लखमीचंद के सांगों में शृंगाररस

डॉ० बलजीत सिंह

सहायक प्रवक्ता (हिंदी विभाग)

आर०के०एस०डी० कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

काव्य के नौ रसों में शृंगार का स्थान सर्वप्रथम आता है और इसलिए इसे 'रसराज' अर्थात् सभी रसों का राजा भी कहा जाता है। इसके मूल में एक यह भावना भी विद्यमान रही है कि किशोरावस्था अर्थात् पंद्रह वर्ष की आयु में पदार्पण के साथ ही युवक अथवा युवती में प्रेमविषयक कोमल भावनाओं का उदय हो जाता है और फिर यह भावना जवानी में तो पूरी तरह खुलकर और जवानी ढल जाने पर अस्पष्ट रूप में मनुष्य के रूप में विद्यमान रहती है। अतः कहा जा सकता है कि पंद्रह वर्ष की आयु से लेकर पैंतालीस वर्ष की आयु वर्ग के व्यक्तियों के बहुमत को स्वभावतः ही रीति-विषय चर्चाएँ, कथाएँ, गीत एवं अभिनय सर्वाधिक मनभावन लगते हैं। शृंगार की यही भावना सांगों का मेरुदंड कही जा सकती है। रति एवं प्रेम की मार्मिक कथा-कहानियाँ आदिकाल से मनुष्य को जीवन के प्रति आसक्त करती आई हैं और भविष्य में भी करती रहेंगी।

पं० लखमीचंद एक बड़े व्यवहारकुशल थे, इसलिए वे उपर्युक्त तथ्य के मनोविज्ञान को खूब अच्छी तरह समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने सर्वप्रथम अपने अनेक सांगों में शृंगार को लोकरंजन का साधन बनाया और समाज के एक बहुत बड़े वर्ग (15 से 45 वर्ष आयु) के लोगों को वशीभूत कर लिया था। पं० जी के शृंगारिक रूप-प्रदर्शन की अधिकता के कारण साठ वर्ष की आयु से अधिक के स्त्री-पुरुष तो इन सांगों की आलोचना और निंदा भी करते थे। परिणामस्वरूप लखमीचंद को अपने प्रारंभिक जीवन में बुजुर्गों की आलोचना का सामना पड़ा, लेकिन बाद में पंडितजी ने धार्मिक और सामाजिक सांगों की रचना करके सभी उम्र के लोगों को प्रभावित किया।

शृंगार-वर्णन

पंडितजी ने अपने सांगों में शृंगार के दोनों पक्ष संयोग व वियोग का उत्कृष्ट वर्णन किया है। पंडितजी की शृंगार योजना की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं, जो कि अन्य कवियों से हटकर है। अँग्रेजी व हिंदी साहित्य में बड़े-बड़े कवियों ने सौंदर्य का वर्णन करते हुए अनेक लौकिक-अलौकिक उपमानों का सहारा लिया है। जैसे-चाँद, सूर्य, कमल आदि, किंतु पं० लखमीचंद की तकनीक इस विषय में सभी महाकवियों को भी मात देती प्रतीत होती है। सांग 'पद्मावत' में पद्मावत का सौंदर्य वर्णन-

देख के धन माया की पोट, कदे कोए मारया जा बिन खोट,

चालै चोट गवारां खातिर, सत सै बीच बिचारा खातिर,
मरीजे इश्क बेमारां खातिर, खास दवाई सै।

उपर्युक्त पक्तियों में कवि ने सौंदर्य-वर्णन में अत्यंत सात्विकता के साथ जो अपरिमेय उत्कर्ष स्थापित किया है, वह बेजोड़ है। 'चालै चोट गवारां खातिर, सत सै बीच बिचारा खातिर, मरीजे इश्क बेमारां खातिर, खास दवाई सै।' इसमें कवि कहना चाहता है कि गँवार आदमी तो पद्मावत के रूप को देखकर ही घायल हो जाते हैं, जबकि जो बहुत विचारवान और सज्जन हैं वे जब पद्मावत का रूप देखते हैं, तो उनको लगता है कि उनके सत की परीक्षा की घड़ी आ पहुँची है। इतना ही नहीं प्रेम के असाध्य रोगी को पद्मावत जैसी नायिका मिल जाए, तो उसके लिए संजीवनी बूटी का काम करेगी।

पं० लखमीचंद अपनी नायिका के लिए जो भी उपमान छँटकर लाते हैं, उसमें से भी सर्वश्रेष्ठ भाग से तुलना करते हैं—

सिंगलद्वीप में बसै पद्मनी सिर पै शीश मणी सै,
सीप मै मोती पत्थर मै हीरा तू हीरे बीच कणी सै।

यहाँ नायिका की तुलना संपूर्ण हीरे से न करके हीरे के बीच के सर्वाधिक चमकदार भाग (कणी) से की है। इतना ही नहीं कवि अपने वातावरण से वे उपमान चुनकर लाया है, जो अपने में अद्वितीय हैं—

हुस्न देवी ज्यूँ रंभा, ऐसा देख्या अचंभा,
धड़ चिकना जैसे केला का खंबा,
नाक सुआ-सा, ना छोटा ना लंबा,
सबुन मल-मल के तला बीच नहाने लगी।

पक्तियों में नायिका की अप्सरा रंभा से तुलना, धड़ की चिकने केले के तने से, नाक की विशेषता 'न छोटा न लुबा' कवि की असाधरण प्रतिभा के द्योतक हैं।

सांग 'चंद्रकिरण' में रूप-पिपासु मदनसेन अनेक बाधाओं को सहता हुआ चंद्रकिरण के महल के पास धूनी लगाकर बैठ जाता है। उसे महल की खिड़की में से चंद्रकिरण के गदराए यौवन की एक झलक दिखाई पड़ती है, तो वह भावविभोर होकर उस रूपराशि को कैसे रेखांकित करता है—

तेरी झाँकि के मै गोला मारूँ बाँट गोफिया सण का।
एक निशाना चूककण द्यू ना मै छलिया बालकपन का
छाती खिंचमा पेट सुकड़मा आँख मिरग की डाल परी।
नाक सुआ-सा, मुँह बटवा-सा होठ पान तै लाल परी।
लखमीचंद था न्यूँ सोचैगी करके दुनिया ख्याल परी।
लेरी रूप गजब का गोला तू किसे माणस का काल परी
मेरा गाम सै सिरसा जाँटी, मैं चेला मान सिंह ब्राह्मण का।

मदनसेन कमद के सहारे चंद्रकिरण के महल में प्रविष्ट हो जाता है, तो चंद्रकिरण के प्रेमाकुल हृदय में आनंद की हिलोरे उठने लगती हैं। वह कमाविष्ट होकर अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए मदनसेन से अनुरोध करती है—

आख्या सेती आँख मिली जब सीलक होगी धड़ मैं।
बाबा जी तै हाथ मिलाके बिठा लिया झट जड़ मैं।
बाबा जी तेरे लाड़ लड़ाऊ सच्चे दिल से प्रेम बढ़ाऊँ।
मैं मोरणी बणके आसूँ ठाऊँ, तू मोर नाचिए झड़ मैं।

कामार्त चंद्रकिरण का कथन—‘मैं मोरणी बणके आसूँ ठाऊँ, तू मोर नाचिए झड़ मैं’ विशेष प्रणय-मनुहार का द्योतक है, क्योंकि यह सत्य है कि नाचते हुए मोर के आँसुओं को पीकर मोरनी गर्भवती होती है। ‘मेनका’ इस तथ्य का साक्षात् प्रमाण है कि ‘कामांधो न पश्यति’। यह हूर मेनका के रूप-सौंदर्य एवं काम कलाओं का ही कमाल था कि महर्षि विश्वामित्र जैसे तपस्वी भी कामाग्नि की लपटों से नहीं बच पाए। यह कहने की नहीं देखने की बात है कि मेनका ने अपनी मोहिनी मुस्कान से तपोनिष्ठ ऋषि की क्या गत बना दी थी। मेनका ने यह सब कैसे किया—

ऊँचे सुर तै गावन लागी नाच के ताल बजादी।
छन्नन-छन्नन होण लागी जाणूँ आग फूँस मै लादी।
विश्वामित्र धौरे आके नाच दिखावण लगी।
कभी इधर और कभी उधर न्यून फिरती भागी-भागी।
तीन देवता रक्षा करते बदन मैं तिरसना जागी।
धूमधाम से चटक-मटक के मुनि के स्याहमी आगी।
सन्नाटा सा गया गात मे एक इसी बैरवी गा दी
कामदेव नै जोर करया ऋषि बैठ्या-बैठ्या हालै।
त्रिया रूप दिखा के न झाल गात मै ठा दी।

वियोग-शृंगार

पं० लखमीचंद ने जहाँ संयोग-शृंगार की योजना में अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है, वहीं उनकी वियोग-शृंगार की योजना भी अपने-आपमें अद्वितीय एवं सर्वथा मौलिक है। वह नायक नायिका अपने प्रियतम के वियोग में किस तरह से व्याकुल एवं बेमन होते हैं। इस अनुभव को जितना सजीव रूप में लखमीचंद ने प्रस्तुत किया है। उतना शायद ही किसी अन्य कवि ने आज तक किया हो।

पूर्वराग विरह

सांग ‘चंद्रकिरण’ में राजा मदनसेन ने सौदागर के पास एक सुंदरी का फोटो देखा, जिसे देखकर उस पर आशिक हो गया। राजा ने पूछा, ‘यह किसका फोटो है?’ सौदागर ने बताया ये फोटो राजकुमारी चंद्रकिरण का है और वह कंचनपुर की रहने वाली है और अब तक कुँवारी है। राजा ने उस फोटो को खरीद लिया और उस पर मोहित होकर क्या कहता है—

चक्कर चढ़ता आवै सै ना सोधी मै शरीर।
मेरे जिगर मै खटका सै या फोटो आली बीर।
मद जोबन की बलै अंगीठी, जाणो कद बोलै मीठी-मीठी।
एक हाथ की घीटी मै के जाता दीखे नीर।
दो नैना की घूर मिलै, मद जोबन मै भरपूर मिले।
इस फोटो आली हूर मिले, इसी कित लखमीचंद तकदीर।

मान-विरह

नायक और नायिका के रूठने पर जब दोनों आपस में नहीं मिलते, तो मान विरह की स्थिति होती है। सांग 'ज्यानी चोर' में जब ज्यानी चोर सोनादे के पति का भेस धारण करके आता है, तो सोनादे उससे नाराज होती है। वह गुस्से में उससे बात नहीं करना चाहती। वह पास होकर भी विरहणी है। वह कहती है—

आज तै मै लडूँगी घणी, आया घणे हो दिन मैं।
लखमीचंद भजन मै लाग, जाण के क्यूं फोड़े थे भाग।
नाग तेरे माथे की मणी, राखी क्यूं ना फन में।

प्रवास-विरह

प्रिय के विदेश जाने पर उत्पन्न विरह-प्रवास के अंतर्गत आता है। सांग 'पद्मावत' की नायिका पद्मावत का रणवीर के वियोग में तड़पना—

तीन रोज हो लिए तड़पती नै कुछ ना खाई खेली,
हे भाईयां की सूं जी ज्यांगी दियो दर्शन करा सहेली।
सपने के मै पैड़ जले की मुधी पड़-पड़ टोही,
आँख खुली जब कुछ ना दीख्या मर्द मिला ना कोई,
आधी रात पिलग के उप्पर एक पहर तक रोई,
मेरी माँ ने उठ के पुचकारी करके लाड भलोई,
जाणूं भौरा कद ले खुशबोई यो रूत पै फूल चमेली।

उपर्युक्त पक्तियों में पंडितजी का न केवल महाकवि रूप प्रकट हुआ है, अपितु एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक की विशेषता दिखाई देती है। इसी प्रकार चंद्रकिरण भी मदनसेन के बाबा रूप को देखकर एकदम उसके प्रेम में किस तरह व्याकुल हो जाती है—

हे मैं मरगी, इस बाबा जी नै ज्यान काढली मेरी
मेरा तै साँटा भी ना सँटता, आधपा खून रोज का घटता
हे ना डटता यूं जोबन बेईमान, देख मनै आवण लगी अँधेरी

उपर्युक्त पक्तियों में कितनी स्वाभाविक बात आई है कि विरही का आध-पाव खून रोज घटता है, उसकी आँखों में अँधेरी आती है। इसी प्रकार 'हीरामल-जमाल' सांग में भी सेठानी की विरह भावना दर्शनीय है—

कदे ना हिया शरद, तू किसा मरद,
तनै करद चला दी छाती मै
मैं ख्याल करूँ सू पी का, तू बालम ना मेरी सी का,
ओ मेरी शोकण का बस्या, तेरे घी का चस्या,
जा फस्सा दूसरी जाती मै।

विरह में क्या-क्या नहीं होता। शरीर की दुर्दशा हो जाती है और विरही मौत को भी गले लगाने में जरा भी हिचक नहीं करते—

फेर लैला नै माशूक समझ के मजनू नै लई फकीरी,
दाभ जामगी डीमक लागी मुशिकल पाई पीरी,

आशक बण फरयाद कल्ल हुआ ज्यान समझ ली सीरी,
रांझे नै घर कुणबा छोड़या तज दी जन्म जगीरी,
बारा बरस तक जंगशाला में रहया भैसिया पाली।

करुण विरह

प्रेमी-प्रेमिका के मिलन की संभावना समाप्त होने अथवा उनमें से एक की मृत्यु होने से करुण विरह होता है। सांग 'नल-दमयंती' में राजा नल अपनी रानी को सोते हुए छोड़कर चला जाता है और जब रानी उठती है, तो क्या कहती है—

सूती उठ के देखन लागी हूर भीम की जाई,
कटी साड़ी देखी दो पैड़ पति की पाई।
कहै लखमीचंद सुणता हो तो दो बात कहूँगी पिया।
मैं इस दारुण दुख नै कैसे नंगे गात सहूँगी पिया।
जिंदगीभर तेरे साथ रहूँगी पिया क्यूं अधम मै करै सै अघाई।
बहुत देर का अरसा होगया फेर सोधी सी आगी,
पैड़ा-पैड़ा चाल पति ने बन मै टोहवण लागी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पंडितजी विरहिणी स्त्री और विरही पुरुष की मनस्थिति और शारीरिक परिवर्तन के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भावों को भी पढ़ने और अंकित करने में अत्यंत सिद्धहस्त थे। पंडितजी का कोई भी सांग ऐसा नहीं है, जिसमें शृंगार की न्यूनाधिक चर्चा न हो। सत्यवान-सावित्री, सेठ ताराचंद, विराट पर्व, ज्यानी चोर, मीराबाई आदि सभी सांगों में रूपसौंदर्य का मनोहारी चित्रण हुआ है। उनके उत्तरवर्ती सांगों में शृंगार का चित्रण गोरे पाँव पर काले जूते की तरह शोभाविधायक ही सिद्ध हुआ है, क्योंकि इन सांगों की मूल भावना शृंगारिक नहीं है।

संदर्भ

1. शुकदेव स्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्नकोश', तृतीय संस्करण, 2001, पृ० 267
2. शुकदेव स्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्नकोश', तृतीय संस्करण, 2001, पृ० 269
3. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 303
4. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 306
5. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 235
6. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 285
7. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 165
8. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 661
9. शुकदेव स्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्न-कोश', तृतीय संस्करण, 2001, पृ० 317
10. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 441
11. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 443

□ गाँव व डाकखाना सेरधा
जिला कैथल (हरियाणा)
मो० 9315413408

हरियाणवी लोकनाट्य (सांग) में हास्य-व्यंग्य

डॉ० बलजीत सिंह

सहायक प्रवक्ता (हिंदी विभाग)

आर०के०एस०डी० कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

हरियाणा की धर्म-धरा को भारतीय संस्कृति का पालना कहा जाता है। धर्म एक दर्शन के अतिरिक्त यहाँ की लोककलाओं ने इसकी संस्कृति को समृद्ध बनाने में अहम भूमिका निभाई है और इन लोककलाओं में अग्रगण्य रहा है यहाँ का लोकनाट्य (सांग)। लोकनाट्य का प्रभाव-क्षेत्र केवल नाट्यकला तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु इसकी परिधि में परंपराएँ पलती हैं, इतिहास बोलता है और वे मान्यताएँ प्रतिबिंबित होती हैं, जो शताब्दियों से हमारे समाज का पथ-दर्शन करती आई हैं।

सांग हरियाणा की संस्कृति का अभिन्न अंग है। इसकी पूर्ण जानकारी के बिना हरियाणा का सांस्कृतिक अध्ययन अधूरा रह जाता है। हरियाणा के सांग उत्तर भारत के अन्य प्रादेशिक लोकनाट्य साहित्य की अपेक्षा विशाल समृद्ध एवं रोचक हैं। 'सांग' हरियाणा की नाट्य-परंपरा का सिरमौर है, जिसे यहाँ का कौमी नाटक भी कहा जा सकता है। हरियाणा की जनरंजनकारी यह विधा वस्तुतः गीत, संगीत एवं नृत्य की मनमोहक त्रिवेणी है।

'ग्रामवासियों के हृदयों पर इन सांगों का प्रभाव इतना है कि वृद्धातिवृद्ध पुरुष भी देखने का लोभ-संवरण नहीं कर पाते। वे तो युवकों से भी आगे जाकर बैठते हैं।'

भारतवर्ष में सांग अथवा संगीत का स्वरूप अत्यंत प्राचीन हैं। जगदीशचंद्र माथुर ने इसका संबंध 'संगीतक' शब्द से जाड़ा है, जो कालांतर में क्रमशः संगीत और सांग के रूप में विकसित हुआ है।

जनमानस को जीवंत बनानेवाला लोकनाट्य लोकनृत्य, लोकसंगीत एवं लोककथा का ऐसा लटकेदार रसायन है, जिसके स्वाद को बता पाना शब्दों के सामर्थ्य से बाहर है। जन्म-मरण, विवाह-शादी, पर्वोत्सव, मेले-ठेले तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर लोकभाषा में लोकमंच पर अभिनीत होकर यह अनादिकाल से लोकमानस में आनंद का उद्रेक करता आ रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि सांग या संगीत आदिकाल से चलकर भक्तिकाल एवं रीतिकाल तक भारत में अभिनीत होते रहे हैं। श्री देवीशंकर प्रभाकर का कथन है—'लोकमंच की यह परंपरा बहुत पुरानी है। संगीत, नाट्य और नृत्य तीनों का सुंदर समन्वय इसमें है। संस्कृत नाटकों के युग में भी यह शैली विद्यमान थी। धार्मिक और सामाजिक पर्वों पर मंदिर के आँगन-चौपालों में ज़मीन पर ही खुले मंच पर यह शैली पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोकरंजन का महत्त्वपूर्ण साधन बन रही है।'

हरियाणा एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ के जनजीवन में हास्य और व्यंग्य का विशेष महत्त्व है। शारीरिक एवं मानसिक दोनों दृष्टियों से हास्य उत्तम स्वास्थ्य का सूचक ही नहीं, बल्कि उसका संवर्धक भी है। आज इस भौतिकतावादी युग में जहाँ लोगों को हँसने के लिए हास्यकलाओं का सहारा लेना पड़ता है, वहीं हरियाणा एक प्रदेश ऐसा प्रदेश है, जहाँ कदम-कदम पर ये हास्य क्लब मंडलियों के रूप में देखे जा सकते हैं। ब्याह-शादी या किसी तीज-त्यौहार के अवसर पर हँसौड़ों की मंडलियाँ सहज की ठहाके मारती देखी जा सकती हैं।

हरियाणा में सांग मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है। सांग का उद्देश्य लोक का मनोरंजन है। प्राचीन समय में हरियाणा में मनोरंजन के साधन नहीं थे। लोगों के मनोरंजन का एकमात्र साधन सांग था। सांग समाज या समुदाय की धरोहर है। इसमें किसी प्रकार का आडंबर नहीं होता, बल्कि यह ग्रामीण जनता की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं व अभिव्यक्तियों के अनुसार ही किए जाते हैं और सांग की भाषा ठेठ हरियाणवी होती है। हास्य की सृष्टि लोकमंच की पहली शर्त है, क्योंकि हास्य की मीठी मार के अंतर्गत सामाजिक अन्याय कुरीतियों और शोषण के विरुद्ध आदमी की प्रतिक्रियाओं के तीखे नश्टर होते हैं, जिन्हें लोककलाकार सामाजिक स्थितियों के अनुकूल निरंतर करते रहते हैं और जहाँ जरूरत होती है, उसका उपयोग करने में कदापि नहीं चूकते।

इसीलिए सांग में सामाजिक कुरीतियों जैसे ऊँच-नीच, छुआछूत, रिश्वतखोरी, बेमेल-विवाह, बहुविवाह, बालविवाह, दहेज-प्रथा, भ्रूण-हत्या, मद्यपान, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, अंधविश्वास, जादू टोने, गुप्त प्रेम, अवैध प्रेम आदि उनके बुराइयों के फंदे अपने चुटकीले व्यंग्य-बाणों से कटाक्ष करते हुए जनता को हँसा-हँसाकर काटे जाते हैं। इन लोकनाट्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिन्हें ये अपना निशाना बनाते हैं, वे बाहर से तो खिलखिलाते हैं, पर अंदर से तिलमिलाते हैं। इन सांगों में ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि समाज की बुराइयाँ समाप्त हो सकें। इसके साथ ही प्रत्येक सांग में आदर्श, उपदेश व संदेश निहित होता है। जैसे—

लोकनाट्यों के द्वारा प्रेम के विविध रूपों का विश्लेषण बड़ी ही निर्भीकता से किया जाता है। गुप्त-प्रेम और अवैध प्रेम-व्यापार आदि की पोल खोलने में भी लोकनाट्य के पात्र हिचकिचाते नहीं हैं। हास्य और व्यंग्य द्वारा वे इन बातों पर इस प्रकार से प्रकाश डालते हैं कि दर्शकों को वस्तुस्थिति समझने में देर नहीं लगती और संबद्ध व्यक्ति लज्जा से अपनी गर्दन झुका लेते हैं।

पं० मांगेराम जी द्वारा रचित सांग 'पिंगला-भरथरी' में एक करारा व्यंग्य है, जिसमें केवल सैद्धांतिक उपदेश झाड़नेवालों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। इस रागनी में पिंगला, उसके यार सईस, भरथरी आदि सभी के चरित्रों को विक्रम ने प्रतीकों के माध्यम से पिंगला के पाप की पोल खोलकर असली वस्तुस्थिति की भाई भरथरी के सामने कैसी मर्मस्पर्शी वाक्चातुरी से प्रस्तुत किया है। यह परोक्ष व्यंग्य है—

शेरां के खाड़े मैं आज मन्नै करता श्याल खिलारी देख्या,
रजपुतां की औरत गेल्या करता पाजी यारी देख्या।
देख के एकदम जलगी काया, लुटण लागरी तेरी धनमाया,
मन मैं बड़ा अचंभा आया, गऊ के उपर

तेरे राज मैं करता गधा सवारी देख्या।
 माँगेराम खास बेचे जा, विक्रम एक-एक साँस बेचे जा,
 घर मैं रांड मांस बेचे जा, बाहर खसम प्रचारी देख्या।
 प्रस्तुत रागनी में कितने सही एवं सटीक प्रतीक चुने हैं। एक-एक शब्द तोलकर कहा गया है। उर्पयुक्त रागनी में रचनाकार ने प्रतीकात्मक शैली में व्यंग्य किया है।

बेमेल विवाह के कारण समाज में बहुत से अनाचार और अवैद्य प्रेमसंबंध जन्म लेते हैं। इसी प्रसंग को लेकर हरियाणवी लोकनाट्यकारों ने उल्लेख भी किया है। किशोरी एवं नवयौवनाओं को बूढ़ों के साथ विवाह के अनेक दृष्टांत मिलते हैं। सांग 'ध्रुव का जन्म' में बड़ी रानी पुत्रैष्णा के वशीभूत होकर राजा उतानपाद का विवाह रूप-यौवन गर्विता सुरुचि के साथ करवा देती है। सुरुचि और राजा उतानपाद का यह विवाह बसंत और पतझड़ का संयोजन कहा जा सकता है। समाज में कदाचार के अंकुर कदाचित्त ऐसे ही बेमेल विवाह के परिणामस्वरूप प्रस्फुटित होते हैं, वृद्ध उतानपाद नई रानी सुरुचि की कामाग्नि को शांत करने में अक्षम है। काम कुंठित सुरुचि की मानसिकता का चित्रण देखिए—

मैं बुढ़े के संग ब्याह दी रोऊँगी दिन रात
 चमेली सूखज्या तेरी बाग बिराणे मैं
 दुख पड़ेगा भोगणा, मेरा इकसा जोग ना
 मेरा थर-थर कापै गात, चमेली सूखज्या मेरी बाग बिराणे मै।

प्रस्तुत रागनी में बेमेल विवाह पर करारा व्यंग्य है, क्योंकि बराबर के पति के अभाव में ही यौवनाक्रांत युवती अपनी कामाग्नि के शांत न होने के कारण ही कुकर्मरत होने की ठानती है। इस प्रकार के सांगों में पहले शृंगार का उभार दिखाकर फोड़े को पकाया जाता है। फिर धर्मादर्श का चीरा लगाकर वासनाओं का विरेचन करके लोकमानस का परिष्कार किया जाता है। उन सामाजिक परिस्थितियों का अच्छा चित्रण किया जाता है जिनके साए में अनाचार एवं व्याभिचार पनपकर समाज को दूषित एवं भ्रष्ट करते हैं।

पं० लखमीचंद द्वारा रचित सांग 'पूर्ण भगत' में मौसी की प्रणय मनुहार के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस सांग में भगत पूर्णमल की मौसी (सौतेली माँ) रानी नूणादे उसके रंग-रूप तथा जवानी को देखकर अपनी सुध-बुध भूल जाती है और क्या कहने लगती है—

करदे पूरी आस बणै नै मेरी नणद का भाई,
 तेरे जैसा मर्द मिलै तै होज्या सफल कमाई
 माता-पिता कै आगै मेरी कुछ ना पार बसाई
 डूब गए माँ-बाप लोभ मैं बुढ़े के संग ब्याही
 कह लखमीचंद बेटा कहगी मैं तन्नै भूल बिसर के।

अपनी मौसी की ये बातें सुनकर पूर्णमल हैरान-सा हो जाता है और कहता है—
 माँ बेटे पै जुल्म करै तूं देख राम के घर नै,
 पति भर्ता एक सार समझती छोटी-बड़ी उमर नै।
 लखमीचंद जिसे कर्म करै के भोगें बिना सैर सै,
 तेरे कैसी बेईमानां का कै बेड़ा पार तरै सै।

आगे पति मिलै ना जोड़ी का जे इसे कर्म करै सै।

नर्क में कूड मिलै कीड़ा की तेरे खाज्यां चूट जिगर नै।

इसी प्रकार पं० लखमीचंद द्वारा रचित सांग 'जैमल-फता' में भी अनमेल विवाह से उत्पन्न भावात्मक असमांजस्य और उसकी विकृतियाँ दिखाई पड़ती हैं। जैमल का मामा अधेड़ उम्र का है और उसकी मामी सोलह साल की। एक दिन उसकी मामी उसके छरहरे और गठित शरीर को देखकर कामासक्त हो जाती है और क्या कहती है—

जोट पति से ना मिलती हम ससुर बहु से लागै
वो बुड्ढा पति मैं स्वासण ब्याता न्युं के मर्या ज्या घिर के
बागडोर ले थाम हाथ मै बण असवार बछेरी का
तेरे रूप की होई रोशनी तूँ चाँद सै रात अँधेरी का
सोलहाँ साल उमर मेरी तेरा मामा उमर बडेरी का
राम भला करै जैमल तेरा मेरे दुःख काटै नै।

लोककवि ने भावात्मक विकृति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। कामांध मामी जैमल से अपनी कामवासना को तृप्त करवाना चाहती है। इसी वासना के वशीभूत होकर वह अपने माता-पिता को भी कोसती है। वह जैमल को कभी बछेरी का सवार और कभी अँधेरी रात का चंद्रमा कहती है। यहाँ पर काम ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध प्रतिशोध और आत्मप्रतिष्ठा के लिए मिले- जुले भावों के सजीव चित्रण किए हैं। प्रस्तुत रागनी में हास्य तब प्रकट होता है, जब पति-पत्नी अपने-आपमें पति-पत्नी की तरह न होकर ससुर और बहु जैसे दिखते हैं। यदि इसके दूसरे पहलू को देखें तो यहाँ कवि ने जीवन के कठोर सत्य को प्रकट किया है। किसी भी युवती के लिए उसकी कामवासना का तृप्त होना अनिवार्य है। इसलिए मामी का जैमल पर आसक्त होना बड़ा ही स्वाभाविक है। वह जानती है कि जैमल उसका हमउम्र है। इस चित्रण में व्यक्ति के मनोभावों और मनोद्वंद्वों का चरमोत्कर्ष है।

जाट मेहरसिंह के द्वारा रचित सांग 'अंजना पवन' में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि समाज का केंद्रबिंदु नारी है, इसलिए नारी को मर्यादाओं में बाँधा गया है। जिस देश की नारी के आदर्श उच्च हैं, उस देश की संस्कृति, पारिवारिक जीवन एवं सामाजिक व्यवस्था भी उच्च होती है। यही कारण है कि भारतीय नारी की महत कामना 'माँ' बनना है, तो उसका आदर्श है—पातिव्रत्य। समाज तथा परिवार की लांछनाओं को सहती हुई भी वह मार्गभ्रष्ट नहीं होती। सांग की नायिका अंजना की सास उसे प्रताड़ित करती है—

आगा-पाच्छा देख्या कोन्याँ लूटे सै रंग ठाठ तनै,

डूब गई बेहूदी अंजना कर दिये बारह बाट तनै।

इतना ही नहीं, अंजना की सास उसे घर से निकाल देती है फिर भी अंजना पथ-भ्रष्ट नहीं होती। हरियाणा की संस्कृति में परिवार का सामाजिक-स्तर नारी-चरित्र के आधार पर ही आँका जाता है। इसलिए अंजना अपनी सास के सामने अपनी विवशता का वर्णन इस प्रकार करती है—

एक दिन जागा भेद पाट तू कद लग ठकैगी,

कित जागी इज्जत, बाहर मनै जब दुनिया तकैगी

मेहरसिंह थारी धज्जा कति धरती मै टिकैगी

मैं तै लिकड़ ज्यागी पर या दुनिया मत नै बकैगी
कोए घर मैं कमी थी ज्याँ तै भाजगी बहू फलाने की।

पं० लखमीचंद ने अपने सांग 'नौटंकी' में कुलटा, असंस्कारित और अमर्यादित स्त्रियों के बारे में वर्णन करते हुए कहा कि वे अपने मुख से हर समय अपवचन कहती रहती हैं, जिससे उनका जीवन और पारिवारिक परिवेश अशांत हो जाता है, परिवार में कलह का जन्म होता है—

गए घरां की बहु और बेटी गैरौं के घर जाणां
रांड नपूति कहै बेटी नै बेटे नै मर जाणां
आए-गए की शर्म करै ना कायदे तै गिर जाणां
बालम नै कहै उत-डेढ़ ना किसे तै शरमाणा
जो जेठ-देवर तै करै लड़ाई वों कुणबा खाणी हो सै।

लेकिन पं० लखमीचंद ने पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा करते हुए यह भी बताया है कि पतिव्रता स्त्री के आचरण से पूरा परिवार सुखी हो जाता है और परिवारों के सुख से समाज सुखी हो जाता है। इसका कितना स्वाभाविक और प्रामाणिक रूप प्रस्तुत किया है—

सावित्री नै धर्म के कारण पति जिवा लिया मरता
सीता पत्नी श्री रामचंद्र की जनक पिता ना धरता
कुटुंब के दुख मै पांडों का कुणबा रहा बण मै फिरता
उसके पति दास बने खुद दासी बणी इसी हों सैं पतिव्रता
कीचक से सिर-मार मरे ना पड़ी धर्म मैं खामी।

ज्यों-ज्यों औद्योगिक और वैज्ञानिक स्तर पर विकास हुआ, त्यों-त्यों अध्यात्मिक स्तर पर समाज हासोन्मुख होता गया। हम पश्चिमी सभ्यता के रंग में इस तरह रँगते गए कि अपनी संस्कृति से विमुख होते चले गए। सामाजिक जीवन में धर्म एवं शक्ति आदि भावों का लोप होता गया। स्वभावतः लोगों में धर्म-अधर्म पाप-पुण्य का विवेक नहीं रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी लोग दुखी हो गए और तरह-तरह की व्याधियों ने घेर लिया। आचार-विचार सर्वथा उपेक्षित हो गए। आचार विहीनता का साम्राज्य हो गया। लोगों में कर्तव्य-भावना नष्ट हो गई। हमारे सामाजिक रिश्ते तार-तार होने लगे। सामाजिकता पर व्यक्तिवादी विचारधारा हावी होने लगी। समाज के बदलते मूल्यों का चित्रण पं० माँगरामजी के व्यंग्य रूपी बाणों में इस प्रकार है—

दया-धर्म सब जा लिए जा लिए दीन ईमान
जमाने कैकरी किसे रंग दिखा दिए हो
बीर-मर्द आपस कै माह धोखा करकै करते बात
न्यारी-न्यारी गाँठ सबकी खाणा-पीना एक साथ
आपस कै मा बोलै कोन्या काम करै दिन रात
बुद्धा बोल्या छौरे नै लेरया सुं भतेरा माल
मेरे गेल्याँ न्यारा होज्याँ, खूब दयूगा लते-चाल
फागन मै तन्ने घी दे द्यूगाँ छोरयाँ गेल्या कीरए आल
छोरा-बहु बहका लिए फेर बुड्ढे तेरी श्यान

इसी प्रकार लोककवि हरिकेश पटवारी भी समाज की दयनीय अवस्थाओं के लिए

परमात्मा को ही जिम्मेदार मानकर करारा व्यंग्य करने से नहीं चूके। यथा—
 भूखे मरते भगत ऐश करते ठग चोर जुआरी क्यूं
 फेर भगवान तनै न्याकारी कहती दुनिया सारी क्यूं।
 नशे विषय मैं मस्त दुष्ट सुख की निद्रा सोते देखे,
 सतवादी सतपुरुष भूख मैं जिंदगानी खोते देखे
 एम०ए० बी०ए० पढ़े-लिखे सिर पै बोझा ढोते देखे
 महालंठ अनपढ़ गँवार कुर्सी नसीन होते देखे
 फुहड़ जामैं बीस एक नै तरसै-चातर नारी क्यूं।

इस प्रकार समाज और सरकार का खोखलापन दिखाकर ये लोकनाट्य बिना किसी व्यक्तिगत दंड-विधान के समाज में आनेवाले निषिद्ध तत्त्वों पर कड़ी निगरानी रखते हैं। किसी वर्ग-विशेष के आलोच्य पात्रों का ऐसा अभिनय प्रस्तुत किया जाता है कि निर्दिष्ट व्यक्ति स्वेच्छा से ही उन विकारों से मुक्त हो जाते हैं, जो समाज के लिए अहितकार हों। अतः कहा जा सकता है कि श्रेय-प्रेय का मंजुल मेल प्रस्तुत करना ही इन लोकनाट्यों का उद्देश्य है।

संदर्भ

1. डॉ० पूर्णचंद्र शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली ह०सा०अ०, पृ० 9
2. डॉ० जगदीशनारायण, हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष, पृ० 35
3. जगदीश चंद्रमाथुर, भारतीय सहित्य वर्ष 10 अंक 1-2, पृ० 4
4. सप्तसिंधु (गंगाजमनी लोकमंच), सितंबर 1976, पृ० 38
5. रघुबीर मयाणा, पं० मांगेराम ग्रंथावली, पृ० 48
6. डॉ० पूर्णचंद, हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, पृ० 21
7. शुकदेवस्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्नकोष' (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 83
8. शुकदेवस्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्नकोष' (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 84
9. डॉ० बिजेंद्रसिंह, हरियाणा के सांगों में सौंदर्य-निरूपण, पृ० 216
10. रामफल चहल, रघुवीरसिंह मथाना, फौजी मेहरसिंह, पृ० 54
11. शुकदेव स्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्नकोष' (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 289
12. शुकदेव स्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का 'रत्नकोष' (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 47
13. रघुवीरसिंह मथाना, कवि शिरीमाण, पं० मांगेराम, हरियाणवी ग्रंथावली, पृ० 68-69

□ गाँव व डाकखाना सेरधा
 जिला कैथल (हरियाणा)
 मो० 9315413408

हरियाणा के सांगों में मानवीय सौंदर्य

डॉ० बलजीत सिंह

सहायक प्रवक्ता, (हिंदी विभाग)

आर०के०एस०डी० कॉलेज०, कैथल (हरियाणा)

हरियाणवी सांगों में मानवीय सौंदर्य का चित्रण खूब दिखाई पड़ता है। मानव विधाता की अन्यतम, अनुपम एवं अद्वितीय रचना है। 'मानव के भव्य सौंदर्य के समक्ष तो प्रकृति का निष्कलुष सौंदर्य भी तुच्छ लगने लगता है।' यही कारण है कि पंत जी निस्संकोच भाव से कहते हैं—

सुंदर है विहग, सुमन सुंदर
मानव तुम सबसे सुंदरतम
निर्मित सबको मधु सुबभाते
तुम निखिल सृष्टि में चिरनिरूपम।

मानव सौंदर्य के भीतर यदि एक नारी का कोमल कमनीय रूप आता है, तो दूसरी ओर पुरुष का भव्य एवं ओजस्वी रूप। एक ओर बाल-वृंद की निश्चित मुस्कान मन को मोह लेती है, तो दूसरी ओर मदमाता यौवन आकर्षक केंद्र बन जाता है। मानवीय सौंदर्य के प्रमुख आधार नारी और पुरुष अपनी-अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण भिन्न-भिन्न आकर्षण रखते हैं। प्रसाद जी ने दोनों के व्यक्तित्व के प्रमुख अंतर को इस प्रकार व्यक्त किया है।

कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा। अतः कवियों ने नारी के बाह्य सौंदर्य को अधिक महत्त्व दिया है। नारी पुरुष के व्यक्तित्व संबंधी गुणों पर ही मोहित होती है। वही पुरुष सुंदर माना जाता है, जो ओजस्वी, शूरवीर तथा दृढ़ सकल्प होता है। यद्यपि बाह्य आकार का हृष्ट-पुष्ट होना भी आवश्यक है क्योंकि वह भी व्यक्तित्व का एक गुण होता है।

'नारी में सृष्टि की रम्यतम उपकरणों के सौंदर्य का निचोड़ है।' कवि समस्त सृष्टि के सुंदरतम उपकरणों से उसकी काया का निर्माण करता है। वह कभी उसे स्वर्गलोक की अप्सरा के रूप में प्रतिष्ठित करता है, तो कभी देवी रूप में। सूफी कवि तो उसे परमात्मा का प्रतीक मानते हैं। पुरुष तथा नारी के शारीरिक सौंदर्य के अतिरिक्त उनके विचारों एवं आचरण के आधार पर उनमें वैचारिक एवं आचारिक सौंदर्य को भी उनके व्यक्तित्व में सम्मिलित किया जाता है।

शारीरिक सौंदर्य

शारीरिक सौंदर्य मनुष्य को अनायास ही मोहित कर लेता है। प्रायः सभी सांगियों ने नायिका का नख-शिख वर्णन किया है। इसी प्रकार पुरुष के भी विभिन्न स्थूल अंगों का चित्रण

विभिन्न उपमानों द्वारा किया है। सांगो की अभिव्यंजना शैली आत्मपरक और वस्तुपरक दोनों प्रकार की है। सब कुछ कवि के माध्यम से घटित होता है। हरियाणा के लोककवियों ने अपने प्रदेश की संस्कृति रीति-नीति परिवेश और इन सबसे अधिक लोकमानस को ध्यान में रखकर उनका निर्वाह किया है।

नारी पात्रों का सौंदर्य

पं० लखमीचंद ने अपने सांग 'पद्मावत' में पद्मावत का सौंदर्य-चित्रण बड़ा ही आकर्षक किया है—

कारिगर करतार तनै किसी सूरत घड़ी सै न्यारी,
लाम्बी गर्दन आँख कटीली मुखड़े की छवि प्यारी,
चाल चलै जणूं हंस ताल के, पल मै लेत उडारी,
इतर की खुशबू छूट रही, जणूं रुत पै केस्सर क्यारी,
उजले दाँत बोल मीट्टे, जणूं घी घल ग्या सक्कर मै।

कवि ने रूप-चित्रण में वस्तुत्प्रेक्षाओं का चित्रण किया है। एक अन्य रागनी में पद्मावत अपनी हमउम्र सहेलियों के साथ पूरा शृंगार करके दोघड़ सिर पर उठाए गीत गाती हुई तालाब में स्नान के लिए जाती है।

कट्टी होकै नहाण चालैगी, दौघड़ धरल्यो सिर पै,
गीत गावती चालैगी, थम लगन लगाल्यो हर पै।
सिर चोट्टी कर लगा बोरला, साज और डांडे बाली,
आंख्या स्याही मस्तक बिंदी, जुल्फ नाग-सी काली,
सिर के उप्पर चीर हजारी ज्यूं मद जोबन का पाली,
दाम्मण उप्पर पड़ी तागड़ी, झब्बे के मांह ताली,
घूर चलण द्यो हूरां आली, पड़ै तबाही नर पै।

ऐसे स्वाभाविक और जीवंत चित्रण से दर्शकों के मन का साधारणीकरण अनायास ही हो जाता है। लोककवि ने हरियाणवी आभूषणों—बोरला, डांडे, बाली, बिंदी, दामन ऊपर तागड़ी आदि का अद्वितीय वर्णन किया है। सांग 'ज्यानी चोर' की ये पंक्तियाँ सौंदर्य वर्णन की पराकाष्ठा-सी मालूम होती हैं।

छम-छम छननन करकै चाली,
फेर मारण की अदा बण ली,
दो नैन्ना मै स्याही काल्ली,
लाल रूकसार गजब की मार,
गोल मुँह बटवा-सा गोरा।

यहाँ पर लोककवि ने आँखों के डोरे की तुलना तलवार की धार से करके नायिका के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा दिया है। सांग 'लैला मजनू' में पं० मांगेराम ने लैला के सौंदर्य को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है—

काले बाल घटा सी दीखै लटके थी चोटी,
मिरगां नैनी शान की सुथरी आँख इसी मोटी,

जवानी में भरपूर हूर कती मार नहीं जा ओटी
ठीक उम्र से बात करै तै ना बड़ी ना छोटी
जोबन का चिमकारा लागै ज्यों बिजली गंगन मै
मीठी-मीठी बोली जणू रही कोयल बोल चमन मै
लाखा के मां एक अलग से सुभरी फूलझड़ी।

सांग 'रेशमी सलवार कुर्ता जाली का' में चंद्रलाल भाट ने नायिका के सौंदर्य को इस प्रकार निखारा है—

भोली-भोली शान तेरी और चंद्रमा-सा चेहरा सै।
आज्या लाड़ करूँगा तेरे न्यू राजी जी मेरा सै।
बेहमाता नै हद करदी कैसी शान बणाई
गोल-गोल मुँह लगा दिया और नाजुक नरम कलाई,
भूरा-भूरा पेट हूर का दे रहा रंग रुशनाई
तेरे कैसी इस दुनिया मै ना देखी और लुगाई।

लोककवि ने नायिका की भोली शान तथा मुख चंद्रमा के समान बतलाया है। कवि ने विभिन्न उपमानों का प्रयोग करके अंग लावण्य को चार चाँद लगा दिए हैं। भावोत्तेजन की भी शक्ति आ गई है।

पुरुष सौंदर्य

सांग 'चापसिंह' में पं० लखमीचंद ने पुरुष-सौंदर्य का चित्रण भी बहुत अच्छे ढंग से किया है। यथा—

तू दिवा सै महल हवेली का देखे, चा सै,
घलै तेल जलण नै बाति,
अंधेरा मतना करिए जागी मर मै।

पति के बिना घर और जीवन दोनों में अँधेरा होता है। पति का साथ दीपक के समान है। ऐसे दीपक का दूर होना बड़ा अवांछनीय लगता है। पुरुष-सौंदर्य पर प्रकाश डालते हुए कवि ने उसे प्रकाश का प्रतीक बतलाया है तथा पुरुष के आंतरिक सौंदर्य को जगमगाया है। सांग 'पद्मावत' में पद्मावत की सहेली उसे रणवीर के प्रति प्रेम की प्रेरणा देते हुए, भावी पति का सजीव चित्रण करते हुए कहती है—

पद्मावत सुनले तै कहदयूँ, ख्याल करै मेरी बात का,
सुथरी श्यान गाबरू छोहरा, गोरे-गोरे गात का,
मतना विष का प्याला घूट्टै
सहज बात ना पैडा धुट्टै

मरदा बिन ना धेल्ला उट्टे इन बीरा की जात का।

पुरुष सानिध्य के बिना स्त्री-यौवन की कोई भी कीमत नहीं है। कवि ने यहाँ रणवीर के सौंदर्य को दिखाते हुए पुरुष के महत्त्व को बतलाया है। यह कहावत सत्य है कि स्त्री की शोभा पुरुष के साथ ही होती है। पुरुष के बिना वह शोभाविहीन है। सांग 'लैला मजनू' में पुरुष के सौंदर्य का चित्रण—

गोरा गोरा गात तेरा सै बाँका छैल सिपाही,
चंद्रमा सी शान आपकी आज मेरे मन भाई,
और दिना मै देख दूर तै करती रहु थी बड़ाई,
पर आज तै पहलम आज की तरीया ना हंस के बतलाई,
तनै देख के आज मेरी ना डटती झाल बदन की।

वैचारिक सौंदर्य

वे सभी सुंदर भाव व विचार, जो मानव के मानस को पवित्र एवं शुद्ध करके हृदय को उदार बनाते हैं, वैचारिक सौंदर्य के अंतर्गत आते हैं। जैसे—परोपकार, सहानुभूति, सज्जन-रक्षा, दुष्ट-दमन तथा दया आदि। ये भाव पुरुष एवं नारी दोनों में ही मिलते हैं।

पुरुष एवं नारी पात्र

सांग 'कीचक विराट पर्व' में द्रोपदी और कीचक के बीच हुए वार्तालाप में राजकर्तव्य, प्रजाकर्तव्य, स्त्री-चरित्र और वीर पुरुषों के जीवनमूल्यों का वर्णन है। द्रोपदी कीचक को धर्ममार्ग की याद दिलाते हुए कहती है—

राजा नै परजा तकनी चाहिए, धरम का खाता करकै नै,
मै रैयत बण के शरमाऊं सूं, बाप का नाता करकै नै,
समझणिये राजा नै परजा बेटी कै तुल्य हो सै
राजा पिता समझणा चाहिए रानी माता करकै नै।

इस सांग में द्रोपदी के विचारों में कितनी उच्चता, आदर्श एवं सत्य झलकता है। कवि ने यहाँ वैचारिक सौंदर्य का सुंदर रूप प्रस्तुत किया है।

सांग 'पूर्णमल' में सारी परिस्थितियों से दुखी पूर्णमल अपनी मौसी को मन-ही-मन धिक्कारते हुए कहता है—

माँ बेटे पै जुलम करै, तू देख राम कै घर नै,
पतिवर्ता एकसार जाणती, छोटी बड़ी उमर नै।
अहिल्या, तारा, सीता, सती, अनसूया की गिणती,
दमयन्ती, मद्नावत, हर का, जिकर सदा-सदा सुणती,
कोसल्या-सी पतिवर्ता, सुत रामचंद्र से जणती,
विषै नै त्यागै भजन मै लागै जब पतिवर्ता बणती,
जैसे मीराबाई पार उतरगी, पूज पति पत्थर नै।

कवि ने बहुत सरल भाषा में शुद्ध चरित्र वाली स्त्रियों का वर्णन एवं उनके जनमानस पर पड़ने निर्मल प्रभाव की अभिव्यक्ति की है। कवि ने यहाँ पूर्णमल के द्वारा शुद्ध चरित्र नारियों के उच्च विचारों को प्रस्तुत किया है। सांग 'रेशमी सलवार कुर्ता जाली का' में चंद्रलाल भाट ने परनारी की प्रीत के दुष्परिणाम बताते हुए वैचारिक सौंदर्य पर प्रकाश डाला है—

पर त्रिया की प्रीत बुरी सै जाणै दुनिया सारी
इस त्रिया ने मोह के धर दिये ऋषि मुनि ब्रह्मचारी।
सिंध उपसिंध ये दोनों मोहे मिली तिलोत्मा हँसकै,
भीमसेन नै मिली हिडंबा तीर मारगी कसकै,

सींगी रस दुरवास मोहे चोट कालजे चसकै,
नारद सरीखे डबो दिये थे गई नागनी डसकै,
विश्वामित्र का तप खोया मिली मेनका प्यारी।

आचारिक सौंदर्य

जहाँ शारीरिक सौंदर्य का संबंध मनुष्य के बाह्य आकार से होता है, वहाँ आचारिक सौंदर्य का संबंध मनुष्य के आचरण से होता है। जब व्यक्ति के चरित्र से काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, कपट, असत्य, हिंसा तथा व्यभिचार आदि दोषों का विनाश हो जाता है, तो व्यक्ति का आचरण शुद्ध एवं पवित्र बन जाता है। उसे हम आचारिक सौंदर्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

पुरुष एवं नारी पात्र

सांग हरिश्चंद्र में पं० लखमीचंद ने माता की मनोदशा एवं वात्सल्य को बेटे के प्रति स्नेह दिखाकर उसके आचरण पर प्रकाश डाला है—

आँख्याँ मै तै आसूँ पड़ते जणू बूँद साढ़ के झड़ मैं
जिस दम तै माँ कहया करै था, सांस नहीं तेरे धड़ मैं।
मिल्यां रेत मै टूट के मोती जो रहया करै था लड़ मैं,
दोन्ने मै तै फूल बिखरगै—
तु सुख की निद्रा सौवै,
देख पूत तेरे पालन आली,
जिंदगानी नै खोवै।

सांग 'नौटंकी' में लोककवि अपने नायक से आदर्श गृहिणी की चर्चा करवाते हैं—

पता नहीं नौटंकी हर कोण निभाणी हो सै,
तान्ने दे के रवीझ कढावै बहू अधानी हो सै।
भले घरां की बहू और बेटी, सरम आबरू राक्खै,
माता-पिता और सास-ससुर की धजा शिखर मैं टाक्कै,
आए गए की सरम करै, कदे बुरा वचन ना भाक्खै,
अमरत भर्या रहै जीभां मै जी चाहवै जब चाक्खै
लखमीचंद सेवा खात्तर टुकड़ा पाणी हो सैं।¹³

कवि ने यहाँ अच्छे आचरण के विषय में बताते हुए, आदर्श गृहिणी पर प्रकाश डाला है। सांग 'अजीतसिंह राजबाला' में चंदरलाल भाट ने नायक के आचरण को बड़ी खूबसूरती के साथ अंकित किया है—

राजपूत का छौरा अपनी आन के ऊपर मरता हूँ,
गऊ ब्राह्मण अतिथि सेवा मेहमान के ऊपर मरता हूँ,
बातों के ऊपर मरता हर इंसान के ऊपर मरता हूँ

इसी प्रकार 'राजा वीर विक्रमाजीत खांडेराव परी' में कवि ने नायक के आचरण पर प्रकाश डाला है—

कह के उल्टा नहीं फिरूँगा
सदा आगे नै कदम धरूँगा

हे रै गैरां के दुःख दूर करूंगां मै जिऊंगां इतना हे रै-रै-रै
चाहे कोए मिलजयो मूढ़ अनाड़ी
उसकी भी सोचू ना बात ऊगांडी
हे रै पतली माड़ी मोटी द्यूगां, काम्बल एक लगोंटी द्यूगां
भूखे नै दो रोटी द्यूगां मै जिऊंगां इतनै, हे रै-रै-रै

इस प्रकार से लोककवियों ने हरियाणवी सांगों में मानवीय सौंदर्य का चित्रण करके एक कुशल एवं व्यावहारिक, सामाजिक, दयालु, कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ आदि सभी गुणों से युक्त नायक एवं नायिकाओं का चित्रण प्रस्तुत किया है। ताकि लोकसमाज इनसे शिक्षा ग्रहण करके अपना जीवन सफल बना सके।

संदर्भ

1. डॉ० ललिताप्रसाद सक्सेना, मंझन का सौंदर्य-दर्शन, पृ० 37
2. सुमित्रानंदन पंत, पल्लविनी, पृ० 249
3. जयशंकर प्रसाद, अजातशत्रु, पृ० 122
4. डॉ० ललिताप्रसाद सक्सेना, मंझन का सौंदर्य-दर्शन, पृ० 39
5. श्री शुकदेवस्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का रत्न कोष (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 270
6. श्री शुकदेवस्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का रत्न कोष (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 265
7. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 159
8. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 341
9. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 649
10. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 397
11. श्री शुकदेव स्वरूप, पं० लखमीचंद सांगी का रत्न कोष (तृतीय संस्करण, 2001), पृ० 84
12. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 541
13. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, पं० लखमीचंद ग्रंथावली, पृ० 102

□ गाँव व डाकखाना सेरधा
जिला कैथल (हरियाणा)
मो० 9315413408

मुक्ति का रहस्य : संवेदना एवं शिल्प

काशीनाथ (शोधछात्र)

डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी (शोध निर्देशिका)

पूर्व रीडर (हिंदी विभाग)

आर०पी०पी०जी० कालेज, मीरगंज, बरेली

‘मुक्ति का रहस्य’ नाट्यकृति में पं० लक्ष्मीनारायण जी का उद्देश्य नारी और पुरुष की चिरंतन कामवासना का चिंतन प्रस्तुत करना रहा है। ‘मुक्ति का रहस्य’ समस्याप्रधान सामाजिक नाटक है। इसी मुख्य संवेदना को आधार बनाकर कथानक का गठन हुआ है।

कथानक का प्रारंभ उमाशंकर के घर पर आशादेवी और डॉ० त्रिभुवननाथ के वार्तालाप से होता है। आशादेवी और उमाशंकर परस्पर हृदय से प्यार करते हैं। उमाशंकर मौन-प्रेमी होने के कारण अपने व्यवहार अथवा बातचीत से कभी भी प्रेम को व्यक्त नहीं होने देते। आशादेवी सोचती है कि जब तक उमाशंकर की पत्नी जीवित है वह उनको पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सकती। वह अपने मार्ग में उमाशंकर की पत्नी को कंटक मानकर उसे मारने के प्रयास में लग जाती है। वह उमाशंकर के मित्र डॉ० त्रिभुवननाथ से विष माँग लेती है और उस विष को अवसर पाकर उमाशंकर की पत्नी को पिला देती है। उमाशंकर की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। आशादेवी उमाशंकर के घर पर ही रहने लगती है। इससे उमाशंकर के चाचा काशीनाथ उनसे बहुत क्रोधित हो जाते हैं और संबंध विच्छेद कर देते हैं।

उधर डॉ० त्रिभुवननाथ आशादेवी की ओर आकर्षित होते हैं। वे भी अपनी वासनापूर्ति करना चाहते हैं। आशादेवी उनके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। इस पर वे आशादेवी को उमाशंकर को वह पत्र दिखा देने की धमकी देते हैं, जिसे भेजकर उन्होंने उनकी दुकान से विष माँगा था। आशादेवी को डॉ० त्रिभुवननाथ से मुक्ति का कोई मार्ग नहीं सूझता। वह स्वयं को डॉ० त्रिभुवननाथ की दया पर छोड़ देती है। डॉ० त्रिभुवन उनके साथ वासनापूर्ति करते हैं। आशादेवी के मन में पश्चाताप और ग्लानि उत्पन्न होती है। उसकी आत्मग्लानि इस सीमा तक पहुँच जाती है कि प्रायश्चित्त का अन्य कोई उपाय न देखकर स्वयं विषपान कर लेती है। इस अवसर पर डॉ० त्रिभुवननाथ आ जाते हैं और वे उसे शीघ्र ही अस्पताल ले जाते हैं। आशादेवी के प्राणों की रक्षा हो जाती है। डॉ० त्रिभुवननाथ में विवेक जाग्रत होता है। यह समझकर कि उनके कारण ही आशादेवी ने विषपान किया है वह बहुत दुःखी होते हैं। वे आशादेवी से अपन अपराधों की क्षमा माँगते हैं।

आशादेवी डॉ० त्रिभुवननाथ के साथ रहने का ही प्रस्ताव उनके समक्ष रखती है, क्योंकि उनके द्वारा ही वह पतित हुई और उमाशंकर के योग्य नहीं रही। अब वह उनसे क्षमा माँगकर डॉ०

त्रिभुवननाथ के साथ ही रहने का निश्चय करती है।

आशादेवी उमाशंकर के समक्ष उपस्थित होती है और बतला देती है कि उनकी पत्नी को उसने ही जहर दिया है और इसी कारण उसकी मृत्यु हुई है। उमाशंकर आशादेवी को क्षमा करने और आजीवन उनके साथ-साथ रहने की बात कहते हैं। आशादेवी असमर्थता व्यक्त करती हुई कहती है कि अब वह उनके योग्य नहीं रही। वह यह भी बता देती है कि उनकी पत्नी की मृत्यु के रहस्य को गुप्त रखने के लिए वह अपना शरीर डॉ० त्रिभुवननाथ को अर्पित कर चुकी है। वह उमाशंकर से कहती है—‘तुम मेरे उपास्यदेव हो...तुम्हें छूने का भी अधिकार अब नहीं... और फिर अब मैं डॉ० को प्रेम करने लगी हूँ। मेरे लिए वह पहले पुरुष....।’¹¹

उमाशंकर यह सुनकर पहले तो भावावेश में डॉ० त्रिभुवननाथ से इस विश्वासघात का प्रतिशोध लेने के लिए बढ़ते हैं, किंतु आशादेवी के समझाने पर शांत हो जाते हैं। अंत में वे आशादेवी को डॉ० त्रिभुवननाथ से विवाह करने की अनुमति देते हैं।

‘मुक्ति का रहस्य’ नाटक का शिल्पगत वैशिष्ट्य

‘मुक्ति का रहस्य’ की भाषा सहज, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। स्पष्टता और सरलता के साथ जीवन की गहराइयों तथा दार्शनिक मतवादों को सुलझाने के लिए लेखक ने सीधी सरल भाषा का प्रयोग किया है। मिश्रजी की भाषा संस्कृतनिष्ठ न होकर सामान्य बोलचाल की भाषा है, जिसमें अँग्रेजी और उर्दू के शब्द मिलते हैं, जोकि सहज ही स्वाभाविक रूप में प्रयोग में आ गए हैं। उदाहरणार्थ—‘तुम्हें समय कहाँ हैं ? दिन भर कचहरी में मुंसिफ साहब, जज साहब, मुहरीर साहब या शायद मुक्किल साहब भी। रात भर घर में, माँ-बाप, बाल-बच्चे, इधर-उधर की गप-शप। एक बार क्षण भर इससे ऊपर उठकर देखो तब मालूम होगा वेदांत क्या हैं? दुनिया तुम्हारे लायक है और तुम दुनिया के लायक हो, इसलिए तुम वेदांत नहीं समझते। जिस दिन तुम दुनिया के लायक नहीं रहोगे या जिस दिन दुनिया तुम्हारे लायक नहीं रहेगी, उस दिन तुम वेदांत समझोगे। या उस दिन तुम वेदांत छोड़कर और कुछ नहीं समझोगे।’¹²

मिश्रजी ने ‘मुक्ति का रहस्य’ में उर्दू के उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है, जो सामान्य बोलचाल के शब्द हैं, जिनका प्रयोग हम नित्यप्रति के व्यवहार में करते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—‘इतनी हैरान क्यों दीख पड़ती हो...मैं...शायद...हाँ घर वालों से नाता तोड़कर पुश्तैनी जायदाद को लात मारकर, मैंने युग का आज सच्चे दिल से स्वागत किया है। जिसमें मनुष्य केवल मनुष्य होगा। इस पुरानी इमारत की नींव से मैंने एक ईंट निकाल ली है। मैं गिराना चाहता हूँ बनाने वाले दूसरे होंगे।’¹³

मिश्रजी ने अँग्रेजी के कतिपय अत्यंत प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द कहीं तो मूल रूप में मिलते हैं और कहीं हिंदी की प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित रूप में। जैसे—

‘कमरे में इस ओर आकर एक कुर्सी खींचकर आशा के पास बैठते हैं। जगई का प्रस्थान। डाक्टर बढ़िया सूट पहने एक हाथ में फेल्ट हैट और दूसरे में छड़ी लिए जैसे सिविल सर्जन से मिलने निकले हों। डॉक्टर साहब की दाढ़ी मूँछ सफ़ाई से बनी है। पाउडर, क्रीम और वाले टाइन सेंट इत्यादि, बहुत सी चीजों से यह पता चलता है कि डाक्टर साहब इसी पीढ़ी के उस विकृत हृदय और विकृत मस्तिष्क युवकों में हैं, जिन्होंने साहब बनने के शौक में संस्कार, चरित्रबल या

ऐसी सभी बातें जो मनुष्य को पशुत्व से ऊपर उठाए रहती हैं, छोड़ दिया है, जो प्रवृत्तियों के गुलाम हैं। सारांश यह है कि डाक्टर साहब इसके उन लोगों में हैं, जिनके भीतर भारतीय पतन की चरम दशा दीख पड़ती है।⁴

मिश्रजी ने 'मुक्ति का रहस्य' नामक नाटक में सरल एवं शुद्ध भाषा का प्रयोग किया है। नाटक के अधिकांश भाग की भाषा सरल है। सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा है। उमाशंकर, आशादेवी, त्रिभुवननाथ, वेनीमाधव आदि सभी की भाषा सरल और सुबोध है। विषय की दृष्टि से कहीं-कहीं विलगता के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ—

काशीनाथ : गलत हो वकील साहब तो गुजर कैसे हो? कोई रियासत तो है नहीं, दिन-रात मेहनत कर कमाता रहा और इनके पढ़ने का खर्च देता रहा। एक जोड़े जूते में जहाँ मेरा साल कटता था, वहाँ इनको आठ जोड़े लगते थे। मैं समझता था कोई अच्छी नौकरी पा जाऊँगे, इज्जत से रहेंगे, मेरी भी इज्जत बढ़ेगी। बार-बार कहा 'सुराज' के फेर में न पड़ो। गाँधी बनियाँ हैं, उसकी बात में न आओ। अँग्रेज न रहेंगे तो हमारे आसामी हमें लूट लेंगे। कौन सुने? कितनी मेहनत से डिप्टी कलक्टर दिलाया। खट से इस्तीफा दे दिया और इज्जतदार के लड़के होकर चक्की पीसने जेल खाने गए। दो वर्ष के बाद निकले भी तो (मनोहर की पीठ पर हाथ रखकर) इसकी माँ के रहते ही एक फाइला औरत को रख लिया। आज ही कलक्टर साहब कहते थे उस औरत को हटाकर उन्हें घर ले जाइए। आप लोग तो कहते ही थे, अब अफसर भी कहने लगे। कहिए न। मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँ।⁵

मिश्रजी ने नाटक की भाषा को अधिक सजीव बनाने के लिए व्यंग्यात्मक कथनों को भी नाटक में स्थान दिया है। व्यंग्यात्मक कथनों के माध्यम से मिश्रजी ने रूढ़ियों और मिथ्याडंबरों का खंडन कर समाज को जागरूक किया है। नाटक में व्यंग्य अत्यंत कटु और तीक्ष्ण भी हो गए हैं। अवलोकनीय है—'समाज में बुराई इसलिए बढ़ रही है कि दस-पाँच गुमराह जो सोचते हैं कि उन्हीं का कहना और सोचना ठीक हो सकता है... सब जगह अपना ही सिक्का देखना चाहते हैं और औरों को न सोचने देते हैं, न कहने देते हैं। इसका नतीजा? ज्यों-ज्यों लोगों का हक छीना जाता... थोड़े आदमियों पर उसका बोझ पड़ता जाता है। वे अब अपना समाज बना लेते हैं। दुनिया की सभी अच्छी चीजें धन, दौलत, पद, मर्यादा सब प्रकार की सुविधाएँ-सुंदर मकान सुंदर सड़कें, एक शब्द में (रुककर) जो कुछ उपयोगी और शानदार सब उनके लिए और बचे हुए... मनुष्य.. जैसे आपन...कहा था...पशु...गँवार...असभ्य...नालायक।'⁶

पात्रानुकूल भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि 'मुक्ति का रहस्य' नामक नाटक के सभी पात्र मध्यमवर्ग के हैं। मनोहर के कथनों में बालसुलभ जिज्ञासा और सरलता है। उदाहरण अवलोकनार्थ प्रस्तुत है—

आशादेवी : सिनेमा चल रही हूँ...मिठाई भी खिलाऊँगी, तमाशा भी दिखलाऊँगी।

मनोहर : कब चलोगी?...चलो...अभी चलो।

आशादेवी : (उसके सिर पर हाथ रखकर) अभी घंटे भर बाद जब रात होगी।

मनोहर : हूँ...तब तो मैं सो जाऊँगा! चलो...अभी-अभी चलो।

आशादेवी : अच्छा यह बताओ मैं तुम्हारी कौन हूँ।

मनोहर : तुम बताओ।

आशादेवी : मैं तुम्हारी माँ हूँ! आज से मुझे माँ कहना।

मनोहर : हूँ, वह तो मर गई।

आशादेवी : कौन कहता है? अपने बाबू जी से पूछ लेना, मैं तुम्हारी माँ हूँ या नहीं?

मनोहर : नहीं हो! मेरी माँ नहीं हो! वह तो मर गई! बाबू जी तो कहते हैं मर गई और मुझे भी याद है—उस दिन दोपहर को (कमरे के बाहर हाथ उठाकर) वहाँ पर कंबल बिछाकर सुलाई गई थी। मुझे जबरन उठा लिया....वह मेरी ओर देखने लगी....मैं रोता ही रहा गया....तुमने मुझे जाने नहीं दिया....वह भी रोने लगी। (ऊपर हाथ उठाकर) फिर वह आसमान की ओर देखती रह गई। लोग उसे उठा ले गए। फिर वह नहीं आई। तुम मेरी माँ नहीं हो। वह मुझे दूध पिलाती थी। अपने साथ लेकर सोती थी।

आशादेवी : मैं भी तो तुम्हें दूध पिलाती है....अपने साथ लेकर सोती हूँ।

मनोहर : तुम तो गाय का दूध पिलाती हो। अपना दूध तो नहीं पिलाती...।⁷

मिश्रजी ने 'मुक्ति का रहस्य' में यथार्थवादी शैली अपनाई है, किंतु एक दो स्थानों पर अपवाद रूप में ऐसे कथन मिलते हैं, जिनमें भावात्मकता मिलती है। ऐसे स्थलों पर वर्णन अत्यंत काव्यमय हो गए हैं। एक उदाहरण देखिए—

‘मैं भाग जाऊँगा...जहाँ फिर कभी उनके सामने न आ सकूँ। आज की रात नहीं... आज की रात नहीं...कल मैं कही जाऊँगा। (उसकी ओर देखते हुए) मेरी रक्षा कीजिए...कल...कल कह दीजिएगा ओह! जब वे मेरी ओर देखेंगे। आज नहीं...कल ...उनकी आँखों से आग निकलेगी...मैं जलने लगूँगाआज नहीं...आज नहीं...(स्वर के साथ ही साथ उसका सारा शरीर काँपने लगता है)'⁸

निष्कर्ष : समस्या नाटक की दृष्टि से 'मुक्ति का रहस्य' नामक नाटक की भाषा सरल व्यावहारिक है तथा शैली यथार्थवादी है। जो पात्र समाजसेवक के रूप में आते हैं उनके कथोपकथन कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक लंबे हो गए हैं। इस प्रकार की शैली नाटक की अभिनेयता की दृष्टि से अधिक सफल नहीं कहीं जा सकती।

संदर्भ

1. मुक्ति का रहस्य, पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र नाटक रचनावली भाग-2, डॉ० विश्वनाथप्रसाद, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृ० 185
2. वही, पृ० 152
3. वही, पृ० 158
4. वही, पृ० 142
5. वही, पृ० 155
6. वही, पृ० 177
7. वही, पृ० 140
8. वही, पृ० 181

सुपुत्र स्व० श्रीकृष्ण
मोहल्ला गढ़ी पश्चिमी, कस्बा-काँठ
तहसील-सदर (शाहजहाँपुर) 242223
मो० 09794228276

निबंधकार जयनाथ 'नलिन'

सत्यपाल

एक सच्चा साहित्यकार अपने रचना-कर्म के द्वारा संसार पर परोपकार करता है या फिर यूँ कह लीजिए कि उसके साहित्यिक कर्म के पीछे निहित उद्देश्य जन-कल्याणकारी भावना है। अपने भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए निबंध एक महत्वपूर्ण विधा है। इस विधा में अनेक विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है। निबंध-लेखन-परंपरा में श्री भारतेन्दु हरिश्चंद्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालमुकुंद गुप्त, आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेंद्र व डॉ० जयनाथ 'नलिन' का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। डॉ० जयनाथ 'नलिन' भी हिंदी-निबंध-लेखन क्षेत्र के हस्ताक्षर हैं। इन्होंने निबंध-लेखन को अनेक नई मान्यताएँ व नई स्थापनाएँ देकर इस विधा को समृद्ध किया है।

निबंध का अर्थ व परिभाषा

'संस्कृत की मूल धातु 'बंध' में 'नि' उपसर्ग (नि+बंध) लगाकर निबंध शब्द का निर्माण हुआ।¹ निबंध शब्द का शाब्दिक अर्थ है-गठा हुआ, कसा हुआ, बंधन मुक्त।² 'साधारणतः लेख, रचना, संदर्भ, प्रबंध और निबंध ये शब्द पर्यायवाची हैं, परंतु व्युत्पत्ति और प्रयोग के विचार से इनमें समानता और विषमता का अस्तित्व पाया जाता है।'³ डॉ० जयनाथ 'नलिन' ने निबंध-संबंधी अपनी परिभाषा इस प्रकार दी है, 'निबंध गद्य-काव्य की वह मर्यादित विधा है, जिसमें लेखक के स्वाधीन चिंतन और निश्छल अनुभूतियों की सरल-सजीव अभिव्यक्ति है।'⁴ यह भी कहा जा सकता है कि निबंध में अनुभूतियों तथा विचारों का कलात्मक चित्रण वैयक्तिकता से जुड़ा होता है।

कला का अर्थ एवं परिभाषा

कला शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल से ही भारतीय भाषाओं में होता आया है। शिल्प शब्द को कला का पर्याय माना गया है, 'जो कि अँग्रेजी के 'आर्ट' शब्द के भावार्थ के समीप है। आर्ट शब्द प्राचीन लैटिन भाषा के आर्स 'ते' शब्द से बना है, जिसका ग्रीक रूपांतर है (Teyvn)। इसे ही संभवतः प्लेटो ने टेकने (Techne) लिखा है। इस शब्द का प्राचीन अर्थ साधारण शिल्प (क्राफ्ट) अथवा नैपुण्य-विशेष है। इस शब्द में मात्र शिल्प बोध था, किंतु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त शब्द 'कला' में काव्यकला प्रभृति ललित कलाओं को भी समाविष्ट करने की अर्थ गरिमा है।'⁵ डॉ० जयनाथ 'नलिन' के अनुसार, 'जीवन के उस माधुर्य को कला कहना चाहिए, जो हमें भौतिक और मानसिक उल्लास, आनंद की उपलब्धि कराएँ।'⁶ कला मानव द्वारा निर्मित सुंदर उपादान है। कला वह, जो आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाती है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना कला की विशेषता है।

जयनाथ 'नलिन' की निबंध-कला

साहित्यकार द्वारा अपनी अनुभूति को सुंदर बनाकर अपनी रचना के लिए प्रयोग में लाना ही कला है। यह कलात्मक रूप देने का काम सुंदर शिल्प द्वारा ही संभव है। कला की दृष्टि से 'नलिन' जी के निबंध बड़े सारगर्भित एवं विविधतापूर्ण हैं। ये शैली व शिल्प-कला के अंतर्गत ही समाविष्ट होते हैं। इस दृष्टि को आधार मानकर 'नलिन' जी के निबंधों के अनेक वर्ग बनाए जा सकते हैं।

1. विचारात्मक निबंध

इस प्रकार के निबंधों में मस्तिष्कीय व्यायाम पर बल दिया जाता है अर्थात् विचारों की प्रधानता पर। इन निबंधों में भाव पक्ष गौण होता है और बुद्धि पक्ष प्रमुख। ऐसे निबंधों में निबंधकार का चिंतन-मनन एवं सजग मस्तिष्क झलकता है। 'नलिन' जी के निबंध 'काल' में विचार तत्त्व की प्रधानता है। इस संसार में कोई गरीब हो या अमीर राजा हो या रंक समय के चक्र से बच नहीं पाया है। समय काल के रूप में बड़े-बड़ों को भी ग्रस लेता है। उसके समक्ष मनुष्य निःसहाय है। इस निबंध में समय का शक्तिशाली रूप विचारणीय है। यथा- 'समय की छलनी सब कर्मों को छान देती है। जो कर्म हीरों से चमकीले और काल की छलनी से बहुत बड़े दीख रहे हैं, समय आने पर वे पिस-पिस कर धूल के कण बन जाते हैं और बरसात की बाढ़ में ऐसे घुल जाते हैं कि बारीक-से-बारीक जाल भी उन्हें खोज नहीं ला पाते।'

यह सत्य है कि मनुष्य समाज से विमुख होकर जीवन-यापन नहीं कर सकता। उसे अपना दैनिक जीवन जीने के लिए किसी व्यापार या रोजगार की आवश्यकता होती है। भिखारी व्यक्ति साधनहीन होता है। वह आपको दान के बदले दुआएँ देता है, क्योंकि उसके पास आपको देने के लिए कुछ नहीं होता। दुआएँ आपके प्रति कृतज्ञता का भाव है, कोई वस्तु नहीं। 'नलिन' जी के निबंध- 'पेशा, पैसा और पुण्य' में इस व्यापार पर विचार द्रष्टव्य है-

'पेशा या व्यवसाय वह कर्म है, जिसके माध्यम से व्यक्ति पैसा कमाता है। पैसे से वह अपनी और समाज की आवश्यकताएँ पूरी करता है। भिक्षा पेशा नहीं, भिखारी पैसे के बदले में कोई पदार्थ नहीं देता-कोरी दुआएँ, पदार्थ नहीं।' मनुष्य अपने कार्य की सिद्धि हेतु खुशामद का सहारा लेता है। उसकी यह स्थिति अवसरवादिता व स्वार्थपरकता की होती है। वह अपने कार्य-सिद्धि के लिए जिस व्यक्ति की खुशामद करता है, उसके अवगुणों को दरकिनार कर उसको झूठी प्रशस्ति से लुभाता है। वह खुशामद करते समय गुणीजनों के प्रति भी अपशब्द प्रयोग करता है जो निंदा की श्रेणी में आती है। 'नलिन' जी के निबंध 'खुशामद' में मनुष्य के स्वाभाविक मनोविकारों पर दृष्टिपात हुआ है। यथा-

'खुशामद के ठीक मनोवृत्ति है निंदा। खुशामद में आलंबन के अवगुण भी गुण का चोला पहनकर आते हैं और आलंबन के उन अवगुणों की भर्त्सना, जो उसमें है ही नहीं, निंदा है।'

2. भावात्मक निबंध

भावप्रधान निबंधों में निबंधकार के हृदय की उदात्त अनुभूतियों, तीव्र भावनाओं और भावुकता का सुंदर योग रहता है। इसमें भाव-पक्ष पर बल और विचार-पक्ष को थोड़ा विराम दिया जाता है। इसमें रागात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है।

'नलिन' जी के निबंधों में हृदय के कोमल भावों को प्रमुखता मिली है। प्रेम की

सारगर्भित व संतुलित परिभाषा इनके निबंध 'निज को प्यार करो' में अंकित है—

'किसी के प्रति हमारी रागात्मक वृत्तियाँ या भावनाएँ क्यों खिंचती हैं? सीधा-सा जवाब है, हम उसे प्यार जो करते हैं। प्यार है क्या: यही मिलन-विछोह में दुःख-सुख की अनुभूति।'¹⁰

मनुष्य की सच्ची सामाजिकता के दर्शन उसके शीलयुक्त स्वभाव में होते हैं। उसका विराट उदार हृदय मानवता के लिए सुंदर उदाहरण बनता है। वह अपने जीवन में 'वसुदैव कुटुंबकम्' के सिद्धांत की पालना करता है। उसकी समदृष्टि में न कोई छोटा-बड़ा होता है और न कोई ऊँच-नीच। वह मानवता-विरोधी तत्त्वों से परहेज करता है और वह समाज को नई चेतना व नई दिशा प्रदान करता है। 'नलिन' जी के निबंध 'शील-शक्ति-सौंदर्य' में शील भाव का सुंदर प्रयोग वर्णित है—

'एक व्यक्ति दो घंटे रोज किसी मंदिर में बैठ पूजा करता है, यह कर्मशील में नहीं गिना जाएगा। एक व्यक्ति किसी जंगल में आरक्षित पड़ी मस्जिद में घुसते हुए जूते उतार लेता है, यही उसका शील है।'¹¹

3. वैयक्तिक निबंध

वैयक्तिक निबंध अंग्रेजी भाषा के 'पर्सनल ऐसे' का हिंदी अनुवाद है। वैयक्तिक अथवा आत्मपरक निबंधों में रचनाकार अपने जीवन की अनेक घटनाओं, चित्रों को इस प्रकार समाविष्ट करता है, उसका व्यक्तित्व प्रधान आत्मतत्त्व सामान्य का होकर भी अलग बना रहता है, ऐसे निबंधों में रचनाकार की स्वानुभूति और कल्पना वांछनीय है।

4. हास्य व्यंग्यात्मक निबंध

'जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस प्रकार के निबंधों में व्यंग्य और चुटीलेपन की प्रमुखता रहती है। शब्द बाहर से सुंदर और सरल मालूम पड़ते हैं। उसका अभिधात्मक अर्थ भले ही कुछ न हो, पर व्यंजनात्मक अर्थ बड़ा गहरा और नुकीला होता है।'¹²

स्वतंत्रता से पहले भारतीय समाज वर्णों में बँटा हुआ था, जिसका आधार था श्रम-विभाजन। इस व्यवस्था की प्रमुख विडंबना मेहनती व कर्मठ जाति को निकृष्ट समझना था, किंतु वास्तव में वे ही जातियाँ समाज को शुद्ध रखती थीं। निबंध 'वर्गहीन समाज' में उच्च वर्ग की मानसिकता, कुटिलता व अकर्मण्यता पर करारा व्यंग्य हुआ है।

'और मज्जा यह है कि निकम्मा और हराम की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने वाला उच्च वर्ग उच्च, पवित्र और पूज्य, खून-पसीने की कमाई से पेट भरने वाला वर्ग, नीच तिरस्कृत और दास।'¹³

कोई भी धर्म मनुष्य को मनुष्य से वैरभाव रखना नहीं सिखाता। धर्म तो मनुष्यों को आपस में जोड़ता है और जीवन में अच्छे आचरण का संदेश देता है, किंतु स्वार्थ में अंधा मनुष्य अपने संकुचित उद्देश्य की पूर्ति हेतु मनुष्य को मनुष्य से धर्म के नाम पर लड़वाता और दंगे-फ़साद करवाता है। मगर राजनीतिक व्यक्ति कुटिल होते हुए भी एक-दूसरे धर्मों के उत्सवों में शामिल होते हैं व आपस में गले मिलते हैं। 'नलिन' जी के निबंध 'साझी कमाई' में धर्मांध व्यक्तियों पर करारा कटाक्ष हुआ है।

'धर्म तो अच्छाई का नाम है, धार्मिक कर्मकांड या रीतिरिवाज और बात है। धर्म की बाँग देने वालों से तो राजनीतिक धूर्त ही अच्छे, जो परस्पर वैरी होते हुए भी परस्पर बधाई और

शुभकामनाएँ भेजते हैं।¹⁴

ललित निबंध—‘वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक या वैयक्तिक निबंध को जब गद्य-काव्यात्मक कोमलकांत शैली में लिखा जाए तो उसे ललित निबंध कह दिया जाता है।’¹⁵ ललित निबंधों में प्रायः कमनीय, सौंदर्य तथा लालित्य तत्त्व की प्रधानता रहती है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि साहित्यकार आम व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। उसकी किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति वर्णन व विवेचन शक्ति असाधारण होती है। सौंदर्य उसे बरबस ही आकर्षित करता है। सौंदर्य आस्वादन से मनुष्य असीम सुख की अनुभूति करता है। उसका रोम-रोम रोमांचित हो उठता है। निबंध ‘सौंदर्य बोध’ में ‘नलिन’ जी की सौंदर्य भावना वर्णित है। यथा—

‘सौंदर्य दर्शन से मन स्वतः ही आनंद से रोमांचित हो जाता है। भोग या स्वाद अनुभूति का विषय है। जब अपनी रुचि, कामना या परख के अनुसार मनुष्य को सौंदर्य की उपलब्धि होती है, तब हृदय अनिवर्चनीय सुखानुभूति करता है।’¹⁶

जयनाथ ‘नलिन’ की निबंधकला की शैलीगत विशेषताएँ

साहित्य की सभी विधाओं में भावाभिव्यक्ति का माध्यम शैली है। निबंधकार की वास्तविक पहचान उसकी शैली से ही होती है। शैली का संबंध सीधे-सीधे निबंधकार की मानसिकता या व्यक्तित्व से होता है।

बफन के अनुसार, ‘Style is the man himself’ अर्थात् ‘शैली ही व्यक्तित्व है।’¹⁷ जयनाथ ‘नलिन’ जी की शैली में अनेक विविधताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं।

1. प्रसाद-शैली

इस शैली की भाषा अभिधात्मक, सुबोध, मधुर और स्पष्ट होती है। उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग प्रायः मिलता है। इसका प्रयोग अधिकतर, वर्णन प्रधान, विचार प्रधान व हास्यपरक निबंधों में मिलता है। जयनाथ ‘नलिन’ जी के निबंधों में इस शैली का प्रयोग बहुत हुआ है। जैसे-निबंध-‘सौंदर्यबोध’, ‘कलाकार का अहं’, ‘कला-विवेचन’ आदि में मिलता है। निबंध ‘कलाकार का अहं’ में प्रसाद शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है—

‘प्रत्येक वाणी में निज अस्तित्व की भावना और चेतना एक चिरंतन सत्य है। मैं का बोध चेतन या प्राणवान होने की पहचान है।’¹⁸

2. समास-शैली

इस शैली में कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक विचार और भाव ढूँस-ढूँसकर भरे जाते हैं। इसे सूत्र शैली भी कहा जाता है। डॉ० नलिन के निबंध ‘आस्था-अनास्था’ में इस शैली का उदाहरण इस प्रकार है—

‘श्रद्धा और प्रेम का योग है भक्ति, विश्वास और श्रद्धा का योग है आस्था।’¹⁹

3. विवेचन-शैली

इसमें तार्किकता, खंडन-मंडन, वाद-विवाद का सहारा लेकर रचनाकार अपनी बात पाठकों के सामने रखता है। नलिन जी के निबंधों में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। डॉ० नलिन के निबंधों में विवेचन पद्धति का बहुत प्रयोग मिलता है। जैसे निबंध पेशा, पैसा और पुण्य, संज्ञा से विशेषण की ओर, मिट्टी के पास, कला-विवेचन, रस-विवेचन, कविता ही क्यों? आदि में।

विवेचन शैली का उदाहरण निबंध 'संज्ञा से विशेषण की ओर' में अंकित है—

'सगुण अवतारवादी भक्तों की बात छोड़िए, कबीर, नानक, मुहम्मद, ईसा, दयानंद आदि सभी ने भगवान को अनगिनत गुणों-विशेषणों का भंडार कहा है। तब भी क्या वह गुणहीन रह गया?'²⁰

इन शैलियों के अतिरिक्त डॉ० जयनाथ 'नलिन' के निबंधों में व्यास शैली, व्यंग्य शैली, आवेग शैली, समालोचना शैली व उद्धरण शैली के भी दर्शन होते हैं।

जयनाथ 'नलिन' की निबंध-कला का भाषागत सौंदर्य

यदि भाषा-प्रयोग की दृष्टि से नलिन जी के निबंधों को देखा जाए तो इनका शब्दकोश बहुत समृद्ध है। इन्होंने अपनी भाषा को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक भाषाओं से शब्द-चयन किए हैं। जैसे हिंदी, अँग्रेजी, उर्दू, अरबी, संस्कृत व फ़ारसी। वैसे तो मुख्य रूप से ये शुद्ध साहित्यिक हिंदी व खड़ीबोली का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं अलंकारों, मुहावरों व कहावतों का प्रयोग भी मिलता है। इनकी भाषिक विविधताओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **तत्सम शब्द**—श्वास, अतुल, क्षिप्रता, नक्षत्र, ग्रह, कौशल, पग, निज, अहं, तृप्ति, प्रकृति, दर्शन, संचारी भाव, रस, राग, करुणा, वाणी, अनुष्ठान, नवीन।
2. **तद्भव शब्द**—सुंदरता, देखना, निरंतरता, विकास, ऊँट, दाँत, आग, घर, कंजूस, अँधेरा, शेर, पवित्र, मिठाई, आँखें, पापा, प्यार।
3. **विदेशज शब्द**—नाजायज़, रिश्वत, तनखा, हरामखोर, खुशामद, मजहब, स्टैथस्कोप, मेकप, Ultimate reality।
4. **संस्कृत शब्द**—अहं शब्दास्मि, द्वितियोनास्ति, तमसो मा ज्योतिर्गमय इत्यादि।

इनकी भाषा में स्वनिर्मित शब्दावली का भी प्रयोग मिलता है। जैसे-साहित्य-सुनार, कलम-कुदाले, तिमिर-दुर्ग, पैसा-पति आदि। आलंकारिक शब्दावली का प्रयोग इस प्रकार है।

1. मोम-सी मुलायम, नवनीत-सी द्रवित।
 2. हीरों-सी झिलमिल, रेशमतार-सी सुकुमार।
- कहावतों का प्रयोग। जैसे-मूल से ब्याज प्यारा।

समासिक शब्द तो प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जैसे-सुख-समृद्ध-सम्राट, रूप-यौवन-सौंदर्य, सौंदर्य-विवेक-बुद्धि, भोग-कामना-रूप-लिप्सा, सुधा-शीतल, पाप-शाप-ताप इत्यादि। अतएव नलिन जी को भाषिक दृष्टि से संपन्न साहित्यकार कहा जा सकता है।

जयनाथ 'नलिन' जी हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। निबंध के क्षेत्र में योगदान तो इन्हें आचार्य रामचंद्र शुक्ल की परंपरा में ला खड़ा करता है। इनके निबंध हृदय व बुद्धि का संतुलित समन्वय है। इन्होंने विचारात्मक निबंधों को अधिक प्राथमिकता दी है। इसके साथ-साथ भावात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक व ललित निबंधों को भी पर्याप्त मात्रा में स्थान दिया है। इनकी अभिव्यक्ति शैली असाधारण है। इनका भाषागत व शिल्पगत सौंदर्य अनूठा है। इनके निबंधों का अनुसंधान करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि निबंध विधा के क्षेत्र में नलिन जी का योगदान असाधारण व अविस्मरणीय है।

संदर्भ

1. कुमार विमल, कला विवेचन, पृ०25
2. हरिहरनाथ द्विवेदी, निबंध साहित्य और प्रयोग, पृ० 1
3. बाबूराम, निबंधकार वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ०1
4. हरिचरण शर्मा, समीक्षात्मक निबंध, भाग-3, पृ० 304
5. जयनाथ 'नलिन', हिंदी निबंधकार', पृ० 10
6. जयनाथ 'नलिन', चिंतन और कला, पृ० 50
7. वही, पृ० 6
8. जयनाथ 'नलिन', मझधार को पार, पृ० 22
9. जयनाथ 'नलिन', चिंतन और कला, पृ० 131
10. वही, पृ०103
11. जयनाथ 'नलिन', चिंतन और कला, पृ० 113
12. गंगाप्रसाद गुप्त, हिंदी साहित्य में निबंध और निबंधकार, पृ० 32
13. जयनाथ 'नलिन', चिंतन और कला, पृ० 139
14. जयनाथ 'नलिन', मझधार के पार, पृ० 67
15. जयनाथ 'नलिन', हिंदी निबंध आलोक शिखर, पृ०34
16. जयनाथ 'नलिन', चिंतन और कला, पृ०21
17. बाबूराम, निबंधकार वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ०12
18. जयनाथ 'नलिन', चिंतन और कला, पृ०24
19. वही, पृ०10
20. जयनाथ 'नलिन', मझधार के पार, पृ०15

□ द्वारा श्री श्यामलाल त्यागी

बी-28, टेगौर भवन

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136119

मो० 09050026652

साठोत्तरी हिंदी-मराठी यात्रासाहित्य के शिल्पपक्ष का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० सचिन कदम

हिंदी विभाग

संगमनेर महाविद्यालय, संगमनेर

हिमालय की चोटी से लेकर कन्याकुमारी की एड़ी तक अगर आप देखेंगे तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत एक बहुभाषी देश है। इस देश में जितने प्रांत हैं, उतनी ही उनकी भाषायी पद्धतियाँ भी। संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी कहा जाता है। ज़ाहिर है, वह सभी भारतीय भाषाओं का उद्गमस्रोत है। भारत की किसी भी भाषा के विकास की कल्पना आप संस्कृत को नज़रानदाज़ करके कर ही नहीं सकते। आज विश्व तेज़ी से आगे बढ़ रहा है। 'विश्वग्राम' की संकल्पना सामने आ रही है। शिक्षा के साधन बढ़ने के कारण भाषा का विकास होने में और भी मदद हो गयी है और सभी भारतीय भाषाओं में पहले से ज़्यादा व्यवहार में आने से उनका तुलनात्मक अध्ययन करना और भी सुलभ हुआ है।

हमारे इस शोधलेख का विषय ही कथेतर विधा से संबंधित है, क्योंकि साहित्य पर तो साधारणतया हर जगह चर्चा होती ही रहती है, लेकिन कथेतर साहित्य को भी इस बहाने हम आगे बढ़ाने की कोशिश कर सकते हैं। हिंदी और मराठी के यात्रा-लेखन पर पर्याप्त सामग्री प्राप्त होने की वजह से उसके शिल्पपक्ष को लेकर हम कुछ मौलिक विचार रख सकते हैं।

शिल्पपक्ष रचना में भावपक्ष के समान ही कार्य करता है, क्योंकि कोई भी भावनाशील कृति यदि उसका शिल्प ठीक से न गढ़ा हो, तो सक्षम नहीं लगेगी। फिर यह मुद्दा उपस्थित होना स्वाभाविक है कि शिल्पपक्ष भावपक्ष पर निर्भर है या भावपक्ष शिल्प पर आधारित है। वैसे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि ऐसी कोई रचना नहीं, जिसका कोई शिल्प नहीं। ठीक इसी बात को हम आगे बढ़ाते हुए हिंदी-मराठी यात्रासाहित्य के शिल्पपक्ष पर प्रकाश डालते हैं।

हिंदी साहित्य में यात्रा-रचनाकार राहुल सांकृत्यायन की कृतियाँ चीन में क्या देखा? (1960), किन्नर देश (1960), मेरी यूरोप यात्रा (1964), अज्ञेय की 'एक बूँद सहसा उछली', दिनकर की 'मेरी यात्राएँ' (1970), अक्षयकुमार जैन की 'लेनिन के देश' में (1970) जयप्रकाश नारायण की 'मेरी विदेश यात्राएँ' (1960) जैनेंद्रकुमार की 'कश्मीर की वनयात्रा' (1968) हरिदत्त शर्मा की 'सूर्योदय के देश में' (1965) पद्मा सुधि की 'अलकनंदा के साथ-साथ' (1965) आदि तथा मराठी का साठोत्तरी यात्रा-साहित्य यदि आप देखें तो पु.ल. देशपांडे कृत 'उड़ता गलिया' (1960) अपूर्वाई (1964), सौ. विजया जोशी कृत 'आठवणीची फोरोव लेणी' (1960), रमेश मंत्री कृत नवरंग (1963), न.वि. गाडगील मुन ते मेन (1965),

जोत्सना भोले अंतरिच्या खुणा (1966) वि०स० वाळिंबे कृत आज येथे उद्या तेथे (1967), डॉ० प्रह्लाद नरहर जोशी कृत अनंत आमची साहस प्रीति (1968) और हेमचंद्र कोपर्डेकर कृत पश्चिमकडील पूर्व विभिन्न आदि हिंदी-मराठी यात्रा के शिल्पपक्ष पर अगर हम दृष्टि डालें, तो हमें निम्न प्रकार की बातों से परिचय होगा—

हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य पर यदि हम विचार करें तो तुलना किस बात की करनी है, पहले इसे समझना होगा, यात्रा-साहित्य के तत्त्व, यात्रा-साहित्य की भाषा, यात्रा-साहित्य में उभरे बिंब, यात्रा-साहित्य के विभिन्न प्रतीक, यात्रा-साहित्य के प्रकार तथा भाषा, छंद आदि का भी निपक्ष होकर तुलनात्मक अध्ययन करना होगा तथा उनके साम्य और वैषम्य पर भी प्रकाश डालना होगा।

जहाँ तक हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य के तत्त्वों का विषय सामने आता है तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इसकी कोई सैद्धांतिक चर्चा कहीं भी उपलब्ध नहीं होती, लेकिन हिंदी साहित्य में सुविधा हेतु, यात्रा का प्राकृतिक चित्रण, विविध सौंदर्यांकन, देशकाल या वातावरण, स्थलवर्णन, भाषाशैली और उद्देश्य आदि हो सकते हैं। जहाँ तक मराठी यात्रा-साहित्य का सवाल है तत्त्वों की समानता ज्यादातर एक ही मिलेगी, सिवाय भाषा और शैली के, क्योंकि भाषायी भिन्नता ही दोनों प्रकार के साहित्य में वैषम्य दर्शाती हैं।

मराठी भाषा प्रादेशिक होने से उसके अनुभव प्रादेशिक नहीं बन जाते, लेकिन अभिव्यक्ति को लेकर प्रश्न उठ सकते हैं या फिर उनका प्रकटीकरण इतना सक्षम होना चाहिए कि वह राष्ट्रीय स्तर की ऊँचाई को छू सके। यदि आप थोड़ा पीछे जाकर देखेंगे तो यात्रा-साहित्य में हिंदी-मराठी यात्रा के विकास में हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य के प्राचीन एवं आर्वाचीन या आधुनिक यात्रा-साहित्य इस तरह से विभाजन मिलते हैं। आधुनिक में स्वतंत्रतापूर्व का हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य या स्वतंत्रोत्तर यात्रा-साहित्य को आप देख सकते हैं।

आगे मुख्यतः हम सत्तर के दशक के हिंदी-मराठी यात्रा वर्णनों में क्या साम्य और क्या विषमता है, यह देखेंगे। इसका तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्न बिंदु हमें प्राप्त होते हैं—

साम्य :

1. साठोत्तरी यात्रा-साहित्य के हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्यकारों का उद्देश्य मनोरंजन के साथ जगह-जगह की जानकारी देना है।
2. हिंदी-मराठी दोनों यात्रा रचनाओं में हमें प्रकृति से संबंधित जानकारी मिलती है। जैनंद्र की 'कश्मीर की वनयात्रा' या फिर प्रभाकर पाध्ये कृत 'हिरवी उने' हों, दोनों ने ही हिमालय के प्राकृतिक सौंदर्य का सुंदर वर्णन किया है।
3. हिंदी-मराठी दोनों यात्रा-साहित्य में ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन मिलता है।
4. दोनों ही यात्रा-साहित्य में देश-विदेश का वर्णन मिलता है। कुछ-कुछ यात्रा वर्णनों के नाम तो विदेश के नाम पर रखे गए। जैसे राहुल कृत 'चीन में क्या देखा', 'मेरी यूरोप यात्रा' या फिर मराठी की यात्रा रचना 'तोकोनामा'।
5. ऐतिहासिक स्थलों के साथ-साथ भौगोलिक स्थलों के वर्णन में भी हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य में साम्य मिलता है।
6. राजकीय अध्ययन की दृष्टि से की गयी यात्राओं का वर्णन भी हिंदी-मराठी यात्रा-

साहित्य में पर्याप्त मिलता है।

7. हिंदी-मराठी यात्रा वर्णनों में जहाँ यात्रा वर्णन, घटनाओं का वर्णन, विवरण ही नहीं होता, वहाँ उनकी निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति भी देखने को मिलती है।

8. यात्रावर्णन के जो महत्त्वपूर्ण तत्त्व माने गए हैं अर्थात् भावाभिव्यक्ति, वैयक्तिकता, आत्मीयता, स्वच्छंदता, निरपेक्षता आदि का चित्रण दोनों प्रकार के साहित्य में मिलता है।

9. दोनों प्रकार के यात्रा-साहित्य का उद्देश्य समान है—कोई यात्रा राजनीतिक, कोई धार्मिक, कोई शैक्षिक तो कोई व्यावसायिक, कोई साहित्यिक, सांस्कृतिक, अनुसंधानात्मक, कोई मनोरंजन, कोई साहस तथा अभियान आदि गुण दोनों में समान पाए जाते हैं।

10. दोनों में पत्रशैली, डायरी शैली, संस्मरणात्मक शैली आदि का समावेश हुआ है।

हिंदी यात्रा-साहित्य के संभाव्य मानदंडों को लेकर डॉ० इरेश स्वामी का मानना है कि 'शिक्षा, सेवा, उद्योग, अध्यात्म, राजनीति, कला, सांस्कृति, विज्ञान, अनुसंधान आदि उद्देश्यों से अनगिनत यात्री आज देश-विदेश की यात्राएँ कर रहे हैं। वे अपने मौलिक अनुभवों को ताजा रखने के लिए उन्हें अक्षररूप देते हैं। इन रचनाओं को सामने रखते हुए यात्रा-साहित्य के संभाव्य मानदंडों की स्थापना की जा सकती है।'¹

तो जब कोई भी यात्रा-रचना हम पढ़ते हैं, तो उसमें वहाँ का वातावरण सदैव सजीवता लाता है और ये सजीवता वहाँ का भूगोल, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि कारणों से कैसे महसूस होती है, इसका उदाहरण देते हुए वसंत सावंत कहते हैं—'किसी भी यात्राकृति से महसूस होनेवाला प्रदेश, वहाँ का मनुष्य, प्रकृति तथा वहाँ का इतिहास, भूगोल, संस्कृति, धर्म, राजनीति, अर्थकारण, सामाजिक जीवन इन सभी बातों में महसूस होता है।'²

अब हिंदी-मराठी यात्रा में साम्य के साथ उसकी विषमताओं को भी हम देख सकते हैं।

विषमताएँ :

1. हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य में सबसे पहले हम दोनों की भाषायी भिन्नता को देख सकते हैं।

2. दोनों यात्रा-साहित्यकार प्रकृति की समानता से वर्णन भले ही करते हों, परंतु दोनों के दृष्टिकोण में भेद दिखाई देता है। जैसे कश्मीर एक ही प्राकृतिक उपादान है, लेकिन दोनों की वर्णनशैली में भेद दिखाई देते हैं।

3. मराठी यात्रा-साहित्य में महाराष्ट्र के ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन मिलता है, वहीं हिंदी यात्रा-साहित्य में महाराष्ट्र के साथ समग्र भारत के ऐतिहासिक स्थलों के वर्णन को वाणी मिली हुई दिखाई देती है।

4. मराठी यात्रा-रचनाओं के लिए मराठी प्रादेशिक भाषा होने से एक उसमें एक मर्यादा लगने लगती है। जो व्यापकता हिंदी यात्रा-साहित्य में दिखती है, वह हिंदी की तुलना में मराठी में कम लगती है।

5. हिंदी एक राष्ट्रभाषा का सम्मान पाने से उसके लेखकों की संख्या भी मराठी यात्रा-रचनाकारों से कम नहीं है।

6. हिंदी-मराठी यात्रा-रचनाकारों के अनुभव-विश्व में हमें अंतर दिखाई देता है। इसलिए

समान विषयों पर किसी रचना को मराठी में या किसी रचना को हिंदी में ज़्यादा न्याय मिलने की संभावना अधिक हो सकती है।

7. किसी भी रचनाकृति का विषय उसके उद्देश्य को अंजाम देने में समर्थ होता है।

इस प्रकार यात्रा-रचनाओं का अध्ययन करने पर हमें इस बात का पता चलता है कि वास्तव में दोनों में क्या अंतर है। स्थूल रूप से भाव और शिल्प भले ही एक लगते हों, परंतु उनमें सूक्ष्म भेद हमें मिलते हैं। मराठी के प्रभाकर पाध्ये अपने यात्रा-वर्णन 'अगस्तीच्या अंगनात' में कहते हैं—'कोई देश अगर आपको अच्छा लगता है तो उसकी वजह वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य और मानव-निर्मित सौंदर्य है, लेकिन किसी देश से आपको प्यार हो तो उसकी वजह वहाँ के लोग हैं।'³

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिंदी-मराठी यात्रा-साहित्य के शिल्प में कुछ समानताओं के साथ-साथ उसकी विषमताएँ भी उसमें शामिल होती दिखाई देती हैं और यही साम्य और वैषम्य दोनों के अंतर को समझने में समर्थ होता है।

संदर्भ

1. हिंदी का स्वातंत्र्य पाद्युत्तर यात्रा-साहित्य, डॉ॰ इरेश स्वामी, पृ० 213
2. प्रवास वर्णन एक वाङ्मय प्रकार, वसंत सार्वत, पृ० 34
3. अगस्तीच्या अंगणात, प्रभाकर पाध्ये, पृ० 136

दलित-चिंतन : एक अवलोकन

डॉ० रीता

साहित्य समाज का दर्पण है, यदि यह सच है तो इस बात को मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि दलित-साहित्य और समाज, भारतीय जीवन की वह सच्चाई है, जिसे मूलधारा की परंपरागत शक्तियों ने लंबे समय तक हाशिए पर रखा। समाज कुछ सामाजिक मान्यताओं और मूल्यों पर आधारित रहता है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी व्यक्तियों को इन मान्यताओं से जकड़े रहता है। भारतीय समाज में ऐसी ही परंपराएँ हैं, जो विश्वास का रूप धारण कर समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को अछूत और अस्पृश्य मानकर जानवरों से भी बुरा व्यवहार करती हैं। दलित सदैव शिक्षा, ज्ञान व सम्मान से दूर रखे गए। इन्हें समाज के शेष वर्गों से जोड़ने हेतु स्वाधीनता के बाद निरंतर प्रयत्न होते रहे हैं। इसी प्रयास के परिणामस्वरूप इस वर्ग की कुछ पीढ़ियाँ शिक्षित होकर आगे आईं, जो अपनी अस्मिता, अधिकार और अस्तित्व की रक्षा के लिए हर क्षेत्र में संघर्षरत हुईं। दलित-साहित्य, दलित-संघर्ष को प्रतिबिंबित करने की एक प्रखर चेष्टा के रूप में पल्लवित हुआ है। सबसे पहले दलित चेतना के बीज मराठी साहित्य में दिखाई दिए, उसके पश्चात् कन्नड़, उड़िया, गुजराती, बांग्ला आदि से होकर हिंदी साहित्य में भी दलित-चेतना व चिंतन दिखाई दिया।

‘दलित’ शब्द का अर्थ व स्वरूप

दलित-साहित्य पर विचार करने से पूर्व उससे जुड़े ‘दलित’ शब्द को समझना आवश्यक है। ‘दलित’ शब्द सुनते ही सुनने वालों के मस्तिष्क में यह विचार उभरता है कि उसे छूना मना है, वह हमसे हीन है, शूद्र, निर्धन, निम्नजाति आदि से संबंध रखता है। ऐसा ही व्यक्ति ‘दलित’ है। प्राचीन समय में यही मान्यता प्रचलित थी, परंतु समय के साथ-साथ इस शब्द की परिभाषा में भी बदलाव आया और दलित शब्द किसी जाति या अछूत विशेष का बोधक न रहा। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में ‘दलित’ शब्द का अर्थ इस प्रकार है—दल+क्त-(अर्थात्) टूटा हुआ, चीरा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ और दूसरा अर्थ है—खुला हुआ, फैलाया हुआ।¹ अर्थात् जो अपने समाज से कटा हुआ है, जिसे समाज से बिल्कुल अलग कर दिया गया है, किसी विशेष जाति या विश्वास के आधार पर, वही ‘दलित’ है।

वस्तुतः ‘दलित’ वह व्यक्ति है, जो विशेष सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है, जिसके जीने के अधिकारों को छीना गया है। केवल जन्म के आधार पर जिनको समाज में एक ही प्रकार का जीवन मिला है। मनुष्य के रूप में उनके मूल्य को नकारा गया है। मानव के रूप में जिनके अधिकारों को ठुकराया गया है।² यहाँ विशेष सामाजिक स्थिति से अभिप्राय वर्ण-

व्यवस्था से है। 'दलितों' के साथ केवल जाति-व्यवस्था से संबंधित समस्याएँ ही नहीं, बल्कि आर्थिक समस्याएँ भी जुड़ी हुई हैं और ये आर्थिक समस्याएँ केवल दलितों के साथ ही नहीं, अन्य वर्गों से भी जुड़ी हैं, परंतु उनकी जाति श्रेष्ठ होने के कारण कभी शोषित नहीं होना पड़ा तो ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है 'दलित' किसे माना जाए। उनको जो वर्ण-व्यवस्था के कारण समाज के अन्याय, अत्याचार, शोषण से पीड़ित हैं या फिर उन्हें, जो वर्ण-व्यवस्था के कारण तो नहीं, आर्थिक असमानता के कारण शोषण के शिकार होते रहे हैं।

'दलित' शब्द के प्राचीन अर्थ से जहाँ उसका संबंध वर्ण-व्यवस्था, अछूत, आर्थिक रूप से विपन्न निम्नजाति से हैं, वहीं धीरे-धीरे इस शब्द का अर्थ आधुनिक संदर्भ में 'दबाया गया', 'सताया गया', गिराया गया, उपेक्षित, शोषित, दमित, पीड़ित, अपमानित आदि से है। आज अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, हिंदू वर्ण-व्यवस्था में दूसरे दर्जे में आनेवाली स्त्रियाँ और शूद्र कही जानेवाली पिछड़ी जातियाँ भी इसमें सम्मिलित हैं। स्त्रियों में विशेष रूप से विधवाएँ, वेश्याएँ, ईट-भट्टे पर काम करने वाली, कूड़ा बीनने वाले, असहाय बच्चे और जो शस्त्र व शास्त्र से सताए जाते हैं, सभी 'दलित' में गिने जाते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि 'दलित' केवल निम्नवर्ग, वर्ण-व्यवस्था, अछूत-अस्पृश्य तक सीमित नहीं हैं, वरन् समाज का कोई भी शोषित, अपमानित, दमित, पीड़ित चाहे परिवार में, समाज में, अन्य किसी क्षेत्र में हो, वही दलित है। दलितों की यह वेदना ही दलित-साहित्य की जननी है। यह पीड़ा किसी एक दलित की नहीं, अपितु हजारों वर्षों से असंख्य दलितों की पीड़ा है। हम इसे यूँ भी कह सकते हैं—जिस साहित्य में दलितों की संवेदना, पीड़ा, दर्द और उनसे संबंधित अन्य समस्याओं को वाणी मिलती ही, वही दलित-साहित्य है। स्वाधीनता पश्चात् नौजवान दलित पीढ़ी डॉ॰ अंबेडकर और अन्य दलित-आंदोलन में भाग लेनेवाले व्यक्तियों के प्रयासों के फलस्वरूप प्रशासन से लेकर विश्वविद्यालयों तक में अपनी एक पहचान बनाने लगी। सन् साठ के दशक के बाद दलितों में एक युगांतकारी परिवर्तन आया, अब उन्होंने वर्ण-व्यवस्था तथा शोषण के विरुद्ध पहली बार साहित्य-सर्जना शुरू की, जिसे दलित-साहित्य का नाम दिया गया। दलित-साहित्य स्वानुभूति का साहित्य है, यह भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है।

दलितों की पीड़ा को जब तत्कालीन विद्वानों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त करना शुरू किया, तब यह प्रश्न उठा कि दलित-साहित्य किसे माना जाए? उन दलितों के द्वारा लिखे साहित्य को, जिन्होंने इस पीड़ा को स्वयं भोगा है अथवा उन अदलित और सवर्ण सहृदय साहित्यकारों के साहित्य को भी, जिन्होंने इस पीड़ा को भोगा तो न हो, परंतु इस पीड़ा का अनुमान किया हो। इस संदर्भ में विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं—

श्री प्रेमकुमार मणि के विचार इसी प्रकार के हैं, 'दलितों के लिए दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य, दलित-साहित्य है। यह विलास का नहीं, आवश्यकता का साहित्य है। संपूर्ण विज्ञान इसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्धार उसका इष्ट है। दलित-साहित्य वह प्रकाशपुंज है, जो अँधेरे में उतरा है।'³

वस्तुतः दलितों द्वारा लिखे साहित्य को ही दलित-साहित्य माननेवाले विद्वानों की मानसिकता संकुचित है। उनका मानना है कि जिन्होंने शोषण, पीड़ा, अपमान के दंश को भोगकर अपने साहित्य में अभिव्यक्ति दी है, वही दलित-साहित्य है। जबकि एक ग़ैरदलित-साहित्यकार

भी अपने समाज के प्रति उतना ही सजग, सचेत व संवेदनशील होता है, जितना दलित। भले ही ग़ैर दलित-साहित्यकार ने वह दंश स्वयं न भोगा हो, लेकिन उसकी अनुभूति जो दलितों के उद्धार के लिए उसे सचेत करने वाली है, वह किसी भी रूप में एक दलित-लेखक की भावना से कम नहीं होती। अतः यही कहा जा सकता है जिस साहित्य में दलितों की पीड़ा वेदना, दर्द को यथार्थ व सच्ची संवेदना से अभिव्यक्त किया गया हो और उसे चाहे दलित या ग़ैर दलित लेखक द्वारा लिखा गया हो, वही सच्चा दलित-साहित्य है।

दलित-साहित्य का मूलमंत्र है—महात्मा बुद्ध का दर्शन और दूसरा डॉ॰ अंबेडकर का संघर्ष और दर्शन। तुलसीराम दलित-साहित्य का मूल स्रोत गौतम बुद्ध को मानते हैं। उनका मानना है—‘महात्मा बुद्ध ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ढाई हजार वर्ष पूर्व वर्ण-व्यवस्था पर ज़बरदस्त प्रहार किया। श्रावस्ती प्रवास के समय सुनीता नामक शोषित भंगी को अपने संघ में शामिल करके गौतम बुद्ध ने दलितोद्धार का ऐतिहासिक क़दम सबसे पहले उठाया। बुद्ध के निर्वाण के करीबन 600 वर्ष बाद प्रसिद्ध ‘बुद्धचरित’ के रचनाकार अश्वघोष पहले संस्कृत कवि थे, जिन्होंने ब्राह्मणी वर्ण-व्यवस्था पर आक्रमण करते हुए ‘ब्रजसूची’ नामक काव्य-ग्रंथ लिखा। यद्यपि अश्वघोष ब्राह्मण बौद्ध थे, फिर भी उनकी रचना ‘ब्रजसूची’ को वे दलित-साहित्य की रचना मानते हैं। श्री राजा ढाले दलित-साहित्य का उद्भव डॉ॰ अंबेडकर द्वारा संपादित एवं प्रकाशित समाचार-पत्र ‘मूकनायक’ से मानते हैं। डॉ॰ अंबेडकर ने स्वयं दलित होने के दर्द को भोगा था। उन्होंने दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष किया, परंतु यह भी विचारणीय है कि डॉ॰ अंबेडकर ने बौद्धदर्शन से प्रभावित होकर बौद्धधर्म को स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार डॉ॰ अंबेडकर ने चाहे विद्रोह को गति प्रदान की हो, लेकिन उनका मूल आधार तो बुद्ध ही रहे हैं। अतः कहा जा सकता है कि दलित-साहित्य रचने के पीछे उद्देश्य सबके समान थे—वर्षों से पीड़ित, दलित, शोषित, दमित और जाति-भेद को समाप्त कर समानता व स्वतंत्रता का अधिकार दिलाना और उनका उद्धार करना।

‘दलित-साहित्य की रचना सन् 1960 में सबसे पहले मराठी में हुई। मराठी साहित्यकारों ने डॉ॰ अंबेडकर की विचारधारा से प्रेरित होकर लिखा। मराठी से गुजराती, मलयालम, तेलुगु, तमिल, पंजाबी इत्यादि भाषाओं में चर्चा शुरू हुई।’⁴ लेकिन हिंदी में यह साहित्य थोड़ा विलंब से आया।

हिंदी में दलित-साहित्य का उद्भव

हिंदी दलित-साहित्य, हिंदी साहित्य के इतिहास के मुख्यतः अस्सी और नब्बे के दशक में उभरा एक विशिष्ट साहित्यिक आंदोलन है, जिसमें असंख्य दलित और ग़ैर-दलित लेखकों ने अपनी रचनाओं में दलित-वर्गों पर होने वाले अत्याचारों व शोषण का यथार्थ चित्रांकन किया।

हिंदी दलित-साहित्य का स्वर प्राचीनकाल से ही प्रकट होने लगा था। यह स्वर साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रकट हुआ। हिंदी में दलित-साहित्य की रचना करनेवाले लेखकों को दो वर्गों में विभक्त करके सरलता से समझा जा सकता है। पहली श्रेणी में संत, नाथ, सिद्ध आदि संतों की वाणी आती है, जिन्होंने अपने चारों ओर के समाज में होनेवाले जातिगत भेदभाव व धार्मिक शोषण को देखा और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। दूसरी श्रेणी में आधुनिक लेखक

प्रेमचंद, निराला, रेणु, धूमिल आदि आते हैं, जिन्होंने इस परंपरा को अद्यतन जारी रखा।

प्राचीन साहित्य

प्राचीनकाल में वर्ण-व्यवस्था के नियम अत्यंत कड़े थे। सवर्ण जाति दलितवर्ग का आर्थिक व धार्मिक और सामाजिक शोषण करती थी। उन्हें मंदिरों में प्रवेश करना, सवर्णों के तालाब, कुएँ से पानी लेना, धार्मिक वेदों को पढ़ना वर्जित था। समाज में फैली इन बुराइयों के प्रति नाथों, सिद्धों ने अपनी वाणी उठाई। इनके पश्चात् भक्तिकाल के समय संतों में कबीर, रैदास, नानक, दादूदयाल आदि संतों ने इस परंपरा का विरोध किया। ये सभी समाज में मानवतावाद के पक्षधर थे।

‘संतों में कबीर काशी के जुलाहे, पीपा गगनौरगढ़ के क्षत्रिय राजा, रविदास काशी के चर्मकार, धना टोंक (राजस्थान) के जाट, गुरु नानक तलवंडी (पंजाब) के खत्री, दादूदयाल गुजरात के धनिया मुसलमान, मलूकदास कड़ा के खत्री थे। कबीर निरक्षर थे, परंतु अपने युग के प्रति सचेत व जागरूक थे। उन्होंने हिंदू व मुसलमानों में जाति, वर्ण, धर्म रंग के आधार पर होने वाले भेदभावों का कठोरता से खंडन करते हुए कहा—

ब्राह्मन गुरु जगत का, साधु का गुरु नाहिं।

उरझि-पुरझि करि मरि रह्या चारिउँ बदाँ माँहि।

रैदास जाति से चमार थे। कवयित्री मीरा ने उन्हें अपना गुरु बनाया। रैदास के सामने जो इतिहास था, वह घृणा, अपमान, अशिक्षा, दरिद्रता और शोषण का था। ‘रविदास की वाणी’ में उन्होंने समाज की इस दुर्व्यवस्था के प्रति अपने विचारों को वाणी दी है। इनका मानना था कि जाति-पाँति या वर्ण को जन्म के आधार पर नहीं गुण के आधार पर स्वीकार करना चाहिए। तुलसीदास स्वयं ब्राह्मण थे, परंतु उनके समय ब्राह्मण शास्त्रीय विद्वत्ता के आधार पर जाति-पाँति के बंधन कठोर बनाते जा रहे थे। शिवनारायणी मुख्यतः चमार होते थे, उन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं मिलता था अघोरी जाति के व्यक्तियों को मंदिरों के बाहर खड़े होकर ही पुजारी से पूजा करवानी पड़ती थी।⁶

तुलसी ने अपने ‘रामचरितमानस’ में ऐसे समाज का कठोरता से खंडन किया और रामराज्य की कल्पना की। नामदेव दर्जी थे। उन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की। यहाँ की छुआछूत व वर्ण-व्यवस्था का उन्होंने कड़ा विरोध किया। उनका मानना था कि सभी व्यक्ति समान हैं। हमें धर्म, जाति, भेद से ऊपर उठकर सोचना चाहिए।

उत्तरप्रदेश में 19वीं सदी में ही बाबा साहब से कुछ पहले स्वामी अछूतानंद ने ‘आदि हिंदी आंदोलन’ चलाया, जिसके फलस्वरूप जाति-व्यवस्था पर प्रहार करनेवाला साहित्य लिखा जाने लगा था। 1914 में ‘हीरा डोम’ की ‘अछूत की शिकायत’ नामक कविता ‘सरस्वती’ में छपी। इसे दलित सोच की वर्तमान धारा की पहली रचना कहा जा सकता है, चूँकि इसमें केवल दलितों की शिकायत या व्यथा ही नहीं दर्ज की गई, बल्कि आक्रोश और विरोध भी जताया गया है। इस कविता में पहली बार भगवान की उस शास्त्रसम्मत संरचना पर भी प्रश्न उठाया गया है, जो दलितों को मनुष्यता के दायरे से बाहर रखती है। इसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

कहंवां सुतल बाटे सुनत न बाटे अब

डोम जानि हमनी के छुए से डेरइलो⁷

इस प्रकार प्राचीन समय से ही दलितों के दुःख-दर्द को साहित्य के माध्यम से विभिन्न विद्वानों ने वाणी दी।

आधुनिक साहित्य

आधुनिक दलित-साहित्य जिसका उद्भव हिंदी में बीसवीं शताब्दी के नवम दशक से माना जा सकता है। यह हिंदी साहित्य की ही एक अद्यतन और विशेष धारा है। दलित-साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर लेखनकार्य हो रहा है। इनमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथाएँ, आलोचना और पत्रकारिता आदि हैं।

कविता

हिन्दी दलित कविता मध्यकाल के निर्गुण संत कवि रैदास व कबीर से होती हुई आधुनिक कवियों तक आई है। हिंदी दलित कविता में कुछ काव्य-संकलनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 'इनमें पीड़ा जो चीख उठी', तथा 'दर्द का दस्तावेज़' के नाम उल्लेखनीय हैं। 'पीड़ा जो चीख उठी' में पच्चीस दलित कवियों की दो-दो कविताएँ संकलित हैं। डॉ० एन. सिंह द्वारा संपादित काव्य-संकलन 'दर्द के दस्तावेज़' को हिंदी दलित-कविता का पहला व प्रतिनिधि संकलन के रूप में मान्यता मिली है। श्री लालचन्द्र राही का 'मूक नहीं मेरी कविताएँ', डॉ० पुरुषोत्तम 'सत्यप्रेमी' का 'द्वार पर दस्तक', 'सवालों के सूरज', 'मूक माटी की मुखरता' हैं। डॉ० जयप्रकाश कर्दम का 'गूँगा नहीं था मैं', डॉ० श्योराजसिंह बेचैन का 'नई फ़सल' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।⁸

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', रामधारीसिंह 'दिनकर', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नागार्जुन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', अज्ञेय, जगदीश गुप्त, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरिजाकुमार माथुर आदि हिंदी के प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने यथार्थ के धरातल पर उतरकर ग़रीब, मजदूर, किसान, श्रमिक, नारी, दलित की दीनदशा के विरुद्ध अपनी कविताओं में आवाज़ उठाई। दिनकर कहते हैं—

श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र,
भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की छाती से चिपक, ठिटुर,
जाड़े की रात बिताते हैं।⁹

उपन्यास

हिंदी में दलितों को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यास बहुत कम हैं। हिंदी दलित-साहित्य में जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' इस दृष्टि से प्रथम उपन्यास है। दूसरा उपन्यास श्री सत्यप्रकाश द्वारा लिखित 'जस तस भई सबेर है।'¹⁰ डॉ० भवदेव पांडेय 'बेचैन' का 'बुधुआ की बेटी' (1927) उपन्यास को पहला उपन्यास मानते हैं। उनका मानना है कि 'ब्राह्मण होते हुए 'बेचैन' ने शूद्रों का जीवन जिया है, जिसको उन्होंने अपने उपन्यास में बनारस के भंगियों के जीवन के माध्यम से दर्शाया है।'¹¹ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का 'कुल्लीभाट', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट',

अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899) मुंशी प्रेमचंद का 'गोदान' (1935) में कृषक जीवन, ऊँच-नीच जाति, ब्राह्मणों के अंधविश्वासों का यथार्थ चित्रण किया है। इनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, 1934) नागार्जुन (रतिनाथ की चाची), श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी) आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं, जिन्होंने शोषित, पीड़ित, दलित व निम्न वर्ग की कठिनाइयों, पीड़ा को अत्यंत सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है।

नाटक

हिंदी-क्षेत्र में दलित रंगमंच विकसित नहीं हो पाया है, जिसके कारण नाटकों की रचना अधिक नहीं हुई है, लेकिन अब तक श्री माताप्रसाद ने दलित नाटक लिखे हैं, जिनमें 'धोखा (1977), अछूत का बेटा (1990), वीरांगना झलकारी बाई (1995), तड़क मुक्ति की (1999), वीरांगना ऊदादेवी पाखी (1999), प्रतिशोध (1999) अंतहीन बेड़ियाँ और धर्म-परिवर्तन (2000) आदि प्रमुख हैं।¹² इन नाटकों में उन्होंने दलित समाज की किसी-न-किसी प्रमुख समस्या को उठाया ही नहीं, अपितु साथ में समाधान भी प्रस्तुत किया है।

हिंदी कहानियों में दलित-चित्रण

हिंदी में पहली कहानी सन् 1900 के बाद ही 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। यह युग हिंदी कहानी के विकास का प्रारंभिक काल है। यह युग ऐसा है, जिसमें दलितों का विद्रोह सुलगकर सामाजिक धरातल पर आ पहुँचा था। इसमें एक ओर स्वाधीनता-संग्राम में गांधीजी ने संघर्ष करते हुए अनुभव किया कि यह लड़ाई किसी एक वर्ग, जाति या धर्म से नहीं जीती जा सकती। इसमें सभी धर्मों, जातियों और वर्गों का सहयोग आवश्यक है। उसी समय डॉ॰ अंबेडकर जो लंबे समय से अछूतों के लिए संघर्ष कर रहे थे, इन दोनों ने मिलकर ही अछूतों के उद्धार का प्रयास किया। अनेकानेक कहानीकारों ने इस क्षेत्र में अपनी कलम चलाई। मुंशी प्रेमचंद और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' इनमें सशक्त कहानीकार हैं, जिन्होंने दलितों की पीड़ा का अनुभव किया। प्रेमचंद ने पहली बार भारतीय समाज में नरकमय जीवन जीने वाले पीड़ितों, दलितों को अपनी कहानियों का विषय बनाया। उनकी कहानियों में जमींदारों के द्वारा किसानों के शोषण की समस्या, सूदखोरों के शोषण से पिसते ग्रामीणों की समस्या, छूआछूत की समस्या, अंधविश्वास व रूढ़ियों की समस्या को चित्रित किया गया। उस संदर्भ में उनकी 'कुन', 'ठाकुर का कुआँ', 'मंत्र', 'सद्गति', 'दूध का दाम', 'पूस की रात', 'मंदिर' और 'एक फूल की चाह' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीवी', 'परिवर्तन', 'कमला', 'हिरनी', 'राजासाहब को ठेंगा दिखाया', 'देवी', 'जानकी' आदि कहानियाँ ग्रामीण व शहरी समाज की अमानवीयता यथार्थ रूप में चित्रित करती हैं।

सन् 1936 के आसपास हिंदी साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा का प्रवेश हुआ फलस्वरूप शोषित, स्त्री और मजदूरों के प्रति सहानुभूतिपरक, रचनाएँ लिखी गईं। दलित विषयक साहित्य लिखने वाले अन्य प्रमुख कहानीकार हैं—पं॰ विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (गल्प मंदिर, चित्रशाला, प्रेम-प्रतिमा, मणिमाला, विधवा, पतितपावन), उपेंद्रनाथ 'अशक' (मध्यवर्गीय जीवन से संबंधित 'निशानियाँ', 'दो धारा') पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (शैतान मंडली, चाकलेट, चिनगरियाँ, बलात्कार), यशपाल (पिंजड़े की उड़ान, फूलों का कुर्ता, वो दुनिया) आदि लेखकों

ने वर्गसंघर्ष, शोषण, अनाचार, सामाजिक एवं नैतिक रूढ़ियों पर आक्रोश प्रकट किया है।¹³ इनके अतिरिक्त रामप्रसाद पहाड़ी, देवीदयाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि कहानीकारों ने दलितवर्गों की दयनीय दशा का चित्रण किया है।

अंततः कहा जा सकता है कि हिंदी दलित-साहित्य भले ही मराठी दलित-साहित्य के बाद शुरू हुआ, लेकिन आज इसकी प्रत्येक विधा में दलितों को आधार बनाकर यथार्थ को चित्रांकित किया जा रहा है, जिससे दलित अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो अपना उत्थान कर सकें।

संदर्भ

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी, पृ० 511
2. उद्धृत दलित-साहित्य आंदोलन, डॉ० चंद्रकुमार वरठे, पृ० 67
3. उद्धृत दलित-साहित्य में प्रमुख विधाएँ, माताप्रसाद, पृ० 43
4. हिंदी साहित्य में दलित-संघर्ष के उन्नायक डॉ० एन० सिंह, रमणिका गुप्ता, दलित-साहित्य : चिंतन के विविध आयाम-लेख, डॉ० चमनलाल, पृ० 145
5. कबीर ग्रंथावली, रामकिशोर शर्मा, पृ० 209
6. हिंदी साहित्य-चिंतन, सुधाकर पांडेय, डॉ० कुसुमाकर पांडेय (रामकथा ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भ, लेख, डॉ० सुखदेव सिंह, पृ० 274
7. वर्तमान साहित्य पत्रिका (दलित-साहित्य और हिंदी जगत लेख), रमणिका गुप्ता, नवंबर-99, अंक-11, पृ० 65-66
8. दलित-साहित्य में प्रमुख विधाएँ, माताप्रसाद, पृ० 44-48
9. हुंकार (विपथगा), रामधारीसिंह दिनकर, पृ० 73
10. दलित-साहित्य में प्रमुख विधाएँ, माताप्रसाद, पृ० 52-53
11. वर्तमान साहित्य पत्रिका (हिंदी में दलित चेतना का प्रथम सूर्योदय, डॉ० भवदेव पांडेय का लेख), अक्टूबर-99, पृ० 60
12. दलित-साहित्य में प्रमुख विधाएँ, माताप्रसाद, पृ० 54
13. वही, पृ० 49

2361 अर्बन एस्टेट,
जींद (हरिणाणा) 126102
मो० 9215246470

निरुपमा सेवती की कहानियों में नारी के विविध रूप

प्रा० राहुल सुरेश भदाणे

बीसवीं शताब्दी के बाद हिंदी कथासाहित्य दिन-ब-दिन समृद्ध होता जा रहा है। हिंदी कहानी के विकास में पुरुष लेखकों के साथ-साथ लेखिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में लेखिकाओं ने कथासाहित्य-लेखन में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। इन्होंने भारतीय परिवेश के सभी आयामों का चित्रण पूर्ण यथार्थ के साथ अपने साहित्य में किया है। आज का हिंदी साहित्य वर्तमान जीवन का वास्तविक अंकन करने में समर्थ है। यही कारण है कि आज भी कहानी और उपन्यास सबसे लोकप्रिय साहित्य विधा माने जाते हैं। हिंदी में कथासाहित्य-लेखन आज लेखिकाओं द्वारा प्रचुर मात्रा में होने लगा है, जिनके माध्यम से नारी-जीवन से जुड़ी अनगिनत समस्याओं तथा उनके बदलते विविध रूपों का चित्रण पूर्ण यथार्थता के साथ होने लगा है।

समकालीन महिला कथाकारों में उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, मेहरुन्निसा परवेज़, सुधा अरोड़ा, दीप्ति खंडेलवाल, निरुपमा सेवती, कृष्णा अग्निहोत्री, सूर्यबाला तथा और भी लेखिकाओं ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। इन लेखिकाओं में निरुपमा सेवती का नाम भी महत्वपूर्ण है। निरुपमा सेवती समसामयिक परिवेश से जुड़ी कथाकार हैं। मध्यवर्ग से होने के कारण मध्यवर्गीय परिवारों का चित्रण उनके कथासाहित्य में मिलता है। उन्होंने अपनी कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं और विसंगतियों को अभिव्यक्त किया है। नारी को केंद्रबिंदु मानकर लेखिका ने उसकी पीड़ा को मुखरित किया है। निरुपमा सेवती को हिंदीप्रेम अपनी माँ से विरासत में मिला है। उनकी माँ श्रीमती पुष्पलता अपने समय की पंजाब की एक प्रसिद्ध लेखिका थीं। 'सड़न' और 'चीखें' कहानियाँ उन्होंने लिखीं। शायद माँ की प्रेरणा से निरुपमा सेवती साहित्य-लेखन की ओर उन्मुख हुईं। इसलिए बीस वर्ष की आयु में सेवतीजी ने 'निरावण' नामक पहली कहानी लिखी, जो 'कहानी' पत्रिका में जुलाई 1968 में प्रकाशित हुई।

निरुपमा सेवती की कहानियाँ इतनी लोकप्रिय हैं कि उनका अनुवाद मराठी, कन्नड, गुजराती, मलयालम, अँग्रेज़ी, बंगाली, पंजाबी आदि भाषाओं में हुआ। निरुपमा सेवती ने अपने जीवनकाल में छह कहानी-संग्रह और चार उपन्यास लिखे। 'खामोशी को पीते हुए', 'कच्चे मकान', 'आतंक बीज', 'काले खरगोश', 'भीड़ में गुम' तथा 'दूसरा जहर' कहानी-संग्रहों के माध्यम से सेवतीजी ने बाहर के संसार की क्रूरता से साक्षात्कार कराया। अविस्मरणीय कथ्य और सहज भाषा के संतुलन से पढ़नेवालों को बाँध लेना सेवती की कहानियों की खूबी है। उनकी कहानियाँ नए अनुभव और शिल्प से संयुक्त हैं। निरुपमा सेवती की कहानियों में समाज के पिछड़े

वर्ग अर्थात् नारी का बड़ी यथार्थता के साथ अंकन हुआ है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है, जो नारी की तत्कालीन स्थिति को उजागर करता है। नारी के इन विविध रूपों से हम आधुनिक नारी के बदलते परिदृश्य को देख सकते हैं।

आज का युग आधुनिकयुग है, जहाँ पुरुषों के साथ-साथ नारी को भी समान अधिकार प्राप्त हुआ। इसीलिए आज की नारी शिक्षा प्राप्त होने के बाद अपने परिवार के भरण-पोषण हेतु नौकरी करने लगी है, किंतु नौकरी करना उसके लिए इतना सुरक्षित नहीं है। नौकरी करते समय उसे अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। निरुपमा सेवती ने नारी की इसी त्रासदी को 'एक साधारण-असाधारण' कहानी की सुधा, 'विषपुरुष' कहानी की सुमना, 'बद्धमुष्टि' कहानी की शुभा, 'सबमें से एक' कहानी की नायिका के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। पिता की मृत्यु के बाद अपने छोटे भाई-बहनों तथा माँ की सहायता के लिए 'विषपुरुष' कहानी की सुमना अपने फूफा की सहायता से महानगर में बड़ी कंपनी में नौकरी करती है। उसका दोस्त परेश और कंपनी के छोटे मालिक छोटे साहिब सुमना को अपने जाल में फाँसते हैं। वह छोटे साहब के लैंगिक शोषण का शिकार हो जाती है। इस संदर्भ में लेखिका लिखती है—'छोटे साहब की जकडन को। चाहे तो एक झटका दे उसे तोड़कर भाग भी सकती है, लेकिन जाएगी कहाँ? सारे रास्ते खोए हुए दिखाई दिए।' इस तरह समाज में ऐसी अनेक नौकरीपेशा औरतें हैं, जो सुमना जैसी मुसीबतों का सामना करती हैं। वे चाहकर भी इसका विरोध नहीं कर पातीं, क्योंकि उनके सामने परिवार की बड़ी ज़िम्मेदारी होती है, जो इन्हें ऐसा अत्याचार सहने पर मजबूर करती है।

नारी विवाह से पूर्व अपने मायके तथा विवाह के बाद अपने ससुराल की ज़िम्मेदारी को समझती है और वह उसे पूर्ण करने प्रयास करती है। विवाह होने से पहले अगर मायके के परिवार पर कोई संकट आए, तो वह उसके निराकरण हेतु कुछ भी करने पर विवश हो जाती है। वह अपनी पढ़ाई को भी उतना महत्त्व नहीं देती, जितना अपनी ज़िम्मेदारियों को। निरुपमा सेवती ने 'ठहरी हुई खरोंच' कहानी की नायिका के माध्यम से अविवाहिता नारी के इसी रूप को उजागर किया है, जिस पर माँ की मृत्यु एवं पिता की बीमारी के कारण परिवार के भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी आती है। इस ज़िम्मेदारी को निभाने के लिए उसे मजबूरन कॉलेज की पढ़ाई बीच में छोड़ ब्यूटी सैलून में नौकरी करनी पड़ती है। वह कहती है—'दो महीने से डैडी का जिस्म पथरा गया। कोई गुंजाइश नहीं थी और मैंने कॉलेज छोड़ दिया था।..... डैडी के दोस्त की बहन ने 'ब्यूटी-सैलून' में काम दिलवा दिया।.... जैसे-तैसे मेरी नन्ही-मुन्नी तनख्वाह से घर भी चलने ही लगा।'²

आज नारी स्वतंत्रता-प्राप्ति की अभिलाषा लिए जीना चाहती है। उसे परिवार द्वारा लगाए गए बंधन अच्छे नहीं लगते। स्वतंत्र रूप से समाज में घूमने वाली ही वास्तविकता में स्वतंत्रता का उचित अर्थ भूल जाती है और अपने-आपको ग़लत रास्ते पर ले जाती है। समाज और घर की सुरक्षा में रहकर अगर नारी अधिकारों का पक्ष लेती है, तो उसे अपनी ज़िम्मेदारियों का भी एहसास होना चाहिए। निरुपमा सेवती की कहानी 'विरासत' की नायिका सरु स्वतंत्रता की कामना रखनेवाली नारी है। वह डैडी द्वारा दिया गया शादी का प्रस्ताव टुकराकर एक एडवर्टाइजिंग एजेंसी में रिसेप्शनिस्ट की नौकरी ढूँढ लेती है और घर छोड़कर वर्किंग-गर्ल हॉस्टल में रहने लगती है। घर से बाहर रहने के कारण वह ग़लत दोस्तों के संपर्क में आ जाती है और नशे के कैप्सूल सेवन करती है। एक बार पुलिस द्वारा पकड़ी भी जाती है। उसके पिता द्वारा ही उसे पुलिस के

चुंगल से मुक्ति मिलती है। स्वतंत्र एवं स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण आज नारी अपना अलग व्यक्तित्व तो स्थापना कर रही है, किंतु इस प्रवृत्ति के कारण आज प्रेम यौन-तृप्ति का साधन बनता जा रहा है। समसामयिक युग में प्रेम और यौन-संबंधी जीवन-मूल्यों में काफी परिवर्तन आ गया है। आज की नारी प्रेम का वास्तविक अर्थ भूल गई है। वह सेक्स को अधिक महत्त्व देने लगी है। परिणामस्वरूप विवाह से पूर्व ही वह अपनी यौन-तृप्ति की लालसा मिटाने लगी है। वह आनेवाले भविष्य के बारे में कभी नहीं सोचती है। 'चुनौती और स्वीकृति' कहानी की शिल्पी के माध्यम से निरुपमा सेवती ने स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता के कारण उत्पन्न नारी की इसी मानसिक विकृति का चित्रण किया है। शिल्पी अविनाश नामक एक ऐसे युवक से प्रेम करती है, जो अनेक स्त्रियों से शारीरिक संबंध स्थापित कर चुका है। इन दोनों का प्रेम आंतरिक प्रेम न होकर 'कुछ लेना न देना मगन रहना' जैसा प्रेम है। ऐसा प्रेम भविष्य को बिगाड़ सकता है। इस बात की चिंता शिल्पी को नहीं है। उसका सोचना है कि-मैं हर जोखम उठा सकती हूँ। मुझे किसी का डर नहीं। किसी होने वाले पति का भी नहीं कि वह मेरे अतीत के बारे में क्या सोचेगा क्या नहीं? क्योंकि किसी आने वाले कल के लिए मैं अपना आज तबाह नहीं कर सकती... किसी आने वाली सुरक्षा को कीड़े नहीं लगवा सकती।¹³ अपनी इसी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण अविनाश उसे अपने जाल में फँसने में कामयाब होता है। लेकिन उसके शादी के प्रस्ताव को नकारता है। सेवतीजी अपनी कहानियों के माध्यम से यह बताना चाहती हैं कि कभी-कभी औरतों की स्वतंत्रता की प्रवृत्ति उनके लिए कष्टकारी सिद्ध हो सकती है। इसलिए इंसान की जिंदगी में मर्यादा का होना अत्यावश्यक है।

हर इंसान के जीवन में अर्थ का काफी महत्त्व है। परिवार के उदर-निर्वाह की जिम्मेदारी ज्यादातर पुरुषों पर होती है। अगर घर का पुरुष बेकार हो या शराबी हो तो परिवार के उदर-निर्वाह की जिम्मेदारी उस घर की औरत पर आ जाती है। ज़रूरत पड़ने पर घर की चारदीवारी को लौंघकर बाहर काम करना पड़ता है। निरुपमा सेवती द्वारा लिखित 'कुछ होने की स्थिति' कहानी की लक्ष्मी एक ऐसी नारी है, जिसका पति व्यसनाधीन है। इसी व्यसनाधीनता के कारण वह बहुत बीमार रहता है। परिणामस्वरूप उसे फैक्टरी से निकाल दिया जाता है। लक्ष्मी को बाहर काम के लिए जाना पड़ता है। चार बच्चे, सास, बेकार देवर और बीमार पति आदि से त्रस्त लक्ष्मी स्वयं भी बीमार पड़ जाती है। उसका सारा उत्साह खत्म हो जाता है, उसमें एक प्रकार की तटस्थता का भाव आ जाता है। उसकी आर्थिक स्थिति इतनी विकट हो जाती है कि उसे अपने पति के अचानक मर जाने पर उसके क्रिया-कर्म के लिए पैसे नहीं बचते। वह अपने सिर पर हाथ मारते हुए कहती है—'अब एक मुट्ठी में चालीस रुपए धरे बिना कुछ न होगा। फिर अपने देवर पर कुढ़ रही थी, उस दिन सुबह उसके पैकेट में बीस-पचीस रुपया था। खेला होगा कहीं मटका या पत्ता, पर पैसा तो मुझे दे देता। अब काम आता।'¹⁴

धन अभाव के कारण कभी-कभी औरतों को अपने जीवन-मूल्यों का भी त्याग करना पड़ता है। 'आतंक बीज' कहानी की मीता के माध्यम से सेवती जी ने अर्थाभाव में नारी का जीवन कैसे बदल जाता है, इस बात की ओर हमारा ध्यान खींचा है। शादी से पहले हमेशा सच का साथ देनेवाली आदर्श लड़की के रूप में मीता को पहचाना जाता था, किंतु शादी के बाद जब पति की नौकरी छूट जाती है, तो पति के ग़लत मार्ग से आनेवाले पैसे को मीता स्वीकार कर लेती है। वह अपने जीवन-मूल्यों को त्यागने पर विवश हो जाती है। वह अपने भाई केशव

से कहती है—‘तुम जानते हो मैंने कितने बुरे दिन काटे हैं?दूध के लिए चीखते अपने बच्चों को मैंने पानी में आटा घोल-घोलकर पिलाया है।’⁵

सुखी परिवार वही माना जाता है, जहाँ पति-पत्नी एक-दूसरे को समझते हैं। अपने परिवार को अधिक सुखी बनाने का प्रयास करते हैं, किंतु आज तलाक की मात्रा में बड़े पैमाने में वृद्धि होती जा रही है। तलाक के अनेक कारण होते हैं। जैसे—पति द्वारा पत्नी की अपेक्षाओं की पूर्ति न होना, पति या पत्नी का उच्च या निम्नवर्ग का होना, विकट आर्थिक परिस्थिति, पति द्वारा पत्नी पर अन्याय होना जैसे अनेक कारणों से आज के युग में पति-पत्नी में तलाक होने लगे हैं। जिसका नारी के जीवन पर बहुत बुरा असर पड़ा है। तलाक की इन समस्याओं का चित्रण निरुपमा सेवती ने ‘सुनहरे देवदार’ कहानी की रश्मि तथा ‘खामोशी को पीते हुए’ कहानी की नायिका के माध्यम से किया है। वर्गभेद के कारण ‘खामोशी को पीते हुए’ कहानी की नायिका का अपने पति के साथ तलाक हो जाता है। पैसे के दम पर उसका पति उन दोनों की इकलौती संतान आशु को अपनी ओर खींच लेता है। माँ को अपने बच्चे से अलग किया जाता है। डेढ़ साल बाद अपने बच्चे आशु को मिलने के लिए जब नायिका जाती है, अपने बच्चे को देखकर उसे आनंद तो होता है, किंतु उसे इस बात का बहुत दुख होता है कि उसका खुद का बच्चा नेकर पहनने के लिए वह किस तरह तुनकता होगा। शर्ट की एक बाँह के लिए किस तरह मचलता होगा। इसका मुझे कुछ पता न था।⁶ इस बात का अनुभव एक माँ को न होते हुए इस घर में काम करने वाले गवर्नेस को था। इस तरह अर्थाभाव के कारण एक माँ को अपने बच्चे से अलग रहना पड़ता है।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर होता दिखाई देने लगा है। संयुक्त परिवार आज धीरे-धीरे एकाकी परिवार में बदलते जा रहे हैं। जहाँ ‘हम दो हमारे दो’ की भावना विकसित हो रही है। इसमें अगर सास-ससुर का समावेश हो जाए, तो भी इस परिवार की जड़ें हिलने लगती हैं। उस परिवार की गृहिणी सास-ससुर को ज्यादा दिन अपने घर में सह नहीं पाती। आज माता-पिता बच्चों पर बोझ बनते जा रहे हैं। निरुपमा सेवती ने ‘विमोह’ कहानी की सरोज के माध्यम से एकल परिवार की ऐसी ही नारी का चित्रण किया है, जो अपने परिवार में सास-ससुर की दखलंदाजी पसंद नहीं करती। वह अपने पति नरेंद्र से कहती है—‘कुछ पता चलाक्या प्रोग्राम बना फिर? टिकट ले आए पापा? हफ्ते तक चले जाएँगे क्या?’⁷ वह अपनी सास कांता की रसोई में दखलंदाजी पसंद नहीं करती। जब उसे लगता है कि यह यहाँ से नहीं जाएगी, बुढ़ापे में उन्हें शहर का चस्का लग गया है, तो अपने पति द्वारा उनसे बैंक-बैलेंस की बात करने को कहती है, जिसके द्वारा वह बड़ा प्लॉट खरीदना चाहती है। आज की नारी में आ रहे विचारों के परिवर्तन को, उनमें निहित स्वार्थी प्रवृत्ति को सेवती जी ने ‘विमोह’ कहानी में सरोज के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

बेटी का जन्म इसका मतलब है कि ज्यादा पूँजी जमा करके रखना। इसके अभाव में बेटियों की सगाई तक टूट जाती है। ‘एक साधारण-असाधारण’ कहानी की सुधा दहेज-प्रथा की शिकार नारी के रूप में चित्रित हुई है। सुधा का विवाह उसके पड़ोसी एवं प्रेमी रवि से तय होता है, किंतु कम दहेज मिलने के कारण रवि के पिता लाला हरिचरण पंडितजी को कुछ पैसे देकर कुंडलियों में दोष निकालने के लिए कहते हैं। पंडित जी विरोधी कुंडलियाँ निकाल सुधा के विवाह को रोकते हैं। पंडित जी की यह बात सुन सुधा कटुता से कह देती है—‘शायद चालीस-पचास हजार मेरे भाग्य से इस ग्रह-दोष को बदल सकते हैं।’⁸ समाज में दहेज एक ऐसी कुप्रथा है, जिसका

शिकार मध्यमवर्ग और गरीब वर्ग की लड़कियाँ होती दिखाई देती हैं। दहेज के अभाव में लड़कियों की उम्र बढ़ती चली जाती है। परिणामस्वरूप वह वाममार्ग की तरफ भी मुड़ जाती हैं। उनके माता-पिता हमेशा अपनी बेटी के विवाह को लेकर चिंतित रहते हैं।

हर मनुष्य के जीवन में सुख-दुख आते रहते हैं। मनुष्य सुख में तो हमेशा खुश रहता है, किंतु दुख सहने की बारी आती है, तो वह उसके लिए असहनीय हो जाता है। ऐसे दुखी लोगों के जीवन की नीरसता में सरसता लाने का काम समाज के कुछ इंसान करते हैं, जो दूसरों के जीवन में हमेशा रोशनी का दीपक जलाने का प्रयास करते हैं। 'समझौते' कहानी की वीरेश्वरी दीदी के माध्यम से सेवती जी ने एक ऐसी नारी का चित्रण किया है, जो हमेशा दूसरों को प्रेरणा देती है, दूसरों के सुख में अपना सुख समझती है। दुखी व्यक्ति को सुखी बनाने का प्रयास करती है। वह अनोज नामक एक आठ वर्ष के बच्चे की तब सहायता करती है, जब उसकी माँ का अचानक देहांत हो जाता है। माँ के देहांत से दुखी अनोज वीरेश्वरी दीदी की प्रेरणा से अपने व्यक्तित्व में बदलाव लाता है। वह अनोज को प्रेरित करते हुए कहती है—'तुझे मालूम है अनोज, कुछ लोग व्यर्थ व्यतीत हो जाने के लिए नहीं बनते। जानते हो कि तुम उनमें से एक है।... अनु, तुम्हें जरूर कुछ नया करना चाहिए। मैं देख रही हूँ, एक तुम्हीं हो हमारे दोनों परिवारों में जिसमें कुछ कर गुजरने की क्षमता है।'⁹

निरुपमा सेवती द्वारा लिखित विवेच्य कहानियों के नारी के विविध रूपों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि निरुपमा सेवती ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के विविध रूपों को पूर्ण यथार्थ से अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में अविवाहित नारी, विवाहित नारी, तलाकशुदा नारी, माँ के रूप में चित्रित नारी, विवाहपूर्व एवं विवाहोत्तर पारिवारिक ज़िम्मेदारी निभाती नारी, दहेज जैसी कुप्रथा से प्रताड़ित नारी, स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता की कामना रखनेवाली नारी, आर्थिक परिस्थिति से त्रस्त नारी आदि जैसे अनेक नारी के रूपों को अभिव्यक्त कर नारी के बदलते स्वरूप एवं उसकी बदलती विचारधारा को व्यक्त किया है।

संदर्भ

1. दूसरा ज़हर, विष पुरुष, पृ० 477, 478
2. खामोशी को पीते हुए, ठहरी हुई खरोंच, पृ० 20, 21
3. कच्चे मकान, चुनौती और स्वीकृति, पृ० 201
4. खामोशी को पीते हुए, कुछ होने की स्थिति, पृ० 48
5. आतंक बीज, पृ० 142
6. खामोशी को पीते हुए, पृ० 71
7. आतंक बीज, विमोह, पृ० 104
8. दूसरा ज़हर, एक साधारण-असाधारण, पृ० 435
9. दूसरा ज़हर, समझौते, पृ० 453, 455

□17, राजलक्ष्मी
मुंदाणकरवाडी वाडी भोकर नाका
देवपूर धुले (महाराष्ट्र)

विश्वनाथप्रसाद तिवारी के काव्य में संवेदना

ममता

कविता के प्रायः दो पक्ष माने जाते हैं—**संवेदना पक्ष** और **शिल्पपक्ष**। संवेदना के अंतर्गत काव्य के समस्त वर्ण्य-विषय आ जाते हैं और शिल्पपक्ष में वर्णन शैली के सब अंग सम्मिलित हैं। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। काव्य को जीवन का पर्याय माना जाता है और काव्य में आदमी के अंतर्वाह्य को अपनी अभिव्यक्ति मिलती है। कविताओं का लक्ष्य मात्र पाठक या श्रोता को किसी गरिमामय, अलौकिक संसार का साक्षात्कार कराना नहीं, बल्कि समकालीन जीवन-यथार्थ का साक्षात्कार कराना है। कवि आमजीवन की छोटी से बड़ी हर प्रकार की स्थिति और संवेदना को काव्यवाणी प्रदान करता है।

संवेदना एक व्यापक शब्द है। संवेदना ही काव्य की आत्मा है। कवि अपने अनुभव के आधार पर जिन-जिन संदर्भों और सरोकारों का वर्णन करता है, समाज के जिन-जिन रूपों को उजागर करता है, वह सब संवेदना के अंतर्गत आता है अर्थात् संवेदना के बिना कविता की कल्पना और कविता की रचना की संभावना नहीं की जा सकती है।

संवेदना की व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से 'विद्' धातु में 'यु' प्रत्यय जोड़ने पर 'यु' के स्थान पर अन् आदेश हो गया, फिर 'इ' को गुण करने से 'वेदन' शब्द निष्पन्न हुआ। तत्पश्चात् स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय जुड़ने पर वेदना शब्द बना। 'वेदना' शब्द के पूर्व 'सम्' उपसर्ग जोड़ने से संवेदना शब्द बना है। वेदना का सामान्य अर्थ है—दुःख, कष्ट या पीड़ा। सम् उपसर्ग के प्रयोग से वेदना शब्द में अर्थ वैशिष्ट्य उत्पन्न होकर संवेदना का अर्थ सहानुभूति हो जाता है। वस्तुतः संवेदना शब्द प्रयोग और संदर्भ के अनुरूप विभिन्न अर्थों का वाचक है। अँग्रेजी में संवेदना के लिए सेंशेंसन (Sensation), एसिम्पैथी (Sympathy), एसैन्सिटिविटी (Sensitivity), एड्मोटिविटी (Emotively) आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। संभवतः अँग्रेजी के इन शब्दों का प्रयोग 'मानक हिंदी कोश' में संवेदना के संदर्भ में निम्नलिखित अर्थ किया गया है—

1. मन में होने वाला बोध या अनुभव (अनुभूति)
2. किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दुःख। किसी प्रकार की वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना।

3. उक्त प्रकार का दुःख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया या भाव।

'शब्दार्थ दर्शन' के अनुसार 'संवेदना' का मुख्य अर्थ है 'अनुभूत, 'ज्ञात' या 'विदित होना'। अर्थात् शरीर में किसी प्रकार का वेदन होना। वस्तुतः गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख आदि का अनुभव या ज्ञान होना ही संवेदना है।¹ परंतु हिंदी साहित्य में यह प्रायः सहानुभूति के पर्याय के

रूप में ही प्रचलित है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार—‘संवेदना का अर्थ सुख-दुःखात्मक अनुभूति ही है, उसमें भी दुःखानुभूति से इसका गहरा संबंध है... संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुःख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दुःख का अनुभव करना ही संवेदना है।’²

साहित्यशास्त्र में संवेदना शब्द को विशिष्ट अर्थ के द्योतक के रूप में ग्रहण किया गया है, परंतु साहित्यिक संदर्भ में संवेदना साहित्यकार की वह अनुभूति है, जो सर्जन की प्रेरणा और रचना-विधि की शक्ति को सामर्थ्य प्रदान करती है। संवेदना शब्द के मनोविज्ञान शास्त्र एवं साहित्यशास्त्र गृहीत अर्थों के अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ० नगेंद्र ने लिखा है—‘मूलतः संवेदना का अर्थ है ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान, किंतु आजकल सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द प्रयोग इसके मूल अर्थ में ही किया जाता है और उस अर्थ में यह किसी बाह्य उत्तेजन के प्रति शरीर-तंत्र की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया होती है...साहित्य में इसका प्रयोग स्नायुविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए अधिक होता है। इस प्रकार साहित्यिक संदर्भ में संवेदनशील मन की प्रतिक्रिया की शक्ति ही है, जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख-दुःख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है।’³

डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित के अनुसार—‘संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह-रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है।’⁴

संवेदना शब्द का प्रयोग मनोविज्ञान के अनेक ग्रंथों में हुआ है। मनोविज्ञान के संदर्भ में विभिन्न व्याख्याएँ उपलब्ध होती हैं। मनोविज्ञान कोश के अनुसार—‘संवेदना चेतना की वह अवस्था है, जो किसी एक इंद्रिय के उत्तेजित होने पर उत्पन्न होती है और जिसका तात्त्विक विश्लेषण नहीं किया जा सकता।’⁵

इस प्रकार संवेदना शब्द की मनोविज्ञान-वेत्ताओं एवं साहित्य-शास्त्रियों द्वारा प्रदत्त विभिन्न व्याख्याओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संवेदना ज्ञानेंद्रियों का अनुभव अथवा मन की प्रतिक्रियात्मक शक्ति है। साहित्यिक रचना की दृष्टि से संवेदना का विशेष महत्त्व है। यों तो प्रत्येक प्रकार की साहित्यिक संरचना के लिए संवेदना का महत्त्व है, किंतु काव्य-रचना के लिए संवेदना का सर्वाधिक महत्त्व है। कविता प्राचीन हो या नवीन वह संवेदनशील मन की प्रतिक्रिया है और संवेदना ही कविता का चिरंतर विधायक तत्त्व है।

काव्य में संवेदना हमें विविध रूपों जैसे—व्यक्ति एवं समाज-संबंधी संवेदना, राजनीति-संबंधी संवेदना, प्रकृति-संबंधी संवेदना, प्रेम-संबंधी संवेदना, सौंदर्य-संबंधी संवेदना आदि के रूप में मिलती है। यहाँ हम विश्वनाथप्रसाद तिवारी के काव्य में इन्हीं संदर्भों के अनुरूप संवेदना पर चर्चा कर रहे हैं।

सर्वप्रथम विश्वनाथप्रसाद तिवारी के काव्य में व्यक्ति एवं समाज-संबंधी संवेदना पर दृष्टि डालते हैं। उनका समय देश की आजादी के बाद का है, उस समय देश की आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक दशा काफी खराब चल रही थी। उस समय के उथल-पुथल भरे जीवन को विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने अपनी लेखनी की शक्ति से अपने काव्य में उतारा और उन्होंने

मानवीय संवेदना के माध्यम से अनास्था, निराशा और कुंठा को काटती हुई आस्था का प्रखर स्वर उनकी कविता 'बेड़ियाँ टूटेंगी' नामक कविता की निम्न पंक्तियों में दिखा है—

हत्यारे मेरी ओर बढ़े आ रहे हैं
शायद वे मुझे खत्म करना चाहते हैं
रात खत्म होने से पहले,
मगर वे मेरी चीख का क्या करेंगे
जो हर कोठरी के द्वार से टकराएगी
जंजीरों को झनझनाएगी
बैरकों के बंदी चल पड़ेंगे
सीटियाँ चिल्लाएँगी
ऐसा लगता है
इस बंदीगृह में क्रांति हो जाएगी
सभी बेड़ियाँ टूट जाएँगी
सभी दीवारें ढह जाएँगी
एक भी पहरेदार का पता नहीं चलेगा।⁶

इस तरह कवि ने कविता के माध्यम से आस्थावादी स्वर को वाणी दी है। कवि की मान्यता है कि वर्तमान दौर में प्रचलित संवेदनहीनता, शून्यता, निराशा, अनास्था एक-न-एक दिन समाप्त हो जाएगी। आस्था का दूसरा स्वर प्रेम भी है। जिसके मन में दूसरों के प्रति प्रेम न हो, तो उसकी आस्था खोखली ही मानी जाएगी। कवि का प्रेम किसी अकेले व्यक्ति विशेष से न होकर संपूर्ण मानवता से है। कवि उस स्थिति का भी विरोध करते हैं जिसमें व्यक्ति रोटी-कपड़े के जुगाड़ में अपनी संवेदनाओं को भूल जाता है वर्तमान की इसी दुःखभरी दास्तां को 'सुख' नामक कविता के माध्यम से आरेखित करते हुए कवि कहता है—

दौड़ा एक-दूसरे को ठेलते
छीनते-अपटते
जैसे मेरे ईश्वर दौड़े थे त्रेता में
कचन मृग के पीछे।⁷

कविवर विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने अपनी कविताओं में समाज में फैली बेरोजगारी, असंतोष, तनाव, भ्रष्टाचार, कुंठा, अवसाद, घृणा आदि का यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं में किया है। वर्तमान समाज में हमारी सांस्कृतिक भव्यता का लोप हो चुका है, क्योंकि उदारिकरण ने पूरी दुनिया को बाजार में तब्दील कर दिया है जिससे पारिवारिक रिश्ते-नाते सब टूटकर बिखर चुके हैं। इसी बात को कवि ने अपनी कविता 'कलेजा' में आरेखित करते हुए लिखा है—

'उन्होंने मुझे रोटी दी
जब मैंने अपने साथी के साथ किया विश्वासघात'⁸

विश्वनाथप्रसाद तिवारी की कविताएँ राजनीति को केवल रूपक की हैसियत से इस्तेमाल करती हैं। वर्तमान शताब्दी की अमानवीयता जो किसी एक राजनीतिक व्यवस्था या दूसरी राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ एक टिप्पणी है, कवि ने कभी आक्रोशित होकर, तो कभी

संवेदनशील होकर राजनेताओं के झूठे वादों एवं आश्वासनों पर प्रहार किया है। 'शब्द' नामक कविता में कवि ने इसी तथ्य को वाणी प्रदान की है। इसकी कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

टपकेंगे मधु की तरह/ वीणा की तरह बजेंगे
मगर/ नहीं/ नहीं/ नहीं
चुभलाना नहीं/ सजाना नहीं/ इतराना नहीं
विश्वास न करना उन पर/ झूठे हैं वे
छली हैं, प्रपंची हैं, पाखंडी हैं।⁹

विश्वनाथप्रसाद तिवारी भी अन्य कवियों की भाँति प्रकृति से दूर न रह सके। उनकी कविताएँ प्रकृति और मनुष्य के नए संबंधों की खोज करती हैं। 'हमारी घाटी' नामक कविता में कवि ने बड़े ही संवेदनशील हृदय के साथ अपने प्रकृति-प्रेम को उजागर करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान में हो रहे प्रकृति दोहन पर चिंता व्यक्त की है। यथा—

हमारी घाटी हमें वापस कर दो
वापस कर दो हमारी घाटी
तुम नहीं समझ सकते
ओस में भीगी चट्टानों का दर्द
न उस संगीत को
जब दूधिया चाँदनी में धुल जाता है जंगल
X X X
हम एक-दूसरे के लिए
भोर तक प्रतिक्षा करते हैं।¹⁰

कवि ने अपने काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों का बड़ा स्वभाविक और नैसर्गिक चित्रण किया है। कवि ने वर्षा, संध्या, धूप, हवा, सागर आदि के साथ-साथ ग्रामीण प्रकृति परिवेश से भी अत्यधिक सान्निध्य दर्शाया है। 'नहीं दिखेगी माँ' नामक कविता में कवि अपने प्रकृति-प्रेम एवं माँ के प्रति अपार श्रद्धा दोनों को व्यक्त करते हुए लिखता है—

नहीं दिखेगी माँ/ फिर कभी इस रूप में
भोर होगा भिनुसार/ चिरैया एक बोलेगी
X X X
घिरेगी साँझ
चौखट पर जलेगा दीया
आकाश में उगेंगे चंदामामा
X X X
बस माँ नहीं होगी।¹¹

अर्थात् प्रकृति का मनोहारी रूप तो होगा, लेकिन कवि की दृष्टि में माँ के बिना यह फीका ही रहेगा। इसके अतिरिक्त कवि ने गाँव की प्रकृति एवं संस्कृति का भी स्मरण किया है। 'वह लडकी' नामक कविता में तिवारी जी ने ग्रामीण लोगों की पुरुष मानसिकता को आरेखित करते हुए स्त्री-जाति के प्रति संवेदना व्यक्त की है और साथ-ही-साथ ग्रामीण परिवेश को भी

अपनी लेखनी द्वारा आरेखित किया है। यथा—

वह भोर में उठेगी
जब सुकवा उगता है आसमान में
बुहारेगी, लीपेगी, पोतेगी
फींचेगी, कूटेगी, पीसेगी
गाँइटे के धुएँ में
आँख और फेफेड़े चलाती/ चूल्हे फूँकती
एल्यूमिनियम के तसले में
मुट्ठी-भर चावल की तरह खदबदाएगी
कपड़े सुखाती/ सूखती
खुद को खिचड़ी की तरह परोसेगी।'¹²

यहाँ ग्रामीण संस्कृति व प्रकृति के अलावा ग्रामीण स्त्री की कठोर दिनचर्या को कवि ने संवेदना-भरी वाणी दी है। प्रत्येक कवि अपने काव्य में प्रेम को उतारता है, क्योंकि प्रेम एक स्वाभाविक क्रिया है, तो भला विश्वनाथप्रसाद तिवारी उससे अछूते कैसे रह सकते थे। कवि ने पारिवारिक प्रेम-संबंधी कविताओं की सृजना की है जिनमें माँ को अत्यधिक सम्मान दिया है। 'कैसे जाएगी माँ' नामक कविता में कवि का माँ के प्रति प्रेम देखने योग्य है—

हे देवताओ/ वह जीवनभर बनाती रही
दीवारों पर तुम्हारे चित्र भरती रही मंगलकलश
x x x
सींचती रही तुलसी
x x x
हे अनंत पथ के पहरेदारो
फूल की तरह ले जाना उसे
धर्मराज की सभा में।¹³

इस प्रकार कवि तिवारी जी ने अपनी माता की मृत्यु पर अत्यंत संवेदनशील होकर भावपूर्ण विदाई देते हुए अपने निश्चल प्रेम को अभिव्यक्ति दी है। इसी प्रकार 'माँ नहीं थी वह' नामक कविता में कवि ने मातृ-प्रेम का चित्रण तो किया ही है साथ में यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि औरत ही घर को वास्तव में घर बनाती है अन्यथा घर, घर न रहकर मात्र मकान ही लगता है। तभी तो कवि को अपने घर और माँ की याद सताती रहती है। वह तड़फकर कह उठता है—

माँ नहीं थी वह
आँगन थी/ द्वार थी
किवाड़ थी/ चूल्हा थी
आग थी/ नल की धार थी।¹⁴

इस प्रकार काव्य में संवेदना के विविध पक्षों पर विचार करते हुए पता चलता है कि ये कवि समाज के प्रत्येक पक्ष में रुचि लेते हैं। इन्होंने कविता के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए उसमें संवेदना के प्रत्येक आयाम को समाहित करने का प्रयत्न किया है जिसमें उन्हें काफी हद तक

सफलता भी मिली है।

विश्वनाथप्रसाद तिवारी की संवेदना एक आम आदमी की जिंदगी है जिसमें वह संघर्ष करता नजर आता है। तिवारी जी की कविता जीवन की तरह फैली हुई है जिसमें जीवन की भाँति विविधता और अनेकरूपता व्याप्त है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीति, प्रेम, आस्था व प्रकृति से संबंधित सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तथ्यों को भी बड़ी सहृदयता से आरेखित कर संवेदनशील कवि होने का प्रमाण दिया है। तिवारी जी अपने समय की सभी तत्कालीन प्रतिक्रियाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए एक जीवन का अच्छा स्वप्न देखना भी नहीं भूलते हैं। यह उनकी कविता 'लड़ता हुआ आदमी' में दृष्टव्य है—

लेकिन चारों ओर से घिरा हुआ/ आहत आदमी
अभी पराजित नहीं हुआ/ वह लड़ रहा है
सभी मोर्चों पर एक साथ
अंदर विश्वासधारियों से
और बाहर हत्यारों से।¹⁵

संदर्भ

1. रामचंद्र वर्मा, शब्दार्थ-दर्शन, पृ० 600
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 691-92
3. डॉ० नगेंद्र, मानविकी परिभाषिक कोश, साहित्य खंड, पृ० 232
4. सं० धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य-कोश, भाग-एक, पृ० 863
5. Philip Lawrence Harriman. 'The state of awareness which results when a sense organ is stimulated and which cannot be analyzed into any elements'. The New Dictionary of Psychology, P. 303
6. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 166
7. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 33
8. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 101
9. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 29
10. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 138
11. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 54-55
12. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 66-67
13. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 57-58
14. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 59
15. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ० 172

□ गाँव व डाक-मानहेरू
जिला-भिवानी 127309 हरियाणा
मो० 7827580334
ई मेल mamta161206@gmail.com

हिंदी छायावादी काव्य में राष्ट्रीय भावना

डॉ० संजीवकुमार

आधुनिक काव्य के आधार पर छायावाद का काल सन् 1920 ई० से 1936 ई० तक माना जाता है। इस काल में केवल छायावादी रचनाएँ ही नहीं लिखी गईं, बल्कि राष्ट्रीय भावना से जुड़ा हुआ काव्य भी लिखा गया था। इसका कारण यह था कि उस समय में स्वतंत्रता-आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था। प्रत्येक भारतीय अँग्रेजों की दासता से छुटकारा पाना चाहता था। उस समय में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर गूँज रहा था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्यक्ति और समाज दोनों ही एक विशिष्ट संक्रमण-प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। यह काल देश के आर्थिक नवनिर्माण के समान ही नए जीवन के निर्माण का काल भी है। राष्ट्रीय चेतना के समान ही व्यक्ति और समाज की चेतना आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों और समस्याओं से संघर्ष करती हुई अपना नवीन संस्कार कर रही थी।'

हरिवंशराय 'बच्चन' की हालावादी रचनाएँ भी इसी काल के अंतर्गत आती हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा की रचनाएँ छायावादी विशेषताओं से युक्त हैं और प्रमाण की दृष्टि से भी सही हैं। इसलिए छायावाद को इस काल की मुख्य प्रवृत्ति स्वीकार करते हुए इसका नामकरण 'छायावाद' करना सही है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार, 'परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।'

छायावाद का का प्रयोग सर्वप्रथम व्यंग्य रूप से उन कविताओं में किया गया था, जो 'अस्पष्ट' थीं, जिनकी छाया अर्थ रूप में कहीं और पड़ती थी।

वे सजग रहते थे सदा दुख-पूर्ण तृष्णा भ्रांति से।

जीवन बिताते थे सदा संतोषपूर्वक शांति से।

इस लोक से वे अल्प सुख पाते न थे।

हँसते हुए आते न थे, रोते हुए जाते न थे।²

आधुनिक समय में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया, जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में रहस्यवाद का आभास होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी। डॉ० नगेंद्र के अनुसार, 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।' यह एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है, जीवन के प्रति विशेष भावात्मक दृष्टिकोण भी है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार, 'मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म, किंतु व्यक्त सौंदर्य

में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।' छायावाद में स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता दिखाई पड़ती है—

समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था,
चेतना एक विलसती, आनंद अखंड घना था।³

यह प्रेम, प्रकृति व सौंदर्य का काव्य है। इसकी अभिव्यंजना-पद्धति में नवीनता है, स्वानुभूति की प्रधानता है। छायावादी काव्य की एक सुदृढ़ वैचारिक पृष्ठभूमि है, जो द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता, नैतिकता एवं स्थूलता का विरोध करती है। भारत के अतीत गौरव के प्रति सचेष्ट छायावादी कवि व्यक्ति की स्वाधीनता के साथ-साथ हर प्रकार की दासता, आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। इनमें राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित है। अँग्रेजों ने भारत देश को गुलाम बनाकर यहाँ के लोगों का आर्थिक शोषण प्रारंभ कर दिया था, जिसके कारण यह स्वाभाविक ही था कि जनता में राष्ट्रीयता की भावना जागी और उसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई एक नए रूप में लड़ी गई। इस युद्ध के हथियार थे—अहिंसा, प्रेम, सत्याग्रह, नैतिकता, असहयोग एवं कष्ट व सत्या। इन हथियारों के बलबूते पर जनता में देश के लिए त्याग और बलिदान की भावना उत्पन्न करते हुए अँग्रेजों के विरुद्ध सफल संघर्ष किया। छायावादी रचनाओं के साथ-साथ चलनेवाली राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता में इन्हीं जीवनमूल्यों को काव्यवस्तु बनाया गया है और यह कहना सही होगा कि छायावादी कविता भी इन जीवनमूल्यों से प्रभावित हुई। जयशंकर प्रसाद की कविताओं के अतिरिक्त उनकी कहानियों एवं नाटकों के पात्र देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ त्याग, सेवा, क्षमा, करुणा, परोपकार व बलिदान की भावना से ओतप्रोत हैं। जयशंकर प्रसाद ने कंकाल में लिखा है कि गंगा की धारा जहाँ घूम गई है, वह छोटा-सा कोना अपने सब साथियों का छोड़कर आगे निकल गया है, आसन और दृढ़ धारणा से अपने मन को संयम में ले आने का प्रयत्न लगातार करते हुए भी शक्ति नहीं लौटी। वह उसे माया आवरण कहकर तिरस्कार करता, परंतु वह छाया जैसे ठोस हो जाती।⁴

राष्ट्रीयता की भावना छायावादी काव्य में अपना अलग ही महत्त्व रखती है। राष्ट्रीय आंदोलनों में गांधीजी एक ऐसे युगपुरुष थे, जिन्होंने अपने सिद्धांतों से समग्र युग-चेतना को प्रभावित किया। तत्कालीन समाज, राजनीति, साहित्य सब पर गांधी जी का विशाल प्रभाव पड़ा है। छायावादी कविता भी गांधीजी के सिद्धांतों से प्रभावित दिखाई देती है। कामायानी की श्रद्धा तकली पर सूत कातती है, हिंसा का विरोध करती है और मनु को प्रवृत्तिमार्ग का संदेश देती है। मानवतावाद, विश्वबंधु और लोककल्याण के जो स्वर छायावाद में दिखाई पड़ते हैं, उन्हें गांधीजी का ही प्रभाव समझना चाहिए। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान गांधीजी भारत के क्षितिज पर सूर्य की भाँति जब दैदीप्यमान थे, तभी हिंदीकाव्य में छायावादी कविताएँ लिखी गईं। अतः युगीन प्रभाव को ग्रहण करना अवश्यभावी था। गांधीजी के चरखे की अनुगूँज हमें प्रसाद की श्रद्धा के तकली चलाने में दिखाई पड़ती है।

‘चल री तकली धीरे-धीरे, प्रिय गए खेलने को अहेर।’

राष्ट्रीयता के आधार पर छायावादी काव्य में सौंदर्य का अभिनव मिलता है। कवि कभी निसर्ग की मधुमय छटा के चित्र अंकित करता है, तो कभी-कभी मानवीय रूप की ज्योत्स्ना का।⁵ श्रद्धा मनु की हिंसावृत्ति का विरोध करती है और उन्हें अहिंसा का पाठ पढ़ाती है।

रीतिकाल में सौंदर्य ज्वालामय था, जिसमें मरने-जीने का स्वांग रचने की आवश्यकता अधिक जान पड़ती थी, परंतु इस युग का सौंदर्य शांत या शीतल है। उसमें उन्माद के साथ-साथ प्रणयमयी धारा प्रवाहित होती है। कर्म करने के विश्वास को दृढ़ रखने की शांतिदायिनी प्रेरणा प्राप्त होती है।⁶

जयशंकर प्रसाद की 'कामायानी' पर भी गांधी का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में भी 'सर्वात्मवाद' की पुष्टि करते हुए मानव मात्र को सुखी बनाने की बात कहकर गांधीजी के सिद्धांतों का समर्थन किया गया है—

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।

अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।

डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित राष्ट्रीय भावना के साथ सौंदर्य से ओत-प्रोत होकर लिखते हैं—
'छायावादी कवियों ने अपनी सौंदर्य-साधना द्वारा हिंदी के काव्य को सुसंपन्न किया है और इस प्रकार सौंदर्यविधान की युगयुगीन परंपरा में सर्वोच्च कीर्ति को स्थापित किया है।'

जयशंकर प्रसाद के काव्य में भी राष्ट्रीयता एवं स्वदेशानुराग की जो भावना है। वह भी युगीन प्रभाव ही है। वे भारतमाता का गुणगान इस प्रकार करते हैं—

अरुण यह मधुमय देश हमारा

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

छायावादी कवि पंतजी ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होकर गांधीवाद को व्यक्त किया है। उनकी 'बापू के प्रति' कविता गांधीजी के सत्य, अहिंसा एवं प्रेम के सिद्धांत को अभिव्यक्ति देती है। 1936 ई० में रचित इस कविता में गांधीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए पंतजी कहते हैं—

सुख-भोग खोजने आते सब, आए तुम करने सत्य खोज।

जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के मन के मनोज।

कवि की धारणा है कि गांधीजी ने पशुबल से लड़ने के लिए 'आत्मबल' का हथियार दिया और विद्वेष एवं घृणा पर विजय पाने के लिए 'दुर्जय प्रेम' का पाठ पढ़ाया—

पशुबल की कारा से जग को दिखलाई आत्मा की विमुक्ति।

विद्वेष घृणा से लड़ने को सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' भले ही 'क्रांतिदूत' रहे हों, परंतु उनकी रचनाओं में भी गांधी और गांधी-दर्शन के प्रति आदरभाव व्यक्त हुआ है। इस विवेचन के आधार पर यह कहना समीचीन होगा कि छायावादी कविता गांधीवाद से राष्ट्रीयता के आधार पर प्रभावित रही है।

सन् 1920 से 1936 ई० में छायावादीकाल के दौरान भारतीयों पर देश को स्वतंत्र करवाने की चेतना पूर्णतः छाई हुई थी। छायावादीयुग में तत्कालीन राष्ट्रीय स्वतंत्र चेतना का भाव मिलता है। कभी यह अतीत गौरव-गायन के रूप में गूँजा है, तो कभी अँग्रेजों के प्रति विरोध-भावना के रूप में मुखरित हुआ।⁸

तिलक का उद्घोष 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और सुभाष की हुंकार—'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।' ने जनता को आज़ादी की लड़ाई की ओर उन्मुख किया। एक ओर तो गांधीजी असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा जैसे आंदोलनों से भारतीय जनता को

उद्धेलित कर रहे थे, तो दूसरी ओर क्रांतिकारियों के बलिदानों ने सोई हुई भारतीय जनता को जगा दिया था। छायावादी काव्य राष्ट्रीय सीमाओं के अंतर्गत व्यक्ति की प्रतिष्ठा में संलग्न इस भावना का काव्य है, जो कि विश्व की भूमिका में साधारणीकरण के योग्य है।⁹

डॉ० पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार—‘1931 ई० में कराँची काँग्रेस अधिवेशन के समय सरदार भगतसिंह का नाम भारत में उतना ही सुप्रसिद्ध हो गया था, जितना कि गांधीजी का इस प्रकार की परिस्थितियों का प्रभाव छायावादी कवियों पर अनिवार्य रूप से पड़ा था और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे कवियों ने ‘पुष्प की अभिलाषा’ जैसी रचना लिखी, जिसमें एक पुष्प यह अभिलाषा करता है कि मुझे उस रास्ते पर फेंक देना, जिस रास्ते पर देश बलिदान हेतु वीर जा रहे हो। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर सीस चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

जयशंकर प्रसाद के काव्य-संकलन ‘लहर’ में ‘शेरसिंह का आत्मसमर्पण’ व ‘पेशोला की प्रतिध्वनि’ नामक दो ऐसी कविताएँ हैं, जो स्वातंत्र्य-चेतना से युक्त हैं। इनमें से प्रथम कविता उस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करती है, जिसमें सिक्खों की वीर सेना ने अँग्रेजों के दाँत खट्टे किए थे। सिक्खों की उस गौरवगाथा के द्वारा प्रसादजी ने भारतीय वीरों को अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। इसी प्रकार दूसरी कविता में राणाप्रताप की वीरता का परिचय इस प्रकार दिया है कि उसने मुगलों की अधीनता को स्वीकार नहीं किया था बल्कि यह कहा था कि मेवाड़ में कोई ऐसा शूरवीर है, जो छाती ठोककर यह कह सके—‘मैं यहाँ से इन विदेशियों को भगाऊँगा और अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लूँगा। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत इन कविताओं में कवि ने प्रश्न उठाया है कि कौन देश को स्वतंत्र कराने का बोझ उठाने को तैयार है।

कौन लेगा भार यह? जीवित है कौन

सांस चलती है किसकी, कहता है कौन ऊँची छाती कर

मैं हूँ, मैं हूँ मेवाड़ में अरावलीशृंग-सा समुन्नत सिर किसका?

बोलो, कोई बोलो अरे क्या तुम सब मृत हो?

हिंदी की राष्ट्रीय कविता, जो अब तक उपदेशों और प्रवचनों का नीरस भार ढोती आई थी, इसी काल में आकर अनुभूतियों के सच्चे आलोक से जगमगा उठी। राष्ट्रीय कविताएँ भी प्रचार न होकर अनुभूतियों का जीवित कोश होती हैं।¹⁰

प्रसाद जी ने कामायनी में जगत की सत्यता का प्रतिपादन कर पलायनवाद एवं निराशावाद का विरोध किया। नवजागरण की वेला में वे कर्मठता व कर्मण्यता का संदेश देते हुए नवयुवकों को संसार में प्रवृत्त होने एवं देश के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा देते हैं। ‘छायावाद का मूल दर्शन सौंदर्य-दर्शन में निहित है।’¹¹

राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय जागरण की भावना को प्रदर्शित करने में प्रसाद जी की प्रमुख भूमिका रही है। निश्चय ही छायावादी कवियों ने विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनमानस को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया—

भारतीय जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे।

राष्ट्रीय धारा के कवियों ने देशवासियों को स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ने के लिए प्रेरित किया तथा भारत की आंतरिक विसंगतियों एवं विषमताओं को दूर करने का आह्वान किया। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की निम्न पंक्तियों में भारत की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए भारतवासियों को जाग्रत होने के लिए कहा है—

ओ भिखमंगे, अरे पराजित ओ मजलूम अरे चिरोदित।

तू अखंड भंडार शक्ति का जाग अरे निद्रा सम्मोहित।

छायावाद का जीवन-दर्शन भी आशावादी एवं संसार में प्रवृत्त करने वाला है। कामायानी में जिस जीवन-दर्शन का उल्लेख है, वह प्रवृत्तिगामी है। कामायानी में शैवदर्शन के अंतर्गत आने वाले प्रत्यभिज्ञादर्शन की मान्यताओं को स्वीकार किया गया है। कामायानी की श्रद्धा मनु को संसार में प्रवृत्त करती हुई कहती है—

कर रही लीलामय आनंद, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।

विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त।

उस समय में ऐसे ही विचारों की आवश्यकता थी, जिससे युवक देश के लिए अपना सब-कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाएँ।

उपसंहार :

अंत में हम कह सकते हैं कि छायावादी काव्यधारा के कवियों ने युगीन आंदोलनों का उल्लेख भी अपनी रचनाओं में किया है। इनमें से अधिकांश कवि स्वयं स्वतंत्रता-आंदोलनों में भाग लेते रहे थे, अतः उनकी रचनाओं में तथ्यपरकता दिखाई पड़ती है। इन कवियों ने भारत के अतीत का गौरवगान किया। विदेशी जनता को अपने काव्य के माध्यम से उखाड़ फेंकने का आह्वान किया। देश के लोगों के मन में स्वतंत्रता की भावना को जगाया तथा मानवमूल्यों—सत्य, न्याय, प्रेम स्वाधीनता आदि की प्रतिष्ठा की।

संदर्भ

1. डॉ० महेंद्र भटनागर, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी, पृ० 3
2. श्री मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृ० 6
3. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, आनंद सर्ग, पृ० 220
4. जयशंकर प्रसाद, कंकाल, पृ० 11
5. डॉ० कृष्णचंद्र शर्मा, छायावादी काव्य, पृ० 116
6. डॉ० शिवकरण सिंह, स्वच्छंदता एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 133
7. डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, छायावादी कवियों का सौंदर्य विधान, पृ० 323
8. डॉ० नामवरसिंह, छायावाद, पृ० 71
9. डॉ० कमलाप्रसाद पांडेय, छायावाद : प्रकृति और प्रयोग, पृ० 52
10. रामधारीसिंह दिनकर, काव्य की भूमिका, पृ० 27
11. डॉ० हरनारायण सिंह, छायावाद : काव्य और दर्शन, पृ० 64

□ गाँव व डा० कमोदा
तह० पहेवा, कुरुक्षेत्र (हरि०)
मो० 09050115786

लक्ष्मीकांत वर्मा के लेख 'मानवमूल्यों के संदर्भ में लघुमानव की कल्पना' का पुनर्पाठ

मनोजकुमार खाली

नयी कविता का प्रथम व्यवस्थित विवेचन करती लक्ष्मीकांत वर्मा की पुस्तक 'नई कविता के प्रतिमान' सन् 1957 में प्रकाशित हुई। उक्त लेख इसी पुस्तक में है और इसी लेख से लघुमानव को सैद्धांतिकी आधार देते श्री वर्मा नई कविता की रचना या सृजन-प्रक्रिया और उसकी बुनियादी आधारभूमि को तलाशते हैं।

लक्ष्मीकांत वर्मा के लेख 'मानवमूल्यों के संदर्भ में लघुमानव की कल्पना' का पुनर्पाठ

लघुमानव की कल्पना 1948 से लेकर 1956 के बीच हिंदी के कुछ नए एवं तरुण-लेखकों का सहचिंतन अथवा उपलब्धि थी। लघुमानव एक संज्ञा थी, जिसे समस्त व्यापक मानव आत्मा का 'लघुतम' आत्मबोध कहा जा सकता है। वह एक सौंदर्यात्मक दृष्टि से लिखा गया।

लघुमानव की कल्पना की आवश्यकता क्यों?

उस दौर में एक ओर 'स्वर्णकला', 'स्वर्णधूलि', 'स्वर्णज्वाल' के ताने-बाने में नपुंसक महामानव अवतरित किया जा रहा था। दूसरी ओर प्रगतिवाद का खोखला समाजवादी यथार्थ अपना शोर मचा रहा था। हमारी जिज्ञासा थी कि इसमें हम कहाँ हैं? हमारा अस्तित्व कहाँ है? व्यक्ति कहाँ है? व्यक्ति की अनुभूति कहाँ है? आत्मदृष्टि कहाँ है? और उस आत्मदृष्टि के लिए क्या यह आवश्यक है कि वह भीड़ के साथ चले, कर्मकांड के साथ चले। जबकि हमने उस क्षण को भोगा नहीं, उसकी मर्मतिक पीड़ा को झेला नहीं। फिर वह हमारा सत्य कैसे हुआ, हमारी उपलब्धि कैसे हुई, हमारी यात्रा कहाँ हुई!

विचारधारा के अकर्मण्य चिंतन को खंडित करने में लघुमानव की संवेदना से हमें सहायता मिलती है। लघुमानव की संकल्पना यह मानती है कि मानव अस्तित्व ही एक पाप से विकसित हुआ है और मानव-मात्र एक अभिशप्त कीट है। इस संकल्पना को वे दोनों विचारधाराएँ खंडित करती हैं, जिनमें एक का वाहक भौतिक नियतिवाद है और दूसरे का नैसर्गिक चमत्कार। इन दोनों में से एक के पास भी वह वैज्ञानिक माप नहीं है, जिससे वह जान सके कि वह कहाँ है? इन दोनों के लिए दूसरे सोचते हैं या सोच चुके हैं। वे स्वयं नहीं सोचते। वे सोचे गए दूसरों द्वारा उपलब्ध हुए पथ पर चलने वाले व्यक्ति हैं। वे मनुष्य के जीवन को उसके संपूर्ण संदर्भ को केवल एक आत्महीन तंत्र के रूप में देखते हैं।

यथा—(1) आत्महीन तंत्र के रूप में देखने का नतीजा है एक ऐसे नपुंसक नायक का

जन्म, जो 'लोकायतन' के नाम पर दरिद्र, अपाहिज और दवा बेचने वाले की तरह लटके गाता है, क्योंकि वह जानता है कि वह जो बक रहा है, उसकी सार्थकता कहीं नहीं है। वह न अपनी भाषा बोल पाता है और न उसकी अर्थवत्ता को भोग पाता है।

पंत ने न जाने कितनी बार आकाश से कितने ज्योतिपुरुष धरती पर उतारे (उतरो हे ज्योति पुरुष-चरण) धरती पर आकाश से उतारने की प्रक्रिया हर आदिम समाज का भयग्रस्त व्यक्ति करता रहा है। इस आदिम भय, आदिम हर्षोल्लास के बजाय हमें अपने अस्तित्वबोध की सार्थकता को स्वीकार करते हुए एक व्यापक, गहरे यथार्थ को अभिव्यक्त करना ज़रूरी है।

लघुमानव में लघु क्या है?

लघुता लघुतम का (Potential) है, हीनता का नहीं, क्योंकि यह युग बिना इस लघुतम की (Potential) की सार्थकता के आगे बढ़ नहीं सकता। आज जीवन के विकास और विनाश में इसी लघुतम का महत्त्व है। यथा-आणविक विस्फोट, नैनो टेक्नोलॉजी, माइक्रोप्रोसेसर, स्टेम सेल चिकित्सा और हर वह इकाई, जो स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत है। यह लघुता वह अंश है, जो हर विनाश के बाद भी बचा रहता है और पुनर्निर्माण में लग जाता है।

लघुमानव और आज का युग

आज की सबसे बड़ी विषमता यह है कि हमारे पास न तो सुख को भोगने की दृष्टि है और न दुःख को भोगने का साहस। सुख को सार्थक रूप में भोग सकने की क्षमता उसी में होती है, जो दुःख को भोगने की एक दृष्टि विकसित कर लेता है। आज की संस्कृति नपुंसकता की संस्कृति है। यथार्थ से पलायन और दुःख से ऊबकर अपने चारों ओर कुहासा पनपाकर लोग जीना चाहते हैं। वास्तव में आज उखड़े हुए लोग वे हैं, जो अपने उखड़ेपन को अस्वीकार करते हैं। लघुमानव प्रत्येक क्षण के यथार्थ को जागरूक प्राणी के रूप में भोगता है। वह स्वप्नविलगित आम्रमंजरियों पर कल्पित कोयल की कूक के प्रति द्रवित नहीं होता तो इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह जो जीता है, जो भोगता है-उसी को अभिव्यक्त करता है।

लघुमानव पर (कुछ) टिप्पणियाँ और उनके जवाब

प्रगतिवादी समीक्षक नामवरसिंह ने 'लघुमानव' को छोटा आदमी की संज्ञा देकर निरर्थक बताया। उनका यह कहना उचित ही था, क्योंकि प्रगतिवाद का जन्म ही लघुमानव की शवक्रिया करके किया गया था।

1. लघुमानव का जन्म वैसा ही है जैसे किसी बड़े ठाट-बाट वाले के बँगले से कोई नितांत साधारण जन सिर ऊँचा किए बिना उसकी नोटिस लिए निकल जाए।

2. लघुमानव का जन्म उस समय हुआ था, जब तमाम सड़कें बंद थीं; रास्तों पर पहरा था। पुलिस की सीटियाँ बज रही थीं, ट्रैफिक बंद था, जो उस रुकावट की उपेक्षा करके निकलने की चेष्टा करता, गोली से समाप्त करने की संभावना थी-ऐसा इसलिए था, क्योंकि अधिनायक की सवारी निकलने वाली थी। तानाशाह निकलने वाला हो, पर वह व्यक्ति नहीं रुकता। क्योंकि उसे समस्त आडंबरों का तिरस्कार करके मरीज बच्चे के लिए दवा, भूखे के लिए खाना लाना या छूटती ट्रेन को पकड़ना है। शायद यही लघुमानव है, जिसे न तो परंपरा बचा सकती है, न

धर्म, न राजनीति, न तथाकथित मर्यादा। लघुमानव रियायत (Mission) लेकर भी नहीं जीना चाहता और अपने विवेक, आत्मनिर्णय को नितांत क्षणभोगी जीव होते हुए भी स्वच्छंद (Arbitrary) सीमा तक ले जाने का साहस रखता है।

विशिष्ट विचारधारा से बँधे नामवर जी को यह लघुमानव खटकेगा ही जो नितांत स्वतंत्र, निर्भीक और समसामयिकता में विश्वास रखता हो। हम किसी मापदंड को मानवजीवन पर आरोपित नहीं कर सकते। आज यदि हम मानवजीवन का कोई दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं, तो उसे आज के संदर्भ, आज के जीवन तत्त्वों से उगना होगा। उस अमरबेल के समान हमें कोई ऐसा दर्शन नहीं चाहिए, जो प्रकाश से सहसा हमारे ऊपर फेंक दी जाए।

सार्थकता को आरोपित करने की अपेक्षा लघुमानव निरुद्देश्यता, अर्थहीनता, नितांत 'Absurd' को भी स्वीकार कर सकता है—यदि इससे संपूर्ण मानवीय चेतना को समझने और विकसित करने में कोई सहायता मिलती है।

पूर्व निश्चिता, पूर्व निधारण, सारी चिंतनधारा को सिद्धांतकेंद्रित करना, अपना व्यक्तित्व खो देना, भीड़ में खो जाना, अपना स्वत्व छोड़ देना—नामवर जी यही चाहते हैं। और क्या चाहते हैं। देखते हैं—

समाज की सपेक्षता में व्यक्ति

इतिहास नियति और युगपुरुषों ने अभी तक मानवता को केवल 'विशिष्ट' के लिए उत्सर्गित करने की बात कही है। जो विशिष्ट नहीं है उसके स्वत्व-स्वाभिमान को कभी रखा ही नहीं गया। विशिष्ट के विरोध में छोटा आ सकता है, किंतु विशिष्ट के विरोध में लघुमानव नहीं आ सकता। छोटा आदमी हमेशा सांप्रदायिक बुद्धि से निकलेगा। समग्रता और संपूर्णता की प्रतिक्रिया हमेशा छोटी होगी। लघुमानव को न अतीत की चिंता है, न भविष्य की; क्योंकि वर्तमान को एक जागरूक व्यक्तिनिष्ठ रूप में हमने भोग लिया तो भविष्य वही होगा, जो अपनी जागरूकता से वर्तमान को भोगकर बनाएँगे। अधभोगा व्यक्ति न भविष्य का होता है, न वर्तमान का और न अतीत का। वह केवल उच्छिष्ट होता है, जिसे इतिहास पंगु के रूप में जन्म देकर केवल छोड़ देता है। इसी प्रकार अधभोगे जीवन वाला व्यक्ति भविष्य का भी नहीं होता, क्योंकि वर्तमान को भोग सकने की क्षमता जिसमें नहीं, वह भविष्य लेकर क्या करेगा।

इतिहास ने, यिति ने, युग पुरुषों ने अभी तक मानवता को केवल 'विशिष्ट' के लिए उत्सर्गित करने की बात कही है और जो विशिष्ट नहीं है उसके स्वत्व-स्वाभिमान को कभी रखा ही नहीं गया। विशिष्ट के विरोध में छोटा आ सकता है, किंतु विशिष्ट के विरोध में लघुमानव नहीं आ सकता। छोटा आदमी हमेशा सांप्रदायिक बुद्धि से निकलेगा। समग्रता और संपूर्णता की प्रतिक्रिया हमेशा छोटी होगी। लघु मानव को न अतीत की चिंता है न भविष्य की, क्योंकि वर्तमान को एक जागरूक-व्यक्तिनिष्ठ रूप में हमने भोग लिया तो भविष्य वहीं होगा जो अपनी जागरूकता से वर्तमान को भोगकर बनाएँगे। अध भोगा व्यक्ति न भविष्य का होता है न वर्तमान का न अतीत का। वह केवल उच्छिष्ट होता है, जिसे इतिहास पंगु के रूप में जन्म देकर केवल छोड़ देता है। इसी प्रकार अधभोगे जीवन वाला व्यक्ति भविष्य का भी नहीं होता क्योंकि वर्तमान को भोग सकने की क्षमता जिसमें नहीं वह भविष्य लेकर क्या करेगा।

पंत ने 'चिदंबरा' में लघुमानव की कल्पना को कुंठाग्रस्त कहा है। पंत जी जब आकाश, पृथ्वी और दिशाओं से ज्योति का निर्झर बरसाते हैं और केवल अपने कृत्रिम स्वप्नों को प्रतिष्ठित करते हैं, तो वह कुंठाग्रस्त या यह लघुमानव जो बिना किसी ज्योतिनिर्झर के मरुस्थल की रिक्तता और उसकी सूखी नीरसता को वरण करके जीवन को अनिवार्य रूप से भोगता है? कुंठित वह होता है, जो केवल चंदन छाया के अंतराल में कुहासों का स्वप्न बुनता है और इसलिए स्थिति को खुले मन से स्वीकार करने वाला लघुमानव तो नहीं है।

'लोकायतन' का नायक और पंत जी के शब्दाडंबर में जो 'भिक्षां देहि' की ध्वनि है, वह किसी कृत्रिम महाश्रमण की कुंठा है, बोधिसत्व का विवेक नहीं। लघुमानव तो कभी कुंठित हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह प्रत्येक क्षण के यथार्थ को भोगने वाला है।

पूर्वाग्रह वाले व्यक्ति की आतंकित मनःस्थिति उसकी नहीं है। उसकी अस्तित्वचेतना उस अंकुर के समान है, जो रेत में भी एक बार उगकर अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित करता है। यदि पंत यह मानते हैं कि आज का युग संपन्न है और 'भारतमाता ग्रामवासिनी' की प्रतिमा आज पूर्णतया बदलकर संपन्नता का प्रतीक बन गई है तो फिर यह ज्योतिनिर्झर किसलिए है? विज्ञान के युग को भारत माता के वैधव्य का शोकगीत क्यों मानते हैं? और यदि वह मानते हैं, तो कुंठाग्रस्त वह है या यह लघुमाव की जीवंत कल्पना?

नामवर और पंत के बहाने

हमने देखा कि जो कुछ मानवमूल्यों के संदर्भ में आज सोचा जाता है, वह या तो सांप्रदायिक स्तर पर सोचा जाता है या आदर्श स्वप्न की स्थिति में रहकर सोचा जाता है। नामवरसिंह जैसे लोग सांप्रदायिक मानव के समर्थक हैं, पंत स्वप्नलोक की मिथ्यावादित के पोषक हैं। इनकी दार्शनिक पीठिका नई नहीं है, वे पुनरावृत्ति की उपज हैं। आदमी आज आदर्श और सांप्रदायिकता के बीच इतना टूट चुका है कि यदि उसे इस लघुता का स्वाभिमानवपूर्ण आधार नहीं मिलेगा, तो या तो वह केंचुआ हो जाएगा या फिर अकर्मण्य और नपुंसक होकर आकाश की ओर आँखें लगाए किसी ज्योतिर्भू की मरीचिका में भटकता-भटकता पूर्णतया नष्ट हो जाएगा। अतः हमें जीने की शक्ति देने वाले नए दर्शन की आवश्यकता होगी।

लघुमानव पराजित पीढ़ी का नया चिंतन-दर्शन

आज जब तक (पराजित पीढ़ी की) उस पराजित स्थिति को हम स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक यथार्थ के प्रति चाहे-वह जीवन से संबद्ध हो या कला से अपनी उचित दृष्टि विकसित नहीं कर पाएँगे। आज हम जिस निस्सहाय एवं विवशता की स्थिति में जी रहे हैं, उसकी स्वीकृति के साथ-साथ यह आवश्यक है कि हम उसके जीने के लिए, उसे वहन करने के लिए, एक दृष्टि भी दें। यदि आज पराजय को भी भोगने की क्षमता है, तभी हम कल की विजयश्री को भी भोग सकते हैं।

किसी स्वस्थ चटक फूल को देखकर ही सीमित न रहना अपितु उसके साथ उसके काँटे, उसकी जड़ें जो ठोस पृथ्वी को चीरकर अंधकार में टटोल-टटोलकर रस लेती हैं-उन पर भी ध्यान जाना। सहभोगी बनकर जड़ की व्यथा के साथ फूल का सौंदर्य भी भोगना। अर्थात् उसकी संपूर्णता को पूर्णतया भोगे बिना कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं हो सकती। आज के जीवन के

संदर्भ में भी, पराजय को बिना भोगे, बिना इसकी संपूर्णता को ग्रहण किए हम किसी भी स्वप्न का निर्माण अथवा किसी भी प्रकार की जीवन-दृष्टि विकसित नहीं कर सकते।

आज के विघटित मूल्यों के बीच एक ऐसी व्यंग्य की स्थिति है, जिसमें बिना उस व्यंग्य को पूर्णतया वहन किए हम किसी भी सार्थकता का साक्षात्कार नहीं कर सकते—

घर से बाहर निकलो
तो बचो, घर में रहो तो बचो
क्योंकि जो कुछ बचा है
उसे नष्ट करने की कोशिशें जारी हैं।

(मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए, स्वप्निल श्रीवास्तव)

‘ऐसी दुनिया’ में रहना, जहाँ प्रत्येक क्षण सृष्टि को समाप्त करने की धमकियाँ हों या स्वार्थपूर्ण व्यवस्था में हिलने-डुलने वाले कलपुर्जे बनना या विषपान भी करना हो तो समस्त व्यवस्था पर व्यंग्य करके करें या अपना छोटा-सा विरोध (Protest) करके। अंतर बस यही है कि हम विष को साहस के साथ, विवेक के साथ पीते हैं या पलायनवादी बनकर पीते हैं।

समस्त विरोधाभासों को भोगने और साक्षात्कार करने के लिए यदि हमारे पास जीवनदृष्टि नहीं होगी, तो आत्महत्या की परंपराएँ विकसित होंगी, क्योंकि आत्महत्या/ आत्मघाती प्रवृत्तियाँ जरूरत से ज्यादा आशावान व्यक्ति में होती हैं। निराश व्यक्ति आत्महत्या क्यों करेगा? यदि वह निराश है और निराशा को उसने स्वीकार कर लिया है तो वह उसको विवेकपूर्ण और जागरूक चेतन प्राणियों की तरह भोगेगा, उससे कतराएगा नहीं। कतराते वे लोग हैं, जो आवश्यकता से अधिक आशावादी होते हैं। पलायन वह करता है, जिसमें पराजय को वहन करने की क्षमता नहीं है।

इन दोनों में यथार्थ को भोगने की सामर्थ्य नहीं, क्योंकि वे वर्तमान में नहीं जीते, भविष्य में जीते हैं। लेकिन जो वर्तमान है वह इतना आकर्षक नहीं कि हर किसी में उसे भोगने की क्षमता हो। वर्तमान एक प्रकार की व्यर्थता (Futility), अर्थहीनता (meaning lessnes) और Absurdity की सापेक्षता में जीवित है। एक बार जब विपन्न वर्तमान के अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं, तब हमें दोनों प्रकार के स्वप्न अनर्गल और संदर्भहीन प्रतीत होते हैं।

अर्द्धमुक्त जीवन से उपजकर पूर्ण भोग तक

आज हम जीवन को एकांगी, लँगड़े रूप में नहीं जी सकते। इसीलिए आज सुख और दुःख दोनों स्थितियों में समान रूप से जी सकने की क्षमता प्रदान करनेवाले मानवीय जीवन-दर्शन की खोज आवश्यक है, जो कुछ भी जीवन हमें जीने के लिए मिला है, उसके ज़िम्मेदार हम नहीं हैं। वह हमें जन्मते ही पूर्वजों से मिला। ऐसे पूर्वज, जो एक लँगड़े जीवन की पंगु दार्शनिकता के साथ जीवन को एक छोर पर नितांत आदर्श और दूसरी ओर नितांत कृत्रिमता के स्तर पर अर्द्धभोग की स्थिति में जन्मे और मर गए। हम सब उसी अर्द्धभोग सत्य के पर्यावरण में जन्मे और विकसित हुए। हमारे पास वही आदर्श, खोखले, रिक्त, पंगु जीवन की अर्द्धभोगी परंपरा है। इसलिए भोग वस्तुतः हस्तगत अर्द्धभोगे जीवन की अपूर्णता के सापेक्ष समग्र जीवन भोगने का संकल्प है।

यह हमारी परिणति है कि हम अर्द्धमुक्त जीवन से पूर्णभोग (जिसमें सुख और दुख दोनों समान रूप से हों) तक जाएँ और जीवन को उसकी संपूर्णता में ग्रहण करें।

हमारे सामने प्रश्न हैं—

निराला की विक्षिप्तता चुनें या पंत/बच्चन की निरर्थक पलायन-दृष्टि या रागात्मक ऐश्वर्य के खोखले स्वाभिमान वाली अज्ञेय की दृष्टि या प्रगति के नाम पर एक निम्नकोटि की अवसरवादिता या यथार्थ की समस्त व्यंग्यात्मक स्थितियों के प्रति एक सार्थक इकाई की समग्र दृष्टि।

विवेक और स्वातंत्र्य के वास्तविक अर्थ की तलाश

आज विवेक और स्वातंत्र्य की मूल धारणाएँ ही खंडित होती जा रही हैं। जिस स्वतंत्रता के लिए मनुष्य व्यवस्था की माँग करता है, वह व्यवस्था स्वयं ही स्वतंत्रता को नष्ट करने लगी है। आज मर्यादा का अर्थ हो गया है—अन्याय को बेहया होकर सहना और व्यवस्था का अर्थ है—आत्मस्वत्व को गिरवी रखकर जीना। अतः आज की स्थिति की यह माँग है कि वह स्वतंत्रता और विवेक जिसे जबरदस्ती कृत्रिम व्यवस्था और मर्यादा के अंतर्गत बाँधे थे, उसे व्यवस्थाहीन और मर्यादाहीन रूप में वापस दें। यह अराजकता की स्थिति लग सकती है, पर जो विवशता की स्थिति है एक स्वीकृति के साथ उसको झेल लें तो ये विवशता एक सार्थक मूल्य भी बन सकती है। लघुमानव इसी को चुनता है।

जबकि आज उसके पास विकल्प की स्वतंत्रता है ही नहीं, वह केवल एक विश्वास की स्थिति में, जो भी व्यवस्था/स्वतंत्रता का रूप है, उसे केवल ढोता है, भोगता नहीं और यदि भोगता भी है तो क्लोरोफार्म की बेहोशी की दशा में। उसे पता नहीं कि वह किस सुख को किस मात्रा में और किस दुःख को किस संदर्भ में भोग रहा है।

लघुमानव : स्वीकृति का अधिकार अपने पास सुरक्षित

जीवन की प्रकृति है कि वह प्रत्येक क्षण अपने अस्तित्व का परिचय दे और स्थितियों का साक्षात्कार करे, चाहे वे स्थितियाँ अग्निवर्षा की हों या पुष्पवर्षा की। जब तक हम इन स्थितियों को खुद चुनकर स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक हमें स्थितियाँ भोगेंगी और हम स्थितियों को नहीं भोग पाएँगे। आज की स्थिति यह है कि अपनी स्वीकृति की शक्ति को हमने गिरवी रख दिया है और हर निर्णय के क्षणों में हम किसी दूसरे के हाथों के यंत्र बन जाते हैं। हम यह सब इसलिए करते हैं कि हम महान के आभामंडल से द्रवित होते हैं और अपना अस्तित्व भूल जाते हैं। सुमित्रानंदन पंत और नामवर इस दृष्टि से एक स्तर पर आचरण करते हैं। लघुमानव की कल्पना उनसे इसी अर्थ में पृथक् है कि वह अपने स्वीकृति के अधिकार को अपने पास सुरक्षित रखता है।

स्वीकृति के अधिकार का मतलब

स्वीकृत के अधिकार का आशय है कि वह पूर्व निश्चित या पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपनी नियति का स्वयं नियंता भी है। उसे कोई भी नियतिवादी जीवनदर्शन आक्रांत नहीं करता। वह निष्क्रिय माध्यम नहीं है। स्थितियाँ उसके ऊपर से गुजर जाएँ, तो वह उनके प्रति क्रियाशील होता है। आमने-सामने की टकराहट में वह स्थितियों का वाहक नहीं बनता, वरन् उसका भोक्ता

बनकर उन स्थितियों को भी परिमार्जित और परिक्षकृत करता है। वह Good Conductor के रूप में क्रियाशील नहीं होता। उसका आचरण Dielectrical होता है। जब तक मानव-संदर्भ की इस स्थिति को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक जीवन और उसके परिवेश की सार्थकता को भी हम नहीं समझ सकेंगे।

लघुमानव और भोग का नया आयाम

जीवन की सबसे पतनशील स्थिति वह होती है, जब हम स्थितियों को नहीं भोगते, स्थितियाँ हमें भोगती हैं। आज का सबसे बड़ा व्यंग्य यही है कि आज स्थितियाँ हमें भोग रही हैं, हम उन्हें नहीं भोग रहे हैं।

लघुमानव की कल्पना में भोग का नया आयाम यही है कि हम इन स्थितियों को संपूर्ण जागरूकता के साथ भोग सकें। एक अकर्मण्य, स्वप्नरत की मुद्रा में केवल स्थितियों को अपने ऊपर से न गुजर जाने दें, वरन् उनका साक्षात्कार और उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया की सापेक्षता में उनका Encounter कर सकें।

संपूर्ण भोग की स्वीकृति में काल का बोध

इतिहासबोध एक ठहराव है और परंपरा उसकी वाहक परंपरा पुनरावृत्ति को प्रश्रय देती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी आदिम जिज्ञासा के माध्यम से जो भी दृष्टि बनाएँ, इसे वर्तमान से संबद्ध करें, अतीत से नहीं। यदि वर्तमान को हमने जागरूक और चेतना-प्रबुद्ध व्यक्ति के रूप में भोग लिया, तो भविष्य अपने-आप उस प्रवाह की गति का द्योतक हो जाता है अन्यथा इतिहास मोह और परंपरा किसी भी संस्कृति पर हावी हो जाता है, तो वर्तमान मुक्त नहीं हो पाता और भविष्य की समस्त संभावनाएँ कृत्रिम हो जाती हैं। इतिहास सिर्फ स्मृतियों की दीक्षा देता है। वर्तमान जब तक इस स्मृति से मुक्त नहीं होगा, वह गतिमान भविष्य का आग्रह स्वीकार नहीं कर पाएगा।

इस युग की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि पुरानी दुनिया, नई दुनिया पर इतनी आक्रमणशील है कि नई की सारी शक्ति लगाकर भी उस पुरानी दुनिया से निकलना कठिन है। दुनिया के पास युद्ध, शांति, जय-पराजय की स्मृतियों के इतने बड़े ध्वंसावशेष हैं कि हर नई गति को वह उन्हीं धूल-धूसरित खंडहरों में भटका देती है। तपस्या, साधना, उत्सर्ग-सब उन्हीं स्मृतियों से निकलते हैं। जो वर्तमान है, उसमें स्वभावतः अतीत भी रहता है और भविष्य भी, लेकिन उसी मात्रा में जितना कि वर्तमान की समग्रता अपने परिवेश में स्वीकारे।

लघुमानव की कल्पना : मसीहा/खुदा/अवतार या उसके बेटे की कल्पना नहीं

वह अपने भीतर यह मानकर चलता है, जो कुछ उसका सुख है, दुःख है; वह उसका भी है, जो उसी स्थिति को विभिन्न परिवेशों/उसी परिवेश को विभिन्न स्थितियों में भोग रहा है। लघुमानव की कल्पना इसीलिए किसी मसीहा, खुदा के बेटे या अवतार की कल्पना नहीं है। वह पुंजीभूत मानव-अनुभूति और संवेदना का वाहक है। अंतर उसमें विभिन्नता की सार्थकता का है, उसकी निरर्थकता का नहीं। वह सत्य को एक आयाम की वस्तु नहीं मानता और उसके विभिन्न आयामों की सार्थकता को स्वीकार करता है। वह न आँखें मूँदकर चलता है और न इतनी

ज्यादा आँखें ही फाड़ देता है कि वर्तमान उसमें से दीख ही न पड़े। वह समग्रता को वर्तमान व सहअनुभूति से प्राप्त करता है।

वह नैतिकता को ही जीवन का एकमात्र तत्त्व नहीं मानता। वह सिर्फ सहिष्णुता को स्वीकार करता है। उसके सामने यह प्रश्न नहीं उठता कि वह ईमानदार है या बेईमान। उसके सामने एकमात्र दृष्टि यही है कि उसका सही भी ग़लत हो सकता है और दूसरे का ग़लत भी सही। इसका निर्णय विवेकशील दृष्टि ही कर सकती है।

तुलसी जैसे नैतिकतावादी कवि एक स्तर पर पहुँचकर कह बैठते हैं कि जो उनकी धारणा और नैतिकता से सहमत नहीं, वे सूकर, श्वान, काक, कीट, पतंग हैं। नैतिकता के प्रति आग्रहशील व्यक्ति या भावधारा सदैव यह ग़लती करेगी। लघुमानव के पास इस दृष्टि का कोई आग्रह नहीं है। वह स्वतंत्र है। उसकी नैतिकता भी प्रण से जुड़ी है। उसके मन का विवेक ही उसकी सार्थकता या अनर्थ का स्वतंत्र निर्णायक है। इसलिए उसके सामने यह प्रश्न नहीं उठता कि वह ईमानदार है या बेईमान। उसके सामने एकमात्र दृष्टि है कि यह ग़लत है और यह सही है।

आज का मानव उसे क्या-क्या मिला है

इतिहास से जो मिला—वह खंडित सत्य, अधभोगे जीवन का सत्य। वर्तमान से जो मिला—संक्रमणकालीन वर्तमान, अपूर्ण वर्तमान, पूर्वाग्रहों से ओतप्रोत वर्तमान। अनिश्चय की स्थिति—वह जो अधभोगे सत्य उसे मिले हैं (अभिशाप के रूप में) उन्हें वह स्वीकार करे या अस्वीकार।

उपर्युक्त के आलोक में मानव के विघटन, टूटने, भ्रमित होने का कारण जो हमें 'कथित' रूप से दिखता है।

वह ऐतिहासिकता से पृथक् नितान्त अनैतिहासिकता के संदर्भ में जीना चाहता है। व्यवस्था के पूर्वनिश्चित रूप का वह खंडन करता है, नियतिवादिता के पूर्वाग्रह को वह स्वीकार नहीं करता। इस पूरी प्रक्रिया में जो चीज़ हमें दिखाई नहीं देती, वह है आज के मानव की संकल्पशक्ति, जिसके आधार पर सहअस्तित्व के स्थान पर सहभोग के चिंतन को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास होता है।

सहअस्तित्व से अधिक मूल्यवान सहभोग : आज के मानव की चिंतन-प्रक्रिया

सहअस्तित्व में केवल अस्तित्वबोध की निष्क्रियता है, अस्तित्व की सक्रियता नहीं। सहभोग वर्तमान की समग्रता को इतिहास की संपत्ति के रूप में नहीं, अपने संदर्भ की पूर्णता में भोगता है। लघुमानव इतिहास के प्रति भले उत्तरदायी न हो, वह वर्तमान के प्रति उत्तरदायी होता है।

□ द्वारा श्री विजय खाली

जलनिगम

श्रीनगर (गढ़वाल) उत्तराखंड-246174

मो० 09411740660

इलियट की काव्यदृष्टि (निर्वेयक्तिकता और परंपरा/ संवेदनशीलता असाहचर्य और वस्तुनिष्ठ समीकरण)

मनोजकुमार खाली

थॉमस स्टर्नस इलियट ने हार्वर्ड यूनीवर्सिटी के साहित्यिक परिवेश से काव्य-सृजन आरंभ किया। 'हार्वर्ड एडवोकेट' में इन्होंने अपनी कविताएँ तो प्रकाशित की हीं, इसका संपादन भी इन्होंने किया। तर्कशास्त्र, तत्त्वज्ञान, संस्कृत, पाली चारों विषयों को मिलाकर दर्शनशास्त्र में इन्होंने पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। इलियट ने रोमांटिक, व्यक्तिबद्ध काव्यमूल्यों का खंडन किया। उन्होंने अपने-आपको मूलतः कवि माना है, न कि आलोचक (माई वर्कशॉप इज पोइट्री बाइ प्रोडक्ट इज क्रिटिसिज्म)। उनकी 'वेस्टलैंड' नामक कालजयी कविता 'सेक्रिड वुड' नामक काव्य-संग्रह में है, जो हिमालय को समर्पित है। इलियट के तीन आलोचकीय सिद्धांत मशहूर हुए—ट्रेडीशन, आस्जेमक्टव कोरिलेशन तथा डिस्सोसिएशन ऑफ़ सेन्सिबिलिटी। जिनका हिंदी अनुवाद क्रमशः परंपरा, वस्तुनिष्ठ समीकरण तथा संवेदना का असाहचर्य या विलगाव किया गया। इलियट के लोकप्रिय निबंध 'ट्रेडीशन एंड इंडिविजुयल टैलेंट' का बहुत ख़राब अनुवाद अज्ञेय ने 'रूढ़ि और मौलिकता' के नाम से किया था। इलियट ने रोमांटिक, व्यक्तिबद्ध काव्यमूल्यों का खंडन किया। रोमांटिक कवियों ने कविता को सहज अंतःस्फूर्त सृष्टि स्वीकार किया था। इलियट ने जोर देकर कहा कि कवि के व्यक्तित्व और जीवनगत रागद्वेष का विवेचन उसके काव्य की रचना एक निर्वेयक्तिक साधना है, जिसमें कवि को कलात्मक उद्देश्य के प्रति पूर्णतः आत्मसमर्पण करना पड़ता है।

टर्निंग लूज ऑफ़ इमोशन बट एन इस्केप फ़्रोम इमोशंस, इट इज नोट एन एक्सप्रेसन ऑफ़ पर्सनैलिटी बट एन इस्केप फ़्रोम पर्सनैलिटी अर्थात् 'कविता, कवि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति या आत्मभिव्यक्ति नहीं है, वरन् व्यक्तित्व से पलायन नहीं है। व्यक्तित्व का अनवरत निषेध है।' इलियट के इस लोकोक्ति हो चुके वाक्य-सिद्धांत के पीछे वर्ड्सवर्थ के इस सिद्धांत के विरोध की ध्वनि है—'All good poetry is spontaneous overflow of powerful emotion.'³ वस्तुतः वर्ड्सवर्थ की इन पंक्तियों का व्यापकतम मिसइंटरप्रिटेशन हुआ, क्योंकि इलियट ने इनको आधा ही उद्धृत किया और Recollected in tranquility⁴ को छोड़ दिया। इलियट कवि से ध्यान हटाकर कविता पर ही केंद्रित होने की बात करते हैं। 'यदि हम कवि द्वारा बताई गई सामग्री के आधार पर कवि के जीवनीपरक अध्ययन द्वारा कविता की व्याख्या करने की कोशिश करेंगे तो कविता से निरंतर दूर होते जाएँगे, साथ ही किसी गंतव्य पर भी नहीं पहुँचेंगे।' वास्तव में कविता का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है जिसका कवि के व्यक्तिगत भावों तथा जीवन-प्रसंग से जुड़ी घटनाओं से कोई सीधा

रिश्ता नहीं होता, अर्थात् आलोचना रचना केंद्रित होनी चाहिए, रचनाकार केंद्रित नहीं। इस तरह हम पूरी पाश्चात्य आलोचना में आ रहे बुनियादी परिवर्तन को देख सकते हैं—

आइए, अब इलियट के आलोचकीय सिद्धांतों को जानने का प्रयास करें।

परंपरा और प्रज्ञा

इलियट की समस्त आलोचकीय दृष्टि का आधार है। उनका निबंध 'Tradition and Individual Talent' किसी रचनाकार की महत्ताव या प्रतिष्ठा हम प्रायः उसकी वैयक्तिक विशिष्टताओं में खोजते हैं। उसके पूर्ववर्ती कवियों से उसकी भिन्नता पहचानने में ही हमें प्रसन्नता होती है। लेकिन वस्तुतः किसी कवि की रचना के श्रेष्ठ ही नहीं, वैयक्तिक पक्ष भी वही होते हैं, जिनमें उनके पूर्ववर्ती रचनाकारों का प्रभाव प्रभावशाली ढंग से व्यक्त होता है। अर्थात् व्यक्तिगत प्रज्ञा परंपरा से विच्छिन्न, निरपेक्ष, असंबद्ध वस्तु नहीं है, परंपरा से गहरे अर्थों में जुड़कर ही कवि अपनी वैयक्तिक सामर्थ्य को अधिक प्रभावी रूप में उजागर कर सकता है। यथा—हिंदी में तुलसीदास तथा निराला की कृतियाँ रामकाव्य-परंपरा से जुड़ी हैं तथापि यहाँ परंपरा, वैयक्तिक प्रज्ञा के प्रस्फुटन में बाधा न होकर सहायक सिद्ध हुई है। रचनाकार के लिए परंपरा साँस की तरह सहज, स्वाभाविक, अनिवार्य और नैसर्गिक क्रिया है। परंपरा के गुण दोषों के साथ रचनाकार का संघर्ष-संवाद बराबर चलता रहता है, परंपरा के प्रति गहरे लगाव का अर्थ हठधर्मिता या अंधानुकरण एकदम नहीं है। परंपरा की व्यापक अर्थवत्ता तो सृजनकर्म की नवीनता मौलिकता में ही फलित होती है, 'Tradition is a matter of much wider significance. It can not be inherited and if you want you must obtain it by great labour'⁵

परंपरा का अर्थ है—इतिहासबोध (Historical Sense)। इतिहास-बोध वह क्षमता है, जो Time less (कालातीत, शाश्वत, समयातीत) व (Temporal) टेंपोरल (कालिक, परिवर्तनशील, कालबद्ध) में भेद (Distinguish) करने में सक्षम हो। Timeless o Temporal के बीच भेद करने की क्षमता या नज़र पाने के लिए कवि परंपरा सिद्ध करता है। बिना इतिहासबोध के कवि बड़ा कवि नहीं हो सकता, इतिहासबोध के लिए परंपरा सिद्ध करनी ज़रूरी है। परंपरा ज्ञान नहीं है, वह तो नसों के भीतर बहती है, धड़कती है। परंपरा परिवर्तनशील भी है और शाश्वत भी। जब कोई व्यक्ति परंपरा को सिद्ध कर लेता है, तो वह उसकी धमनियों में, रक्त में उसके अस्तित्व के ज़र्रे-ज़र्रे में धड़कती है। इलियट के इन सिद्धांतों के आधार पर कहें, तो हिंदी का बड़ा कवि वही हो सकता है, जो ऋग्वेद से आज तक की परंपरा को जानता नहीं, जीता हो। परंपरा अतीत नहीं है। अतीत का ज्ञान होना तो चाहिए, पर इतना भी नहीं कि उसके भारीपने से कवि-चेतना आक्रांत हो जाए। परंपरा को सिद्ध करने के लिए निवैयक्तिक होने की आवश्यकता है। Impersonal/ Continual extinction of personality or Dissalution of ego into tradition⁶

निवैयक्तिक सिद्धांत

इलियट का यह सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र में रससिद्धांत के अंतर्गत मिलने वाली सृजन-प्रक्रिया के सिद्धांत 'साधारणीकरण' के बहुत नज़दीक है, पर इन्हें पर्याय नहीं माना जा सकता। साधारणीकरण भारतीय दर्शन की लंबी चिंतन-परंपरा का प्रतिफल है। इसकी तुलना में डिपर्सनलाइजेशन की दृष्टि काफ़ी हल्की पड़ती है।

डिपर्सनलाइजेशन की प्रक्रिया कला को विज्ञान की स्थिति के आस-पास पहुँचाती दिखती है। अपने मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए इलियट ने केटेलिस्ट उत्प्रेरक का बेजोड़ दृष्टांत दिया—ऑक्सीजन तथा सल्फर ऑक्साइड से मिलकर बनी नवनिर्मित गैस सल्फयूरस एसिड में प्लेटिनम पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता और प्लेटिनम का कोई चिह्न भी नहीं बचता। कवि का मानस प्लेटिनम का तार है। हो सकता है वह स्वयं व्यक्ति के अनुभव से अंशतः या पूर्ण परिचालित हो, परंतु कलाकार जितना पूर्ण या सिद्ध होगा उतना ही उसके भीतर के भोक्ता मानव और सृष्टा मानव के बीच का पार्थक्य स्पष्ट होगा, "The more perfect the artist, the more completely reperate in him will be the man, who suffors and the mind which creates"¹⁷ अर्थात् उसके अनुभूत संवेदनों और भावों से काव्य में व्यक्त संवेदन और भाव सर्वथा भिन्न होंगे, क्योंकि वह अनुभूत भावों को पूर्णतः आत्मसात करके उन्हें नए रूपों में ढाल देता है, इसके विपरीत कमजोर कवि अपने ही भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है।

काव्य-सृजन-प्रक्रिया में निजी और व्यक्तिगत अनुभवों के हस्तक्षेप को अमान्य ठहराने के बाद इलियट जब व्यक्तित्व से पलायन की बात करते हैं, तो उसका अर्थ है—व्यक्ति तत्त्व का निषेध और तिरस्कार, कविकर्म यहाँ कलाकार का आत्मबलिदान है, व्यक्तित्व का सतत समर्पण है। अपने निजी व्यक्ति तत्त्व को हटाकर वस्तु के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण आत्मदान। पुनः इलियट के शब्दों में कविता भावों का उन्मोचन नहीं, बल्कि भावों से मुक्ति है, वह व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं, बल्कि व्यक्तित्व पलायन है। इलियट कहते हैं कवि को व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करनी ही नहीं है वह तो माध्यम मात्र है—केवल माध्यम।

मूर्त विधान (Objective Correlation)—रचनाकार जब सृजनकर्म में प्रवृत्त होता है, तो उसके मूल में कोई-न-कोई प्रेरक भाव रहता है, किंतु सृजन के दौरान अनेक सूक्ष्म जटिल भाव संवेदन और विचार परस्पर घुलने-मिलने लगते हैं और सृजनकर्म की अंतिम परणति तक पहुँचते-पहुँचते न जाने कितने भावों, संवेदनों, विचारों का मिश्रण और विलयन हो चुका होता है। मानव के अनुभव, संवेदन, विचार सभी अमूर्त हैं। अमूर्त को मूर्त करना सरल कार्य नहीं है। अमूर्त होने के कारण भावों, संवेदनों आदि की पाठक-प्रेक्षक को प्रत्यक्ष प्रतीति नहीं हो सकती। इसलिए रचनाकर्म में यह प्रश्न उपस्थित रहता है कि अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कैसे बनाया जाए? कवि-मन के भाव-विचार-संवेदन को पाठक तक कैसे संप्रेषित किया जाए? इस बुनियादी प्रश्न को इलियट ने झेला और समाधान के रूप में Objective Correlation की प्रतिष्ठा की—अमूर्त का संप्रेषण मूर्त की सहायता से करें, भाव-संप्रेषण हेतु ऐसे सहसंबंधी वस्तु या व्यापार अर्थात् वस्तु समुदाय, परिस्थिति, घटना-शृंखला को टटोलकर ढूँढ़ निकाला जाए, जो उस विशिष्ट भाव का मूल सूत्र हो। 'The only way of expressing emotion in the form of art is by finding an objective correlative. In other word a set of objects, a situatins a chain of events which shall be formula of that particular emotions. Such that when external facts, the emotion is immediately evoked'¹⁸

इलियट की इस अवधारणा के आधार पर शेक्सपीयर के नाटक (हैमलेट) को एक असफल नाटक माना गया। उनका तर्क है कि उसमें नियोजित बाह्य वस्तु-व्यापार, भाव-संवेदन को उद्बुद्ध करने के लिए अपर्याप्त है। हैमलेट की भाव-संवेदनाओं के संप्रेषण हेतु जैसे

मूर्तविधान की योजना होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हो सकी। हिंदी में तुलसी का 'मानस' और निराला की 'राम की शक्तिपूजा' मूर्त विधान के आदर्श हैं, जिनमें अमूर्त भावों को मूर्त करने में कवियों को अद्भुत सफलता मिली है।

संवेदनशीलता का असाहचर्य

इलियट मानते हैं कि महान कवि और काव्य में वैयक्तिकता + परंपरा, समकालिकता + चिरंतनता, भावुकता + बौद्धिकता, भाव + विचार, कथ्य + रूप का गहन साहचर्य या सामंजस्य रहता है। इनमें से किसी एक पक्ष के दुर्बल, विकलांग, खंडित, असाहचर्य होते ही काव्य-उत्कर्ष खंडित हो जाता है। इलियट से पहले कॉलरिज ने काव्य में विरुद्धों के सामंजस्य की प्रतिष्ठा की थी। कॉलरिज के मत से विरुद्धों में सामंजस्य-स्थापना का कार्य 'कल्पना' करती है। इलियट ने कल्पना के स्थान पर Unified Sensibility संश्लिष्ट संवेदनशीलता को महत्त्व दिया। यूनीफाइड सेंसिबिलिटी में हृदय और बुद्धि एकीकृत हो जाते हैं। कमजोर और दुर्बल काव्य में भाव और विचार की एकरूपता विघटित हो जाती है। इलियट इसी को डिस्सोसिएशन ऑफ़ सेन्सिबिलिटी कहते हैं। संवेदन न तो भाव-मात्र है और न मात्र विचार। वह दोनों के रासायनिक योग से निर्मित होती है।

इलियट के मत से भाव और विचारों का गहरा साहचर्य शेक्सपीयर में देखा जा सकता है और स्वच्छंदतावादी कवियों में भावातिरेक उनकी कविता को कमजोर कर देता है। वर्ड्सवर्थ ने तो यहाँ तक कहा है कि बुद्धि के हाथों काव्य की हत्या हो जाती है। हिंदी साहित्य में तुलसी, कबीर, जायसी, सूर की श्रेष्ठता का सबसे बड़ा कारण है—संघटित संवेदनशीलता (यूनीफाइड सेंसिबिलिटी) लेकिन रीतिकाल की कविता संवेदनशीलता के असाहचर्य (डिस्सोसिएशन ऑफ़ सेंसिबिलिटी) के कारण असफलता का अद्भुत नमूना बनकर सामने आती है। रीतिकाल में हृदय पक्ष को प्रधानता और विचारपक्ष को गौणता दी गई थी।

संदर्भ

1. Eliot T.S., On Poetry and poets, Fabre and Fabre, London, 1957
2. वही
3. George Watson, The literary Gities, Penguin Books, London
4. वही
5. Eliot T. S., Selected Essays, III enlarged edition, Fabre and Fabre, London, 1951
6. वही
7. वही
8. इलियट का प्रसिद्ध निबंध, 'हैमलेट व उसकी समस्या', (सेक्रेड वुड पुस्तक से)

□ द्वारा श्री विजय खाली

जलनिगम

श्रीनगर (गढ़वाल) उत्तराखंड-246174

मो० 09411740660

रम्या रामायणीकथा

प्रीति त्रिपाठी

हमारी परंपरा तर्कों पर आधारित नहीं रही है, अपितु यह विश्वासों पर आधारित है। अतः हमारा प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य भी तर्क की अपेक्षा विश्वास पर अधिक टिका है। ऐसे में यदि कोई भारतीय संस्कृति के मुख्य चरित्र राम के अस्तित्व को लेकर सवाल उठाता है, तो यह अस्वाभाविक नहीं है। किंतु, इससे राम के नायकत्व पर सवाल खड़े नहीं होते, क्योंकि प्रत्येक समाज की अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती हैं, मान्यताएँ होती हैं, कथा-कहानियाँ होती हैं और नायक भी होते हैं, जिनका जीवंत संघर्ष जनमानस में निरंतर ऊर्जा भरता रहता है। राम भारत के ऐसे ही सर्वमान्य नायक हैं, जिनकी कथा हमारी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बन गई है। रामकथा की परंपरा प्राचीन है, किंतु राम के चरित्र में एक ऐसी अकल्पित शक्ति है, जो सदियों से कवियों तथा लेखकों को स्वयं पर लिखने के लिए बाध्य करती रही है। किसी भी समर्थ रचनाकार की लेखनी का संस्पर्श पाकर यह कथा अमोघ बन जाती है। फिर चाहे वह वाल्मीकि हों, भवभूति हों, तुलसी हों या फिर मैथिलीशरण गुप्त। गुप्त जी तो साकेत के प्रारंभ में यहाँ तक लिखते हैं कि—‘राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।’

राम के चरित्र का आकर्षण कोरे पूजाभाव में निहित नहीं है, अपितु उन सैकड़ों अनछुए रूपों में निहित है, जो उन्हें एक आदर्श व्यक्तित्व, वीर योद्धा या फिर शत्रु-संहारक होने के कारण प्राप्त था। राम की कथा गूढ़ ही इसलिए है, क्योंकि इसके नायक का चरित्र असीम संभावनाओं को समेटे हुए है और हर बार अलग-अलग कथानकों में पिरोया जाकर भी जन-मन के सर्वाधिक समीप से गुजरता रहा है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं—वाल्मीकि रामायण से लेकर वे सभी विविध भाषायी रामायण, जो राम की कथा पर आधारित होने के कारण रामायण-जैसी सामान्य संज्ञा से विभूषित हुईं। यद्यपि इनमें से कुछ में सांप्रदायिक आग्रह की प्रबलता है (बौद्ध तथा जैन रामायण) किंतु वे भी राम के चरित्र में निहित शील-सौंदर्य से इत्तेफाक रखते हैं। तभी तो रामकथा की प्रकृति में भारी फेर-बदल के बावजूद वे राम के चरित्र को कभी बुद्धत्व की कोटि तक पहुँचाने की चेष्टा करते हैं (बौद्ध जातक कथाओं में) तो कभी जैन मतावलंबी महापुरुष के रूप में चित्रित करके निर्वाण-पथ का पथिक दिखाते हैं (पउम चरिउ में)।

यों तो राम के अस्तित्व के चिह्न वेदों से ही मिलने प्रारंभ हो जाते हैं (राजा के रूप में—ऋग्वेद, 10/93/14, पुत्र के अर्थ में—तैत्तिरीय आरण्यक, 5/8/13), किंतु उनमें कथा का कोई विन्यस्त रूप न दिखाई देने के कारण हम राम के परिपूर्ण मानव रूप के प्रथम दर्शन वाल्मीकि रामायण में ही करते हैं। यद्यपि वाल्मीकि की रामकथा में कथात्मकता की प्रौढ़ता का जो रूप दृष्टिगोचर होता है, उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनसे पूर्व भी लोक

या शिष्ट साहित्य में रामकथा व्यापक रूप से प्रचलित रही होगी, जो कालांतर में वाल्मीकि की रामकथा में समाहित होकर विलीन हो गई होगी। आदिकाव्य में महर्षि वाल्मीकि नारद से यह जिज्ञासा करते हैं कि संसार में गुणी, कृतज्ञ, धर्मज्ञ, सत्यवादी, चरित्रवान एवं प्रियदर्शन ऐसा कौन-सा व्यक्ति है, जिसके क्रुद्ध होने पर देवता भी काँप उठते हैं—‘कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।’

इस पर नारद उन्हें इक्ष्वाकुवंशीय राम में इन समस्त गुणों का प्राकट्य बताते हैं। वे प्रजापति के समान पालक, श्रीसम्पन्न, वैरिविध्वंसक और जीवों तथा धर्म के रक्षक हैं। गंभीरता में समुद्र, धैर्य में हिमालय, क्रोध में कालाग्नि और क्षमा में पृथ्वी के समान है—

समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव।

कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।

वाल्मीकि रामायण, बालकांड, प्रथम सर्ग, श्लोक सं० 4, गीताप्रेस गोरखपुर।

इस प्रकार वाल्मीकि ने राम के चरित्र को एक ऐसे सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में परिणत कर दिया है, जो अपने चरित्र की उज्वलता के कारण न केवल अपने जीवन में आने वाले सुख-दुखादि संघातों का सफलतापूर्वक सामना करता है, बल्कि बड़े-से-बड़े संकट में भी मर्यादा का मार्ग नहीं छोड़ता है। वाल्मीकि ने आदिकाव्य में उन्हें साक्षात् धर्म (रामो विग्रहवान् धर्मः) कहा है। वास्तव में इतने उदात्त गुण ऐसे ही महापुरुष में पुंजीभूत हो सकते हैं, जो मानवता का आदर्श हो। राम के चरित्र में उन समस्त गुणों के विद्यमान होने के कारण ‘जिनकी मनुष्य कल्पना करता है या करना चाहता है।’ उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। इतना ही नहीं, कालांतर में चरित्रगत आदर्श की पराकाष्ठा के कारण राम के चरित्र को नर से नारायणत्व की वह उच्चतर भूमिका प्रदान की गई जहाँ वह समस्त उपाधियों से वाल्मीकि रामायण, बालकांड, प्रथम सर्ग, श्लोक सं० 17, गीताप्रेस गोरखपुर वही, श्लोक सं० 18

रहित सच्चिदानंद घन हो गया—

‘को वा दयालुः स्मृत कामधेनु।’

अब वह मनुष्य की चारित्रिक सृष्टि-मात्र न होकर स्वतंत्र सर्जक माना जाने लगा। पुरुष एवेदं सर्वम् (सबकुछ पुरुष ही है) के उद्घोष ने इसमें नवीन अर्थवत्ता भर दी। राम का चरित्र अपनी मानवीयता में इतना उदात्त है कि उसके आगे हर प्रकार का ईश्वरत्व फीका पड़ गया; किंतु फिर भी राम के आदर्श चरित्र में मनुजत्व और ईश्वरत्व का सतत् संघर्ष चलता रहा।

इस संदर्भ में भाषा रामायणों—तमिल (कंब रामायण), तेलुगु (रंगनाथ रामायण), कन्नड़ (रामायण), मलयालम (अध्यात्म रामायण), मराठी (मराठी रामायण), असमी (असमिया रामायण), बांग्ला (बांग्ला रामायण) एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है। इनमें वाल्मीकि के राम रूप महामानव के दर्शन भी होते हैं और अध्यात्म कवि के ब्रह्म राम के भी, किंतु सभी भाषा रामायणों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि कोई-कोई लेखक राम के महामानवत्व एवं नारायणत्व का निर्वाह सफलतापूर्वक कर गए हैं, किंतु कुछ लेखक ऐसे भी हैं, जो उनके इन अध्यात्म रामायण, 3/2/8 दोनों रूपों में समुचित तालमेल नहीं बिठा पाए हैं, जैसा कि बांग्ला और उड़िया रामायणों में दृष्टिगोचर होता है। इनमें भावुकता और मानवीयता की मात्रा इतनी अधिक है कि कई बार ब्रह्मत्व सायास आरोपित जान पड़ता है। यहाँ तक कि बांग्ला रामायण में राम को विपत्ति आने पर अत्यधिक

विह्वल हुआ जानकर उनके साथी उन्हें उनके ब्रह्मत्व की याद दिलाते हैं। उड़िया रामायण में राम के दोनों रूपों (मानवत्व और ब्रह्मत्व) में संगति बिठाने हेतु इस कल्पना का सहारा लिया गया है कि राम के भीतर अज्ञान प्रवेश कर गया है, अतः उनका ब्रह्मत्व उनकी दृष्टि से ओझल हो गया है। परंतु 'देवो भूत्वा देवं यजेत' (अर्थात् देवता होकर देवता की पूजा करनी चाहिए) की तर्ज पर राम अपने इन दोनों रूपों (यथार्थ और आदर्श या मनुजत्व और देवत्व) में मनुष्य-मात्र को 'राममय रहनि' का वह उत्कृष्ट संदेश देते हैं, जो न तो राज्याभिषेक की ख़बर से आनंदित होता है और न ही वनवास की ख़बर से दुःखित (प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः)

इसीलिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त उन्हें ईश्वरत्व का सच्चा आदर्श मानते हुए कहते हैं कि यदि राम ईश्वर हैं, तब तो मुझे ईश्वरत्व में आस्था है अन्यथा मैं नरीश्वरवादी हूँ- 'राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या? तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करो।' एक संवेदनशील कवि की राम के चरित्र में यह आस्था उनकी व्यापक जनस्वीकार्यता को दर्शाती है।

रामचरित रूप पारसमणि के स्पर्श से भक्ति निरी भक्ति नहीं रह जाती, अपितु वह एक ऐसे विचार (Idia) में तब्दील हो जाती है, जो व्यक्तित्व के रूपांतरण (Personality Transformation) का साधन है। यह मनुष्य में प्रच्छन्न उस देवत्व को जाग्रत करने में सक्षम हैं, जो उसे डाकू से वाल्मीकि या कामवेशी मानव से संयमित तुलसीदास बना सकती है। तभी तो जनकल्याण के लिए प्रजापति ब्रह्मा वाल्मीकि को यह वरदान देते हैं कि इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण की कथा का प्रचार होता रहेगा यावत् स्थासति गिरयः सरितश्च महीतले। तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

संदर्भ

1. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर
2. रामकथा (उत्पत्ति और विकास), डॉ॰ कामिल बुल्के, वाल्मीकि रामायण, बालकांड, तृतीय सर्ग, श्लोक सं. 36, गीताप्रेस गोरखपुर हिंदी परिषद्, प्रयाग, 1971
2. वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, सुबीरा जायसवाल, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, वाराणसी, 2003
4. भागवत संप्रदाय, बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1953
5. 'रामचरितमानस के रामवनगमन प्रसंग का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययन', एम॰फिल॰, (लघुशोध प्रबंध), शोधार्थी, अमिताभ कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिसंबर, 2003
6. अनभै साँचा (पत्रिका) रामकथा विशेषांक, जुलाई-सितंबर, 2012, अंक 27, संपादक : द्वारिकाप्रसाद चारुमित्र, नई दिल्ली
7. तुलसी के राम (रेडियो वार्ता-संग्रह) प्रकाशन विभाग, संपादक-देवेन्द्र भारद्वाज, रामेश्वर उपाध्याय, नई दिल्ली

□ 378 हकीकत नगर

द्वितीय तल, जी॰टी॰बी॰ नगर

मैट्रो स्टेशन के पास नई दिल्ली-110009

मो॰ 09968395636

अज्ञेय के काव्य में सौंदर्य-बोध

सत्यपाल, शोधार्थी

हिंदी-विभाग,

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

मानव का सौंदर्य के प्रति आसक्ति का भाव अनादिकाल से चला आ रहा है। मानव के अस्तित्व के बिना सौंदर्य का कोई महत्त्व नहीं है। सौंदर्य किसी भी रूप में हो, उसमें सहज आकर्षण शक्ति विद्यमान होती है। बड़े-बड़े तपस्वियों, संन्यासियों व ऋषिगण को भी यह सौंदर्य मुग्ध करता है। मनुष्य सौंदर्य से अभिभूत होकर फूलों की तरह खिल उठता है। फिर साहित्यकार तो साधारण वर्ग की तुलना में अधिक संवेदनशील होता है। उसका वस्तुओं को देखने, परखने का दृष्टिकोण भिन्न होता है। वह अपने साहित्यिक व सामाजिक जीवन में सौंदर्य का उपासक होता है। हिंदी साहित्य-जगत में आदिकाल से लेकर कवि विद्यापति, कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, घनानंद, सेनापति, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पंत, महादेवी वर्मा आदि कवियों के रूप में एक पूरी परंपरा सौंदर्य-चित्रण की रही है। इस श्रेणी में विलक्षण प्रतिभासंपन्न, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, अस्तित्ववादी व नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर कवि अज्ञेय का नाम भी प्रथम पंक्ति में आता है। इनके काव्य में सौंदर्य विविध रूपों में अपनी छटा बिखरे हुए है। इन्होंने साहित्य में भाषा, शिल्प, भाव, प्रतीक व बिंब की दृष्टि से भी सौंदर्य में अभिवृद्धि की है।

सौंदर्य का अर्थ, परिभाषा व स्वरूप

हिंदी में सौंदर्य शब्द अंग्रेजी के 'ब्यूटी' शब्द का हिंदी रूपांतर है। फादर कामिल बुल्के द्वारा अपने शब्दकोश में 'Beauty' शब्द का अर्थ-सुंदरता, सौंदर्य, खूबसूरती¹ लिया गया है। मानवीय शरीर में पाँचों इंद्रियों का अपना विशेष स्थान है। इन इंद्रियों को अच्छी लगने वाली वस्तुओं को सुंदरता की श्रेणी में माना जाता है। चाहे वो सजीव हो या निर्जीव। सौंदर्य की अनुभूति जितनी सरल, मधुर व आनंददायक होती है, इसे परिभाषित करना उतना ही कठिन कार्य है। सौंदर्य की चर्चा प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से प्राप्त होती है। यह ठीक है कि प्राचीन 'वैदिक साहित्य में 'सुंदर', 'सौंदर्य' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता, परंतु वहाँ आनंद, मोद, आमोद, मुद, प्रमुद, प्रिय, स्वाद आदि जिस अनुभूति की ओर संकेत किया गया है, वही आनंदानुभूति जिसे हम सौंदर्यानुभूति मानते आए हैं।² आचार्य वामन के अनुसार, 'अलंकार ही सौंदर्य है और सौंदर्य ही अलंकार है।'³ पं० जगन्नाथ सौंदर्य के विषय में कहते हैं, 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'⁴

अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है। 'आचार्य कुंतक ने सौंदर्य के लिए 'सौभाग्य' एवं 'लावण्य' शब्दों का प्रयोग किया है। 'सौभाग्य' आंतरिक धर्म का सूचक है और 'लावण्य' बाह्य सौंदर्य का। औचित्यवादी क्षेमेत्र ने वस्तु के उचित विन्यास में ही सौंदर्य माना है।⁵

भक्तिकालीन कवि श्री रूपगोस्वामी ने अपनी कृति 'उज्ज्वलनीलमणि' में अंग-प्रत्यंग के यथोचित मेल द्वारा सौंदर्य की उत्पत्ति मानी है। यथा -

'अंगप्रत्यंगकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।

संश्लिष्ट संधिबंध स्यात् सौन्दर्यमितीर्यते।⁶

आधुनिक विद्वानों ने भी सौंदर्य-संबंधी अपनी अवधारणाएं प्रस्तुत की हैं। डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा ने सौंदर्य को वस्तुनिष्ठ व व्यक्तिनिष्ठ स्वीकारते हुए कहा है, 'अपनी अनुभूति, स्मृति, कल्पना आदि द्वारा आनंद को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को 'सौंदर्य' और वस्तु को 'सुंदर' कहते हैं।'⁷ डॉ० हरिवंशसिंह के अनुसार, 'स्थूल या सूक्ष्म जगत् की अभिव्यक्ति ही सौंदर्य है।'⁸

पाश्चात्य साहित्यकार स्कॉट जेम्स कहते हैं, 'सौंदर्य एक भूषण है, एक युक्त गुण है। यह यथार्थता की दृष्टि के मूल तक प्रवेश कर जाता है और इसका संबंध उस आनंद एवं तृप्ति से है, जो हमें उस यथार्थ से प्राप्त होती है।'⁹ ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार सौंदर्य की परिभाषा, 'The quality which gives pleasure to the senses.'¹⁰

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सौंदर्य न तो केवल वस्तु का ही गुण है और न ही व्यक्ति की दृष्टि का वैशिष्ट्य-मात्र है, बल्कि उसकी उत्पत्ति वस्तु के बाह्य रूपाकार और सहृदय की भावानुभूति के सामंजस्य से होती है। इस सामंजस्य की स्थिति में द्रष्टा व्यक्ति अपने भिन्न अस्तित्व को भूलकर वस्तु के साथ एकाकार हो जाता है।

अज्ञेय के काव्य में सौंदर्य-बोध के विविध क्षेत्र

इस संसार में मानव, ईश्वर द्वारा निर्मित सर्वोत्तम कृति है। मानव के अस्तित्व से ही संसार की सार्थकता सिद्ध होती है। इस सृष्टि को आगे बढ़ाने में स्त्री-पुरुष का महत्वपूर्ण योगदान है। स्त्री व पुरुष का विपरीत शरीर का होना परस्पर आकर्षण का स्वाभाविक कारण है। अज्ञेय के काव्य में स्त्री-पुरुष, नायक-नायिका के प्रेम के चित्र सर्वत्र बिखरे हैं। प्रियतमा के नेत्र प्रियतम के लिए आकर्षण का मुख्य केंद्र होते हैं। प्रेमी मदहोश होकर अपनी नायिका की आँखों से रसपान करना चाहता है। इन पंक्तियों में कवि अज्ञेय के प्रेम-भाव का सुंदर चित्रण द्रष्टव्य है। यथा—

तेरी आँखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूँ—

जिसको पीकर प्रणय-पाश में तेरे में बँध जाता हूँ?¹¹

इन पंक्तियों में कवि 'अज्ञेय' का सौंदर्यबोध सूक्ष्म से सूक्ष्मतर दिखाई पड़ता है। स्त्रियों में आभूषण-प्रियता का भाव बहुत अधिक होता है। आभूषण उनके सौंदर्य में चार-चाँद लगा देते हैं। काँगड़ा क्षेत्र की लड़कियाँ बड़ी सुंदर होती हैं। उनकी आँखों की काली-पुतलियाँ व कानों में बाली कवि हृदय का सहज ही आकर्षित करती हैं। वह काँगड़ा की लड़कियों का सौंदर्य देखकर मंत्रमुग्ध हो गया है। निम्न पंक्तियों में काँगड़ा की लड़कियों विषयक सौंदर्यबोध इस प्रकार अंकित है—

पुतलियाँ चंचल कालिया कानो झुमके बालियाँ
 हम चौड़े में खड़े लुट गए बनी न हमसे चोरियाँ
 काँगड़े की छोरियाँ।¹²

कवि अज्ञेय की नायिका अनिच्छ सुंदरी है। जबसे उसे नायिका के रूप-सौंदर्य के दर्शन हुए हैं, उसकी चेतनता लुप्त हो गई है। वह अपलक नेत्रों के साथ अपनी प्रियतमा का सौंदर्य निहारना चाहता है। वह अपनी प्रेयसी के सौंदर्य पर मर-मिटने को आतुर है। वह नायिका के रूप-सौंदर्य से प्रभावित होकर उसकी आरती उतारना चाहता है। नायक का नायिका के बाह्य सौंदर्य पर सर्वस्व अर्पण करने का भाव इस प्रकार वर्णित है—

चेतन तुझ पर वारूँ/अपलक रूप निहारूँ/
 अनझिप नैन, अवाक् गिरा/हिप अनुद्विग्न, आविष्ट चेतना
 पुलक-भरा गति-मुग्ध करों से/मैं आरती उतारूँ।¹³

रहस्यवाद और प्रेम के मिश्रण से अध्यात्मवाद बनता है। अध्यात्मवाद मनुष्य को सर्वशक्तिमान ईश्वर की ओर ले जाता है। वह उसके समस्त दुःखों का निवारण करता है। कवि स्वयं को रहस्यवादी मानता है, लेकिन वह इस दुनिया के रहस्य को अपने विवेक के बल पर सुलझा नहीं सका है। वह इस क्षेत्र में स्वयं को एक अणु के समान मानता है और इस विश्व को अनगिनत अणुओं का समूह समझता है। रहस्यवाद उसके मस्तिष्कीय ज्ञान के लिए विराट क्षेत्र है। इन पंक्तियों में विराट सौंदर्यबोध के प्रति कवि का रहस्यवादी भाव निहित है। यथा—

यद्यपि सौंदर्यबोध ज्ञान का क्षेत्र है।
 मैं इस पहेली को हल नहीं कर पाया हूँ।
 क्या इसीलिए मैं एक अणु हूँ।
 और जो मेरे आगे है, वह एक असीमा।¹⁴

रहस्यवादी सौंदर्य प्राकृतिक व मानवीय सौंदर्य का उदात्त रूप है। मनुष्य अनादिकाल से रहस्यवाद को समझने का प्रयास करता आया है, लेकिन अभी उसके समक्ष इसकी गांठें नहीं खुली हैं। यह असीम क्षेत्र अभी उसकी समझ के दायरे में नहीं आया है।

सौंदर्य व्यक्तिगत और वस्तुगत दोनों ही होता है। यह मनुष्य के आंतरिक हृदय की भी वस्तु है। उसे जो अच्छा प्रतीत होता है, सुखद अनुभूति देता है, वही उसके लिए सौंदर्य है। डॉ॰ नगेंद्र जी अपने ग्रंथ में लिखते हैं, 'सौंदर्यानुभूति के स्वरूप-विश्लेषण में भाव, कल्पना, बुद्धितत्त्व तथा ऐंद्रिय संवेदन का संयोग ही प्रमुख है।'¹⁵ यह भी सत्य है कि 'एक ही व्यक्ति किसी एक ही वस्तु व दृश्य से विभिन्न परिस्थितियों में समान रूप से प्रभावित नहीं होता। सुख में चंद्रमा शीतलता प्रदान करता है, वही दुःख में दग्ध करने वाला क्यों बन जाता है।' महाकवि बिहारी की इन पंक्तियों में यह सत्य प्रतिफलित हुआ है—

समै समै सुंदर सबै, रूप कुरूप न कोय।
 मन की रुचि जैती जितै, तित तैती रुचि होय।¹⁶

प्रेमी अपनी प्रेयसी के आंतरिक गुणों से प्रभावित है। वैसे भी बड़े-बड़े साहित्यमनीषी नारी को उदात्त गुणों की खान कहते हैं। प्रसादजी भी नारी को दया, माया, ममता, विश्वास व प्रेम की प्रतिमूर्ति मानते हैं। प्रेमी नायिका के भोलेपन को देखकर प्रसन्न है कि किस प्रकार पुष्प

भी उसके शरीर के साथ ठिठौली कर रहे हैं। वे मदहोशी में झूमकर नृत्य कर रहे हैं। नायिका का सौंदर्य के साथ-साथ भोलेपन का भाव नायक की सुध-बुध खोने के लिए पर्याप्त है। यथा—
 प्रिय, जब तुझको मिलने आती हूँ मैं खेतों में से होकर
 तब क्यों सुमन नाच उठते हैं अपने तन की सुध-बुध खोकर?
 तू इतनी सुंदर होकर भी बनी हुई है इतनी भोली
 यही देख मन-रंजित हो तुझसे करते हैं सुमन-ठिठौली।¹⁷

कवि नायिका के अंतर्मन के सौंदर्य से प्रेम करता है। वह उसे अपने समक्ष बैठाकर अपनी पुरानी यादों को ताजा करना चाहता है, जो मधुर पल उन्होंने एक साथ बिताए थे। वह तो नायिका के अंतर्मन का उपासक है। प्रेमिका का आंतरिक सौंदर्य ही श्रेष्ठ सौंदर्य है, जो निष्कलुष है। यथा—

आओ, बैठो: क्षण-भर तुम्हें निहारूँ।
 अपनी जानी एक-एक रेखा पहचानूँ
 चेहरे की, आंखों की अन्तर्मन की
 और-हमारी साझे की अनगिन स्मृतियों की।¹⁸

प्रकृति मनुष्य की चिर-सहचरी है। वह मनुष्य को माँ के समान दुलार करती है। प्रकृति से मनुष्य को खाने के लिए अन्न, पीने के लिए पानी, श्वास लेने के लिए वायु, पकाने के लिए अग्नि प्राप्त होती है। यह वातावरण से जहरीली गैसों को अवशोषित करती है और ताजा आक्सीजन प्रदान करती है। वसंत को ऋतुओं का राजा कहा जाता है। अज्ञेय जी का प्राकृतिक सौंदर्य-चित्रण में हृदय खूब रमा है। वसंत की ऋतु लोगों के लिए अनेक खुशियाँ लेकर आती है। पेड़-पौधे खिल उठते हैं। बसंतऋतु का सौंदर्यबोध इस प्रकार वर्णित है—

शिशिर ने पहन लिया वसंत का दुकूल,
 गंधवह उड़ रहा पराग धूल-धूल,
 काँटों का किरिटी धारे बने देवदूत
 पीत-वसन दमक उठे तिरस्कृत बबूल
 अरे, ऋतुराज आ गया।¹⁹

सर्दी की ऋतु में चाँदनी की रात बड़ी मनोहारी लगती है। कवि अज्ञेय इस शरद-सौंदर्य का रसपान करना चाहता है। वह एकटक शरद चाँदनी को देख रहे कुमुद को इस अनुपम क्षणों को जीने के लिए प्रेरित करता है। यथा—

शरद चाँदनी बरसी, अँजुरी भरकर पी लो
 ऊँघ रहे हैं तारे सिहरी सिरसीं,
 ओ प्रिय कुमुद ताकते अनझिप
 क्षण में तुम भी जी लो।²⁰

वन में बहता हुआ झरना सहृदय व्यक्ति के सामने एक सुंदर चित्र प्रस्तुत करता है। झरने के बहने से शांत वातावरण और खुशनुमा हो जाता है। कवि अज्ञेय ने बहते हुए कल-कल करते हुए झरने को प्राकृतिक सौंदर्य का उपादान बनाया है—

वन में एक झरना बहता है

एक नर-कोकिल गाता है
वृक्षों में एक मर्मर
कोपलों को सिहराता है।²¹

अज्ञेय एक सफल प्रयोगधर्मी कवि हैं। ये भाषा, शिल्प, भाव, प्रतीक व बिंब की दृष्टि से नए-नए प्रयोग करना इष्ट समझते हैं। इन्होंने काव्यभाषा में अभिवृद्धि व नादात्मकता लाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो पदार्थ की क्रिया एवं ध्वनि को पूर्णतः प्रस्तुत करते हैं। इनके काव्य में नए सुंदर शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

‘पहाड़ी काक/की विजन को पकड़ती-सी क्लांत बेसुर डाक—
‘हाक्, हाक्! हाक्! रहेगी बस एक मुट्ठी खाक!
‘थाक्! थाक्! थाक्!’²²

किसी साहित्यकार को जानने के लिए उसका कलागत सौंदर्य भी जानना नितान्त आवश्यक है। कलापक्ष से तात्पर्य वे उपकरण हैं, जिससे कवि अपने काव्य को अलंकृत करता है। भाषा, भाव, बिंब व प्रतीक आदि का प्रयोग कलात्मक सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है। इन पंक्तियों में कवि अज्ञेय के भाषा की सार्थक संप्रणयिता-संबंधी विचार अंकित हैं—

हम सब भिखारी हैं/भाषा की शक्ति
यह नहीं उसके सहारे/संप्रेषण होता है
शक्ति इसमें है कि उसके सहारे/
पहचान का वह संबंध बनता है जिसमें/
संप्रेषण सार्थक होता है।²³

इससे स्पष्ट होता है कि कवि अज्ञेय का सौंदर्य के विविध क्षेत्रों का बोध असाधारण व अतुलनीय है।

निष्कर्ष

प्रयोगधर्मी कवि अज्ञेय को ईश्वर द्वारा रचित प्रत्येक कृति में सौंदर्यबोध हुआ है। इन्हें मानव के अंतर्बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ खेत-खलिहानों में, वनों में, पहाड़ों में, नदी-झरनों में, प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य के दर्शन हुए हैं। इनके काव्य-साहित्य में चित्रात्मक, नादात्मक, संगीतात्मक व कलात्मक सौंदर्य का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। सौंदर्य-संबंधी कवि का ज्ञान इनकी काव्य-प्रतिभा को चार चाँद लगाता है। अतः इन सभी विशेषताओं का अवलोकन करते हुए, अज्ञेय को सौंदर्य का सच्चा उपासक कवि कहा जाना तर्कसंगत है।

संदर्भ

1. Father Kamil Bulke, Eng-Hindi Dictionary, p. 82
2. फतेहसिंह, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, पृ० 18
3. आचार्य वामन, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, पृ० 1, 1, 21
4. जगन्नाथ, रसगंगाधर, पृ० 1, 1
5. नगेंद्र, सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, पृ० 9
6. रूपगोस्वामी, उज्ज्वल नीलमणि, उद्दीपन प्रकरण, पृ० 274

7. हरद्वारीलाल शर्मा, सौंदर्यशास्त्र, पृ० 10
8. हरिवंश सिंह, सौंदर्यविज्ञान, पृ०56-57
9. R.A. Scott James, The making of Literature, p. 334-335
10. Oxford Eng-Eng-Hindi Dictionary, p. 98
11. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, विश्वप्रिया, पृ० 18
12. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, काँगड़े की छोरियाँ, पृ० 18
13. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, विश्वप्रिया, पृ० 72
14. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, रहस्यवाद, पृ० 166
15. नगेंद्र, सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, पृ० 116-117
16. विद्या सिवाच, तुलसी का सौंदर्यबोध, पृ० 29
17. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, प्रश्नोत्तर, पृ० 128
18. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, हरी घास पर क्षण भर पृ० 237
19. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, ऋतुराज पृ० 180
20. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, चाँदनी जी लो, पृ० 246
21. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-2 चक्रांत-2 शिला, पृ० 79
22. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, महानगर : रात पृ० 288
23. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-2 भाषा-पहचान, पृ० 374-375

सुपुत्र श्री श्यामलाल त्यागी
 बी-28, टैगोर हॉस्टल, कुरुक्षेत्र
 विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र 136119
 मो० 09050026652

स्वामी भीष्म का साहित्य आज भी है प्रासंगिक

डॉ० सुशील कुमार (शिक्षक)
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

साहित्य और सांस्कृतिक दृष्टि से हरियाणा अत्यंत समृद्ध एवं गौरवशाली प्रदेश है। देश के मानचित्र पर 01 नवंबर, 1966 को 17 वें राज्य के रूप में उदित हरियाणा की विश्वभर में एक अलग पहचान है। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से देखें, तो इस पावन और मनोहर भूमि पर वेदों की रचना और उसके बाद महर्षि वेदव्यास जी द्वारा महाभारत आदि अनेक ग्रंथों का प्रणयन एवं भगवान कृष्ण द्वारा गीता का गान यह सिद्ध करता है कि सभ्यता एवं संस्कृति के समान ही ज्ञानधारा और साहित्य-रश्मियाँ भी सर्वप्रथम हरियाणा की उर्वरा भूमि से फूटकर चारों ओर बही थीं। निःसंदेह, हरियाणा में साहित्य-सृजन की परंपरा काफ़ी प्राचीन है। इस प्रदेश की माटी ने अनेक लोककलाकार, साहित्यकार एवं कवि दिए हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा समय-समय पर समाज में फैली बुराइयों, कुरीतियों व विसंगतियों का विरोध कर आम जनमानस को जागरूक किया। खास तौर पर आर्यसमाज के भजनोपदेशक, जिन्होंने अपने भजनों के माध्यम से देशवासियों को जहाँ स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया, वहीं समाज में फैली बुराइयों, कुरीतियों व विसंगतियों का विरोध करते हुए दहेज-प्रथा, कन्या भ्रूण-हत्या, गऊ-हत्या, नशा, रिश्वतखोरी, ब्रह्मचर्य, जात-पात, अमीर-ग़रीब, छुआछूत, पाखंड, अनपढ़ता आदि बुराइयों के प्रति लोगों को जागरूक किया। आर्य समाज के अनेक भजनोपदेशक हुए हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से हरियाणा के जनसाहित्य को समृद्ध किया और समाज में जागृति पैदा की, लेकिन कुरुक्षेत्र जिले में स्थित तेवड़ा नामक गाँव में संवत् 1915 विक्रमी, मास चैत्र, कृष्ण पंचमी, दिन रविवार (7 मार्च 1859) को पैदा हुए स्वामी भीष्म का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उन्होंने जो कार्य किया, उसे भुलाया नहीं जा सकता। स्वामी भीष्म की पूरे विश्व में अपनी एक अलग पहचान है। उन्होंने अपने भजनों के माध्यम से लोगों को स्वतंत्रता-आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेने के लिए प्रेरित किया, वहीं क्रांतिकारियों का समय-समय पर साथ भी दिया। उन्होंने जवानों में जोश भरने, नशे से दूर रहने, शिक्षा ग्रहण करने, गुरु की महिमा, शिल्प का लाभ, गऊ हत्या, ब्रह्मचर्य, देशहित में कार्य करने, ज्ञान और विज्ञान के लाभ, दहेज-प्रथा, अमीर-ग़रीब की बढ़ती खाई, रिश्वतखोरी सहित समाज-हित में असंख्य भजनों की रचना की, जो आज भी प्रासंगिक हैं। स्वामी भीष्म ने महर्षि दयानंद सरस्वती की अमर कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' को पढ़ा और वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि महर्षि दयानंद सरस्वती के सच्चे अनुयायी बन गए तथा समाज-सुधार के कार्य में लग गए। स्वामीजी गाँव-गाँव जाकर राष्ट्रीयता के भजन गाते थे। इनके भजन बहुत ओजस्वी होते थे। स्वामी भीष्म ने

स्वतंत्रता-आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेने के लिए युवाओं को प्रेरित करते हुए कई भजन लिखे। आजादी से पहले ईश्वर की प्रार्थना करते हुए स्वामी जी ने कहा—

हे पिता क्या ऐसी ख़ता हमसे हुई,
दीन-दुखियों की करते सुनाई नहीं।
तेरे भंडार भरपूर में क्या रही,
प्यारे दर्दे वतन की दवाई नहीं।
हम हैं शासित जो हम पै शासक हैं ये,
अपने ही वतन के उपासक हैं ये।¹

स्वामी भीष्म जी अपने भजन के माध्यम से यह बताने का प्रयास करते हैं कि आजादी के लिए जो आंदोलन चल रहा है, इसमें किस-किस सामान की ज़रूरत पड़ेगी—

आजादी के जंग में बड़े सामान चाहिएँगे।

तन भी, मन भी, धन भी और नौजवान चाहिएँगे।²

स्वामी भीष्म जी जवानों को प्रेरित करते हुए कहते हैं—

कहने-सुनने का जवानों ज़माना नहीं
करना तो बिल्कुल भूल गए ऐसे बने भोले
पूरे उतरते ये सदा जब भी कभी तोले
दुश्मन की खातिर थे तुम्हीं आतिश के शोले।³

स्वामी भीष्म जी देशवासियों को स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि—

वतन के लिए जो कुर्बान होगा
वतन में सदा उसका सम्मान होगा
जो दर्दे वतन की बनेगा दवाई
उसी का मद्दगार भगवान होगा।⁴

स्वामी भीष्म जी ने नशीले पदार्थों के प्रति देशवासियों को जागरूक किया। उन्होंने अपने एक भजन के माध्यम से कहा—

अजी ऐजी रसम ये फैल गई बेढंगी
अरबों का तमाखु यहाँ साल भर में लिया जाए
कोकीन, शराब, पीवै किसी का के किया जाए
गांजा, सिगरेट, चरस, सुलुफा कई करोड़ का लिया जाए।⁵

स्वामी भीष्म जी ने एक भजन के माध्यम से बताया है कि शराब पीने से व्यक्ति को क्या-क्या हानियाँ होती हैं—

कर दे शराब, खाना-खराब, चेहरा बेआब
बल बुद्धि नाश हो।
जो पीते हैं शराब संग में मांस खाते हैं।⁶

स्वामी भीष्म ने अपने भजन के द्वारा बताया कि शराब पीने वाले व्यक्तियों की स्थिति क्या होती है—

जो डूबे हैं गिलासों में ना उभरे जिंदगानों में।
 मरे हैं डूब कर लाखों बंद बोतल के पानी में।⁷
 स्वामी भीष्म जी ने समाज की सबसे बड़ी समस्या दहेज-प्रथा पर व्यंग्य करते हुए कहा है—

बैठ पिलंग के ऊपर समधी हुक्का पीवै बगड़ में
 बिछा के पीढ़ा घूँघट करके सिमधन बैठी जड़ मैं।
 समधी कहै मैं क्यूँ बुलवाया तू कहदे बोल कै।
 समधन बोली ब्याह करना सै छाती खोल कै।
 दस सेर टूम घड़ा कर मैंने रख ली तोल कै।
 अब तू देखले चौधरी अपना दिल टटोल कै।
 बुढ़ा देखै जुलक-जुलक जणो उल्लू बैठा बड़ मैं।⁸

इसके अतिरिक्त स्वामी भीष्म ने शादी के अवसर पर आवश्यकता से अधिक धन खर्च करनेवालों पर अपने भजन के माध्यम से इस प्रकार व्यंग्य किया है—

विवाह शादी में बर्बादी खर्चा बेशुम्मार कैसे देश बचेगा।
 शादी में देखी हमने दो हजार की एक साड़ी।
 पेटि कोट, जंफर, चद्दर और जेवर न जड़ पाड़ी।
 आए ढेड़ सौ बाजे वाले लूट रहे बाग बहार।⁹

स्वामी भीष्म ने अपने भजन 'भीष्म की बगावत' के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि देश की व्यवस्था ठीक नहीं है, जिसके कारण अमीर और अमीर होता जा रहा है तथा गरीब की हालत खराब होती जा रही है—

शासक-शासित, शोषक-शोषित में रहता संघर्ष रात दिन
 बिन कान्ती की आग लगे ये मिटने की तकरार नहीं
 इसलिए बगावत चाहता हूँ यह न्याय मुझे स्वीकार नहीं
 पूँजीपति ने निर्धन की कर्जे में झोपड़ी कब्जा ली।
 परिवार पड़ा मैदान में है जुल्मों का पारावार नहीं।
 इसलिए बगावत चाहता हूँ यह न्याय मुझे स्वीकार नहीं।¹⁰

स्वामी भीष्म ने रिश्वतखोरी का विरोध किया और अपने भजन के माध्यम यह बताया कि किस प्रकार व्यक्ति ईश्वर को भी रिश्वत देने का प्रयास करता है—

रिश्वत का बाजार गर्म है, धर्म-कर्म और कहाँ शर्म है।
 उल्टे पथ नर-नार गए।
 सबसे पहले ईश्वर को ही रिश्वतखोर बनाया गया।
 ईश्वर का लेकर के नाम फिर बेहद अनर्थ ढाया गया।¹¹

स्वामी भीष्म ने अपने भजन 'गांधी और आज का नेता' के द्वारा नेताओं पर व्यंग्य किया है—

है समाधी गांधी जी की याद आने के लिए
 और जंयती रह गई उत्सव मनाने के लिए

त्याग तप का गांधी जी जीवन बिता करके गए
लंदन गए तो एक लँगोटी चादर ले करके गए।¹²

स्वामी भीष्म जी ने लोगों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने लोगों को जागरूक करते हुए अपने भजन के द्वारा यह बताया कि अनपढ़ की स्थिति क्या होती है—

अब तो मेरे प्यारे देश में अनपढ़ की हालत ऐसी
विद्या को समझती नहीं विद्या किस चिड़िया का नाम।
ढाई सेर नाज झोंक जंगल जावै सुबह शाम
गली मैं बिछा के खाट सोती है उधाड़े आम।¹³

स्वामी भीष्म ने अपने भजन के द्वारा गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि बिना गुरु के व्यक्ति की गति नहीं हो सकती—

बिना गुरु ना ज्ञान-ज्ञान बिन मूर्ख कष्ट उठाते फिरै
नगुरे नर नादान जगत में ढोग का ढोल बजाते फिरै
निषाद, ऋषभं, गांधार, षड्ज और मध्यम को पहचाने नहीं
धैवत, पंचम, सात स्वरों को बिना गुरु के जाने नहीं।¹⁴

स्वामी भीष्म ने अपने भजन के माध्यम से समाज में फैली बुराइयों—जनसंख्या वृद्धि, मिलावट व नशाखोरी पर प्रहार किया—

अगर जनवृद्धि ना रोकी तो बेड़ा पार न होगा
बिना ब्रह्मचर्य की शिक्षा के भी उद्धार न होगा
भ्रष्ट करी जनता सारी डालडा घी खिला करके
खाद्य वस्तु मिटा डाली भ्रष्ट चीजें मिला करके
ये दूषित चीजे खाने से सुखी संसार न होगा।¹⁵

स्वामी भीष्म ने अपने भजनों के माध्यम से गऊ हत्या, गऊ-सेवा के प्रति लोगों को जागरूक किया। उन्होंने अपने भजन के द्वारा उस स्थिति का वर्णन किया, जब गाय व उसके बछड़े को मारने के लिए ले जाया जाता है और उन्हें एक मकान में रखा जाता है—

वधशाला में बछड़े का गऊ से ब्यान है
मुझको बता दे माता ये किसका मकान है
पकड़कर लाया था मुझको टेढ़ी टोपी वाला कौन
रोक करके ठोक गया इस हथ्थे में ताला कौन।¹⁶

स्वामी भीष्म ने अपने भजनों से जहाँ सामाजिक समस्याओं के प्रति लोगों को जागरूक किया, वहीं व्याकरण की दृष्टि से उनकी भाषा-शैली उच्चकोटि की थी। उन्होंने भाषा के प्रत्येक रूप का प्रयोग किया, ताकि उनके भजन सुंदर बन सकें। उन्होंने ऐसे भजन का भी निर्माण किया जिसका उच्चारण करते समय होठ नहीं मिलते। यह भजन इस प्रकार है—

आद अंत ना जिसका इसका अधर छंद गाना चाहिए
अधर अधर से अधर रहे ये निकट नहीं आना चाहिए
छंद अधर गा इसका जिससे सारा जगत रचाया गया
दिनकर शशी तारागण आदि हर एक अधर ठहराया गया

रचना हार रचना रचकर रचता से अलग कहाया गया
है संसार चकित सारा ये कैसे चक्र चलाया गया
रचना लख कर रचनाहार के निकट सदा जाना चाहिए।¹⁷

अतः हम कह सकते हैं कि स्वामी भीष्म जी ने अपनी लेखनी के द्वारा जिन भजनों की रचना की और अपनी ओजस्वी भाषा में गाँव-गाँव जाकर देश-भर में समाज में फैली बुराइयों, कुरीतियों व विसंगतियों का विरोध कर लोगों को जागरूक किया, उनके इस कार्य को या यूँ कहें कि देशहित के लिए उन्होंने जो अलख जगाई, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। समाज-सुधार के लिए जो कार्य स्वामी भीष्म जी ने किया, उनका यह योगदान हमेशा युवाओं को देशहित में कार्य करने की प्रेरणा देता रहेगा। स्वामी भीष्म जी आर्य समाज के ओजस्वी भजनोपदेशक थे। उन्होंने अपना सब कुछ देशहित में लगा दिया। यही कारण था कि स्वामी भीष्म जी पर ईश्वर की भी अपार कृपा थी। स्वामी भीष्म जब तक इस संसार में रहे, तब तक एक सच्चे कर्मयोगी व शेर की तरह रहे। स्वामी भीष्म का साहित्य आज के दौर में भी प्रासंगिक है। स्वामी भीष्म ने जिन विषयों को लेकर अपनी लेखनी चलाई और समाज को जागरूक किया, आज उससे युवापीढ़ी को अवगत कराने की जरूरत है। तभी स्वामी भीष्म का सपना साकार होगा, जो उन्होंने देश के लिए देखा था।

संदर्भ

1. सं० शिवकुमार आर्य, भीष्म भजनावली, प्रकाशक स्वामी भीष्म वेद प्रचार मंडल (पंजी०), घरौंडा, वर्ष 2005, पृ० 131
2. वही, पृ० 135
3. वही, पृ० 140
4. वही, पृ० 140
5. वही, पृ० 170
6. वही, पृ० 110
7. वही, पृ० 143
8. वही, पृ० 105
9. वही, पृ० 106
10. वही, पृ० 102
11. वही, पृ० 92
12. वही, पृ० 108
13. वही, पृ० 168
14. वही, पृ० 173
15. वही, पृ० 148
16. वही, पृ० 176
17. वही, पृ० 145

मो. 9467421004

E-mail:sushiltaya@gmail.com

स्वतंत्रता-आंदोलन में जनसंचार की परंपरागत माध्यम भजन-मंडलियाँ : एक अध्ययन

डॉ० सुशील कुमार

शिक्षक, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

हरियाणा भारत का एक छोटा, लेकिन समृद्ध प्रदेश है। क्षेत्रफल तथा जनसंख्या की दृष्टि से काफी छोटा होते हुए भी हरियाणा का राष्ट्रीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रदेश के रणबाँकुरों ने सैकड़ों-हजारों वर्षों तक सजग प्रहरी बनकर राष्ट्रीय मान-सम्मान एवं स्वतंत्रता तथा समृद्धि की रक्षा की है। हरियाणावासियों ने स्वतंत्रता-आंदोलन में 1885 से 1947 तक अपनी स्थिति और अपनी हैसियत से कहीं अधिक बढ़-चढ़कर भाग लिया। शताब्दियों की दासता से मुक्ति प्राप्त करने की छोटपटाहट ने भारतवर्ष में राष्ट्रीय भावना का अभूतपूर्व संचार किया और चाहे वह नर्म दल था या गर्म दल, भारतवासी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रहे कि स्वाधीनता के लक्ष्य की प्राप्ति के बिना जनजीवन में प्राणों का संचार नहीं हो सकता और माँ-भारती अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त नहीं कर सकती। स्वतंत्रता की इस बलिवेदी पर और ब्रिटिश शासन से लोहा लेते हुए अनेकानेक शूरवीर अपना जीवन उत्सर्ग कर गए। समय की माँग के अनुसार देश के कोने-कोने से राष्ट्रनायक उभरे। इसका श्रेय काफी हद तक यहाँ के सरस्वती-पुत्रों को जाता है, जिन्होंने यहाँ फैले बेचारगी के कोहरे को साफ़ किया, लोगों को नया प्रकाश दिखाया, उनकी सामाजिक, आर्थिक, दुर्दशा की सही तस्वीर पेश की। परतंत्रता की स्थिति पर आँसू बहाए और लोगों से मुक्ति-संग्राम में सम्मिलित होने का आह्वान किया। इन लोगों ने विशेषतः भजन-मंडलियों ने गाँव-गाँव अलख जगाकर लोगों के दिलो-दिमाग में अँग्रेजी राज्य के प्रति नफरत पैदा की। गुलामी के अभिशापों से उन्हें परिचित कराया और परतंत्रता की बोझिल बेड़ियों को काट फेंकने के लिए प्रेरित किया। उनके मस्तिष्क में स्वदेशी के प्रति अमिट प्रेम के भाव भरे और यहाँ फैली सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों तथा ग़लत धारणाओं से उन्हें मुक्ति दिलवाई। आपसी फूट, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष आदि के विषैले बाणों से जो हमारा समाज आहत पड़ा था, उसे आपसी भाई-चारे और एकता प्रदान करके स्वराज्य के लिए लड़ने के लिए तैयार किया। स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लेने के लिए देशवासियों को प्रेरित करने वाली जनसंचार की परंपरागत माध्यम भजन-मंडलियों के विषय में बताने से पहले जनसंचार व जनसंचार माध्यम, परंपरागत जनसंचार माध्यम, भजन व भजन-मंडली किसे कहते हैं, यह बताना ज़रूरी है।

जनसंचार व जनसंचार माध्यम :

जनसंचार तीन शब्दों के योग से बना है—जन+संचार+माध्यम। जन का अर्थ है जनता अर्थात् आम आदमी। संचार शब्द संस्कृत शब्द के चर धातु से बना है। चर का अर्थ है—चलना और संचार शब्द का अर्थ है आगे बढ़ना, फैलना, गमन या संदेशवाहक, साधन इत्यादि। अंग्रेजी में संचार को कम्युनिकेशन कहा जाता है। कम्युनिकेशन लैटिन के कम्युनिस शब्द से निर्मित है, जिसका अर्थ है सामान्य भागीदारी युक्त सूचना और संप्रेषण। इस प्रकार संचार भावों या विचारों को बाँटने और प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यह एक ऐसा प्रयास है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के विचारों, भावों और मनोवृत्तियों में सहभागिता होती है। 'माध्यम' शब्द का अर्थ है उपकरण या साधन। अतएव जनसंचार माध्यम का सामान्य अर्थ है जनता के भावों या विचारों को संप्रेषित करने वाला साधन या उपकरण। दूसरे शब्दों में, यह साधन जो जनता के विचारों के आदान-प्रदान में सहायक सिद्ध होता है, वह जनसंचार माध्यम कहलाता है। जनसाधारण तक संदेश पहुँचाना जनसंचार कहलाता है। जन अर्थात् जनता यानि जनता के बारे में जनता की बात, जनता तक पहुँचाना।²

परंपरागत जनसंचार माध्यम :

जनसंचार के परंपरागत माध्यम वे हैं, जो हमारी परंपरा की देन हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होते चले गए हैं और जो इस आधुनिक युग में भी किसी-न-किसी रूप में इस्तेमाल होते रहे हैं। ऐसे परंपरागत माध्यमों की पहचान निम्नलिखित रूपों में की गई है—मेला, उत्सव, पर्व, कथा, लोकनाट्य, लोकगीत, लोककलाएँ, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, मूर्तिकला, वास्तुकला, ललितकला आदि।³

भजन व भजन-मंडली :

बृहत् हिंदी कोश के अनुसार भजन शब्द का अर्थ है—पु० (सं०) सेवा, आराधना, भगवान या उपास्य या उपास्य देवता का नाम जपना, स्मरण; भगवान या किसी देवता की स्तुति में रचित पद (हि०); स्वत्व; विभाजना।⁴ आदर्श हिंदी शब्दकोश के अनुसार भजन शब्द का अर्थ है—(सं० पु०) भाग, खंड, सेवा, पूजा, बार-बार किसी देवता या पूज्य का नाम लेना, स्मरण, देवता के उद्देश्य से गाया जानेवाला गीत, स्तोत्र, गुण कीर्तन।⁵

सुप्रसिद्ध भजनीक गाँव बदनारा जिला कैथल निवासी पं० रामेश्वरदत्त के अनुसार 'भजन जिसमें लौकिक कथा को छंदबद्ध तरीके से कहा गया हो या फिर इतिहास का संपूर्ण वर्णन गाने में किया जाए, उसे भजन कहते हैं।'⁶

बृहत् हिंदी कोश के अनुसार मंडली शब्द का अर्थ है—स्त्री, छोटा, मंडल, जमात, समुदाय, दूब, गुडुचा।⁷ भाषा शब्दकोश के अनुसार मंडली शब्द का अर्थ है—मंडली (संज्ञा स्त्री सं०) सभा, समाज, समूह।⁸

इस प्रकार मंडली शब्द का अर्थ हुआ—समूह, टोली तथा एक ही प्रकार का उद्देश्य या विचार रखने वाले अथवा एक ही तरह का काम करने वाले लोगों का दल या समूह या किसी विशेष कार्य के लिए बना हुआ कुछ लोगों का संघटित दल। इस तरह से भजन-मंडली उस दल या समूह को कहते हैं, जो छंदबद्ध शब्दों द्वारा अपने इष्टदेव अथवा किसी अन्य देवी-देवता की आराधना करने तथा महाभारत, रामायण व भागवत कथाओं में से कहानियाँ निकालकर उन्हें

लयबद्ध कर समाज में जागृति पैदा करने तथा समाज में फैली बुराइयों, विसंगतियों व कुरीतियों के प्रति लोगों को सजग करने कार्य करती हैं। स्वतंत्रता-आंदोलन में बढ-चढकर भाग लेने के लिए देशवासियों को प्रेरित करने वाली जनसंचार की परंपरागत माध्यम भजन-मंडलियाँ इस प्रकार हैं—

1. पं० बस्तीराम

पं० बस्तीराम जी ने अनेक भजनों की रचना की और देशवासियों को स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। पं० बस्तीराम ने अपने भजन के माध्यम से उन लोगों पर कटाक्ष किया, जिन्होंने अपने देशवासियों से धोखा किया—

दूध पिलाया काले नागों को छीनकर बैल बिचारों से
सींचे पेड़ बबूल के तैं जल चुराके आम-अनारों से
खिलाया घी दुश्मन के पुत्रों को बचाकर परिजन प्यारों से
करी दुष्ट से परीत तैंने मन हटाके राजकुमारों से।⁹

पं० बस्तीराम ने अपने भजन 'मत लडना आपस में भाई रे' के माध्यम से देशवासियों को आपसी वैरभाव मिटाकर स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया—

कौरव पांडो ने आपस में लड़कर, भारत को दीना डुबाई
पृथ्वीराज ने जयचंद से लड़कर, अपने को दीना मिटाई रे।¹⁰

2. स्वामी भीष्म

स्वामी भीष्म ने स्वतंत्रता-आंदोलन, राष्ट्रीय पुनरुत्थान तथा सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पुनर्जागरण में अद्वितीय योगदान दिया। स्वामी भीष्म ने युवाओं में अपने भजनों से स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जोश भरा। स्वामी जी का एक भजन—

अगर जवानो, जीना है तो बंद शस्त्र-झंकार न करना
कहो देवियों से जेवर और फैशन के संग प्यार न करना।¹¹

आजादी से पहले कवि की ईश्वर से प्रार्थना

हे पिता क्या ऐसी खता हमसे हुई
दीन-दुखियों की करते सुनाई नहीं
तेरे भंडार भरपूर में क्या रही
प्यारे दर्द-वतन की दवाई नहीं।¹²

3. गीताराम 'वीर'

गीताराम 'वीर' ने अपनी भजन-मंडली के माध्यम से स्वतंत्रता-आंदोलन से संबंधित राष्ट्रीय कार्यक्रम लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किए। गीताराम 'वीर' का देशप्रेम से ओत-प्रोत भजन—

यह भारत देश प्यारा, साडा है यह सहारा
सिर राखा परबत सुंदर, पैरों विच वगे समंद
डूंगी है जिसकी धारा एक भारत देश।¹³

4. शिवकरण

शिवकरण ने अपनी भजन-मंडली के द्वारा अँग्रेजी कंपनी के ग़लत कार्यों व राष्ट्रीय विषयों का प्रचार किया। उन्होंने 'अँग्रेजी सरकार के लफंगे' भजन के माध्यम से कहा—

फिरते हैं लफंगे, ये अँग्रेजी सरकार के
गाँव में पटवारी रहता सबसे रखता प्यार है।¹⁴

5. हरफूलसिंह

हरफूलसिंह ने अपनी भजन-मंडली के द्वारा प्रदेशभर में राष्ट्रीयता का संदेश बड़े सुंदर ढंग से पहुँचाया। इन्होंने अपने भजन 'गुलामी का अभिशाप' के द्वारा लोगों को आज्ञाद होने के लिए प्रेरित किया—

घने दिलों का अरसा होगा रही गुलामी तेरे घर में
पिटते-पिटते होश भूल गए आ गई जरब कमर में।
आज्ञादी के बरवे बोने होंगे, और ठिकाने टोहने होंगे
अँग्रेज यहाँ से खोने होंगे, चढ़ गया जुल्म शिखर में।¹⁵

6. मोहरचंद्र मस्त

मोहरचंद्र मस्त ने अपनी भजन-मंडली के द्वारा अँग्रेजों के खिलाफ देशवासियों को जागरूक किया व अपने भजनों के माध्यम से युवाओं में राष्ट्रीयता की भावना पैदा की। इन्होंने अपने भजन 'देशी भाइयों को चेतावनी' के माध्यम से कहा—

सुन लो गांधी बाबा ने यह दीना हुक्म सुनाय
त्यागो कपड़ा आप विदेशी खादी से चितलाय
लंका शायर मैनचेस्टर का किला जीत लो जाय
घर-घर में चरखा चलवावो सूत लेवो कतवाय।¹⁶

7. रतनसिंह

रतनसिंह ने अपनी भजन-मंडली के द्वारा गाँवों में राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना पैदा करने का कार्य किया। इन्होंने अपने भजन 'भारत पर संकट' के द्वारा युवाओं में स्वतंत्रता-प्राप्ति का जज्बा पैदा किया—

भाई प्रतंत्रता के कारणे, भारत पै संकट आया
जितनी थी माया की ढेरी सभी विलायत को जाली
देश सोने की चिड़िया था अब आन पड़ी है कंगाली
बड़े-बड़े दानी दान करै थे आज पेट तैं सोवैं खाली।¹⁷

अतः हम कह सकते हैं कि जनसंचार की परंपरागत माध्यम भजन-मंडलियों ने गाँव-गाँव जाकर लोगों में अँग्रेजी राज्य के प्रति नफ़रत पैदा की, गुलामी के अभिशापों से उन्हें परिचित कराया तथा उन्हें स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। भजन-मंडलियाँ ही वह माध्यम थीं, जो सीधे तौर पर जनमानस से जुड़ी हुई थीं और बड़े सहज, सरल व प्रभावशाली ढंग से लोगों के दिलों-दिमाग पर असर करती थीं। भजन-मंडलियों ने देशवासियों से स्वतंत्रता-आंदोलन में बढ़-चढ़कर सम्मिलित होने का आह्वान किया, जिसके कारण आज हम खुली हवा में साँस ले रहे हैं। प्रदेश के इन स्वतंत्रता-सेनानियों के इस बहुमूल्य योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

संदर्भ

1. जनसंचार, सं० राधेश्याम शर्मा, जनसंचार, बहुआयामी संचार और संचालन-तंत्र, लेखक राजेंद्र,

- प्रकाशक हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, द्वितीय संस्करण 1993, पृ० 3
2. सरोजिनी नांदल, भारतीय मीडिया, अंतरंग पहचान, सं० डॉ० स्मिता मिश्र, पृ० 213
 3. जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता सर्वांग, डॉ० जितेंद्र वत्स व किरणबाला, पृ० 10
 4. बृहत हिंदी कोश, कालिकाप्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2008, पृ० 832
 5. आदर्श हिंदी कोश, पं० रामचंद्र पाठक, भार्गव डिपो चौक, वाराणसी, जनवरी 1980 पृ० 584
 6. गाँव बदनारा जिला कैथल के पं० रामेश्वरदत्त के 1 जनवरी, 2005 को लिए गए साक्षात्कार के अनुसार
 7. बृहत हिंदी कोश, कालिकाप्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2008, पृ० 858
 8. भाषा शब्दकोश, सं० रामशंकर शुक्ल रसाल, रमेश भवन प्रयाग, 18-12-31, पृ० 1204
 9. पंडित बस्तीराम सर्वस्व, रचयिता पं० बस्तीराम शर्मा आर्योपदेशक, सं० आचार्य वेदव्रत शास्त्री, प्रकाशक परममित्र मानव निर्माण संस्थान सिंधु भवन, रोहतक, प्रथम संस्करण 2005, पृ० 166
 10. वही, पृ० 421
 11. भीष्म भजनावली, लेखक स्वामी भीष्म जी महाराज, सं० शिवकुमार आर्य, प्रकाशक स्वामी भीष्म वेद प्रचार मंडल (पंजी०) घरौंडा, जिला करनाल (हरियाणा), प्रथम संस्करण, 2005, पृ० 79
 12. वही, पृ० 131
 13. भजन रत्नावली, 1925, पृ० 14-15
 14. हरियाणा: स्वतंत्रता-आंदोलन में कवियों, शायरों, भजनोपदेशकों और लोकगायकों का योगदान, डॉ० के०सी० यादव, भावना प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1988, पृ० 385
 15. वही, पृ० 381
 16. हरियाणा का जवत्शुदा राष्ट्रीय साहित्य, डॉ० के० सी० यादव, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1989, पृ० 19
 17. हरियाणा: स्वतंत्रता-आंदोलन में कवियों, शायरों, भजनोपदेशकों और लोकगायकों का योगदान, डॉ० के०सी० यादव, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1988, पृ० 375

मो 09467421004

E-mail.sushiltaya@gmail.com

प्रवासी हिंदी साहित्य में मानवीय संबंध

डॉ० रीता

हिंदी भाषा ही नहीं, अपितु उदारवादी संस्कार है, जो वर्षों से चला आ रहा है। हिंदी साहित्य की रचना विदेशी भूमि पर भी पर्याप्त मात्रा में हो रही है। विश्व के अनेक देशों के साहित्यकार हिंदी साहित्य लिख रहे हैं। वे प्रवासी साहित्य के अंतर्गत आता है। प्रवासी व्यक्तियों का स्वदेश-प्रेम, अपनों से न मिल पाने की छटपटाहट आदि विषय प्रवासी लेखकों के लेखन का विषय रहे हैं। प्रवासी लेखकों की अस्मिता का प्रश्न आज भी उठता है। विदेशों में हिंदी साहित्य लिख रहे लेखकों की कलम में क्या वे संवेदनाएँ नहीं हैं, जो भारतीय लेखकों की साहित्यिक रचनाओं में हैं।

भारत की पावन भूमि पर अनादिकाल से अनेक महापुरुषों, मनीशियों, चिन्तकों, कवियों एवं लेखकों का पदार्पण हुआ। यह सर्वविदित तथ्य है कि समय-समय पर कुछ ऐसे ही महापुरुषों, चिंतकों, साहित्यसेवियों को अपनी जन्मभूमि को छोड़ विदेश जाना पड़ा, किंतु युगीन परिस्थितियों एवं वातावरण के परिवर्तन होने के बावजूद ये प्रवासी भारतीय संस्कृति, सभ्यता, संस्कारों एवं मूल्यों के प्रति सजग रहे हैं और इसी सजगता के फलस्वरूप कुछ प्रवासी साहित्यकारों ने विशिष्ट हिंदी साहित्य का सृजन किया है।

सात समुद्र पार बसने वाले व्यक्ति का विचार भी सीमित नहीं होगा। उसके भीतर कई तरह के द्वंद्व व विचार, पारिवारिक विघटन, पीढ़ियों का टकराव आदि विषय प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं में सर्वदा देखने को मिलते हैं। भारतीय अपने वतन को छोड़कर विदेशों में बस जाते हैं, उन्हें एक तरह से प्रवासी होने के आक्षेप से गुजरना पड़ता है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति भारत छोड़कर अमेरिका जा बसता है, उसे भारत छोड़ देने के कारण प्रवासी कहा जाता है और अमेरिका में पहुँचने पर वह भारतीय होने के नाते प्रवासी कहलाता है। उसे न भारत वाले अपने देश का मानते हैं और न ही अमेरिकी अपने देश का। इस तरह वह दोनों ही जगह प्रवासी बनकर रह जाता है। अपनी इन्हीं समस्याओं और पीड़ाओं का दस्तावेज बनती हैं, उसकी अपनी रचनाएँ। प्रवासी साहित्य कुंठा, द्वंद्व, विक्षोभ, आत्मकेंद्रिता आदि विषयों को लेकर चलता है, जो प्रवासी साहित्यकार के जीवन का कोरा सच है—

कहाँ कहाँ के परिंदे, बसे हैं आ के यहाँ

सभी का दर्द मेरा दर्द, बस खुदारा है।

प्रवासी साहित्यकारों में जिकिया जुबैरी, तेजेंद्र शर्मा, कादंबरी, अभिमन्यु अनंत, ऊषा वर्मा, स्नेहा ठाकुर, दिव्या माथुर, सोमावीरा, बृजेंद्रकुमार आदि प्रमुख हैं। हिंदी प्रवासी साहित्य का

विकास सभी विधाओं में हुआ है। दिव्या माथुर ने स्वार्थी दुनिया का यथार्थ अपनी कहानियों '2050 कहानी' में प्रस्तुत किया है। ज़किया जुबैरी की 'बस एक कदम' कहानी स्त्रियों की बदलती जीवन-शैली को प्रकट करनेवाली कहानी है। एक पति विदेशी बालाओं के साथ रंगरलियाँ मनाकर आता है, परंतु वह अपनी पत्नी को पुरुषार्थ के बल पर दबाकर रखना चाहता है। यहाँ तक कि उसके साथ नौकरानी-जैसा व्यवहार करता है। लेखिका ने पति द्वारा पत्नी के स्वाभिमान को मिटाने का वर्णन किया है। 'कल फिर आना' की रीमा 'बस एक कदम' की शैली दोनों शोषित स्त्री पात्र हैं। प्रवासी साहित्य में कहीं मि० लाल जैसे पात्र दिखाए गए हैं, जो 'एलिश' के शोषण का शिकार होते हैं। संस्कारों से जकड़ा व्यक्ति विदेशियों के स्वच्छंद वातावरण को पचा नहीं पाता, अतः उसे वहाँ घुटन अनभव होती है, परंतु विदेशी आकर्षण व नाम के लिए वह इसे भी स्वीकार करने में संकोच नहीं करता।

'मारिशस जिसे विश्व परिदृश्य में लघु भारत की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, हिंद महासागर में अवस्थित वह पहला देश है, जहाँ सर्वप्रथम दिसंबर 1834 ई० में प्रवासी भारतीयों के चरण पड़े थे।' हिंदी प्रवासी साहित्य में इस देश के प्रवासी लेखकों की लगभग 200 कृतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें मानवीय मूल्यों, संबंधों, संस्कारों एवं संस्कृति विषयक रचनाओं का सन्निवेश है। इस साहित्य की अपनी एक अनूठी अस्मिता है।¹² ठाकुरप्रसाद मिश्र ने सन् 1962 ई० में दीपावली शीर्षक रचना का सृजन किया, जिसमें देवी भगवती की वंदना की गई है। ब्रजेंद्र भगत मधुकर ने 'एक कहानी कुली की' नामक काव्य लिखा, जिसमें उन्होंने पहली बार जनसामान्य को काव्य का नायक बनाकर मानवीय मूल्यों, संबंधों एवं संवेदनाओं का अनूठा चित्रण किया।

इसमें कवि ने जनमानस के प्रति गहन संवेदनाएँ व्यक्त की हैं तथा मानवीय संबंधों की नवीन दुनिया का उल्लेख भी किया है। मधुकर को मारिशसीय हिंदी का राष्ट्रकवि माना जाता है। इनका पहला काव्य-संग्रह 'मधुपर्क' सन् 1942 में प्रकाशित हुआ। इनके लगभग बीस काव्य-संग्रह हैं, जिनमें गीतांजलि, मधुमास, रणभेरी, रसवंती, स्वराज्य, हिंदी, गौरवगान आदि उल्लेखनीय हैं। इनके काव्य में मुख्यतः मानवमूल्यों एवं संबंधों के अनेक चित्र अंकित हुए हैं, जिनको देखकर समकालीन जगत् में मानवता के बदलते स्वरूप एवं मानवीय संबंधों की झाँकी स्पष्ट होती है।

सन् 1961 ई० में मारिशस में मुक्त छंद की कविता का प्रारंभ हुआ। मुनिश्वरलाल चिंतामणी ऐसे कवि हैं, जिन्होंने मुक्त छंद की अवतारणा की है। इनका 'शांति निकेतन की ओर' मुक्त छंद का प्रथम काव्य माना जाता है। इसमें प्राचीन मूल्यों के साथ-साथ मानवीय संबंधों का भी चित्रण है। सोमदत्त बखोरी मुक्त छंद के प्रौढ़तम कवि हैं। उनके दो काव्य-संग्रह 'मुझे कुछ कहना है' (1967 ई०) और बीच में बहती धारा (1971 ई०) है। इस देश में प्रथम काव्य-संकलन सन् 1966 में प्रकाशित हुआ, जिसमें विविध कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। सन् 1970 ई० में आकाश गंगा, 1980 ई० में 'प्रवासी स्वर', 1975-76 ई० में 'तरंगिनी' एवं मारिशस की हिंदी कविता' नामक सामूहिक काव्य प्रकाशित हुए।¹³

मारिशस के हिंदी साहित्य में आशा, आस्था एवं विश्वास के साथ-साथ मानवीय संबंधों का स्वर भी उद्घाटित होता है। यह भारतीय संस्कृति मूल्यों एवं संस्कारों के प्रति विशेष श्रद्धावानत एवं निष्ठावान हैं। निरंतर बदलते मूल्यों एवं मानवीय संबंधों के प्रति कवियों ने गहन संवेदनाएँ

व्यक्त की हैं। ठाकुरदत्त पांडेय मानवमूल्यों के कवि हैं। यहाँ 'वसंत' में प्रकाशित अनत का यह पद उल्लेखनीय है—

धूप की जलती सलाखों को
नंगी पीठ पर सहता हुआ
तुम्हारी सलीव को ढोये जा रहा हूँ
और, मेरी यात्रा को सुगम बनाने के वास्ते
मेरी रोटी की थैली
तुमने अपने हाथों में ले ली है।⁴

मारीशस में पद्य के साथ-साथ गद्य विधाओं का भी विकास हुआ है। इसमें लेखकों ने उपन्यास, कहानी, निबंध आदि विधाओं पर लेखनी चलाई है। सन् 1960 ई० में कृष्णलाल बिहारी का 'पहला कदम' उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसमें ग्रामीण और शहरी वातावरण का अंतर तथा सामाजिक रूढ़ियों, मानवीय संबंधों के सांकेतिक चित्र अंकित हैं। इस उपन्यास की भूमिका में स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि मैंने यह पुस्तक सिर्फ हिंदूजाति को जीवित रखने और हिंदीभाषा की धारा को बहाने के उद्देश्य से बनाई है।⁵

अभिमन्यु 'अनत' मारीशस के एक अग्रणी एवं श्रेष्ठ उपन्यासकार के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने अनेक उपन्यासों का अनूठा सृजन किया है। उनके सभी उपन्यासों का प्रकाशन भारत में हुआ है, जिनमें प्रमुख आंदोलन 'नदी बहती रही', 'कुहासे का दायरा', 'चौथा प्राणी', तीसरे किनारे पर, लाल पसीना एवं शेफाली आदि। 'लाल पसीना' अनत की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जिसमें मारीशस के प्रवासी भारतीयों की तीन पीढ़ियों का सामाजिक चित्रण है। इसमें लेखक ने मानवीय संबंधों की नवीन दुनिया के अनेक चित्र अंकित किए हैं। आंदोलन में ग्रामीण व शहरी जीवनधारा के अलगाव बिंदुओं की खोज की गई है। 'एक बीघा प्यार' ग्रामीण पृष्ठभूमि में प्रेम की त्रिकोणीय कथा है। 'तीसरे किनारे पर' में शहरी अजनबीपन और संपन्न समाज का अंकन हुआ है।⁶

कहानी-क्षेत्र में अनुराग और अनत के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मारीशस की कहानियों में वर्ग संघर्ष तथा मानवीय संबंधों के संघर्षों का विवेचन हुआ है। इसमें जनसामान्य के जीवन की विवशता स्पष्ट झलकती है। मानवीय मूल्यों एवं संबंधों में भारतीय संस्कारों की छवि निहित है। इन मूल्यों से प्रेरित कहानियों में अनुबंधन (भानुमति नागदान), एक कदम (रघुनाथ दयाल) ओवरटाइम (कृष्णलाल बिहारी) बिगड़ा हुआ यंत्र (दीपचंद बिहारी), माथे का टीका (अनत) आदि उल्लेखनीय हैं। सन् 1941 ई० में जयनारायण राय की 'जीवन-संगिनी' एकांकी प्रकाशित हुआ, जिसमें नारी-जीवन के संबंधों एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें लेखक ने परंपरागत जीवनमूल्यों एवं संबंधों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

प्रोफ़ेसर वासुदेव विष्णुदयाल मारीशस के प्रमुख निबंधकार माने जाते हैं। उनकी 'मनुष्य अपना है', 'पश्चिम को भारत की देन', 'गीता उपनिषद्' तथा 'संस्कार वृक्ष' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके निबंधों में बदलते जीवनमूल्यों तथा मानवीय संबंधों की नवीन दुनिया के अनेक चित्र अंकित हुए हैं। लेखक ने मानवीय संबंधों में घटती आत्मीयता तथा संस्कारों के प्रति गहन चिंता व्यक्त की है। प्रसादगण पंत का जीव प्रदीप भी इस क्षेत्र में विशेष भूमिका अदा करता है।⁷

अतः हम कह सकते हैं कि विश्व-मानचित्र में स्थित मारीशस विश्व का एक ऐसा देश है, जहाँ अधिकांश निवासी भारतीय मूल के हैं और जिनका प्रवासी हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान है। यहाँ के लेखकों की लगभग दो सौ कृतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें धर्म, संस्कृति, संस्कार, जीवनमूल्यों, मानवीय संबंधों की नवीन दुनिया का अनूठा चित्रांकन हुआ है। मारीशसीय प्रवासी हिंदी साहित्य की अपनी अनूठी पहचान एवं अस्मिता है। इस साहित्य में आशा, आस्था और विश्वास की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। इसमें मानवीय संबंधों की नवीन दुनिया को देखने का सफल प्रयास किया गया है। लेखकों ने मानवीय संबंधों के अनेक चित्र उकेरे हैं। इन्होंने मानवीय संबंधों में आए नित्य नवीन परिवर्तनों एवं बिखराव को अत्यंत गंभीरतापूर्वक चित्रित किया है। बदलते जीवनमूल्यों के प्रति गहन संवेदनाएँ व्यक्त की हैं। मारीशस के कथासाहित्य में वर्गभेद, वर्गसंघर्ष एवं मानव-मन की संघर्षपूर्ण प्रवृत्तियों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। इनके जीवनमूल्य एवं मानवीय संबंध भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए हैं।

समंजित रूप में हम कह सकते हैं कि सदियों के प्रवास के पश्चात् भी मारीशस के प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति, सभ्यता, जीवनमूल्य एवं मानवीय संबंध सुरक्षित हैं। वास्तव में मारीशस के प्रवासी हिंदी साहित्य ने हिंदी साहित्य को समृद्धि व नवीन आयाम दिए हैं। यह साहित्य भारतीय लेखकों एवं विद्वानों के लिए वास्तव में प्रेरणा-स्रोत सिद्ध होगा।

संदर्भ

1. विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका (1983), पृ० 190
2. वसंत पत्रिका-II
3. विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका, पृ० 191
4. वसंत पत्रिका भाग-II, पृ० 9
5. कृष्णलाल बिहारी, पहला कदम (भूमिका)
6. डॉ० लता, मारीशस का हिंदी साहित्य
7. वही

साहित्य में जीवन-दर्शन की भूमिका

रुपिंद्र शर्मा

साहित्य जीवन की अलोचना है। साहित्यकार जीवन का दर्शक ही नहीं होता, अपितु चिंतक भी होता है। जीवन-संग्राम में वह जिन कठिनाइयों, जटिलताओं, समस्याओं तथा द्वंद्वों से जूझता है, उससे उसकी एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि निर्मित होती है। इसी जीवन-दृष्टि को लेखक अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। दरअसल, साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यासकार अपनी बात आसानी से कह सकता है। इस संदर्भ में डॉ॰ श्यामसुंदर दास का मत अवलोकनीय है—‘उपन्यास लेखक का जीवन के किसी एक अथवा अनेक अंगों के साथ बहुत ही घनिष्ठ संबंध होता है। इसीलिए किसी-न-किसी रूप में प्रकट करना उसका कर्तव्य हो जाता है कि जीवन के साधारण और असाधारण सभी व्यापारों का उस पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा है। कुछ विशेष सिद्धांतों और विचारों के प्रतिपादन के उद्देश्य से तो बहुत कम उपन्यास लिखे जाते हैं। सभी उपन्यासों में कुछ-न-कुछ विशेष विचार अथवा सिद्धांत अपने-आप आ जाते हैं।’¹ अतः उपन्यास और जीवन-दर्शन का गहरा संबंध है, परंतु ‘जीवन-दर्शन’ को पूर्णतः समझने के लिए ‘जीवन’ और ‘दर्शन’ दोनों शब्दों पर अलग-अलग विचार करना अनिवार्य है।

जीवन का कोशगत अर्थ

जीवन शब्द संस्कृत के ‘जीव्’ धातु में ‘ल्युट्’ प्रत्यय लगाने से बना है।² जिसका अर्थ है—‘जीता रहना, प्राण-धारण, जीवन-दशा, जिंदगी, जीवन की आधाररूप वस्तु।’³ आदि स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार मानक हिंदी कोश में ‘जीवन’ को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—‘वह नैसर्गिक शक्ति, जो प्राणियों, वृक्षों आदि को अंगों और उपांगों से युक्त करके सक्रिय और सचेष्ट बनाती है और जिसके फलस्वरूप वह अपना भरण-पोषण करते हुए अपने वंश की वृद्धि करते हैं।’⁴ जबकि लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश में जीवन का अर्थ—‘जीवित रहने का भाव, जन्म से मृत्यु तक का समय, जिंदगी, जीवित रखनेवाली वस्तु जैसे—हवा, पानी, अन्न आदि’⁵ स्वीकार किया गया। अतः कोशगत अर्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि जीवन वह शक्ति है, जो मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों, वृक्षों को चेतनता प्रदान करती है तथा जीवन से लेकर मृत्यु तक उन्हें चेतन बनाए रखती है।

जीवन की कतिपय परिभाषाएँ

जीवन इतना व्यापक विषय है कि उसे परिभाषित करना बहुत जटिल कार्य है। जीवन की परिभाषा स्वयं जीवन ही है। यों विभिन्न तत्त्ववेत्ताओं, मनीषियों, वैज्ञानिकों, साहित्यकारों एवं

चित्तकों ने अपनी-अपनी दृष्टियों के अनुरूप 'जीवन' पर विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ० देवराज के विचारानुसार—'जिसे हम जीवन कहते हैं, वह बाह्य वास्तविकता तथा प्राणधारी के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया का नाम है। सब प्रकार का जीवन एक परिवेश में पलता-फूलता है और उससे ही जीवन शक्ति के उपादानों को ग्रहण करता है।'⁶ लक्ष्मीकांत सिन्हा के विचार में—'हमारा जीवन सुख और दुख दोनों के कगारों को छूते हुए चलता है। कभी सुख और कभी दुख और कभी सुख-दुःख दोनों, यही मनुष्य का जीवन है।'⁷ जबकि प्रसिद्ध कथा-शिल्पी जैनेंद्रकुमार के शब्दों में, 'जीवन से कला को तोड़कर मैं नहीं देख पाता, सत्याभिमुख विशेषण मैंने लगाया है। अर्थात् जो हम हैं, वही हमारा जीवन नहीं है, जो हम होना चाहते हैं हमारा वास्तविक जीवन तो वही है। जीवन एक अभिलाषा है।'⁸ विष्णु प्रभाकर ने जीवन को चुनौतियों से पूर्ण मानकर इसके संबंध में विचार प्रगट करते हुए लिखा है—'स्वप्न-रेखा जितनी मोहक, जितनी सहज होती है, ज़िंदगी न उतनी मोहक होती है, न उतनी सहज। जितनी होती है उसमें रस नहीं होता। दुर्घटनाएँ और पीड़ा, ये ही तो जीने लायक बनाते हैं ज़िंदगी को। चुनौती न हो तो वह कैसा जीवन।'⁹

उपर्युक्त परिभाषाओं पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन की कोई सर्वमान्य परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकती। हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि उपन्यास अथवा साहित्य की अन्य विधाओं में जीवन के जिस रूप को अभिव्यंजित किया जाता है, उसका संबंध न तो आदिमानव से है और न ही अतिमानव से, बल्कि उस सामान्य मानव से है, जो अपने सुख-दुख, करुणा, दया, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, द्वंद्व इत्यादि वृत्तियों के साथ मानव है।

दर्शन का कोशगत अर्थ

मानविकी पारिभाषिक कोश में दर्शन की व्याख्या इस प्रकार दी गई है—'भारतीय परंपरा में दर्शन का व्युत्पत्त्यर्थ है 'जिसके द्वारा दर्शन हो' यह इसका व्यापक अर्थ है। अभिप्राय यह है कि जिसके द्वारा सत्य का स्पष्ट दर्शन हो, दर्शन कहलाता है।'¹⁰ वस्तुतः दर्शन शब्द 'दृश्' धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाने से बना है।'¹¹ इसी प्रकार बृहत् हिंदी कोश में दर्शन का अर्थ 'चाक्षुष प्रत्यक्ष, साक्षात्कार जानना, वह शास्त्र जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत्, धर्म, मोक्ष, मानव के उद्देश्य आदि का निरूपण हो, तत्त्वज्ञान करानेवाला शास्त्र'¹² स्वीकार किया गया है। जबकि लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश में दर्शन का अर्थ—'(1) नेत्रों द्वारा होने वाला बोध या ज्ञान, साक्षात्कार, (2) किसी देवता, देवमूर्ति या बड़े व्यक्ति से होने वाला साक्षात्कार, (3) दिखाई पड़नेवाला आकार या रूप (4) दर्शन-शास्त्र, (5) विचारधारा'¹³ आदि प्राप्त होता है। मानक हिंदी कोश में 'दर्शन' को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि, 'वह विज्ञान या शास्त्र जिसमें प्राणियों को होनेवाले ज्ञान या बोध सब तत्त्वों या पदार्थों के मूल और आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, विश्व, सृष्टि आदि से संबंध रखने वाले नियमों, विधानों, सिद्धांतों आदि का गंभीर अध्ययन, निरूपण तथा विवेचन होता है।'¹⁴ अतः कोशगत अर्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि दर्शन वह दृष्टि, बोध अथवा ज्ञान है जिसे व्यक्ति-विशेष अपने अंतः और बाह्य परिवेश के साक्षात्कार द्वारा प्राप्त करता है।

दर्शन का पारिभाषिक स्वरूप

दर्शन के उपर्युक्त कोशगत अर्थों को ध्यान में रखकर विभिन्न विद्वानों ने 'दर्शन' को

पारिभाषित किया है। यहाँ भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मत अवलोकनीय हैं।

वस्तुतः दर्शन विचार-मीमांसा के साथ-ही-साथ जीवन से भी संबंधित है। डॉ० देवराज के शब्दों में—‘भारतीय दर्शन प्रारंभ से ही जीवन के परम लक्ष्य और प्रयोजन में रुचि रखता आया है।’¹⁵ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार—‘दर्शन का अर्थ है देखना। इसका अंतर्निहित अर्थ यह है कि दर्शन कुछ सिद्ध महात्माओं के देखे हुए सत्यों का प्रतिपादन करते हैं।’¹⁶ अतः भारतीय परंपरा में दर्शन का प्रयोजन परम सत्य की खोज माना गया है, परंतु भारतीय मनीषियों ने स्वयं को सत्य की खोज तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि वे सत्य की अनुभूति भी प्राप्त करना चाहते हैं। इस संबंध में हरेंद्रप्रसाद सिन्हा का मत दृष्टव्य है—‘भारतवर्ष में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार हो सके। भारत का दार्शनिक सिर्फ तत्त्व की बौद्धिक व्याख्या से ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि वह तत्त्व की अनुभूति भी प्राप्त करना चाहता है।’¹⁷ कोरे दार्शनिक सिर्फ बौद्धिकता अथवा तर्कशक्ति को ही महत्त्व देते हैं, अनुभूति को नहीं। जबकि साहित्य का संबंध अनुभूति पक्ष से अधिक है। चूँकि भारतीय मनीषी स्वयं को तत्त्व की व्याख्या तक सीमित न रखकर, उस तत्त्व की अनुभूति भी प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए भारतीय परंपरा में दर्शन और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है।

यद्यपि पाश्चात्य जगत् में ‘दर्शन’ के लिए प्रचलित शब्द ‘फ़िलॉसफ़ी’ का अर्थ कुछ भिन्न है, तथापि आधुनिक युग में ‘दर्शन’ और ‘फ़िलॉसफ़ी’ शब्द एक-दूसरे के पर्याय हो गए हैं। वस्तुतः फ़िलॉसफ़ी शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों—‘फ़िलॉस’ तथा ‘सोफ़िया’ से बना है। ‘फ़िलॉस’ का अर्थ प्रेम या अनुराग है और ‘सोफ़िया’ का अर्थ—विधा है। अतः हम कह सकते हैं कि इस शब्द का अर्थ—विद्यानुराग है।¹⁸ पाश्चात्य दार्शनिक विलियम अन्सर्ट हॉकिंग का मत है कि ‘अपने और प्रकृति के अन्य प्राणियों के समस्त जीवन और चेतना के मूल के बारे में सोचने की (हम सभी में) स्वाभाविक अभिरुचि होती है, यदि श्रद्धा की बात अलग भी रखें, तो भी जीते-जागते संसार की अंतिम नियति की ओर देखने में हम सभी की स्वाभाविक दिलचस्पी होती है और ऐसा स्वाभाविक आश्चर्य है, जिससे अनेको विज्ञान अछूते रह गए हैं और जो किसी भी अन्य प्रेरणा के हमें तत्त्व-मीमांसीय खोज की ओर ले जाता है।’¹⁹ अतः हम कह सकते हैं कि पाश्चात्य फ़िलॉसफ़ी का आधार बौद्धिक चिंतन रहा है।

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि दर्शन वह पद्धति है, जो व्यक्ति को अपने जीवन और परिवेश का निरीक्षण-परीक्षण करने की शक्ति प्रदान करती है।

दर्शन और जीवन-दर्शन

‘दर्शन’ के उपर्युक्त स्वरूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि दर्शन तर्काश्रित एवं तथ्यात्मक होता है, दूसरे शब्दों में—‘दर्शन’ तत्त्वज्ञान करानेवाला शास्त्र है, जबकि ‘जीवन-दर्शन’ व्यक्ति-विशेष की संवेदनाओं, प्रवृत्तियों और परिवेशगत मान्यताओं द्वारा निर्मित वह व्यावहारिक दृष्टि है, जो उसके जीवन को व्यवस्थित एवं परिचालित करती है।

वस्तुतः ‘दर्शन’ एक प्रकार का विज्ञान है, क्योंकि प्रायः दार्शनिक सिद्धांत सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होते हैं। इसके विपरीत साहित्यकारों का ‘जीवन-दर्शन’ नितांत व्यक्तिगत होता है, यही कारण है कि बदलते परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप जीवन-दर्शन भी परिवर्तित

होता रहता है। डॉ० आदर्श सक्सेना के शब्दों में—‘दर्शन, खोज पर आधारित होता है और जीवन-दर्शन कार्यों के परिणामों पर, दोनों के सत्य इसीलिए भिन्न भी हो सकते हैं। दर्शन के सत्य प्रामाणिक एवं स्थायी सत्य होते हैं, जीवन-दर्शन के सत्य प्रामाणिक एवं स्थायी हों, यह आवश्यक नहीं।’²⁰ संक्षेप में, ‘दर्शन’ दार्शनिक का क्षेत्र है और जीवन-दर्शन कलाकार अथवा साहित्यकार का।

यद्यपि ‘दर्शन और ‘जीवन-दर्शन’ दोनों अवधारणाएँ पर्याप्त भिन्नता रखती हैं, तथापि कुछ पक्षों से ये दोनों परस्पर संबंधित भी प्रतीत होती हैं। वास्तव में जीवन-दर्शन दो प्रकार का होता है—प्रथम समाज-प्रदत्त जीवन-दर्शन और द्वितीय व्यक्ति-निर्मित जीवन-दर्शन। समाजप्रदत्त जीवन-दर्शन परंपराओं, संस्कारों, परिवेशगत मान्यताओं से निर्मित होता है जबकि वैयक्तिक जीवन-दर्शन का निर्माण व्यक्ति स्वयं करता है। ‘वस्तुजगत या जीवन-संबंधी छाप अथवा धारणा दृष्टा की चेतना ग्रहण करती है और उस चेतना के मूल में दृष्टा का व्यक्तित्व अथवा उसके चिंतन-भाव का स्वर रहता है।’²¹ चूँकि साहित्यकार अपने युग का जागरूक प्राणी होता है, अतः उसके द्वारा जीवन के चिंतन-मनन हेतु किसी-न-किसी दार्शनिक पद्धति का अनुसरण अवश्य होता है। हिंदी उपन्यास-साहित्य के विहंगम सर्वेक्षण से यह बात भली-भाँति सिद्ध हो जाती है कि समय-समय पर मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद आदि दार्शनिक पद्धतियों ने साहित्यकारों की जीवन-दृष्टि को प्रभावित किया। सारांश यह है कि वैयक्तिक जीवन-दर्शन का निर्माण व्यक्ति द्वारा जीवन को देखने, समझने, परखने और किसी विशेष दार्शनिक सिद्धांत का अनुसरण करने से होता है। डॉ० राधाकृष्ण के शब्दों में—‘यदि दर्शन-पद्धति सजीव हो, तो जनसाधारण के जीवन और दर्शन में अंतर नहीं रहता।’²²

जीवन-दर्शन और जीवनमूल्य

‘जीवनमूल्य’ दो शब्दों—‘जीवन’ और ‘मूल्य’ से निर्मित हुआ है। जीवनमूल्य में प्रयुक्त ‘मूल्य’ शब्द इतना व्यापक है कि यह शब्द मनोविज्ञान, दर्शन, अर्थशास्त्र इत्यादि विज्ञानों में भी समान रूप से प्रयुक्त होता है। वस्तुतः ‘मूल्य’ शब्द ‘मूल’ धातु में ‘यत्’ प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ—‘मोल लेने योग्य, कीमत, मोल, लागत, मजदूरी’ आदि है।²³ कतिपय विद्वानों ने जीवनमूल्यों को पारिभाषित करने का प्रयास किया है, परंतु जीवनमूल्यों का पारिभाषिक स्वरूप निर्धारित करना आसान कार्य नहीं है। डॉ० हुकुमचंद राजपाल का मत यहाँ द्रष्टव्य है—‘मूल्य एक धारणा है, जिसका संबंध मानव से है। भौतिक जगत् में मूल्य का संबंध उपयोगिता से है जबकि वैचारिक जगत् में वह अपनाव से संबंधित है। मानवीय संवेदनाओं के अभाव में हम ‘मूल्य’ की कल्पना भी नहीं कर सकते। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि मूल्यबोध का अनिवार्य आधार वैयक्तिक प्रतीति है, अर्थात् जो वस्तु मन में परितोष, प्रेरणा अथवा सार्थकता की अनुभूति जाग्रत करने में सहायक होती है, वही मूल्यवान प्रतीत होने लगती है। सही अर्थों में मूल्य वह वैचारिक इकाई है, जिसे आधार बनाकर मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है और उसे आत्मोपलब्धि होती है।’²⁴ अतः यह कहा जा सकता है व्यक्ति-विशेष द्वारा व्यक्ति, समाज और राजनीति के संबंध में मानवीय संवेदना और अपने विवेक के द्वारा जो धारणाएँ निर्मित की जाती हैं, उन्हें हम उसके जीवनमूल्यों की संज्ञा दे सकते हैं।

जीवनमूल्यों संबंधी उपर्युक्त दृष्टि से विचार किया जाए, तो जीवनमूल्यों और जीवन-दर्शन में गहरा अंतःसंबंध प्रतीत होता है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने तो जीवन-मूल्यों को जीवन-दर्शन का ही अंग स्वीकार किया है।²⁵ वस्तुतः एक तो ये दोनों धारणाएँ व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करती हैं, दूसरा जीवनमूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन-दर्शन भी प्रभावित होता है। हाँ, जीवन के कुछ मूल्य जैसे-दया, करुणा, सहानुभूति आदि शाश्वत होते हैं। शाश्वत जीवनमूल्यों का संबंध हमारे संस्कारों से होता है। निस्संदेह ये मूल्य जीवन-दर्शन को प्रभावित करते हैं, परंतु वर्तमान युगमूल्यों के संक्रमण एवं परिवर्तन का है। अतः जीवनमूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन-दर्शन का परिवर्तित होना स्वाभाविक है। सारांशतः जीवन-दर्शन और जीवनमूल्य परस्पर आश्रित हैं।

जीवन-दर्शन और संस्कृति

संस्कृति शब्द अपने-आपमें बहुत व्यापक एवं विस्तृत है। संस्कृति की सर्वसम्मत परिभाषा देना तो संभव नहीं, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि संस्कृति मनुष्य का परिष्कार करती है और उसे सभ्य बनाती है। इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं को ही संस्कृति माना है।²⁶ वस्तुतः संस्कृति परिवर्तित, परिवर्धित एवं परिष्कृत होती रहती है। जिस समाज में साहित्यकार जन्म लेता है, संस्कारवश ही उस समाज की मान्यताएँ उसे अत्यधिक प्रभावित करती हैं, क्योंकि संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रहती है। अतः प्रत्येक लेखक की रचनाओं में संस्कृति का आगमन स्वतः हो जाता है।

वास्तव में संस्कृति लेखक के 'जीवन-दर्शन' को नियंत्रित करने का कार्य करती है अन्यथा नितान्त वैयक्तिकता के कारण 'जीवन-दर्शन' समाज का अहित भी कर सकता है। जबकि संस्कृति समष्टि जीवन को सुखी, समृद्ध एवं सभ्य बनाने हेतु किए गए सामूहिक प्रयत्नों का परिणाम है। अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृति न केवल लेखक की जीवन-दृष्टि को प्रभावित करती है, प्रत्युत सांस्कृतिक उत्तरदायित्व के निर्वाह हेतु वह अपनी रचना को स्वांतः सुखाय के साथ-ही-साथ सर्वजन-हिताय भी बनाना चाहता है।

यहाँ एक और बात ध्यान देने योग्य है कि जो गली-सड़ी रूढ़ियाँ, परंपराएँ संस्कृति के नाम पर प्रचलित होती हैं, उन्हें मोहवश 'संस्कृति' कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता। चूँकि साहित्यकार समाज का सजग प्राणी होता है, अतः सत्य की निर्मम अनुसंधित्सा का पाथेय लेकर उसके द्वारा अपनी सांस्कृतिक परंपरा की परीक्षा की जाती है। उसमें जो रक्षणीय होता है उसकी वह रक्षा करता है तथा जो कुत्सित होता है उससे युद्ध करता है।²⁷ सारांश यह है कि जहाँ एक ओर संस्कृति 'जीवन-दर्शन' को प्रभावित करती है, वहीं दूसरी ओर लेखक अपनी विचारधारा से संस्कृति को परिष्कृत करने हेतु जनमत तैयार करता है।

साहित्य और जीवन-दर्शन

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। जीवन को छोड़कर साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः साहित्यकार अपनी सृजनात्मक शक्ति के उपादान जीवन की रंगस्थली से ही प्राप्त करता है। बाबू गुलाबराय के शब्दों- 'साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है, वरन् उसका ही मुखरित रूप है। मानव-जाति के विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में

प्रसारित होती है। साहित्य जीवन विटप का मधुमय सुमन है। वह जीवन का चरम विकास है, किंतु जीवन के बाहर उसका अस्तित्व नहीं।²⁸ अतः साहित्य जीवन से पूर्णतः संबद्ध है। इसीलिए साहित्य को जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम स्वीकार किया गया है।

साहित्य में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति दो प्रकार से हो सकती है—प्रथम शास्त्रीय और द्वितीय व्यावहारिक। शास्त्रीय के अंतर्गत लेखक दार्शनिक सिद्धांतों को ज्यों-का-त्यों अभिव्यक्त करता है जबकि व्यावहारिक दृष्टिकोण के अंतर्गत शास्त्रीय विचार लेखक की अपनी मान्यताओं के अनुरूप ढलकर अभिव्यंजित होते हैं। डॉ॰ रमेशचंद्र लावनिया के मतानुसार, 'सत्य तो यह है कि सभी देशों और युगों के साहित्य की यह विशिष्टता है कि वह तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। उन्हीं परिस्थितियों के अनुरूप ही प्रतिक्रिया स्वरूप एक जीवन-दृष्टि का निर्माण होता है और साहित्यकार उसी जीवन-दृष्टि को चाहे वह किसी विशिष्ट दर्शन-प्रणाली से प्राप्त हो, अथवा स्वतंत्र रूप से उसके द्वारा अर्जित की गई हो, अपने साहित्य में चित्रित करता है।'²⁹

स्पष्ट है कि साहित्य, जीवन और जीवन-दर्शन की त्रिवेणी परस्पर संबंधित है। अगर यह कहा जाए कि वास्तव में 'जीवन-दर्शन' ही वह उद्देश्य है, जिसे साहित्यकार अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करता है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी।

उपन्यास और जीवन-दर्शन

नवोदित गद्य विधाओं में उपन्यास मानव-जीवन का सर्वांगीण चित्रण प्रस्तुत करने वाली सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। उपन्यासकार न केवल कलाकार होता है, प्रत्युत जीवन का द्रष्टा भी होता है। अतः वह मानव-जीवन के क्रिया-कलापों, सुख-दुख, सफलताओं-विफलताओं से स्वतः ही संबंधित हो जाता है। इसी कारण लेखक जीवन की रंगभूमि से वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों को चित्रित करते हुए अपनी कल्पना को आकार प्रदान करता है। जीवन के साक्षात्कार के उपरांत उपन्यासकार जो 'जीवनानुभूति' प्राप्त करता है, उसे अपनी कल्पना से अनुरंजित कर उपन्यास में संयोजित कर देता है। यह 'जीवनानुभूति' ही लेखक का जीवन-दर्शन है, जो पाठक को कुछ-न-कुछ सोचने के लिए उद्वेलित करता है।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यासकार के पास उपन्यास में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए अधिक अवकाश रहता है। उपन्यास में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति दो प्रकार से हो सकती है—अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष। कतिपय विद्वानों ने इन्हें ही नाटकीय और विश्लेषणात्मक कहा है।³⁰

अप्रत्यक्ष पद्धति के अंतर्गत लेखक द्वारा पात्रों, घटनाओं और कथा-विन्यास की सृष्टि इस प्रकार की जाती है कि वे लेखकीय दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति का साधन बन जाते हैं। जबकि प्रत्यक्ष पद्धति के अंतर्गत वह स्वकथनों और पात्रों के कार्यों की आलोचना द्वारा अपनी जीवन-दृष्टि अभिव्यक्त करता है।

अब प्रश्न यह है कि लेखक उपन्यास में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति किस उद्देश्य की पूर्ति हेतु करता है? कई बार लेखक का उद्देश्य मनोरंजन मात्र ही होता है या फिर वह किसी विशिष्ट विचारधारा के प्रति समर्पित हो जाता है। प्रथम कोटि के उपन्यासों में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति न के बराबर होती है और अगर हो भी, तो उसे 'जीवन-दर्शन' की संज्ञा देना समीचीन

नहीं है। जबकि द्वितीय कोटि का प्रौढ़ उपन्यासकार, जो विशिष्ट विचारधारा को अपना लक्ष्य बनाकर चलता है, वह अपने जीवनानुभवों, संघर्षों और कठिनाइयों से जूझता हुआ, जीवन में गहरे पैठकर, उसके संबंध में अपनी दृष्टि बनाता है, जो उसकी भावुकता का आश्रय पाकर अनायास ही उसकी कृतियों में अभिव्यंजित हो जाती है।

हिंदी उपन्यास-साहित्य का जीवन-दर्शनपरक अध्ययन करने से पता चलता है कि आरंभिक दौर में जीवन-दर्शन की संयोजना नगण्य थी। तिलस्मी और जासूसी उपन्यास केवल मनोरंजन के लिए लिखे जाते थे। अतः उनमें जीवन-दृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रेमचंद युग में उपन्यासकारों ने आदर्शोन्मुख-यथार्थवाद को अपनाया। प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक और निराला प्रभृति उपन्यासकारों की जीवन-दृष्टि समाजोन्मुख रही, जबकि प्रेमचंद युग के अंत में जैनेंद्र ने 'परख' और 'सुनीता' नामक उपन्यासों का प्रणयन कर मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि को अपनाया, जो समाज की अपेक्षा व्यक्ति-मन को केंद्र में रखती है। आगे चलकर इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय भी इसी जीवन-दृष्टि को अपनाते हैं। इसके अतिरिक्त अस्तित्ववादी चेतना ने स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों की विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया। सारांश यह है कि बदलते परिवेश एवं युगधर्म के अनुरूप उपन्यासकारों का जीवन-दर्शन भी परिवर्तित हुआ है।

अगर समकालीन उपन्यास में जीवन-दर्शन की बात करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, गांधीवाद, अस्तित्ववाद और उत्तर आधुनिकता की मान्यताओं ने उपन्यासकारों की जीवन-दृष्टि को बहुत प्रभावित किया है। इन उपन्यासकारों की चिंता के प्रमुख विषय नारी-विमर्श, दलित-विमर्श एवं जाति-विमर्श हैं। समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ, मानव और अस्तित्व की प्रखर चेतना से निर्मित इनका जीवन-दर्शन मूलतः यथार्थवादी है।

समग्र रूप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास जीवन की समीक्षा है और उपन्यासकार जीवन का समीक्षक। कदाचित् इसीलिए जब हम किसी उपन्यास पर विचार करने के लिए उद्यत होते हैं, तो अनायास जीवन पर विचार होने लगता है। अतः 'जीवन-दर्शन' का अन्वेषण उपन्यासों की अलोचना और विश्लेषण के लिए अनिवार्य है, क्योंकि वास्तव में उपन्यास जीवन का ही पर्याय है।

संदर्भ

1. उद्धृत, लक्ष्मीकांत सिन्हा, हिंदी उपन्यास का उद्भव और विकास, ग्रंथभारती प्रकाशन, कानपुर, 1966, पृ० 62
2. वामन शिवराम आपटे (संपा०), संस्कृत-हिंदी कोश, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ० 407
3. कालिकाप्रसाद (संपा०), बृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2030, पृ० 425
4. रामचंद्र वर्मा (संपा०), मानक हिंदी कोश (दूसरा खंड), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, पृ० 372
5. रामचंद्र वर्मा (संपा०), लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ० 330
6. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1957, पृ० 211

7. लक्ष्मीकांत सिन्हा, हिंदी उपन्यास-साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० 63
8. जैनंद्रकुमार, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1972 पृ० 38
9. विष्णु प्रभाकर, अर्द्धनारीश्वर, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ० 185
10. डॉ० नगेंद्र, मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खंड), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965, पृ० 197
11. वामन शिवराम आप्टे (संपा०), संस्कृत-हिंदी कोश, पृ० 450
12. कालिकाप्रसाद (संपा०), बृहत् हिंदी कोश, पृ० 509
13. आचार्य रामचंद्र वर्मा (संपा०), लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, पृ० 419
14. रामचंद्र वर्मा (संपा०), मानक हिंदी कोश (तीसरा खंड), पृ० 33
15. नंदकिशोर देवराज (संपा०), भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1978, पृ० 23
16. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003, पृ० 75
17. हरेंद्रप्रसाद सिन्हा (संपा०), भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2003, पृ० 1
18. डॉ० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखंभा प्रकाशन, 1979, पृ० 4
19. विलियम अंस्ट्रैट हाकिंग, दर्शन के प्रकार, रमेशचंद्र (अनु०) राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1974, पृ० 5
20. डॉ० आदर्श सक्सेना, हिंदी के आंचलिक उपन्यास और शिल्पविधि, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, 1971, पृ० 235
21. डॉ० शशिभूषण सिंहल, हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1970, पृ० 16
22. नंदकिशोर गोभिल (अनु०), भारतीय दर्शन, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971, पृ० 770
23. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिंदी कोश, पृ० 812
24. डॉ० हुकुमचंद राजपाल, समकालीन कविता में मानवमूल्य, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ० 17
25. डॉ० रमेशचंद्र लवानिया, हिंदी कहानी में जीवनमूल्य, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, 1970, पृ० 268
26. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ० 69
27. अमृतराय, सहचिंतन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978, पृ० 149
28. बाबू गुलाबराय, सिद्धांत और अध्ययन, पृ० 64
29. डॉ० रमेशचंद्र लवानिया, हिंदी कहानी में जीवन-मूल्य, पृ० 24
30. डॉ० आदर्श सक्सेना, हिंदी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, पृ० 231

गाँव कालोमाजरा
डाक जांसला, तह० राजपुरा
ज़िला पटियाला 140601
मो० 98726-94866

क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' में नारी-जीवन

डॉ० विद्या चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर,

दूरवर्ती शिक्षा निदेशालय,

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

निःसंदेह, भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्यंत उच्च रहा है। मनुस्मृति¹ में तो उसे देवतुल्य ही कहा गया है। उपनिषदों में सृष्टि की संपूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से ही मानी गई है।² भारतीय वाङ्मय में नारी को पुरुष के समकक्ष रखा गया है, तभी उसे अर्धांगिनी कहा गया है। प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी को जो गौरवशाली स्थान मिला। मध्ययुग तक आते-आते वह उसकी पराधीनता में परिवर्तित हो गया। पुनः आधुनिककाल में उसके गौरव को लौटाने का कार्य विभिन्न हिंदी साहित्यकारों ने किया, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, निराला और जयशंकर प्रसाद प्रमुख हैं। उससे भी आगे बढ़कर आज नारी-विमर्श एक ज्वलंत विषय बन गया है।

साहित्य हमारे समाज का दर्पण ही हुआ करता है, अतः जब हम किसी साहित्यकार की रचना पढ़ते हैं तो उसके पात्र उस समाज की दशा को ही जीवंत करते हैं। इसी क्रम में क्षमा कौल का उपन्यास 'दर्दपुर' अपने भीतर नारी-जीवन के विभिन्न रूपों को साकार करता है। यह उपन्यास धार्मिक उन्माद और आतंक से विखंडित कश्मीर की संस्कृति और समाज की व्यथा-कथा है।

उपन्यास की नायिका सुधा अपनी ही धरती से निर्वासित है, पर फिर भी वह अपनी धरती की दूसरी नारियों की मुक्ति का सतत प्रयास करती है। निर्वासित कश्मीरी हिंदू सुधा एक विशेष योजना के अंतर्गत कश्मीर में रहने वाली मुस्लिम स्त्रियों के दुःख-दर्द के साथ गहन सहानुभूति रखते हुए अपने मिशन की सफलता के लिए प्रयासरत रहती है। वह निर्वासन का दुःख भोगते हुए भी वहाँ की स्त्रियों से कोई दुराव नहीं रखती, भले ही वह किसी धर्म की हों और फिर नारी भले ही किसी धर्म से संबंध रखती हो, मूल रूप में वह पुत्री, बहन, पत्नी, माँ और सखी होती है। यही कारण है कि 'दर्दपुर' की आयशा जब सुधा की माँ को अपने पति और सास के अत्याचारों की कथा बतला रही थी तो सुधा अपनी बहन दीप्ति से कहती है—“यह भी खूब है यार, जब सास के अत्याचार हों, पति के अत्याचार हों, धर्म के भेद मिटते हैं, हैं न?”³ ऐसी परिस्थितियों में नारी की विवशता यही है कि वह अत्याचार सहे, अपने भाग्य का दोष समझकर या फिर कुछ समय पश्चात् सब ठीक हो जाएगा की सांत्वना अपने मन को देकर। ठीक कहा सुधा की माँ ने “रोओ मत आयशा, इसे झेलना है। जब तक सास है, तब तक तो कम से कम।”⁴

नारी ही नारी की शत्रु बन जाती है। आयशा की सास अपने पुत्र को आयशा के विरुद्ध

भड़काती है और आयशा को पति की उपेक्षा झेलने के लिए विवश करती है। आयशा जब अपना दुःख पड़ोस में रहनेवाली सुधा की माँ से कहती है तो सुधा की माँ उसे यही राय देती है—“तुम खुद उसके पास नहीं जातीं, तुम प्रणय-निवेदन कर सकती हो। वह खुश हो जाएगा। माँ ने जो गुस्सा उसके भीतर तुम्हारे ख़िलाफ़ भरा है, भूल जाएगा, ज़रा नाचना पड़ता है औरत को।”⁵ पत्नी के रूप में नारी सदैव ही पुरुष पर निर्भर है।

हमारा समाज पुरुषप्रधान समाज है। यद्यपि इसका भी अपवाद है, आज के समय में बहुत से पुरुष नारी द्वारा शोषित हैं, परंतु जहाँ कहीं परिवारों के नाम दर्ज करने होते हैं तो पुरुष की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। ‘दर्दपुर’ में ऐसी ही एक नारी पात्र हुरत है। “एक बेहद हसीन औरत। एक मर्द की मारी हुई और हँसाने में अव्वल, हँसमुख।” श्रीनगर शहर को साफ़ रखने के लिए सरकार ने जब कूड़ेदान बँटवाने प्रारंभ किए तो हुरत को कई दिन प्रतीक्षा करने के पश्चात् पता चला कि घर में मर्द मालिक नहीं था जिसका नाम रजिस्टर में चढ़ाकर कूड़ेदान दिया जाता। बस यही अड़चन थी। इस व्यवस्था पर हुरत हँसकर कहती है—“जिस कूड़े सरीखे मर्द को मैं कूड़ेदान में कब की फेंक चुकी हूँ, उसी मर्द की ज़रूरत आज मुझे महज उस कूड़ेदान के लिए पड़ रही है, सुभान अल्लाह, जा भई जा, मैं कूड़ेदान बाज़ार से ख़रीदूँगी... तू मर्दोंवालिओं में बाँट अपने कूड़ेदान और चढ़ा अपनी रजिस्टर पर नाम।”⁷

अकेली औरत की मुसीबतें उस समय और भी बढ़ जाती हैं जहाँ सांप्रदायिक तनाव हो। सांप्रदायिक तनाव न भी हो तब भी स्त्री देह तो स्त्री देह ही है, जिसे इस सृष्टि में ससम्मान बचा ले जाना ही उसके लिए चुनौती बन गई है। लेखिका ने सुदूर कश्मीर के मीड़ापुर गाँव की बेवाओं की दशा को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—“हमीदपुर गाँव के इन पुरुषों की मीड़ापुर की बेवाओं के बारे में वाक्यों की ध्वनि कुल मिलाकर उसके भीतर यही निकली थी, कि ये कमबख्त बेवाएँ किसी काम की नहीं, दुनिया के लिए। कोई नाम नहीं उनका मर्दों के बग़ैर। कितनी मर्दों के काम आती होंगी? क्या-क्या बीतती होगी उन पर? क्योंकि वे शरीर हैं। बेवा शरीर। यतीम शरीर। स्त्री शरीर। युद्ध के शिकार शरीर। हर युद्ध का परिणाम होता है ये ही भीड़। ये शरीर-भीड़ जिनको पुरुष कहते हैं कि किसी काम की नहीं है यह भीड़ और, दूषित, शरीर, भीड़। निरक्षर, शरीर भीड़। स्त्रीषु दुष्टासु वाष्ण्ये। जायते वर्णसंकरः। कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे रोक सकती हैं ये शरीरों की टुकड़ियाँ वर्णसंकरों को उगने से। और स्त्री अपने शरीर में फँस जाती है, जैसे फँस जाती है मकड़ी अपने जाले में, ठीक उसी तरह।”⁸

स्त्री को संकट के समय अपनी जान और इज़्जत बचा लेने के पश्चात् भी अग्निपरीक्षा से गुज़रना पड़ता है। “बारामूला के कैंप से वापस आ गई थीं स्त्रियाँ। स्त्रियाँ अपने ही समाज और पतियों से भयभीत थीं। सब-की-सब अपने मन से कह रही थीं विश्वसनीयता के संवाद मानो उन पर उनका अपना ही दूसरा मन संदेह कर रहा हो और वे जोरदार शब्दशक्ति का प्रयोग कर समझा रही हों, बंधु मैं पवित्र हूँ। अग्निपरीक्षा लो चाहो तो। देखो सीता की तरह बेदाग़ न निकली तो।”⁹ कैंप की स्त्रियाँ मुक्त हुईं, घर लौट आईं, मगर एक अनिश्चय, भय, संदेह और अनिश्चित भविष्य के साथ। यह नारी की विडंबना नहीं तो और क्या है?

यह अनुरुत्तरित प्रश्न और संभवतः स्त्री की सुरक्षा के उत्तरदायित्व को वहन करने की तत्परता में कमी के कारण ही भारतीय समाज में पुत्री के जन्म पर उल्लास मंद पड़ जाता है।

सुधा की मौसी के घर जब दूसरी बेटी का जन्म होता है तो सुधा की माँ नवजात बच्ची की बड़ी बहन फूला को लताड़ती हैं—“इतनी खुश क्यों हो? अपने पीछे भाई लाती, नहीं ला सकती थी क्या? बेटी हुई है वह भी दूसरी, हे भगवान! हमारे लिए बेटा नहीं तेरे पास?”¹⁰ सुधा स्वयं अपने माता-पिता की तीसरी बेटी है। जब उसकी माँ आयशा के फिरन गंदे करने पर सुधा और दीप्ति को पीट-पीट कर मार डालने को होती है तो अपने उद्गार कुछ इस प्रकार व्यक्त करती हैं—“सच बोलो-वक्रियो! नहीं तो मार डालूँगी। आज नहीं बचोगी, सच बोलोगी तो बचोगी, वैसे भी मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं।”¹¹ स्वाभाविक ही इस प्रकार का बचपन भोगती बच्चियाँ अपने मन पर जो प्रभाव लेकर बड़ी होंगी वह कहीं-न-कहीं अपने अस्तित्व की पहचान की कसक के साथ ही जिएँगी। यद्यपि सुधा की माँ बेटियों को बहुत दुलार से नहीं रखती थी, तथापि वह ‘नियमों के पाबंद जीवन जीती। मानो भगवान पतंजलि के नियमों को उसने विशद और विस्तृत रूप से आत्मसात किया हो। वह अद्भुत शुचिता, वह अद्भुत समयबद्धता। मंदिर जाने की। शिवजी पर जल चढ़ाने की। स्नान की। संध्या की। भजन-श्रवण की। सारा मुहल्ला उसकी कद्र करता था।”¹²

‘दर्दपुर’ उपन्यास में जहाँ शोषित और अनुशासित नारी पात्र हैं, वहाँ शोषक नारी-पात्र भी हैं। आयशा की सास, जो बहू को उसके पति से दूर रखने में विश्वास रखती है, के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ भी समाज के लिए नकारात्मक प्रवृत्ति रखती हैं—‘वह मुहल्ले की आँखों में एक बेहद चालाक और मक्कार और अधर्मप्रवृत्त स्त्री थी। जो बड़े लोगों से अपने सौंदर्य के बल पर अपने काम निकलवाने में माहिर थी।’¹³

इसके अतिरिक्त कुछ शिक्षित एवं समाजसेवी नारी-पात्र हैं, जो स्त्री की दशा पर शोध करती हैं जैसे सुमोना, गुलशन आरा इत्यादि। सुधा क्योंकि निर्वासित कश्मीरी है, अतः वह ऊपरी शोध की अपेक्षा वास्तविक कश्मीरी स्त्री की दशा व्यक्त करती है जो न किसी शोध का विषय है और न सुधार का। वह कहती है—“सुमोना! कश्मीर के बारे में एक आश्चर्यजनक बात कहूँ, यहाँ (कश्मीर में) स्त्री को हमेशा पृष्ठभूमि से धकेला गया। पुरुष के अपने अहंकार के कारण, इस्लामी उत्पीड़न के कारण, स्वयं इस्लाम के कारण, पर जितना धकेला गया... वह उतनी श्रेष्ठतम भी बनती गयी जैसे अरणिमाल, जैसे हब्बाखातून। ललद्यद की बात ही कुछ और है, वह विश्व की सिरमौर ठहरी। यह शक्तिपीठ है भई। यहाँ की स्त्री-शक्ति है।”¹⁴

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ‘दर्दपुर’ उपन्यास में समाज के सभी प्रकार के नारी-पात्र प्रतिबिम्बित हैं। अधिकतर शोषित हैं, तो भी उनके मध्य कई अमूल्य रत्न की तरह समाज में नारियों को नई मशाल दिखाने का कार्य करती दिखलाई पड़ती हैं सुधा के रूप में।

संदर्भ :

1. मनुस्मृति, 3, 56-57
2. बृहदारण्यकोपनिषद्, 14, 3
3. क्षमा कौल, दर्दपुर, पहला संस्करण, 2004, पृ० 39
4. वही, पृ० 40
5. वही, पृ० 40
6. वही, पृ० 19

7. वही, पृ० 20
8. वही, पृ० 420
9. वही, पृ० 311
10. वही, पृ० 307
11. वही, पृ० 59
12. वही, पृ० 82
13. वही, पृ० 82
14. वही, पृ० 33

क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' में विस्थापन का दर्द

डॉ० विद्या चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दूरवर्ती शिक्षा निदेशालय,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

इतिहास और समय साक्षी है कि समय-समय पर मानव ने अन्य प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित त्रासदी के साथ-साथ विस्थापन के त्रासद सत्य को भी झेला है। क्षमा कौल द्वारा रचित उपन्यास 'दर्दपुर' कश्मीरी हिंदुओं के निर्वासन और विस्थापन को उजागर करता हिंदी का पहला उपन्यास है।

विस्थापन साहित्य के अंतर्गत यद्यपि विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी लेखनी उठाई है जिनमें प्रमुख हैं—दीनानाथ नादिम, मोतीलाल साकी, संतोषी, पृथ्वीनाथ-कारदार, कुंदनलाल चौधरी, ललित कौल, महाराजकृष्ण भरत, क्षमा कौल, प्रेमनाथ शरद, वेद राही, अरविंद गीगू तथा विद्यारत्न आसी। क्षमा कौल कृत उपन्यास 'दर्दपुर' इस कड़ी में मील का पत्थर साबित हुआ है।

उपन्यास की नायिका सुधा निर्वासित कश्मीरी हिंदू है, जो आतंक और धार्मिक उन्माद द्वारा विखंडित कश्मीर की संस्कृति और समाज को गहन संवेदना के साथ उजागर करती है। लेखिका ने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में विस्थापन और निर्वासन से कश्मीर में जो मर्मांतक और दारुण वातावरण बना, उसे किसी चित्रकार की तरह उकेरा है। यही कारण है कि उपन्यास की निर्वासित नायिका सुधा वर्षों बाद हालात ठीक होने पर जब किसी कांफ्रेंस के लिए मातृभूमि कश्मीर जाती है तो सभी परिचित संघर्ष से उद्भूत उसके चेहरे के तपोतेज' से चकित रह जाते हैं।

नायिका सुधा अपने भीतर एक ज्वालामुखी लिए है। वह कहती है—गुरप्रीत को पता न लगे उसके भीतर के ज्वालामुखी के बाहर फटने का। दरअसल, ज्वालामुखी दो बार फटते होंगे। एक जब वे सिर्फ स्वयं जानते हैं कि वे फट रहे हैं और दूसरा जब वे फटते हैं और दुनिया उसकी चपेट में आती है। उसका समुदाय अभी पहला फटना ही फट रहा है।¹² यह एक बहुत लंबी दर्दनाक दास्तान है।¹³

आज सुधा 'घर में नहीं एक होटल में... यानी गेस्टहाउस में। जहाँ उसे होटल में नहीं रहना चाहिए वहाँ वह होटल में है। जहाँ उसके पिता के दो-दो घर हैं, वहाँ वह होटल में है। जहाँ पति का घर है, जहाँ उसके जन्म-जन्मांतरो के पड़ोसी और पड़ोस की माँ-सी माताएँ हैं, वहाँ वह होटल में है। जहाँ उसकी धरती है, आकाश है, वहाँ वह होटल में है।'¹⁴

उसे प्राणों को सुखा देने वाला वह क्षण याद हो आता है जब “दीवारों पर इशतहार चिपकाए कि पंद्रह से पचहत्तर की उम्र के भट्टों को फेहरिस्त बन चुकी है। पुरुष जिबह होंगे और स्त्रियों को हम भोगेंगे।”⁵ पड़ोसी कहने लगे “तुम्हें जाना चाहिए। कुछ पता नहीं किस क्षण क्या हो, फिर न कहना कि ख़बर न दी... समझे... पचहत्तर प्रतिशत भट्ट चले गए, क्यों यहाँ नाहक मरने के लिए रुके बैठे हो।”⁶ परिणाम वही—निर्वासन। वे सब “रात्रि के अंतिम प्रहर के अंधकार में बिना आवाज किए भाग गए थे। और जब टूरिस्ट सेंटर पहुँच गए थे तो विश्वास नहीं हुआ था। फिर जब बस की टिकटें मिली थीं, तो जान में जान आई थी। जब बस चल पड़ी थी तो कुछ और गारंटी मानो मिल गई थी जिंदगी की।”⁷ ‘वह समझ रही है कि भाग रहे समुदाय में सभी का यही हाल है। कोई किसी से बात ही नहीं कर रहा। सब पस्त हैं। स्वयं को मरे हुए जीवित मान रहे हैं। सबको पता है इस भागने वाली भीड़ के इर्द-गिर्द मुजाहिद मँडरा रहे हैं, गिद्धों की माफ़िक।”⁸

सुधा की माँ भट्टिनी की मनोदशा किसी दुखती रग को मात्र छूना नहीं बल्कि उसे पकड़कर न छोड़ने जैसी-सी है—“मैंने इस प्यारे घर को बनाने के बाद सोचा था कि उसकी ड्योढ़ी से मेरी अर्थी जाएगी, और तभी चिता पर लेटूँगी, घर मुझे एक भव्य विदा कहेगा। मगर हुआ उल्टा, मेरे मन के इस घर से वह घर निकला, अर्थी में सोया, और असमय भस्म हुआ, वह मात्र घर ही नहीं, मेरी आत्मा का निवास था, मेरे देवता का निवास था।”⁹ उसका सर्वस्व ही मानो उसके हाथों से सरक रहा था।

घर तो घर अपने ही घर का सामान निर्वासन के सात माह बाद सुधा के भाई को अपने जीवन को दाँव पर लगाकर इस प्रकार उठाना पड़ा। मानो किसी का सामान जो हाथ लगे लूटने की कोशिश कर रहा हो—“मैं नाभि के मुख से पूरे समय तक इंद्राक्षी जपता रहा था। हनुमानजी की मूर्ति जबरदस्ती आँखों में लाकर ध्यान कर रहा था। पागलों की तरह अपने ही सामान पर झपट रहा था मानो किसी का सामान जो हाथ-लगे लूटने की कोशिश करनी हो। अपने उन दोस्तों को अधबंधी गठरियाँ पकड़ा-पकड़ाकर कह रहा था, ट्रक में डाल आओ, फटाफट मजीद।”¹⁰ एक आतंकित मनोदशा जो निश्चय ही खून को सुखा देने के लिए पर्याप्त है।

सुधा अपने उस छुटे हुए घर को किस प्रकार देख पाएगी? “फिर एक नज़र उसने अपने घर पर डाली। एक चोर-नज़र। और देखा कि अब तक उसके घर का चेहरा बदल उठा था, वह उठी। साड़ी सँभाली। उसमें पराजय-बोध है। उसमें असीम दुःख है, उसमें छटपटाहट है। वह सूरज की तरह असहाय है, निराधार है। निराहार है, वह जीवन के एक-एक क्षण के लिए बृहद मूल्य दे चुकी है।”¹¹ एक पूरा जीवन उसके सामने खड़ा है—“कितनी उलझी हुई गुत्थियाँ, कितनी एक दूसरे पर चढ़ी, भीड़ हुई गहन, गंभीर, जटिल स्मृतियाँ। इस आँगन में मैं खेलती हूँ। इस सड़क पर सैकड़ों बार चली हूँ। यहाँ से घर और घर से यहाँ प्रायः आई हूँ। अब यही रास्ता, यही घर मुझ से शून्य है। मेरे उन सबसे शून्य है, जिन्हें मैं अपना ताऊ, सारिका, ताई, माँ, पता नहीं क्या-क्या, अपना ईश्वर मानती हूँ। यह संसार मुझसे आपूरित था। अब मेरे प्रेतों से ओत-प्रोत है।”¹² सुधा को सूने घर शहर के चेहरे पर दाग़ दिखते हैं—दाग़ हैं हमारे सूने घर उनकी दैनिक, दिन रात की जिंदगी में, खाते हैं उनके जिगर निकालकर हमारे निर्जन घरों के प्रेत अब, चैन नहीं है उनके जीवन

में...।¹³ सुधा का आत्मालाप उसके हृदय की गहनतम खाइयों से सतह पर आ जाता है—“हमारे घर यहाँ की गुंजान बस्तियों में बोलते-से लगते हैं, गंधाते-से हैं, दूर से दिखाई देते हैं। बोलते हैं ये गुँगे घर। शहर को मरे हुए शरीर की तरह प्रस्तुत करते हैं ये घर।”¹⁴

न केवल सुधा और अन्य अनेक जीते-जागते मानव अपने भीतर विस्थापन के दर्द को समाए बैठे हैं। इतनी भयावह स्मृतियों का विष यहाँ हर जीवित ने अपने मन से लेकर आकंट रोके रखा है। पूरा सुनाते हैं, फिर सुनाते हैं, भूल जाते हैं कि सुना चुके हैं, कई बार, फिर सुनाते हैं... यह ख़ाली नहीं होता।¹⁵ यही कारण है कि लसकाक कबाइली लूट की बात सैकड़ों बार दोहराकर फिर इस मौके पर भी बताता है। ‘शायद उसके पास जीवन का ले-देकर इतना ही लुब्बो-लुबाब था।’¹⁶

हज़ारों निर्वासितों के कश्मीर की धरती छोड़ने पर जो बददुआएँ¹⁷ हवा में लहराईं उनसे ‘काली बर्फ गिरी। वितस्ता सूख गई। जल के नल जो अमृत-सदृश निर्झरों के जल से चौबीसों घंटे बहा करते थे, सूख गए। वितस्ता का तल दिख रहा है, लोग चलकर उसे पार करते हैं, बच्चे उसके बीच में उतरकर क्रिकेट या गुल्ली-डंडा खेलते हैं।’¹⁸

भुक्त भोगी मन इस दर्द से न केवल टूटता है, बल्कि वह इस दर्द को आत्मसात् कर स्पंज की तरह भारी हो उठता है, जो न रखे बनता है, न निचोड़े बनता है। और तो और इस निर्वासन के दर्द की पराकाष्ठा तब हो जाती है, जब वह व्यक्ति को निम्नस्तर पर खींच लाती है। भट्ट कहते हैं—‘ए भट्टो, भाड़ में जाने दो ईश्वर-वीश्वर। अपना जो दम, जो दिन निकलता है, निकालो चुपचाप। आँख मूँदकर। धर्म-वर्म कुछ नहीं होता। यहाँ तक कि समुदाय, समाज भी कुछ नहीं होता है, कोई भी ऐसी चीज़ नहीं होती है... क्योंकि हम जो भी हैं... बचे-खुचे हैं।’¹⁹ वह अपने जीवन को बचाने के लिए इस स्तर पर आ जाते हैं कि सच ही उन्हें लगता है—“एक खत्म हुई जात का ईश्वर मात्र रोटी में ही सिमट जाता है। बाकी सब-कुछ बंद और ख़त्म। रोटी ही मोक्ष। रोटी ही धर्म, अर्थ, काम, अन्य संभाव्यता, रोटी सब-कुछ, यानी कि भात ही।”²⁰

आत्मसम्मान के इस निम्नतम स्तर पर पहुँच चुका जीवन से चिपके रहनेवाला त्रस्त जीव केवल गिड़गिड़ा सकता है, रेंग सकता है।²¹ असहायावस्था में सुधा को लगता है ‘मानो वह अचानक कीड़े में बदल चुकी है। जैसे लगे हैं, उसे कई पीड़ित परिवारों के सदस्य जम्मू के तंबुओं में मात्र मानवीय आकार की लकीरों से लैस कीड़ों में बदल चुके हैं, सुधा सोचती है कि उसमें वे मानवीय लकीरें भी नहीं शेष। एक संपूर्ण कीड़ा। और यह कीड़ा कमाल करता है। मनुष्य की तरह सोचता है। मनुष्य होने से थक नहीं गया है निमिष भी।’²²

विस्थापित कैंपों में लगता है कश्मीर की आत्मा बसती है। टूटकर आध्यात्मिकता के लिए एक प्रसिद्ध स्थल है, जिसे देखकर सुधा किस शिद्दत से भीतर-भीतर लबरेज हो जाती है। उसे याद हो आती है उसकी बुआ जिगरी जो टूटकर में माँ बनी है, सास बनी है, दादी बनी है और नानी बनते-बनते विधवा बनी और फिर एक शरणार्थी बनी। उसे लगा जैसे उसकी बुआ अचानक महारानी से नौकरानी बनी है। जम्मू के एक कैंप में वह मधुमेह की, विस्मृति की मानसिक रोगों की, चिड़चिड़ापन की, हड्डियों के रोग की शिकार हो गई है।²³ यही अब उनके

जीवन का सच है। विगत एक सपना है और भविष्य अनजाना है। लसकाक प्रायः विलाप करता है—“बच्चो। मैं तुम्हें गरीबी न देता। मैं भी था किसी शहंशाह का बेटा। मगर काश...। तुम कुछ और होते अगर...”²⁴

इस प्रकार क्षमा कौल ने अपने उपन्यास ‘दर्दपुर’ में विस्थापन के दर्द को उस जीवंतता के साथ अभिव्यक्त किया है जो इतिहास में दस्तावेज़ की तरह सुरक्षित रहेगा और मानव-मात्र को नसीहत देता रहेगा ताकि वह अपनी संतानों को विरासत में दर्द नहीं मानवीय मूल्य दे।

संदर्भ

1. क्षमा कौल, दर्दपुर, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, पहला संस्करण, 2004, पृ० 74
2. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 78
3. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 79
4. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 72
5. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 85
6. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 85
7. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 83
8. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 84
9. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 128
10. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 138
11. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 91
12. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 76
13. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 90
14. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 99-100
15. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 50
16. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 56
17. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 146
18. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 133
19. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 339
20. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 342
21. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, पृ० 208
22. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 34
23. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 333
24. क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 55

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों के उपन्यासों में सामाजिक चित्रण श्रीमती पुष्पा

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अर्थात् सन् 1981 से सन् 2000 के मध्य लिखे गए प्रमुख उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक जीवन-दर्शन का चित्रण परंपरा से हटकर नए रूप में हुआ है। इस कालखंड में प्रमुख रूप से राजी सेठ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, वीरेंद्र सक्सेना, संजीव, अमरकांत, निर्मल वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, मनोहर श्याम जोशी, काशीनाथ सिंह, कमलेश्वर, नासिरा शर्मा, गिरिराज किशोर आदि अनेक उपन्यासकारों की कृतियाँ प्रकाश में आईं। प्रायः सभी ने अपने समय के जीवन-दर्शन और परिवेश को अपने कथानकों में भरपूर स्थान दिया है। कुछ में क्षेत्र विशेष और कुछ में राजनीतिक उठा-पटक में मानवीय मूल्यों को अपनाया है।

महिला लेखिकाओं में समाज में व्याप्त नारी के विभिन्न रूपों को अपनाया है। साथ ही अपनी सामाजिक स्थिति को बेबाकी से चित्रित किया है। राजी सेठ ने तत्सम उपन्यास में नारी के पुनर्विवाह के संघर्षों और सामाजिक मान-अपमान को केंद्र में रखा है। उपन्यास की नायिका वसुधा परंपरागत संस्कार से पोषित और अपनी वेदनात्मक मानसिकता के बीच संघर्ष करती है। अपने दिवंगत पति निखिल के साथ बिताए हुए सुनहरे पल उसके रोम-रोम में व्याप्त हैं, जिन्हें वह सरलता से भुला नहीं पा रही है। उससे वसुधा का मनोवैज्ञानिक संबंध दृढ़ता के साथ बना है। उसकी स्मृतियाँ और प्रेम सदा उसे पीड़ा पहुँचाते हैं। मानसिक द्वंद्व को झेलती हुई वसुधा का ऊहापोह ही उसकी नियति बन गई है।

मनोहरश्याम जोशी का 'कुरु कुरु स्वाहा' उपन्यास व्यंग्य-विधा के साथ प्रकाशित हुआ। इसमें नायक का तिहरा चरित्र बताया गया है, जिसे उपन्यासकार ने 'मैं' बनाकर प्रस्तुत किया है। मैं वकील खुद एक 'श्री बैड डमिटरी' है, जिसमें भीतर साहब, मैं ही नहीं हूँ इस काया में, जिसे मनोहरश्याम जोशी वल्द प्रेमवल्लभ जोशी, मरहूम, मौजा गली अल्मोड़ा, हाल मुकाम दिल्ली कहा जाता है, दो और जमूरे घुसे हुए हैं। एक हैं जोशी जी-लेखक हैं, इलियट टाइप। मैं तो साहब रोजी-रोज़ी के लिए अनुवाद करता हूँ कभी-कभी। जोशी जी इंडियन जलां या इंडियन फलां बन जाने के चक्कर में सतत अनुवादक हैं। दूसरे हैं मनोहर जोशीजी। बोली भाषा में वह मनोहर इंफेटाइल हैं। पूरे पौने पाँच साल तक अपनी माँ का दूध पीते रहे साब। कर्मकांडियों के परिवार में जन्म लेने के कारण इन्हें खुशफ़हमी यह रही है कि नैमिषारण्य के स्नातक हैं। बचपन में ही अनाथ हो जाने के बाद इनका गोया ऋषियों-मुनियों ने ही पालन-पोषण किया।'

जोशीजी का दूसरा उपन्यास—‘नेता जी कहिन’ हैं। नेताजी के रूप में एक ऐसे पात्र को लेखक ने अवतरित किया है, जो कि सर्वज्ञ है, क्योंकि वह अपनी और दूसरों की गंदगी को समान भाव से बखानता है। समदर्शी हैं, क्योंकि उसे स्वयं में और विरोधियों में कोई भेद-भाव दिखाई नहीं पड़ता, वह सभी को कहीं-न-कहीं नंगा देख चुका है। ऐसा धारा प्रवाह प्रवचन चलता है उसका कि कोई भी उसकी मार से बच नहीं पाता। भारतीय राजनीति का असली चेहरा कितना घिनौना है, ‘अज्ञानी लोग’ इसका अनुमान भी नहीं कर सकते। इसका एक कथन है—‘अरे तीस करोड़ लोगों की भाषा हय हिंदी, अउर दस बारह करोड़ अउर भी हय, जो हिंदी समझता है, फिर भी आपका अमर साहित्य ससुर सरकारी ख़रीद के लिए मरा जा रहा है। प्रेमचंद, हज़ारीप्रसाद, मुक्तिबोध इनकी फ़ाइब स्टार जयंती आपको करनी हो, ग्रंथावली का चक्करचलाना हो तो आइएगा सरकार की सरन में अउर सरकार का मतलब ही नेता हय।’²

मैत्रयी पुष्पा का इदन्नमम्, चाक, झूला नं० 2, और अल्मा कबूतरी सदी के अंतिम दोनों दशक में प्रकाशित हुए। इदन्नमम् बुंदेलखंडी जीवन के प्रामाणिक और अंतरंग अनुभव, पहाड़ी अंचल की धरती और बीहड़ पहाड़ के जीवन के सामाजिक यथार्थ तथा गहरी मानवीय संवेदना से संपन्न है। चाक और झूला नट में खेती किसानों से जुड़े जाटों का ही चित्रण है। इसमें जाट समाज की एक पारिवारिक स्थिति है, जिसमें सास-बहू, माँ-बेटे, पति-पत्नी और देवर-भाभी के संबंधों की कहानी एक खास अंदाज़ में कही गई है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह की झीनी-झीनी बीनी चदरिया, समरशेष, जहरबाद, दंतकथा और मुखड़ा क्या देखें, इन्हीं दो दशकों में प्रकाशित हुए। झीनी-झीनी बीनी चदरिया में धार्मिक संकीर्णता और संप्रदायवाद का जमकर विरोध किया गया है जहरबाद में गिरजापुर अंचल के एक गाँव में रहने वाले निम्नवर्गीय मुसलमान परिवार की जिंदगी का यथार्थ पर बेबाक चित्रण मिलता है। ‘मुखड़ा क्या देखें’ में भी निम्नवर्गीय अथवा दलित मुसलमान परिवार की कहानी प्रस्तुत की गई है। जो जमींदार के अत्याचार के कारण गाँव छोड़कर चला जाता है पर कुछ समय बाद वापस लौट आने को विवश हो जाता है। उपन्यासकार ने गाँव में होने वाले दुखद परिवर्तनों में विशेषकर सांप्रदायिक दुर्भाव में वृद्धि का चित्रण किया है।

उपन्यासकार संजीव का किशनगढ़ की अहेरी, सर्कस, सावधान! नीचे आग है इसी काल दशक में प्रकाशित हुए। किशनगढ़ की अहेरी अवध की सामंती अहेर वृत्ति पर और सर्कस, सर्कस-कर्मियों के जीवन पर आधारित कृतियाँ हैं, किंतु सावधान! नीचे आग है में झरिया क्षेत्र की दुर्घटना को केंद्र में रखकर कोयला माफ़ियाओं, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वर्धी, शोषक एवं क्रूर रूप का स्पष्ट चित्रण किया गया है। खान के अंदर श्रमिकों और कारीगरों के भयावह त्रासद जीवन का सच्चा ख़ाका खींचा गया है। संभवतः कोयला खदानों में व्याप्त मानवीय जीवन का यथार्थ रूप अन्य किसी भी उपन्यास में सहज मिल पाना कठिन है। इसी काल दशक में संजीव का धार, पाँव तले की दूब और जंगल जहाँ शुरू होता है। झारखंड और बिहार की घने अंचलों का सच दिखाने का प्रयास है। वहाँ के जनसमाज की भीषण परिस्थितियों, विवशताओं और संकीर्णताओं का सत्य उद्घाटित करता है। धार उपन्यास में नारी-पात्र मैना के रूप में एक दलित नारी अपने पूरे स्वाभिमान और संघर्ष के साथ आती है। मैना के चरित्र में दलित नारी की पीड़ा और मानवीय संवेदना को सही ढंग से चरितार्थ किया गया है।

नवें दशक में प्रकाशित पंकज विष्ट का उपन्यास उस चिड़िया का नाम और दरवाजा पाठकों के समक्ष एक नया जीवन उद्घाटित करते हुए आया। वस्तुतः लेखकीय जीवन का सही लेखा-जोखा इसमें मिलता है। इसमें साहित्य-लेखन को मौलिक सुख-सुविधाओं का साधन मानने वाली लेखकीय मानसिकता का चित्रण किया गया है, किंतु इस मानसिकता की विडंबना यह है कि वह साहित्यिक मूल्यों से प्रतिबद्ध हाने का भ्रम भी पालती है।

प्रगतिशील विचारवाली उपन्यास लेखिका नासिरा शर्मा का सात नदियाँ एक समुंदर, शालमली, ठीकरे की मँगनी, जिंदा मुहावरे बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित हुए। नासिरा शर्मा वस्तुतः नारी-जीवन की वस्तुस्थिति और उसके परिवेश को चित्रित करनेवाली लेखिका हैं। जिंदा मुहावरे भारत-विभाजन की भयंकर त्रासदी पर आधारित है। ठीकरे की मँगनी में मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति को दिखाते हुए लेखिका ने उसकी आचार-संहिता को बताते हुए उसके वैयक्तिक जीवन को भी अंकित किया है। मुस्लिम परिवार की अंदरूनी जिंदगी, उनके रीति-रिवाज, सामाजिक समस्याओं तथा विश्वविद्यालयीय जीवन की विडंबनाओं को भी नासिरा शर्मा ने बखूबी चित्रित किया है। उपन्यास का शीर्षक 'ठीकरे की मँगनी' मुस्लिम समाज के एक रिवाज से संबंधित है, जिसके अनुसार जन्म लेते ही किसी लड़की की मँगनी किसी लड़के के साथ कर दी जाती है। उपन्यास की प्रमुख पात्रा महरुख की जिंदगी इसी रूढ़ि से आरंभ होती है और इसी की मनहूस छाया से उसके जीवन के कई वर्ष बीत जाते हैं, किंतु उसका मंगेतर रफत एक भौतिकवादी और अवसरवादी संवेदनहीन युवक है, जो भौतिक सुखों के लिए इंसानी रिश्तों की परवाह नहीं करता। महरुख इसका सामना और जीवन के संघर्ष में बड़ी दृढ़ता और हिम्मत से करती है। रफत कई वर्षों बाद जब पुनः पैगाम लेकर आता है, तब वह उसे नकार देती है। उपन्यास में नारी-जीवन की इस त्रासदी को नासिरा शर्मा ने सार्थक ढंग से चित्रित किया है।

सदी के अंतिम दो दशकों में सामाजिक राजनीतिक अधिकारों को बौद्धिक वर्ग में अनेक विविधताओं के साथ वर्णित कर उसे रूपायित करने का प्रयास उपन्यासकारों ने किया है। इसमें मध्यम श्रेणी के वर्ग, समुदाय और शिक्षित पात्र आते हैं। इसकी प्रेरणा वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन के कारण मिलती है। नवें दशक में प्रकाशित अमृतलाल नागर का उपन्यास करवट और पीढ़ियाँ अधिक संगत प्रदान करते हैं। करवट में मध्यमवर्ग के उदय का चित्रण किया गया है, जो प्रारंभ में अँग्रेजी शासन का स्वागत करता था। उसे अपनी आर्थिक उन्नति का साधन मानकर चलता था पर इस दशक का यह वर्ग वैश्विक परिवर्तन को देखकर अपने पुराने मोह को त्यागकर स्वाभिमान की जिंदगी जीने को आतुर दिखाई पड़ता है। अतः इस कालखंड में सामाजिक परिवर्तन की जो करवट बदली है, उसमें पुनर्जागरण का भाव निहित मिलता है। सदी के अंतिम दशकों के उपन्यासों में परिवेश के साथ विषयवस्तु का भी परिवर्तन बखूबी हुआ है। इसी काल में उत्तर आधुनिकता का झोंका आया। उषा प्रियंवदा के उपन्यास के परछाई नाम के प्रमुख पात्र अनहद के माध्यम से मध्यमवर्ग का सशक्त चित्रण मिलता है। पर चिंता का विषय यह है यही वर्ग अब बहुराष्ट्रीय उद्योगपतियों और कंपनियों के मोह में उलझा हुआ है। कृष्णा सोबती की दिलोदानिश और सरगम कृतियों में उच्च मध्यमवर्गीय पात्रों के पारिवारिक जीवन में भी घुटन, उपेक्षा का संग्राम भोगने को मिल जाता है। सामाजिक सरोकार की पीड़ा इस दशक के अनेक लेखकों में देखने को मिल जाती है। डॉ॰ रामदरश मिश्र का नवें दशक में प्रकाशित उपन्यास 'बिना दरवाजे का

मकान' में घर-घर चौका-बर्तन करनेवाली नारी के माध्यम से आज की महानगरीय जिंदगी को पहचानने, समझने और परखने का प्रयास हुआ है। निःसंदेह यह कथावस्तु यथार्थ जीवन की सच्ची तस्वीर दिखाने के लिए एक सही कृति है। चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' में बंबई के महानगरीय परिवेश में विज्ञापन-जगत का आकर्षण, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह-व्यापार आदि का रोमांचकारी चित्रण मिलता है। उनके दूसरे उपन्यास आवां में एक नवयौवना लड़की का जीवन-संघर्ष किया है, जिसे वह एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्म लेने के साथ भोगती है। इसी में मजदूर संघों के क्रियाकलापों तथा उनकी आंतरिक कुटिल राजनीतिक उठापटक का घृणित रूप भी देखने को मिलता है।

नवें दशक में प्रकाशित गोविंद मिश्र के उपन्यास 'तुम्हारी रोशनी' में स्त्री अस्मिता से जुड़े सवाल को एक गहरी संवेदनशीलता और तर्क के साथ प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की नायिका सुवर्णा के लिए जीवन खुशी का पर्याय है, जिसे पाने के लिए वह परंपरागत दांपत्य-संहिता की परवाह नहीं करती। इसी दशक में ही प्रकाशित गिरिराज किशोर के उपन्यास 'तीसरी सत्ता' और मंजुल भगत के उपन्यास 'तिरछी बौछार' में शिक्षित नारी और उसके स्वावलंबी जीवन पर दोनों उपन्यासकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से प्रकाश डाला है। इसमें सुखी दांपत्य संबंधों में अनेक कठिनाइयाँ, समस्याएँ और असुविधों का वर्णन है, जहाँ पति अपनी पत्नी को एक भोग की वस्तु समझकर शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करना अपना पारंपरिक अधिकार समझता है। तीसरी सत्ता में नारी पात्र रमा जो एक प्रसिद्ध डाक्टर है अपनी परंपरा को माध्यम मान नौकरी छोड़ गृहस्थी के कष्टमय जीवन को भोगने के लिए विवश हो जाती है। वस्तुतः आज के समाज में इस प्रकार दांपत्य-संबंधी समझौते के न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता।

दशवें दशक में प्रकाशित मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' में नारीविषयक धारणा को उजागर किया गया है, जिसमें स्त्री कहीं की भी हो, उच्चवर्ग की हो या निम्नवर्ग की, पुरुष द्वारा श्रम एवं सेक्स दोनों रूपों में शोषित होना उसकी नियति बनी हुई है। इस समस्या पर भी सामाजिक नियमों, आदर्शों एवं चलन को मूल्यांकित करने की आवश्यकता है। समाज कहीं का भी हो, स्त्री पुरुष के शोषण और दमन से अभी तक मुक्त नहीं हो पाई है।

इसी कालखंड में शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' उपन्यास प्रकाशित हुआ। वस्तुतः यह उपन्यास विंध्यक्षेत्र के नटों, बेड़ियों के कबीलाई जीवन को अपनी क्रोड़ में छिपाए हुए है। इसमें आंचलिक बर्गविशेष का यथार्थ चित्रण है, पर समस्या का कोई समाधान नहीं मिला है। दशवें दशक में ही जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर' आया। वस्तुतः यह दलित-जीवन पर लिखा गया श्रेष्ठ उपन्यास है, जिसमें सवर्ण समाज द्वारा दलित समाज के उत्पीड़न तथा उसके विरुद्ध दलितों के उठ खड़े होने का चित्रण है। इसी कालखंड में रमेशचंद्र शाह का उपन्यास 'किस्सा गुलाम' भी प्रकाशित हुआ। दलितजाति में जन्मे पात्र कुंदन की कुंठा और विद्रोह की भावना का चित्रण है। मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में बुदेलखंड के परिवेश और ग्रामीण समाज को उसके जीवन यथार्थ के साथ कथ्य में उतारा गया है। आल्मा कबूतरी में कबूतरा जाति को केंद्र में रखकर कथासंयोजन हुआ है। कबूतरा जाति में नारियों की सामाजिक स्थिति को लेखिका ने बड़े बेबाक ढंग में प्रस्तुत किया है। उसका स्वाभिमान और साहस समाज को नई दिशा देने में सार्थक सिद्ध होता है।

बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में जो भी उपन्यास लिखे गए, वस्तुतः सभी में आधुनिकताबोध और प्रगतिशील विचारों का प्रतिपादन देखने को मिला है। राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति के त्रिकोण में उपन्यासकारों, लेखकों और विचारकों ने भारतीय समाज को नए और खुले वातावरण में अंधविश्वास के घटाटोप अँधेरे से निकालकर नए जीवन-प्रकाश में लाने का सक्षम दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। फलतः आज के इतिहास में इस अवधि की रचनाओं को प्रेरक एवं प्रेरणा के बीज रूप में अपनाया जा सकता है। भाषा, शैली और परिवेश सभी कुछ समय के परिवर्तन के साथ अपनाए जाने से हिंदी साहित्य अपनी वैश्विक उन्नति में भी सहायक हो जाता है।

संदर्भ

1. मनोहर श्याम जोशी, कुरु कुरु स्वाहा, पृ० 6
2. मनोहर श्याम जोशी, कुरु कुरु स्वाहा, पृ० 55

सुश्री पुष्पा
361, फेज 5, पवन विहार कालोनी
पीलीभीत बाई पास रोड,
बरेली, उ०प्र०

कमलेश बख्शी का उपन्यास साहित्य

प्रा० संजय प्रह्लाद महाजन

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग

के० न्हानाभाऊ म०तु०पाटिल कला महाविद्यालय, मारवड

तह० अमलनेर (जलगाँव)

9420108536, 9503399372

समकालीन कथालेखिकाओं के बीच कमलेश बख्शी एक चर्चित नाम है। कथासाहित्य के क्षेत्र में सत्तर के दशक में सक्रिय कमलेश जी अब तक आठ उपन्यासों का सृजन करके समकालीन कथालेखिकाओं के बीच अपना स्थान बनाने में सफल हुई है। मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की जिंदगी को उन्होंने बहुत करीब से देखा और समझा है। इन दोनों वर्गों की विस्तृत और स्पष्ट झलक उनकी सूक्ष्म दृष्टि सामाजिक गलियारों से गुजरते हुए बहुत कुछ सँजोकर लाती है। उनकी भाषा में वह आत्मीयपन है, जो सहज ही अपनी बात को पाठकों के सम्मुख रख देती है।

सामाजिक जागरूकता की पक्षधर कमलेश बख्शी के कथासाहित्य का वर्ण्यविषय नारीमुक्ति है। नारी-शोषण, अन्याय और अत्याचार के उन सारे बिंदु को उन्होंने कथासाहित्य के नारी-पात्रों के माध्यम से छूने का केवल प्रयास ही नहीं किया है, बल्कि उसकी तह तक जाकर उसका समाधान भी निकाला है। यही वजह है कि उनका साहित्य सहज ही पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर जाता है। उनकी नारी पति और सास की अमानुषिक कठोरता से न चौंकती है, न रोती है। इसके विपरीत वह उनके खिलाफ लड़ती है और जब उसे यह अहसास हो जाता है कि पति की निगाहें उस पर उतनी नहीं, जितनी उसकी आमदनी पर हैं, समझौते के लिए बढ़ते पति के हाथों को ठुकराकर डायवोर्स पेपर पर दस्तख़त करके खुद को हल्का ही महसूस नहीं करती, बल्कि एक व्यापक मूल्य के तहत जीने के लिए भी तैयार हो जाती है। इसमें संदेह नहीं कि तलाक़ के लिए जब स्त्री के क़दम बढ़ते हैं, तब चारों ओर तूफ़ान उठ खड़ा होता है। पुरुष तो पुरुष स्त्रियाँ भी उसके खिलाफ़ मोर्चा बाँध लेती है। अर्थात् एक पीड़िता के प्रति सहयोग, सहानुभूति और संवेदना के हाथ बढ़ाने की अपेक्षा वे किस तरह से उसकी पीड़ा को बढ़ाकर विक्षिप्तता के कुँएँ में ढकेल देती हैं, इस त्रासदीपूर्ण व्यवहार को उन्होंने अपने कथासाहित्य के माध्यम से स्वर देने का भरसक प्रयास किया है।

कमलेश बख्शी के लेखन में वे सभी पहलू इतनी सहजता से फूटते हैं कि किसी प्रकार के बाहरी तामझाम उनके लेखन को छू भी नहीं सकते। उनके लेखन का प्रमुख स्वर मानवीय संबंध, विशेषतया पारिवारिक रिश्तों की चिंता, वर्तमान स्थिति का कटु यथार्थ, व्यक्ति का

अकेलापन, स्वार्थलोलुप मनोवृत्ति, अलगाववादी पीड़ा, रिश्तों में बिखराव रहा है। इन सारे पहलुओं का चित्रण उनके कथासाहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दिखाई देता है।

‘कच्चे पक्के रास्ते’ कमलेश बख्शी का 1980 में प्रकाशित पहला उपन्यास है। उपन्यास में प्रेम की कसक भी है और कर्तव्य की महक भी। स्त्री-पुरुष संबंध से जुड़े इस उपन्यास के वर्ण्यविषय के केंद्र में नारी की कथा ही रही है। कथावस्तु में एक पुरुष तीन नारियों के परस्पर संबंध को उठाया गया है। उपन्यास में ग्रामीण और नागरिक संस्कारों से संबद्ध पात्रों के जीवन और जगत, संकल्पों, आदर्शों और मनःस्थितियों के कच्चे-पक्के रिश्तों में बँधने और टूटनेवाली भावनाओं का बड़ी कुशलता से चित्रण किया गया है। पात्रों का जीवनमार्ग कच्चे से पक्के और पक्के से कच्चे पर जाता रहता है। सामाजिक स्थितियाँ और मान्यताएँ और विडंबनाएँ उन्हें जीने नहीं देतीं। इस संदर्भ में मोतिया ठीक कहती है कि ‘हाँ! मैं कच्चे से पक्के रास्ते पर चली जाती हूँ फिर कच्चे पर लौट आती हूँ।’

उपन्यास का नायक डॉ॰ रजनीश अपनी पढ़ाई का उपयोग ग्रामीणों की जनसेवा में करना चाहता है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर गाँव के अस्पताल में नौकरी करता है। लेकिन कुछ वर्ष बाद शहर में अपनी डिस्पेंसरी खोल लेता है। समय की व्यस्तता के बावजूद वह समय निकालकर गाँव में रोगियों की सेवा के लिए जाता रहता है। डॉ॰ रजनीश गाँव की कच्ची सड़क छोड़ शहर में आकर पक्की सड़क का अनुभव करने लगता है, किंतु धन अपने प्रभाव से सुख-सुविधा जुटा सकता है, आतंक फैला सकता है, परंतु मानसिक शांति और संतुष्टि भी दे सकता है, यह कभी भी संभव नहीं है। डॉ॰ रजनीश के पास धन की कमी नहीं थी, पर वह बार-बार सोचने पर मजबूर हो जाता है कि वह मैदान छोड़कर भागा हुआ सिपाही है। दूसरी ओर रजनीश की पूर्व प्रेमिका नीलिमा अति धन के कारण मानसिक प्रेम के अभाव में जीवन को मृत समझने लगती है। उपन्यास में बख्शी जी ने धनिकवर्ग की चरित्रहीनता, ममत्वहीनता का चित्रण भी किया है।

उपन्यास में रजनीश, नीलिमा की कहानी के साथ एक ऐसे सर्वहारा वर्ग के पात्र मोतिया की कहानी चलती है, जिसके माध्यम से कमलेश जी समाज के कटु यथार्थ को सामने रखती हैं। दहेज न दे सकने के कारण गाँव के मंदिर का पुजारी गाँव की भोली-भाली मोतिया को बंबई जैसे महानगर में पहुँचाकर वेश्या बनाने में किसी प्रकार की झिझक महसूस नहीं करता। उपन्यास के पात्र रजनीश के माता-पिता की प्रतिक्रिया कुछ और ही थी। वे दोनों बेटे के पास होने के बावजूद बेटे से दूर रहने का अहसास पा रहे थे। इस संदर्भ में माँ का कथन ममत्व-भरा लगता है—‘ये तो सोने का पिंजरा बना दिया। बेटा दाल-रोटी खाकर भी बच्चों से बतियाने से कलेजे में ठंड पड़ती है।’²

कुल मिलाकर उपन्यास का शीर्षक ‘कच्चे पक्के रास्ते’ कथावस्तु के अनुरूप है। पात्रों की योजना सराहनीय है। इन पात्रों के माध्यम से लेखिका ने सामाजिक स्थितियों का चित्र उभारकर समाज के सारे रूपों को व्यक्त किया है।

कमलेश जी का 1881 में जीवनज्योति प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित ‘सुरंग से बाहर’ नारीमुक्ति की कामना का लक्ष्य लेकर लिखा उपन्यास है। कमलेश जी का यह उपन्यास बगावत है, उस समाज से जिसने नारी पर हमेशा अपने निर्णय थोपे हैं। उपन्यास के शीर्षक से ही पता

चलता है कि किसी को उजाले की प्रतीक्षा थी और वह किसी अंधकार से बाहर आता है। यह उपन्यास स्त्री-पुरुष के टूटते-जुड़ते संबंधों की ऐसी दास्तान है, जिसमें आज की प्रबुद्धचेता नारी समाज की अँधेरी गुफाओं से जूझती, भटकती, टकराती हुई जर्जरित और क्षतविक्षत न होकर सुरंग से बाहर आकर समूचे रूप से खड़ी हो गयी है। यदि समाज और पति उसे सामाजिक सुरक्षा, शारीरिक संतुष्टि, मानसिक परितोष नहीं दे सकता तो वह ऐसे विवाहबंधन में बँधे रहने को स्वयं को बाध्य नहीं करती। वह उस पुरुष को त्याग अन्य साथी चुनने का हक रखती है।

‘सुरंग से बाहर’ उपन्यास की नायिका श्वेता तीन पुरुषों-विशाल, रंजन और अविनाश से जुड़ती है। श्वेता पढ़ी-लिखी सर्विस करनेवाली सामान्यतः सुंदर और विवेकी स्त्री है। विशाल प्रोफ़ेसर है, पर निर्दय, अत्याचारी। इसलिए वह उससे विवाह-विच्छेद करती है। दूसरी ओर श्वेता की माँ श्वेता के पिता द्वारा होनेवाले अत्याचार को आजीवन सहती रहती है। इस संदर्भ में माँ का कहना कि, ‘क्या करूँ... तुम चार बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँ... मेरे माँ-बाप पाँच का बोझ नहीं उठा सकते, फिर जब तक माँ-बाप हैं, रह भी लूँ फिर क्या भाई-भाभी नहीं।’³ श्वेता की माँ के ये शब्द किसी भी पाठक को नारी की सदियों से दबी-कुचली स्थितियों का परिचय करा पाते हैं।

श्वेता के चरित्र के माध्यम से कमलेश जी का स्थितियों का पर्दाफाश करने का सफल प्रयास दिखाई देता है कि आज की पढ़ी-लिखी औरतें सबल हो रही हैं। प्राचीन पुरुषसत्तात्मक समाज के मुँह पर थप्पड़ लगाने में आज की प्रबुद्ध नारी पीछे नहीं हट सकती। नारीमुक्ति की कामना को लेकर स्वयं कमलेश जी के ये शब्द-‘स्त्री को देवदासी बनाना भी पुरुष के दिमाग की उपज थी। देहरी के अंदर और देहरी के बाहर स्त्री नाटकीय जीवन जीती रही।’⁴ लेकिन आधुनिकयुग में स्वचेता नारी विकराल अँधेरों से संघर्ष करती हुई, अपनी अस्मिता का, अपने अस्तित्व का परिचय दे रही है। नारीमुक्ति की कामना ही इस उपन्यास का उद्देश्य दिखाई देता है।

‘अंतहीन भटकन’ 1982 में प्रकाशित तीसरा उपन्यास है। कमलेश जी ने इस उपन्यास में भी नारी-जीवन के कटु यथार्थ को सामने रखने का प्रयास किया है। साथ ही प्रेम-विवाह की निरर्थकता को भी सामने लाने का प्रयास किया है। उपन्यास नायिका नीता नौकरी करती है। नीता के चरित्र के माध्यम से लेखिका शिक्षित स्त्री जो नौकरी कर अपने परिवार को सँभालते समय उसकी होती बड़ से बड़तर परिस्थिति को सामने लाती है। उपन्यास के आरंभ में ही नीता की पुत्री के शब्द-‘माँ तुम रोज़ काम पर जाती हो, मेरे पास नहीं बैठतीं। चारु की माँ पूरा दिन घर में रहती है।’⁵

उपन्यास में नीता की दीदी का रवि के साथ भाग जाना नीता को सोचने पर विवश कर देता है। उसके दिल पर दीदी के भागने की गहरी चोट पहुँची थी। नीता का परिवार तो साक्षात् आदर्श परिवार था। अपने पिता के परिवार को लेकर उसका यह कहना कि ‘वे सब ऐसे घर के बच्चे थे, जिन्होंने अपनी आँखों से अपने माता-पिता को, दादा-दादी की तन-मन भावना से सेवा करते देखा था। सच्ची सेवा की थी, सबने दादा-दादी की। माँ-बाप के लिए, कितने ही त्याग करते देखा था। क्या दीदी ने इस पल को नहीं सोचा होगा।’⁶

कमलेश जी ने इस उपन्यास में और भी बहुत से प्रश्न उठाए हैं। पारिवारिक रिश्ते छिनते

चले जा रहे हैं। माँ-बाप अपने बच्चों को बनाने के लिए पूरा जीवन न्यौछावर कर देते हैं, वही बच्चे बड़े होकर अपना घर बसाकर, माँ-बाप के प्रति अपने दायित्व और कर्तव्य को अकसर भुला बैठते हैं। भूल जाते हैं कि आज उन्हीं की बदौलत हम किसी काबिल बने हैं। लेखिका का यह उपन्यास घर-परिवार की टूटने को बचाने का संकेत भी देता है। आज समस्या और चेतना नारी को घेरे हुए है। इस खोज में भटकाव भी है, दिशाहीनता भी है और दिशा-प्राप्ति का प्रयत्न भी। इस उपन्यास में यथार्थ की इस खोज के सूक्ष्म सूत्र बड़ी कुशलता से अंकित किए गए हैं।

‘बिधीचंद’ कमलेश बख्शी का 1984 में अमृत पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित चौथा उपन्यास है। बिधीचंद सिक्ख इतिहास का अद्भुत चरित्र था। वह अपने समय का एक प्रसिद्ध डाकू था। उसके नाम से लोग काँपते थे, परंतु सिक्खों के पाँचवे गुरु, गुरु अर्जुनदेव के संपर्क में आकर उसका पूरा जीवन बदल गया और बुरे कर्मों में लगनेवाला बिधीचंद देश और धर्म की रक्षा के कार्य करने लगा। बिधीचंद जिला लाहौर के सूरसिंह गाँव का रहनेवाला एक जाट था। परंतु बुरी संगत में पड़कर डाकू बन गया था।

‘बिधीचंद’ इस बालउपन्यास का कथ्य किस्सागोई की तरह लगता है। मानो कोई दादी अपने पोतों को पुरानी कहानी सुना रही हो। किस्सागोई की शैली के माध्यम से कमलेश जी ने इस अनोखे चरित्र की कहानी बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत की है। उपन्यास की कथावस्तु चित्रों का निर्माण भी किया गया है, जिससे पाठकों को यह उपन्यास समझने में और भी सहायता होती है। उपन्यास की भाषा में पंजाबी शब्दों का उसी रूप में प्रयोग किया गया है।

‘दिशा खोजती जिंदगियाँ’ कमलेश बख्शी का पाँचवाँ उपन्यास 2000 में अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। उपन्यास के शीर्षक से ही पाठक के ध्यान में आता है कि कोई एक सफल दिशा की खोज कर रहा है। उपन्यास की कथा स्त्री-पुरुष संबंधों पर और समाज में स्त्री की स्थिति पर अनेक पहलुओं से प्रकाश डालती है। समाज में अकेली रहती स्त्री की स्थिति, स्त्री-पुरुष की निर्दोष मैत्री, पति-पत्नी के सामाजिक स्तर का अंतर जैसे अनेक प्रश्नों को उठाया गया है।

उपन्यास की कथावस्तु के केंद्र में डॉ॰ नीलेश और डॉ॰ सुनीता झवेरी हैं। डॉ॰ सुनीता एक सफल गायनाकालॉजिस्ट हैं। अर्थात् एक नये सृजन, एक नये जन्म की दुनिया की सहायक हैं। दोनों अत्यंत प्रभावी, प्रतिभासंपन्न थे, मूल्यों से अनुप्राणित और जीवन की गहरी समझ को समझने वाले। डॉ॰ नीलेश प्रतिभासंपन्न छात्र था, पर परिवार मध्यमवर्गीय था। डॉ॰ नीलेश धनी पिता की एकलौती पुत्री प्रीति से विवाहबद्ध होता है, तो डॉ॰ सुनीता झवेरी मर्चेन्ट नेवी में कार्यरत राकेश से विवाहबद्ध थी।

डॉ॰ नीलेश और डॉ॰ सुनीता दोनों की पारिवारिक स्थिति विनाश के कगार पर खड़ी है। दोनों अपने-अपने पारिवारिक जीवन में उदास थे। डॉ॰ सुनीता का पति राकेश ड्रग लेने वाला, पराई औरतों की चाह करनेवाला, सभ्यता को खोकर जानवर बन जाने वाला था। दूसरी ओर डॉ॰ नीलेश की पत्नी प्रीति अपने धनी पिता की संपत्ति पर हर क्षण गर्व से घूरनेवाली शेरनी की तरह थी। पत्नी में मायके की प्रशंसा और पति को हीन साबित करने की भावना विद्यमान हो तो कोई भी पति उसे बर्दाश्त नहीं करेगा। प्रीति कई बार मेहमानों के बीच कहती थी—‘नीलेश जी तो एक अटैची लेकर आए थे, घर डैडी ने दिया।’ कमलेश जी का यह उपन्यास पति-पत्नी की

विपरीत मानसिकता के कारण संबंधों में बिखराव लाता है तथा पुरुष और स्त्री के रिश्तों की नयी व्याख्या करता हुआ, आज की विडंबनापूर्ण जिंदगी के विभिन्न पहलुओं को बड़ी सरलता से हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

‘जिनी यहीं रहेगी’ सन 2004 में जीवन ज्योति प्रकाशन से प्रकाशित छठा उपन्यास है। उपन्यास में पाश्चात्य देशों में जीनेवाले भारतीयों की कशमकश, द्वंद्व और मजबूरी का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। दो संस्कृतियों की टकराहट में कितना कुछ बिखर जाता है, टूट जाता है। न्यूयार्क यात्रा के दौरान कमलेश जी ने वहाँ के जीवन को अपनी खुली आँखों से देखा, परखा और उसके बीच बहते बेआवाज़ स्वर को महसूस भी किया है।

‘जिनी यहीं रहेगी’ उपन्यास की नायिका जिनी विदेश में बसे भारतीय पिता रमेश शाह की लड़की है। रमेश शाह ने विदेश में जाने के बाद अपने माता-पिता की परवाह न कर अमेरिकन पौगी से शादी कर डाली थी। जिनी उसकी संतान थी। बख्शी जी ने जिनी के जीवन को आधार बनाकर ही उपन्यास की कथासृष्टि की है। जिनी के चरित्र के माध्यम से बख्शी जी पाश्चात्य संस्कृति के कई पहलुओं को हमारे सामने पेश करती है। उन्होंने नारी को वहाँ भी पीड़ित ही देखा था। गर्भ धारण करनेवाली लड़की पर ही बच्चे की जिम्मेदारी होती है। कुँवारी माताओं की संख्या वहाँ अधिक है। गर्भपात करना वहाँ आम बात समझी जाती है। वहाँ की संस्कृति में फ्री सेक्स आम चीज़ समझी जाती है।

दूसरी ओर विदेश धरती पर आज भी भारतीय संस्कृति के मूल्य बचे हुए हैं। यह जिनी के पिता रमेश शाह के चरित्र के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया गया है। रमेश शाह जब अपनी बड़ी लड़की को लड़कों के साथ घूमते हुए देखते हैं, तो बेचैन हो जाते हैं। ‘उन्हें याद आया बड़ी होती मारग्रेट को देख वे बहुत बेचैन हो गए थे... बहुत छटपटाए थे। पत्नी के सामने एक प्रस्ताव फिर रख दिया था। चलो भारत चलते हैं तुमने बच्चों को हिंदू नहीं रहने दिया, उन्हें अपनी पसंद के नाम दिए... उनके हाथों में बायबिल थमा दी... अब... मुझसे सहा नहीं जाएगा, लड़की बाहर घूमे।’⁸

बख्शी जी का यह उपन्यास विदेश में बसे भारतीयों की बड़े होते बेटे-बेटियों को लेकर भय-कशमकश, लौटना चाहकर भी न लौट पाना, समझौता करना आदि स्थितियों का जीवित प्रमाण देने का प्रयास करता है। विदेश में जाकर वहाँ भी न बस पाने की त्रासदी को ही दर्शाता है।

‘अतीत से गुजरते’ कमलेश बख्शी जी का सन 2009 में प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली से प्रकाशित सातवाँ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास मानवीय संबंधों की गहरी पड़ताल करता है। सुख-दुख से भरे जीवन के अनेक मार्मिक एवं कड़वे चित्र इस उपन्यास में मौजूद हैं।

उपन्यास आत्मकथा शैली में लिखा गया है। उपन्यास की कथा में आदि से अंत तक अम्मा नामक चरित्र की त्रासदी है, जो देश के बँटवारे की त्रासदी जी रही है, जो अपने अंतिम समय में अतीत को फिर से जीती है। यह उपन्यास स्त्री-जीवन की त्रासदी का जीवित बयान है। उपन्यास में यह स्त्री एक बेटी, एक बहू, एक पत्नी, एक माँ बनती है और हर मोड़ पर जीवन में जूझती है। कथावस्तु के अंत में यह स्त्री अपनी मृत्यु को भी उसी भाव से झेल रही है, जिस भाव से उसने जीवन की क्लिष्ट विडंबनाओं को स्वीकार किया है, वैसे ही मृत्यु को भी। उसे

मृत्यु का डर बिलकुल नहीं है। उस संदर्भ में उनका यह कहना कि, 'जब मरना ही है बत मैं पीड़ा क्या सह रही हूँ? ग्लूकोज से आखिर कितने दिन और जी सकूँगी। ये कुछ दिन जिये या न जिये.... क्या फर्क पड़ता है....।' १ पाठक को सोचने पर विवश कर देता है।

देश के बँटवारे का भोगा हुआ यथार्थ उपन्यास का प्राण मानना होगा। बँटवारे के कारण मूल से उखड़कर दूर फेंक दिए जाने से, पलायन करने और दूसरी जगह शरणार्थी हो जाने का दुख भूकंप-सा कहर ढाता हुआ दिखाई देता है। बख्शी जी ने कथावस्तु के माध्यम से एक सामूहिक उखड़ाव की बड़ी सच्ची तस्वीर उभारी है। उपन्यास कथा में किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक का एक-एक पल उसके मानस से गुजरता है। मृत्यु मानो पूरी कथा में जगह-जगह खड़ी है। सुसुराल में आते ही माँ की मृत्यु, पीछे रह गए बाबा की भी कुछ दिनों बाद मृत्यु बचा छोटा भाई मुन्ना, जो काका के परिवार में हाशिए पर जैसे-तैसे जी रहा था। लाहौर में काम ढूँढने गया हुआ मुन्ना दंगाइयों के हाथों मार दिया जाता है। मायके का अंतिम चिराग भी जलकर भस्म हो जाता है। साथ ही कई बेटियों के बाद जन्मा बेटा राजेश भी कैंसर की बीमारी से जवानी में चला जाता है। अर्थात् संपूर्ण उपन्यास में मृत्यु की काली आँधी सतत मँडराती आती है।

लेखिका का यह उपन्यास नारी-मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी-चित्रण का सूक्ष्म और गहरा असर छोड़ने वाला है। नारी की शोषित जिंदगी और आंतरिक पीड़ा का वर्णन बहुत मार्मिकता से हुआ है। यह नारी-जीवन का दस्तावेज है। साथ ही एक श्रेष्ठ उपन्यास है।

'गुनहगार पकड़ा गया' बख्शी जी का सन 2009 में प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली से प्रकाशित आठवाँ उपन्यास है। उपन्यास का परिवेश ग्रामीण है। गाँव की खुशहाल जिंदगी, कोई किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं। सारे लोग सुबह होते ही अपने-अपने खेतों में काम के लिए जाते। कोई किसी से झगड़ा नहीं, कुल मिलाकर इस उपन्यास को पढ़ते समय यह अहसास होता है कि यह कथा किसी भले आदमियों के गाँव की है। एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटना गाँव की परंपरा थी। इसी गाँव में राधाकृष्ण नामक एक धनी आदमी रहता है। उपन्यास के आरंभ में ही राधाकृष्ण के भरे-पूरे परिवार का वर्णन कर लेखिका ने गाँव की खुशहाल जिंदगी या स्थिति का संकेत दिया है।

राधाकृष्ण की धर्मपत्नी अमिता के देहांत के बाद बीते एक-एक पल का वर्णन बख्शी जी ने इस प्रकार किया है, जैसे वह अपने ही परिवार की बात कह रही हों। अमिता की मृत्यु के बाद उनकी एकलौती संतान रानी की परवरिश में कोई कमी नहीं आने देता। मालती उनके घर में एक नौकर की हैसियत से रहती है, पर राधाकृष्ण कभी भी उसे नौकर नहीं मानते। राधाकृष्ण और मालती इन दोनों में बहन-भाई जैसा प्यार था।

उपन्यास में रिश्तों की गहरी पड़ताल देखी जाती है। मानवीय संबंध, सुख-दुख से भरे जीवन के अनेक मार्मिक एवं कड़वे चित्र इस उपन्यास में हैं। फूल जैसी रानी पढ़-लिखकर सुधीर से विवाह करती है, अपना घर बसाती है। दूसरी ओर मालती जो विमाता के क्रूर व्यवहार तथा सुसुराल में पग-पग पर दिखनेवाले ख़तरे से बचकर राधाकृष्ण जैसे भले आदमी का सहारा पाकर जीवन को धन्य समझती है। मालिक और सेवक इनमें जो स्वामी भक्ति का भाव है, यह दर्शाने में लेखिका को बहुत ही सफलता मिली है।

उपन्यास की कथा-धरती पर बख्शी जी ने उन सारे पहलुओं से परिचित करवाया है,

जो स्वतंत्रतापूर्व गाँव की धरती पर हुआ करते थे। गाँवों में प्लेग जैसी बीमारी के कारण आधे से ज्यादा गाँव का श्मशान हो जाना, बिजली का न होना, भूख, ग़रीबी के सिकंजे में फँसे तंगहाल स्थितियों का चित्र साकार कर भारत के गाँवों का दर्शन भी कराया है। फिर भी ग्रामीण भलेमानस का चित्रण कर लेखिका ने गाँव के सुंदर और भोले मन का यथार्थ शब्दों में अंकन किया है।

निष्कर्षतः, कमलेश बख्शी जी के उपन्यासों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि मानवीय मूल्यों में उनकी गहरी आस्था है। उनके पारदर्शी व्यक्तित्व की निश्छलता, सादगी, सहजता और जीवंतता उनकी रचनाओं में झलकती है। उनकी पैनी दृष्टि और अनुभव ही उनके लेखन की जान है। साथ ही उनकी यह विशेषता ही कहनी होगी कि कल्पना के हिंडोले से न वह पात्र चुनती हैं न कथ्य। उनके पात्र हमारे आस-पास के परिवेश में जीवन की सर्दी व गर्मी झेलते कभी टूटते हैं, बिखरते हैं, लड़खड़ाते हैं, सँवरते हैं। नियति उन्हें तोड़ती है, लेकिन विश्वास उन्हें जोड़ता है। उनका लेखन सामाजिक सरोकारों से ओत-प्रोत है। उनका उपन्यास-लेखन जीवन को आईना भी दिखलाता है और मशाल की तरह रोशनी भी बिखेरने में सक्षम है।

संदर्भ

1. कच्चे पक्के रास्ते, कमलेश बख्शी, पृ० 113
2. कच्चे पक्के रास्ते, कमलेश बख्शी, पृ० 35
3. सुरंग से बाहर, कमलेश बख्शी, पृ० 18
4. सुरंग हे बाहर, कमलेश बख्शी, पृ० 09
5. अंतहीन भटकन, कमलेश बख्शी, पृ० 129
6. अंतहीन भटकन, कमलेश बख्शी, पृ० 147
7. दिशा खोजती ज़िंदगियाँ, कमलेश बख्शी, पृ० 73
8. जिनी यहीं रहेगी, कमलेश बख्शी, पृ० 28
9. अतीत के गुज़रते, कमलेश बख्शी, पृ० 06

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
के.नहानाभाऊ म.तु.पाटील कला महाविद्यालय, मारवड
तह. अमलनेर जि.जलगाँव
9420108536, 9503399372

हरियाणवी लोकगीतों में नारी-भावना

डॉ. सुनीता देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी

के०वी०ए० डी०ए०वी० कॉलेज फॉर वुमैन, करनाला

लोकगीत मानव-मन के सहज उद्गार हैं। वस्तुतः किसी भी बोली व प्रदेश के लोकगीत जनमानस के भावों को अभिव्यक्त करते हैं। लोकगीतों में व्यक्ति के सुख-दुःख, प्रेम, वियोग आदि मानवीय भावों के साथ-साथ जनमानस के क्रियाकलापों का चित्रण भी लोकगीतों में होता है। हरियाणा के लोकगीतों में व्याप्त विविध भावों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ० शंकरलाल यादव लिखते हैं, 'हरियाणा प्रदेश में लोकगीत साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। उसका प्रस्तार एवं विस्तार इतना अधिक है कि जीवन का कोई पक्ष, भाव तथा व्यापार ऐसा नहीं जो लोकगीतों क बंधन में न आता हो। प्रत्येक भाव को वहन करने की क्षमता इन लोकगीतों में विद्यमान है। पृष्कल मेधा की ऊहापोह भले ही इनमें न दीख पड़े, पर कोमल से कोमल भाव इन गीतों के अंग बने हुए हैं।' लोकगीतों में सास-बहू, पति-पत्नी व अन्य पारिवारिक रिश्तों की खट्टी-मीठी नोंक-झोंक देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त लोकसंस्कृति के विविध आयामों, रोजमर्रा की जिंदगी के कार्य, खेत-खलिहान, व्रत, तीज-त्योहार, गर्मी-सर्दी आदि का भी व्यापक चित्रण होता है। महिलाओं में आभूषणप्रियता भी देखी जा सकती है। सास-बहू की नोंक-झोंक का एक उदाहरण देखिए, जब सास अपनी बहू का हार अपनी बेटी को दे देती है, इस पर बहू की प्रतिक्रिया है—

- बहू - मेरा नौ तोलां का हार, सास थानै दिया री नणद के घाल, हाय री सिंगार मेरा।
सास - ठाडे बोल ना बोलै बहू हे घणे ठाडे घर की है कोन्या।
बहू - दस-बारह सी म्हारे चाचे ताऊ, भाइ-भतीजां का घाट्टा ना।
- तनै एक जाया नन्दलाल, सास थानै दिया फौज में घाल, बोले के बोलेगी।
- मेरा नौ तोलां का हार, सास थानै दिया री नणद के घाल, हाय री सिंगार मेरा।
- दस मण तो री म्हारा होया बाजरा गेहूँ का म्हारा घाट्टा ना,
तेरा एक बोरी में अनाज सास थारे मूस्से देख्खें बाट बोले के बोलेगी।
- दस बारह री म्हारा पलंग सणी के खाट्टां का म्हारा घाट्टा ना,
तेरा एक टूटी सी खाट, सास री करवट लेवै साठ बोले के बोलेगी।
- मेरा नौ तोलां का हार, सास थानै दिया री नणद के घाल, हार री सिंगार मेरा।
- दा बारह री म्हारा कटड़े-बछड़े, भैंसा का म्हारा घाट्टा ना,

तेरा एक खूंडी सी भैंस सास री वा मारै जोर की लात बोले के बोलेगी।

- मेरा नौ तोलां का हार, सास थानै दिया री नणद के घाल, हाय री सिंगार मेरा।

कृषिप्रधान देश होने के कारण हरियाणवी संस्कृति में खेती-बाड़ी, पशु-पालन आदि ही प्रमुख व्यवसाय माने जाते हैं। पशुओं को चारा डालना, दूध दोहना आदि रोजमर्रा के कार्यों में पत्नी पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती है। इस संबंध में पति अपनी पत्नी से घर (पशुओं के रहने का स्थान) में कूजड़ी (दूध दोहने का बर्तन) लाने के लिए कहता है-

‘म्हारै घर में मिल रही भैंस कूजड़ी ल्याइये रै।

तेरे सिर पर धर देऊँ दूध मटक दी आइये रै।

मैं जाऊँ मगरे के खेत, के रोटी ल्याइये रै।

मनैँ होज्यागी ओड़ै वार, बलदों की सानी कराइये रै।’

आज देश में शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है। हरियाणा भी इससे अछूता नहीं है। पहले यहाँ लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, परंतु अब शिक्षा के प्रति जागृति के कारण विशेषतः लड़कियों के लिए अनेक स्कूल, कॉलेज सरकारी और गैरसरकारी स्तर पर खोले गए हैं। समाज में महिलाओं की घर की चार दीवारी से निकलकर बाहर जाकर नौकरी करने की प्रवृत्ति गढ़ी है। आजकल देखने में आया है कि लड़के कम पढ़े-लिखे होते हैं और लड़कियाँ ज़्यादा पढ़ी-लिखी होती हैं। पढ़-लिखकर पुरुष के साथ खेती के कार्य करना, उन्हें रुचिकर नहीं लगता। इस संदर्भ में एक लोकगीत की पंक्तियाँ देखिए-

‘-मेरे पिता नै सोलह पढ़ा के, हाली का ब्याही, जुल्म कर राख्या सै।

- आगै मिल गई सास कलियारी, खेत में रोटी दे के भेजै धूप मनैँ लागै सै।

- आज्जा ओ हाली रोटी खाले, जाणा कॉलेज बीच देर मनैँ होरी सै।

- रोटी धर के अड़ै बैठ जा, मत ना करै बकवास खेत मैं रहणा सै।

- डौले ऊपर रोटी पटक के पहुँची कॉलेज बीच खड़ा हे खड़ा देखै सै।’

इसी प्रकार एक बहन अपने बड़े भाई से उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करते हुए कॉलेज में पढ़ने के लिए भेजने की गुहार लगाती है-

‘- बीर लाडले माँ के जाये, सोलह मनैँ पढ़ाइये रे।

- दसवीं कर ली गाम के स्कूल मैं, कॉलेज में पढ़ण बैठाइये रे,

- बीर लाडले माँ के जाये, सोलह मनैँ पढ़ाइये रे।’

हरियाणवी लोकगीतों में ईख, बाजरा, मक्की आदि की खेती का वर्णन भी देखा जा सकता है। इन फसलों को तैयार करने में नारी भी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है। लोकगीत के माध्यम से नारी अपनी भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त करती है-

‘- बाप के तै आई ए मैं कंद का दामन ल्यायी बो दिया ईख पहरण भी ना पायी।

-आधा ईख नहलाके मैं उलटी घर नै आई, देहलियों में पैर धरया मेरस सास बरड़ाई।

-सास बरड़ाई ए मनैँ मक्की सुखाई, आधड़ी सी रात मनैँ चाकी ऐ घुमाई।

-आधी मक्की पीस के मैं पिया धोरे आई, मक्की मत बोइये ओ नणद के भाई।

-डिग्गी म्हारी धरण ठिकाणा नहीं आई, कअड़ी म्हारी कमर तो सीधी भी ना होई।’

हरियाणवी नारी ऐसी आज्ञादी की कल्पना करती है, जिसमें उसके दैनिक कार्य आसान

हो जाएँ और समाज में फैली नशाखोरी-शराब पीना, सिगरेट-हुक्का पीना आदि बुराइयाँ समाप्त होकर एक सभ्य और स्वस्थ समाज की स्थापना हो। एक लोकगीत के माध्यम से की गई भावाभिव्यक्ति देखिए—

‘हे ठहर के कुछ ठहर के आजादी आवेगी, हे हाँडी बासण धोणे की मशीन आवेगी
जितने सैं सये बुड्ढे लोग, सब समझाए ज्यांगे हे,
गलियों में ये हुक्का पीवैं बंद करवाए ज्यांगे।

हे ठहर के कुछ ठहर के आजादी आवेगी, हे हाँडी बासण धोणे की मशीन आवेगी।
जितने सैं ये छोरे जवान, सब समझाए ज्यांगे हे,
गलियों में ये बोटल खोलैं, बंद करवाए ज्यांगे।’

हरियाणा की नारियों को आभूषणों के प्रति भी विशेष रुचि रही है। नौलखा हार, नौ तोले का हार, छन-पछेली, गिटकंड, गलसरी, नाथ, झुमके झालरा, हँसली, टीका, बिन्दी, पाजेग, कड़े-चूड़ी आदि अनेक आभूषण हरियाणवी नारी के शृंगार में शामिल हैं। ऐसी ही आभूषण-प्रियता एक लोकगीत के माध्यम से दिखाई पड़ती है—

‘कोठे चढ़ ललकारूँ, देखे ओ मेरा टीका ल्याइये।
गले का ल्याइये ओ तबीज, नजर का तागा ल्याइये।
बार-बार समझाऊँ, देखे ओ पिया भूल मत जाइये।’

ऐसी ही गुहार विवाहिता स्त्री अपनी सास से भी करती है—

‘सास मेरा पैंडल गढ़ा दे री, हेरी पैंडल के बीचों-बीच नगीना लाल जड़ दे री।’

कुएँ पर पानी लेने के लिए जाते समय महिलाओं के पहनावे का वर्णन इस लोकगीत के माध्यम से देखिए—

‘बावन गज का मेरा घाघरा, हाँजी कोए शीशे जड़ी मेरी चूंदड़ी जी,
ओढ़ पहर के पाणी नै नीसरी जी।’

सावन के महीने में तीज का त्योहार आता है। इस अवसर पर विवाहिताएँ, कन्याएँ इकट्ठी होकर झूला झूलती हैं। जिन स्त्रियों के पति घर पर हैं वे अत्यंत प्रसन्न हैं और सुंदर नये वस्त्र पहनती हैं, परंतु जिनके पति परदेस में हैं। उन्हें इस त्योहार के प्रति इतना उत्साह नहीं है। निम्नलिखित लोकगीत के माध्यम से इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति हुई है—

‘सात जणी का झूमटा, हेरी मेरी सासड़ कोय सातों झूलण जायँ।
और सखी सब ऊजली, हेरी मेरी बहुअड़ राणी कोय तू क्यों मैले भेष।
औरों के बालम घर रहे, हेरी मेरी सासड़ राणी कोय म्हारे तो गये परदेस।
और सखी सब ब्हावड़ी, हे मेरी बहुअड़ राणी, कोय तू कित ला देई वार।
राही मुसाफिर मिल गया, हेरी मेरी सासड़ राणी, कोय झगड़ाँ से ला देई वार।
केसे थे वो गाबरू, हे मेरी बहुअड़ राणी, कोय केसी सूरत उनकी न्याहर।
रंग गौरा मुख पतला, हेरी मेरी सासड़ राणी, कोय बड़े जेठ उनकी न्याहर।
वाँ तो थे थारे बालमां, हेरी मेरी बहुअड़ राणी, कोय कस क्यूं नां पकड़ी थी बाँह।
कस का तो पकड़ूँ डह पड़ूँ, हेरी मेरी सासड़ राणी, कोय पैरों तो कोस पचास।
पैरों का मेंहदा ल्याइये, हेरी मेरी बहुअड़ राणी कोय नैणां में सूरमा स्याही।’

उपर्युक्त लोकगीत में स्नेहमयी सास, पति वियोग से व्याकुल नववधू की लज्जा, मर्यादा रक्षा की भावना की अभिव्यक्ति हुई है। पहले हरियाणा में कम उम्र में ही लड़के-लड़की की शादी कर दी जाती थी। ऐसी स्थिति में जब वर्षों बाद विवाहिता अपने पति से मिलती थी तो उसे पहचान नहीं पाती थी। उसी स्थिति का चित्रण इस लोकगीत में हुआ है। मातृ-वत्सला सास द्वारा पुत्रवधू की प्रत्येक मनोस्थिति को समझ लेने की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

अतः हरियाणवी लोकगीतों में नारी-मन की संपूर्ण भावाभिव्यक्ति देखी जा सकती है। बेटी, बहन, माँ, पत्नी, सास आदि नारी के विभिन्न रूपों की भावना और संवेदना लोकगीतों में समाहित है। आज के इस नारी-सशक्तिकरण के युग में नारी की दशा में काफी बदलाव आया है। यही बदलाव हरियाणवी लोकगीतों में चित्रित नारी की स्थिति में भी देखा जा सकता है। डॉ० भीमसिंह के शब्दों में—‘जीवन के राग-विराग, आकर्षण-विकर्षण तथा दुःख-सुख का जितना जीवंत, खरा और अविकल भावोद्रेकमय चित्त लोकगीतों की पंक्ति-पंक्ति में सुलभ होता है, उतनी ही निश्चल एवं सहज अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हृदय की पुकार अन्य विधाओं में दुर्लभ है।’²

संदर्भ

1. डॉ० शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश), पृ० 123
2. डॉ० भीमसिंह, हरियाणा के लोकगीत (सांस्कृतिक मूल्यांकन) आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली।

पत्नी श्री अनंतराम
गाँव व डाक सलारपुर
तहसील थानेसर,
जिला कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136 118
मो० 94162-18757

इक्कीसवीं सदी में हिंदी भाषाविषयक चिंतन और चुनौतियाँ : मीडिया (संचार माध्यमों) के विशेष संदर्भ में

डॉ० सुनीता देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी

के०वी०ए० डी०ए०वी० कॉलेज फॉर वुमन, करनाल।

भारत एक बहुभाषी देश है। फिर भी भारत में हिंदी ही सबसे ज़्यादा बोली और समझी जानेवाली भाषा है। आज ईटानगर, आइजोल से लेकर कच्छ और कन्याकुमारी तक कहीं पर भी हिंदी में भरपूर संवाद संपर्क किया जा सकता है। तमिलनाडु में तो हिंदी-विरोधी आंदोलन चलने के बावजूद हिंदी बोलने और समझनेवालों की कमी नहीं है।

वस्तुतः इक्कीसवीं सदी में हिंदी संपूर्ण भारत में संपर्क भाषा के रूप में स्वीकारी जाने लगी है। जिस प्रकार विश्वस्तर पर अँग्रेजी संपूर्ण विश्व की संपर्क भाषा बनकर उभरी है, उसी प्रकार हिंदी भी पूरे भारत में संपर्क भाषा अर्थात् मीडिया की भाषा के रूप में उभर रही है। हिंदी भारत के बड़े भू-भाग में बोली जानेवाली भाषा है। यह केवल हिंदीभाषियों की ही नहीं, अपितु हिंदीतर भाषियों की भी एकमात्र संपर्क भाषा है। निश्चित रूप से हिंदीभाषा राष्ट्रव्यापी और विश्वव्यापी संपर्क भाषा बन रही है।

हिंदी की जीवंत दशा का अन्य पक्ष प्रवासी भारतीयों का हिंदी के प्रति लगाव भी है। जिन हिंदीभाषी भारतीयों को अँग्रेजों द्वारा गिरमिटिया मज़दूर बनाकर ट्रिनिडाड, फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस, गयाना, टोबेगो ले जाया गया, उन्होंने अपनी मातृभाषा हिंदी को सुरक्षित रखा, उसे विस्मृत नहीं किया, अपितु उसे उत्तरोत्तर विकसित एवं पल्लवित करते रहे। फलतः उनकी अस्मिता के साथ जुड़ी हिंदी आज भी उन द्वीपों में पूरी जीवंतता के साथ सुरक्षित है। अन्य अनेक देशों में भी भारतवंशी हिंदी का प्रचार-प्रसार, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कर रहे हैं।

प्रवासी साहित्यकार अभिमन्यु अनंत, प्रो० हरिशंकर आदेश आदि साहित्यकार हिंदी में रचनाएँ लिखकर विश्वपटल पर हिंदी का प्रसार कर रहे हैं। अतः अब हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पहचान मिलने लगी है। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य भी अब हिंदी के अनुकूल हो रहा है। जहाँ विदेशी भारतीय हिंदी को अपनाते, उसे संवाद, संपर्क का माध्यम बनाने के लिए जागरूक दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि उनमें अपने देश की संस्कृति से जुड़ने की प्रबल चाह होती जा रही है, जिसे वे हिंदी के माध्यम से पूरा कर सकते हैं। 'द पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया' की

रिपोर्ट के अनुसार हिंदी दुनिया की दूसरी सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा का खिताब हासिल करने की ओर बढ़ रही है। अँग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व के बावजूद भी हिंदी को सशक्त संचार भाषा के रूप में स्वीकृति हासिल करना अच्छा संकेत है। वैश्वीकरण के इस दौर में जब अँग्रेजी के वर्चस्व की तिकड़में जारी हैं, वाकई यह ख़बर सुकून देने वाली है। अँग्रेजी के बढ़ते प्रचलन के बावजूद हिंदी का सशक्त संचार भाषा के रूप में स्वीकार्यता हासिल करना अच्छा संकेत है। लेकिन सर्वेक्षण का यह निष्कर्ष चिंता भी बढ़ाता है कि लोकभाषाओं की सिकुड़न जारी है।

आज इक्कीसवीं सदी में भी हिंदीभाषा संपर्क भाषा की कसौटी पर पूर्णतः खरी उतरी है। यद्यपि अँग्रेजी वैश्विक भाषा है, परंतु भारत के प्रिंट मीडिया और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया, दोनों में ही अँग्रेजी-हिंदी के सामने नहीं टिक सकती।

मीडिया से अभिप्राय आधुनिक संचार माध्यमों से है। मोटे तौर पर विचारों का आदान-प्रदान ही संचार है। मीडिया (संचार माध्यमों) को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. मुद्रण माध्यम (प्रिंट मीडिया) : समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, विज्ञापनपत्र, पैम्फलेट आदि।
2. इलैक्ट्रॉनिक माध्यम (इलैक्ट्रॉनिक मीडिया) : रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा, मोबाइल, इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि।

मुद्रण माध्यम : बात करें मीडिया की तो प्रिंट मीडिया में मुख्यतः समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि आती हैं। समाचार-पत्रों में हिंदीभाषा को विशेष लोकप्रियता मिली है। भारत में हिंदीभाषा-भाषी लोगों की अधिकता है। अतः हिंदी को बोलने और समझनेवाले जनसमूह में हिंदी समाचार-पत्रों की खपत अधिक है। आजकल देखा जाता है कि यद्यपि समाचार-पत्र तो हिंदी में छपा है, परंतु उसका शीर्षक अँग्रेजी में है जैसे नवभारत टाइम्स। इस प्रकार के शीर्षक संबंधित संस्था की हिंदीभाषा के प्रति हीनभावना का बोध कराते हैं। इतना ही नहीं, हिंदी समाचार-पत्रों के समाचारों के शीर्षकों, लेखों में अँग्रेजी शब्दावली धड़ल्ले से प्रयोग की जा रही है। इस प्रकार की खिचड़ी भाषा के प्रयोग के पीछे तर्क दिया जाता है कि 'यह आज के यूथ की भाषा है। आज का युवा इसी भाषा को बोलना और सुनना चाहता है।' समाचार-समूहों का यह तर्क आधारहीन सा जान पड़ता है। यह खिचड़ी भाषा युवाओं को इन समाचार-पत्रों के माध्यम से परोसी जा रही है, जिसका युवावर्ग आदी होता जा रहा है। युवा-वर्ग की चाह के नाम हिंदीभाषा का स्वरूप विकृत किया जा रहा है। यद्यपि हिंदी के शब्द-भंडार की वृद्धि हेतु अन्य भाषाओं की शब्दावली को अपनाना आवश्यक है। अवश्य ही अधिक प्रचलित शब्दों को अपनाकर हिंदीभाषा समृद्ध बनेगी। परंतु हिंदी समाचारपत्रों में अधिक मात्रा में अपनाई जानेवाली अँग्रेजी से हिंदी की अस्मिता को चोट पहुँचती है। हिंदी के पास तो शब्दों का भंडार है। एक शब्द के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग अथवा पर्यायवाची शब्द मिल सकते हैं। इस समस्या के निवारण के लिए समाचार-पत्र समूहों द्वारा हिंदी और हिंदी की जननी संस्कृत व प्रांतीय भाषाओं के शब्द-भंडार का प्रयोग किया जाना चाहिए।

समाचारपत्रों में इक्कीसवीं सदी में वैश्वीकरण के दौर में हिंदी साहित्य उपेक्षा का शिकार हुआ। मीडिया में पहले साहित्य को जो सम्मानजनक स्थान मिलता था, अब उसमें कमी हुई है।

पहले के समाचारपत्र विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से सामाजिक सराकारों से जुड़े रहते थे। समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों पर साहित्य के माध्यम से प्रहार करते थे। आज बाजारवाद के कारण अधिकांश समाचार-पत्रों ने भी अपना स्वरूप बदलते हुए साहित्य को हाशिये पर धकेल दिया है। साहित्य का स्थान फिल्मी चुहलबाजियों ने ले लिया है। समाचारपत्रों में साहित्य-पृष्ठ भी कम से कमतर होता जा रहा है। परंतु कुछ समाचार पत्र इस बाजारवाद की आंधी में आज भी हिंदी साहित्य के प्रति सम्मान का भाव यथावत रखे हुए हैं। साहित्य समाचार, साहित्य-सम्मेलन, संगोष्ठी, प्रसिद्ध साहित्यकारों से साक्षात्कार तथा अन्य हिंदी साहित्य विधाओं संबंधी लेख आदि से निःसंदेह हिंदी की दशा को सुधारा जा सकता है।

प्रिंट मीडिया में हिंदी का योगदान भारतेंदुयुग से ही रहा है। उस समय पत्र-पत्रिकाओं में राष्ट्र और समाज की चिंताएँ होती थीं। कहा जा सकता है कि उस समय का हिंदी साहित्य और प्रिंट मीडिया (पत्रकारिता) एक-दूसरे से संवाद करते हुए चल रहे थे, क्योंकि दोनों का लक्ष्य समाज और राष्ट्र की समस्याओं से जूझना था। उस समय का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण हिंदी साहित्यकार एक पत्रिका या पत्र जरूर निकालता था। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

पुस्तकों के रूप में प्रिंट मीडिया के अंतर्गत हिंदीभाषा और साहित्य-संबंधी एक समृद्ध भंडार है। पुस्तकीय साहित्य संचार माध्यम का एक सशक्त स्रोत है। भक्तिकालीन साहित्य जो कालजयी साहित्य है, इसके पश्चात आज तक का साहित्य भी प्रिंट मीडिया में विशिष्ट स्थान रखता है।

डॉ० स्मिता मिश्र के शब्दों में—‘साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का जो योगदान रहा है, वह क्षीण हो गया है। आज तो किताबों और लघु पत्रिकाओं के माध्यम से ही साहित्य प्रचार-प्रसार पा रहा है।... फिर भी इन पत्रिकाओं ने साहित्य की जो सेवा की है, उसे भुलाया नहीं का सकता।’²

21वीं सदी का युग वैश्वीकरण का युग है। आज संपूर्ण विश्व ग्लोबल विलेज (वैश्विक गाँव) के रूप में सामने आ रहा है। बाजारीकरण के इस दौर ने मीडिया को भी प्रभावित किया है। यद्यपि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया आज अधिक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है तथापि प्रिंट मीडिया के महत्त्व को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इलैक्ट्रॉनिक माध्यम : आज के युग में वही देश शक्तिशाली माना जाता है, जिसके पास सूचना-बल हो, जिसका सूचना-तंत्र मजबूत हो। रेडियो, दूरदर्शन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल के माध्यम से ऐसा सूचना-विस्फोट हुआ है, जिसके प्रभाव से सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) का वर्चस्व बहुत बढ़ गया है। भारत में वैश्वीकरण, आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण के परिप्रेक्ष्य में यह सोचना आवश्यक हो गया है कि यदि आम लोगों को इस टेक्नोलॉजी का लाभ पहुँचाना है, तो इसे भारतीय भाषाओं में सुलभ कराना आवश्यक है। आज सूचना-विस्फोट के फलस्वरूप अँग्रेजी का वर्चस्व भी सारे विश्व में कायम हो गया है। यदि कोई भाषा इस दौड़ में पिछड़ जाती है तो उसके निःशेष होने के खतरे भी बढ़ जाएँगे।

रोमन लिपि के बढ़ते प्रभाव के कारण विश्व की अनेक लिपियाँ समाप्त प्रायः हो गई हैं। हिंदी भी इस समस्या से अछूती नहीं है। आज **मोबाइल** के अधिक प्रचलन से मैसेज (संदेश)

का आदान-प्रदान बढ़ा है। इन संदेशों को रोमन लिपि के माध्यम से हिंदी में लिखा जाता है, जिससे देवनागरी लिपि के अस्तित्व को क्षति पहुँची है। अतः देवनागरी लिपि और हिंदीभाषा को बचाने के लिए तकनीकी विकास किया जाना आवश्यक है क्योंकि हिंदी को बचाने के लिए देवनागरी लिपि को भी बचाया जाना आवश्यक है।

यद्यपि इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों से हिंदी का विकास हुआ है तथापि हिंदीभाषा के स्वरूप को बचाने के लिए मानक स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। हिंदी भारत की भाषा ही नहीं अपितु इसमें रचित साहित्य भारत की संस्कृति, सभ्यता, समाज, परंपरा का संवाहक है। संचार माध्यमों के द्वारा हिंदी के स्वरूप को सहेजने की चुनौती हमारे समक्ष है। क्योंकि इससे न केवल हिंदी को अपितु देश की संस्कृति, सभ्यता, समाज, परंपरा को बचा पाएँगे।

हिंदी सिनेमा और दूरदर्शन भी इसमें अहम भूमिका निभा रहे हैं। चाहे प्रिंट मीडिया हो या इलैक्ट्रॉनिक मीडिया, दोनों में ही अँग्रेजी हिंदी के सामने नहीं टिक सकती। दूरदर्शन के धारावाहिक 'कौन बनेगा करोड़पति' की लोकप्रियता का कारण अमिताभ बच्चन की प्रसिद्ध शख्सियत के आकर्षण के साथ-साथ उनके द्वारा बोली जानेवाली हिंदीभाषा भी है, जिसकी मिठास से सारे देशवासियों के साथ भावनात्मक और संवेदनात्मक संबंध हैं। पिछले दिनों प्रसारित हो रहे इस कार्यक्रम में बंगाल से पधारी एक प्रतिभागी द्वारा बोली गई हिंदी को सुनकर जब अमिताभ बच्चन ने उनसे पूछा कि आपने इतनी अच्छी हिंदी कहाँ से सीखी? तो उन्होंने उत्तर दिया कि हिंदी फिल्मों और सीरियलों से।³ इसी प्रकार अनेक विदेशी हिंदी फिल्मों के संवादों से हिंदी सीखते हैं। हिंदी सिनेमा ने हिंदी को जन-जन तक पहुँचाने का काम तो किया है, किंतु इसका प्रयोग भाषा के तौर पर कम और व्यवसाय के तौर पर अधिक है। हिंदी फिल्मों केवल सारे भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी अत्यंत लोकप्रिय हो रही हैं, परंतु आजकल हिंदी- फिल्मों का एक नया दौर शुरू हो गया है। फिल्म तो हिंदी में होती है, परंतु उसका शीर्षक अँग्रेजी में होता है। जैसे-सिंह इज किंग, माई नेम इज खान, थ्री इडियट्स आदि। इस प्रकार नामकरण से कहीं-न-कहीं फिल्म-निर्माता-निर्देशक अथवा इनसे जुड़े अन्य व्यक्तियों की हिंदी के प्रति हीनभावना दिखाई पड़ती है। आज ऐसे दोषों से बचने की आवश्यकता है।

21वीं सदी में सिनेमा ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को लोकप्रिय बनाया है। 'कभी खुशी कभी ग़म' फिल्म का ही उदाहरण ले लीजिए, जिसमें अभिनेता, अभिनेत्री प्रवासी भारतीयों के रूप में दिखाए गए हैं। इस फिल्म में विदेश में भी माता-पिता अपने बच्चे को भारतीय राष्ट्रगान सिखाते हैं, पूजा आरती आदि आध्यात्मिक कार्य करते दिखाई देते हैं। ऐसी फिल्मों को देखकर प्रवासी भारतीयों को अपने देश, संस्कृति और अपनी जड़ों से जुड़ने का अहसास होता है। अतः हिंदी फिल्मों ने हिंदी भाषा, संस्कृति, सभ्यता का भूमंडलीकरण कर दिया है। विदेशों में रहने वाले भारतवासियों को अपने अवचेतन में बसी भारतीयता का मानस-चित्र सिनेमा में दिखाई देता है। सिनेमा में दिखाए गए तीज, त्योहार, रीति-रिवाज, पूजा-प्रार्थना, खान-पान, रहन-सहन, गीत, वैवाहिक रस्में, मानवीय मूल्य आदि उन्हें समग्र भारतीयता के दर्शन कराकर कल्पनात्मक और भावात्मक रूप से हिंदी भाषा और भारत देश से जोड़े रखते हैं।

वस्तुतः वैश्विक स्तर पर जो प्रभुत्व अँग्रेजी ने स्थापित किया है हिंदी ने भी अपनी पहचान बनाई है। यही कारण है कि आज देश में अच्छी हिंदी (खड़ीबोली) में संवाद करना

इज़तदार और प्रभावपूर्ण माना जाता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी ने जितनी लोकप्रियता हासिल की है उतनी राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति नहीं सुधरी है। इसके लिए सरकारी स्तर पर प्रयास किये जाने के साथ-साथ भारतीयों को भी अपनी भाषा को सम्मान देने की आवश्यकता है। 10 से 12 जनवरी, 2012 तक हंसराज कॉलेज, दिल्ली में 'हिंदी के वैश्विक परिदृश्य पर अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी' में फिजी के राजदूत श्री योगेशकरण ने भारत में हिंदी के घटते प्रयोग और सम्मान को देखकर कहा था कि मैं भारत आकर यह नहीं समझ पा रहा कि मुझे यहाँ से फिजी में हिंदी ले जानी है या फीजी से हिंदी यहाँ लानी है।

विज्ञापन के क्षेत्र में भी हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। हिंदी भारत के व्यापारिक केंद्र की भाषा है। इसीलिए व्यावहारिक लेन-देन में इसी भाषा की ज़रूरत होती है। अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि यदि उन्हें अपने उत्पाद को आम जन तक पहुँचाना तो उन्हें हिंदीभाषा का सहारा लेना ही पड़ेगा। अतः विज्ञापन की भाषा भी हिंदी होती जा रही है। भारत के अधिक भू-भाग पर बोलीजाने वाली भाषा होने के कारण हिंदी बाज़ार की आवश्यकता बन गई है। चीन, अमेरिका आदि देशों के युवा भारत में अपना व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से हिंदीभाषा सीख रहे हैं क्योंकि मध्यमवर्गीय भारतीय समाज में अपने सामान की खपत बढ़ाने के लिए उन्हें हिंदी सीखनी ही पड़ेगी।

रेडियो से हिंदीभाषा और साहित्य का बहुत विकास हुआ है। रेडियो पर अनेक कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित किए जाते हैं जिससे हिंदी सशक्त भाषा के रूप में सामने आयी है। रेडियो के माध्यम से लगातार समाचार-वाचन, अच्छी कविताओं, कहानियों का प्रसारण होता रहता है। अनेक महत्वपूर्ण हिंदी साहित्यिक संगोष्ठियों, समारोहों के प्रसारण से भी हिंदी को बल मिला है। हिंदी में प्रसारित होने वाले कार्यक्रम जैसे हिंदी समाचार, विभिन्न विषयों पर आधारित गोष्ठियों, काव्य-पाठ, गज़ल, शायरी, गीत से संबंधित कार्यक्रम भी हिंदीभाषा में होने के कारण हिंदी आमजन तक पहुँची है, लोकसमाज में मानक हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ है।

इंटरनेट या सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) के क्षेत्र में हिंदी के लिए नई राह खुल चुकी है। हिंदी की माँग को देखते हुए सन् 2004 में माइक्रोसॉफ्ट ने वेब दुनिया से मिलकर अपना हिंदी पोर्टल शुरू किया। गूगल ने भी हिंदीभाषियों के लिए इंटरनेट पर कई सेवाएँ शुरू की हैं। आज हिंदी के अधिकतर लोकप्रिय समाचार-पत्र अब इंटरनेट पर उपलब्ध हैं तथा हिंदी पत्रिकाओं और वेबसाइटों की संख्या में तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है। इंटरनेट और सेटेलाइट माध्यमों से अनेक जटिल भाषाओं का हिंदी में अनुवाद और भाषांतरण भी किया जा रहा है। वास्तव में इंटरनेट के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग के लिए प्राप्त सुविधाओं के संबंध में आज भी जागरूकता की कमी है। यदि इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) को भारत में सही अर्थों में लाना है तो उसकी वाहक हिंदी ही बन सकती है। कंप्यूटर के लाभ यदि देश के आमजन तक पहुँचाने हों तो उसका उपयोग उनकी अपनी भाषा में किया जाना चुनौती है।

कोई भाषा तभी बढ़ती है, जब उस भाषा में रोजगार के अवसर उपलब्ध हों। उससे ज्ञान और शिक्षा का सांगठनिक प्रबंधन हो सके। अतः हिंदीभाषा को भी रोजगार परक बनाये जाने की आवश्यकता है, जो प्रयोजनमूलक रूप से चल रही है जिस प्रकार अँग्रेजी इंटरनेट, कंप्यूटर, वैश्विक शिक्षा, विज्ञान आदि सभी प्रकार के सरोकारों की भाषा है उसी प्रकार हिंदी का भी इन

सरोकारों से नाता जुड़ता जा रहा है। आज हिंदी भी विश्वस्तर की भाषा कहलाने की अधिकारिणी हो गई है। आज हिंदी बिना किसी सरकारी दबाव के बावजूद संपर्क भाषा, बाज़ार, मीडिया की भाषा बन गई है। इसमें तकनीकी विकास से इसे और अधिक रोज़गार परक भी बनाया जा सकता है। 21वीं सदी में हिंदी वैश्वीकरण के दौर में बाज़ारीकरण, उदारीकरण के कारण पूरे विश्व में छाई हुई है। विज्ञापन की दुनिया तो हिंदी पर ही निर्भर है। अतः कहा जा सकता है कि हिंदी आज बहुत अच्छी स्थिति में है और इसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसके साथ विविध क्षेत्रों में हिंदी का उत्तरोत्तर विकास किए जाने की चुनौती को भी स्वीकार करने की आवश्यकता है।

‘हिंदी के विद्वानों के लिए भी चिंतन का वक़्त है कि उसे पांडित्यपूर्ण आडंबरों से मुक्त करके आम आदमी की भाषा बनायें। उसें उर्दू से लेकर तमाम प्रांतीय भाषाओं व लोकभाषाओं के शब्द शामिल करें ताकि हिंदी एक ऐसे समुद्र के रूप में विकसित हो सके, जिसमें सभी लोकभाषाओं की नदियाँ समाहित होती हों। इससे हिंदी में करोड़ों लोगों को अपनी माँ बोली की महक महसूस होगी। सही मायनों में इससे हिंदी का कुनबा बड़ेगा ही।¹⁴

संदर्भ

1. ‘छा गई हिंदी’ (सम्पादकीय), दैनिक ट्रिब्यून, शुक्रवार, 8 मार्च, 2013
2. डॉ. स्मिता मिश्र, मीडिया और साहित्य, नार्थ इंडिया पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ० 75
3. सोनी चैनल, टेलीविजन
4. ‘छा गई हिंदी’ (सम्पादकीय), दैनिक ट्रिब्यून, शुक्रवार, 8 मार्च, 2013

पत्नी श्री अनंतराम
गाँव व डाक सलारपुर,
तहसील थानेसर,
जिला कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136 118
मो० 94162-18757

मीराबाई के काव्य में प्रेम-निरूपण

डॉ. सुनीता देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी

के०वी०ए० डी०ए०वी० कॉलेज फॉर वुमन, करनाल।

‘प्रेम’ शब्द ‘पीञ्’ धातु से उणादि-सूत्र ‘सर्व धातुभ्यः’ से मनिन् प्रत्यय लगाकर बनता है, जिसका अर्थ है—प्रीति देनेवाला, अनन्त तृप्ति प्रदान करनेवाला। मनुष्य के मन में अनेक भावों का आवागमन होता रहता है। इन भावों में प्रेमभाव प्रमुख है। ‘प्रेम’ प्रिय शब्द का भाववाचक रूप है। ‘प्रिय’ शब्द का अर्थ है—तृप्तिकारक अर्थात् प्रेम शब्द से हृदय के तृप्ति रूप आनन्द का बोध होता है। युगों-युगों से मनुष्य इस प्रेमभाव को अभिव्यक्त करता रहा है।

मीराबाई के काव्य का मूल स्वर प्रेम है तथा उसके एकमात्र आलंबन श्रीकृष्ण हैं। भक्तों की शब्दावली में इसे ‘प्रेमाभक्ति’ अथवा माधुर्योपासना भी कहा जा सकता है। महामुनि शांडिल्य ने ‘ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति अथवा निरतिशय अनुराग को ही भक्ति (प्रेमाभक्ति) माना है—‘सा परानुरक्तिरीश्वरे।’¹

‘नारद भक्तिसूत्र’ में प्रेम को अनुभवैकगम्य माना गया है। प्रेम वाणी का विषय नहीं है, वरन् मूकास्वादनवत् अनिर्वचनीय है। यह पहले तो विषयजन्य होता है, गुणों के कारण उत्पन्न होता है, किंतु बाद में भावात्मक विषय निरपेक्ष बन जाता है—

‘अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्।

प्रकाशते ववापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं।

प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छन्नं सूक्ष्मतरमनुभवस्वरूपम्।²

महर्षि शांडिल्य द्वारा कथित ईश्वर के प्रति ‘परानुरक्ति’ की महाकवि तुलसीदास ने बड़ी ही मनोवैज्ञानिक व्याख्या इस प्रकार लिखी है—

‘कामिहिं नारि पिआरि जिमि, लोभिहीं प्रिय जिमी दाम।

तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम।³

मीराबाई के अनेक पद भी उसके प्रेमाभक्ति की उपासिका होना ही सिद्ध करते हैं। अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम न तो वासना है और न ही बंधन अपितु प्रेम हृदय की उदात्त, परिष्कृत भावना है, जो मन और भावों को विशुद्ध बनाती है तथा मनुष्य के अहं का नाश करती है।

प्रेम और भक्ति एक ही साधना के दो अंग हैं। लोक में जो प्रेम अपनी पराकाष्ठा में वासना में परिणत होता है, आध्यात्मिक क्षेत्र में वही प्रेम भक्ति का रूप धारण करता है। मीराबाई

की भक्ति भी प्रेमभक्ति के अंतर्गत आती है। मीराबाई की प्रेमाकूलता नितांत वैयक्तिक थी। शास्त्रों के आधार पर मीराबाई की गहन प्रेमानुभूति का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। मीराबाई अपने गिरधरलाल के प्रेम में निमग्न है। वैधव्य के फलस्वरूप जीवन में आए शून्य एवं सम्बन्धियों से मिली प्रताड़ना के कारण वह श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख होती चली गई—

‘मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई।

अतः मीराबाई अपने आराध्य को अपना प्रेमी ही नहीं, अपितु पति के रूप में भी स्मरण करने लगीं। गिरधर गोपाल को अपना सच्चा प्रियतम बताते हुए मीराबाई कहती हैं—

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।

गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।

प्रेम या भक्ति का उन्मेष गुणों के चिंतन के आधार पर होता है, जबकि प्रणय की उत्पत्ति प्रमुखतः सौंदर्याकर्षण के कारण होती है। अन्य कारणों से भी प्रणय उत्पन्न हो सकता है, किंतु रूप का प्रभाव उसमें गौण नहीं रहता। प्रणय का प्रथम अंकुर तो रूपजन्य प्रभाव से ही उत्पन्न होता है। प्रिय के अन्य गुण उस अंकुर को विकसित होने में सहयोग देते हैं। मीराबाई का प्रेम भी अपने आराध्य के सौंदर्याकर्षण पर आधारित है—

या मोहन के मैं रूप लुभानी,

सुंदर बदन कमलदल लोचन, बाँकी चितवन मंद मुसकानी।

उपर्युक्त पंक्तियों में मीराबाई ने अपने प्रियतम का रूपचित्रण अत्यंत शिष्ट एवं शालीन किंतु अनुभूतिपूर्ण शब्दों में किया है, जिसमें नखशिख के साथ बाँकी चितवन और मंद मुस्कुराहट का भी निरूपण हुआ है।

लौकिक दृष्टि से मीराबाई के पति कोई और भी थे, किंतु मीराबाई उसका स्पष्ट निषेध करती है। वह तो गिरिधर को ही अपना वास्तविक पति—‘सांचो प्रीतम’ बताती हैं।

विरह ‘प्रेम’ की कसौटी है और यही प्रेमतत्त्व का सार है, जिसमें प्रत्येक क्षण वियोग अपने प्रियतम के वियोग में विरह-व्याकुल रहता है। मीराबाई भी अपने ‘श्रीकृष्ण’ के वियोग में ‘जल बिन मीन’ की भाँति छटपटाती दिखाई पड़ती हैं—

दरस बिन दुखन लाग नैन।

जबसे तुम बिछुड़े मोरे प्रभु जी, कबहुं न पायो चैन।

सबद सुणत मेरी छतियां कम्पै, मीठे लागै बैन।

विरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत - क्षेम।

कल न परत, हरि भग जोवत भई छमासी रैण।’

इस प्रेम-वियोगिनी को अपने प्रियतम के बिना कभी चैन नहीं मिलता। उसे तो एक रात ही छः महीने के बराबर लगती है। वह तो पपीहे की भाँति पिया-पिया की रट लगती रहती है। ‘पिया बिना रह्योइ न जाइ।’ तथा ‘होली पिया बिन लागै खारी।’ कहकर वह अपनी वियोग-व्यथा को अभिव्यक्त करती है। विरह व्याकुल यह वियोगिनी अपनी अकथनीय व्यथा इन शब्दों में सुनाती है—‘हेरी मैं तो दरद दीवानी, मेरो दरद न जाणै कोय।’

‘श्याम’ के विरह में मीराबाई की नींद ही नष्ट हो गई तथा सारी रात प्रियतम के आने

की राह देखते ही बीत गई। 'श्याम' (पिया) को देखे बिना उसे एक पल भी चैन नहीं मिलता और अब उसने रूठने का मन बना लिया है—

सखी री! मेरी नींद नसानी हो।
पिया को पंथ निहारत, सब रैन बिहानी हो।
सखियन मिल के सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिना देखै कल ना पड़ै मन रोसणा ठानी हो।

प्रेम-वियोगिनी मीराबाई एक क्षण के लिए भी अपने प्रियतम का विस्मरण नहीं करतीं। दिन-रात उनके हृदय में विरहाग्नि धधकती रहती है। मीराबाई इस वियोग की घड़ी में अपने प्रियतम को संदेश भेजना चाहती हैं तथा उसकी इस निष्ठुरता पर खीझ प्रकट करना चाहती हैं—

काई कहियो रे प्रभु आवन की
आप न आवै, लिख नहीं भेजै, बाण पड़ी ललचावन की।
एक दोइ नैण कह्यौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।

यह मीराबाई के विरह की छटपटाहट ही है कि अपने प्रिय को देखे बिना उन्हें अब जिंदा रहना अत्यंत कठिन दिखाई पड़ता है और वह अपने प्रियतम का आह्वान करती हैं कि वह मुझे आकर दर्शन दें, क्योंकि उन्हें देखे बिना अब उससे रहा नहीं जाता—

प्यारे दरसण दीज्यो आप, तुम बिन रह्यौ न जाय।
जल बिनु कंवल, बंद बिनु रजनी,
ऐसे तुम देख्यां बिनु सजनी।

मीराबाई के ऐसे अनेक पद हैं, जिनमें वह अपने प्रिय को उसे दर्शन देने के लिए अनुनय विनय करती हैं। कभी वह स्वयं को 'श्रीकृष्ण की जनम-जनम की दासी' कहकर अपने प्रेम की एकनिष्ठता एवं अनन्य भावना का परिचय देती हैं तो कभी 'क्यूँ तरसावौ अंतरजामी' कहकर करुणापूर्ण अनुनय करती हैं।

मीराबाई द्वारा प्रयुक्त 'पिया' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से केवल 'प्रिय' का सूचक है, किंतु राजस्थानी भाषा में वह 'पति' के अर्थ में रूढ़ हो गया है, उनके विश्वास के अनुसार वे जन्म-जन्म से श्रीकृष्ण की ही प्रेयसी अथवा पत्नी हैं, अतः इस जन्म में भी वे उसी संबंध का पालन करती हैं—'पूरब जनम की प्रीत हमारी अब नहिं जात निवारी।'

इसी प्रकार मीराबाई कहती हैं—'पूरब जनम की प्रीत पुराणी सो क्यूँ छोड़ी जाय।'

एक अन्य पद में वे अपने आराध्य को 'पूर्वजन्म का साथी' मानती हुई अपने संबंध को जन्म-जन्मांतर तक चलनेवाला बताती हैं। संभवतः मीराबाई की उपासना का लक्ष्य न तो स्वर्ग है और न ही मुक्ति। वह तो केवल अपने प्रियतम का सान्निध्य एवं तादात्म्य ही जन्म-जन्मांतरों तक पाना चाहती हैं।

एक तरफ़ तो मीराबाई को अपने प्रियतम के बिना नींद नहीं आती तथा उन्हें एक रात छः महीने के बराबर लगती है। दूसरी तरफ़ पपीहा अपने मीठे स्वर से उनके हृदय पर आघात कर उसकी प्रणयानुभूति को अधिक गंभीर बना देता है। अपने 'पीव पीव' के स्वर से वह उस विरह-वियोगिनी के दग्ध हृदय पर नमक छिड़क रहा है—

रे पपइया प्यारे कब को बैर चितार्यौ!

मैं सूती छी अपने भवन में पिय पिय करत पुकारयौ।
दाझ्या ऊपर लूण लगायो, हिदड़ै करवत सारयौ।

मीराबाई किसी संप्रदाय विशेष में दीक्षित नहीं थीं तथा उन पर किसी विशेष संप्रदाय का प्रभाव भी नहीं था। फिर भी मीराबाई की भक्तिपद्धति अथवा 'प्रेमाभक्ति' पर प्रकाश डालते हुए डॉ० प्रभात ने कहा है, 'वैष्णव भक्तिदर्शन एवं विशेषतः रामानंद की प्रपत्ति 'चैतन्य की माधुर्य भक्ति एवं माधवेंद्रपुरी' की गोपाल पूजा का मीराबाई की भक्तिपद्धति पर परोक्ष-अपरोक्ष प्रभाव पड़ा था। सच तो यह है कि मीराबाई की प्रेमाभक्ति, उनकी तीव्र एवं अनन्य प्रेमाकुलता नितांत वैयक्तिक थी। भक्तिशास्त्र में उल्लिखित परंपरागत उपासना-पद्धतियों के आधार पर मीराबाई की गहरी प्रेमानुभूति एवं उत्कट विरह-व्यथा का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।'⁴

मीराबाई की प्रेम-भावना तो सर्वथा अनिर्वचनीय है। शब्दों में उनके प्रेम और विरह को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं है। मीराबाई तो अपने आराध्य 'श्रीकृष्ण' के प्रेमरस में आकंठ डूबी हैं।

विरह ही 'प्रेम' का सार तत्त्व है। मीराबाई को अपने प्रियतम के बिना एक क्षण भी चैन नहीं मिलता। अपने प्रभु के विरह में व्याकुल मीराबाई अपनी स्थिति को व्यक्त करते हुए कहती हैं—

पंथ निहारूँ, डगर बुहारूँ, अभी मारग जोई।

मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होई।

'दरद दीवानी' मीराबाई वस्तुतः कृष्ण के अलौकिक प्रेम के उन्माद में मग्न थीं। प्रेमोन्माद में डूबी होने के कारण वह अपनी सुध-बुध खो बैठी थीं। वह आनंदातिरेक के कारण नाच उठती हैं—

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।

मैं तो मेरे नारायण की, हो गई आपहिं दासी रे।

सावन के महीने में आकाश में बादल उमड़ते हैं तो मीराबाई की विरह-व्यथा और बढ़ जाती है। मीराबाई को आभास होता है कि बादलों की मधुर गर्जना ही उनके प्रियतम के आवागमन का संकेत है। इस प्रकार वह प्रियतम के काल्पनिक मिलन में हर्षविभोर हो उठती हैं—'फागुन के दिन चार रे, होली खेल मना रे।' ऐसा कहकर मीराबाई फागुन के मदमस्त कर देनेवाले मास में भी अपने प्रियतम के मिलन की कल्पना करती हैं।

मीराबाई के 'प्रणयभाव' में 'दास्यभाव' का भी समावेश है। 'दास्यभाव' के कारण ही वह गिरधारी की चाकरी करने की प्रार्थना करती हैं, क्योंकि चाकरी करते हुए उन्हें प्रतिदिन अपने आराध्य (गिरधारी) के दर्शन हो सकेंगे—

मनै चाकर राखो जी, गिरधारी मने चाकर राखो जी

चाकर रहस्युं बाग लगास्युं नित उठ दरसण पास्युं।

मीराबाई अपने 'प्रियतम' को जोगी के नाम से भी पुकारती हैं। जिस कारण प्रियतम से मिलने से पूर्व का विरह असहनीय होता है, परंतु मिलन के पश्चात् तो बिछुड़ना असहनीय पीड़ादायक होता है। जब मीराबाई के जोगी (आराध्य श्रीकृष्ण) दीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात् उन्हें मिलते हैं तो वह अपने जोगी को उसे छोड़कर न जाने की अनुनय विनय करती हुई कहती हैं—

जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पांड़ परूँ मैं तेरे।

प्रेम भगति को पैँडो ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा।

मीराबाई का 'प्रेमभाव' अनन्य आत्मसमर्पण की उदात्त भावना से प्रेरित है। यह भावना उस उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित है, जो लोकोत्तर और अतीन्द्रिय है। उस दिव्य भावोन्माद में मीराबाई कभी विरह के गीत गाती हैं, तो कभी मिलन के। परंतु मीराबाई के काव्य का मूल स्वर तो विरह ही है। 'प्रेम' की लगन के दर्शन नहीं होते और वह अपनी तड़प को इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी।

तुम देखे बिन कल न परति है, तलफि-तलफि जिव जासी।

मीराबाई की इस विरह-विदग्धता से युक्त अनेक पद हैं, जो अत्यंत सहज, स्वाभाविक उद्गार से प्रतीत होते हैं। उनकी यही निश्छल प्रेमभावना, सहज ही मन को छू लेती है। मीराबाई के पदों में 'श्रीकृष्ण का लोकहितकारी' तथा 'शरणागतवत्सल' रूप भी दिखाई पड़ता है। कहीं-कहीं 'संसार की नश्वरता पर अवसाद' तथा 'संसार से विरक्ति' का भाव भी समाहित है। परंतु अधिकांश पदों में 'प्रणयभाव' ही विद्यमान है, जिसमें विरह-व्यथा की अधिकता है। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में भी वह अपने प्रियतम (आराध्य) से यही पुकार करती हैं—

साजन सुध ज्यूँ जाणै त्यूँ लीजे हो।

तुम बिन मोरे और न कोई, क्रिपा रावरी कीजे हो।

अतः मीराबाई के काव्य में हृदय की जो सहज मंजुल धारा अजस्र रूप से प्रवाहित रही है, वह उनके काव्य की निजी विशिष्टता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ये शब्द मीराबाई के प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते दिखाई पड़ते हैं—'पति' प्रेम के रूप में ढले हुए भक्तिरस ने मीराबाई की संगीतधारा में जो दिव्य माधुर्य घोला है वह भावुक हृदयों को ओर कहीं शायद ही मिले।⁵

संदर्भ

1. शांडिल्य भक्तिसूत्र 2
2. नारद भक्तिसूत्र 51-52
3. रामचरितमानस, उत्तरकांड 130
4. मीराबाई, डॉ. प्रभात, पृ० 368
5. मीरा की प्रेम-साधना, प्रस्तावना, पृ० 2

पत्नी श्री अनंतराम
गाँव व डाक सलारपुर,
तहसील थानेसर,
जिला कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136 118
मो० 94162-18757

जयशंकर प्रसाद के काव्य में लोकमंगल की भावना

डॉ. सुनीता देवी

सहायक प्रोफेसर

कु०वि०आ०डी०ए०वी० महिला महाविद्यालय

करनाल (हरियाणा)

‘लोकमंगल’ लोक और मंगल दो शब्दों से मिलकर बना है। शब्दकोश में ‘लोक’ का अर्थ है—संसार, जगह, विश्व का विशेष भाग, प्रजा, लोग, जनसाधारण आदि।¹ अतः यहाँ पर ‘लोक’ शब्द से अभिप्राय लोकनिवासियों, जनसमूह अथवा सर्वसाधारण या मानव समाज से हुआ। ‘मंगल’ का अर्थ है—सौरजगत का एक ग्रह, सात वारों में से एक, विवाह, शुभ, अच्छा, शुभ करने वाला, कल्याण आदि। अतः ‘लोकमंगल’ का सामान्य अर्थ ‘सर्वसाधारण का कल्याण’ माना जाता है।²

पुरातनकाल से काव्य में लोकमंगल की भावना को स्थान देना कविकर्म का मुख्य उद्देश्य रहा है। काव्यप्रयोजन के संबंध में आचार्य मम्मट की उक्ति बड़ी प्रसिद्ध है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये,

सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।³

इनमें से ‘शिवेतर’ का नाश अथवा मंगलतत्त्व महत्त्वपूर्ण होता है। ‘मंगल’ के साथ ‘लोक’ शब्द की अभिव्यंजना स्वतः हो जाती है। काव्य का लोकमंगल के साथ घनिष्ठ संबंध है। हिन्दी साहित्य में लोकमंगल की धारा सतत् प्रवाहित रही है। छायावादी कवियों ने भी अपने काव्य में लोककल्याण का समावेश कर अक्षयकीर्ति का वरण किया है।

जयशंकर प्रसाद ने भी मानव के पूर्ण विकास की ओर अथक प्रयास करते हुए लोकमंगल की परंपरा को आगे बढ़ाया है। प्रसाद के काव्य में मानव की कमजोरियों का परिष्कार मनोवैज्ञानिक ढंग से कर जीवन का पूर्णत्व प्रस्तुत किया है। उनकी यथार्थवादी दृष्टि छायावादी लोकमंगल को ठोस रूप प्रदान करती है। वह केवल कल्पना और आदर्शों के संसार की वस्तु नहीं रहती। यथार्थवाद के कारण ही उन्होंने संतुलन का मार्ग अपनाया जिसका पूर्ण परिपाक समरसता के रूप में हुआ।

प्रसाद की प्रसिद्ध रचना ‘झरना’ से छायावादी लोकमंगल का श्रीगणेश हुआ। इस संग्रह की रचनाएँ उस समय की हैं, जब प्रसादजी मांसल सौंदर्य की ओर आकर्षित हुए। जीवन के अमर तत्त्वों का खोजी कवि सौंदर्य के प्रेरित करने वाले रूप को जीवन में उतार लाना चाहता है। सौंदर्य के शोषित और स्वार्थपूर्ण रूप से कवि अनजान है और सौंदर्य का जीवन में पूर्ण विकास चाहता है। इसीलिए ‘प्रसाद’ लोलुप मधुप को चेतावनी देते हुए लिखता है—

न आशा कर तू अरे! अधीर, कुसुम रज-रस ले लूँगा गूँदा।
 फूल है नन्हा-सा नादान, भरा मकरंद एक की बूँदा।⁴
 'अतिथि' कविता में प्रेम का मंगलकारी रूप प्रकट हुआ है। कवि का 'प्रेम' घर बसाने
 वाला है—

हृदय-गुफा थी शून्य, रहा घर सूना।
 इसे बसाऊँ शीघ्र, बड़ा मन दूना।⁵

जयशंकर प्रसाद अपने व्यक्तिगत सुख-दुखों को समाज-सापेक्ष प्रसार चाहता है।
 लोकमंगल का इच्छुक कवि हरियाली की कामना करता हुआ लिखता है—

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर-फिर आवेगी?
 वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली छावेगी।⁶

'आँसू' काव्य-संग्रह में आशा-निराशा का स्वस्थ संघर्ष दिखाई देता है। इसमें आदर्श
 प्रणय के दर्शन होते हैं और प्रेम का अशरीरी चित्रण किया गया है। 'आँसू' के विरह का महत्त्व
 सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। इसमें सौंदर्य का मंगलकारी स्वरूप प्रकट हुआ है। प्रेम के
 मर्यादित रूप के साथ आधुनिकता के अनुकूल नारी का स्वाभिमान और अपने अधिकारों के प्रति
 सजगता भी दिखाई देती है। प्रेम मांगलिक और सांस्कृतिक उपादानों के साथ उपस्थित होकर कवि
 के हृदय में कौतूहल उत्पन्न करता है—

शशि-मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए,
 जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए।⁷

इन पंक्तियों में प्रयुक्त शब्द घूँघट, अंचल, दीप, गोधूलि-वेला आदि सौंदर्य के श्रद्धेय
 रूप को प्रकट करते हैं। यह सौंदर्य अपने अंतर में अपार शक्ति को छिपाए हुए मंगलकारी परिणाम
 को प्रकट करता है। 'आँसू' काव्य-संग्रह में सुख, दुख, प्रेम, विरह, सौंदर्य आदि का सुंदर समन्वय
 होने के कारण मानवता का श्रेष्ठ रूप उभरा है—

सबका निचोड़ लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में,
 बरसो प्रभात हिमकण-सा, आँसू इस विश्व-सदन में।⁸

'आँसू' काव्य-संग्रह के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—'प्रसादजी की यह
 पहली काव्य-रचना है, जिसने बहुत लोगों को आकर्षित किया। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और
 विचित्रता के भीतर प्रेम-वेदना की दिव्य विभूति का विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का सुख
 और दुःख दोनों को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौंदर्य और मंगल
 के संगम का भी आभास पाया जाता है।'⁹

'लहर' काव्य-संग्रह में लोकमंगल की भावना के विभिन्न स्वर मुखरित हुए हैं। इसमें
 कवि ने अपने विचारों की परिपक्वता और सुसंयत स्वरूप को प्रस्तुत किया है। प्रेम का उदात्त
 स्वर प्रकट हुआ है। विश्वकल्याण की कल्पना करते हुए 'जगती की मंगलमयी ऊषा बन' और
 'अरी बरुणा की शांत कछार' कविताओं में महात्मा बुद्ध के प्रति श्रद्धा प्रकट की है। 'अशोक
 की चिंता' कविता में कलिंगविजय में भीषण नर संहार को देखकर सम्राट अशोक की चिन्ता के
 माध्यम से कवि ने विश्वकल्याण के उच्च-ध्येय को प्रस्तुत किया है—

भुनती वसुधा तपते नग, दुखिया है सारा जग,

बह रहा बन करुणा की तरंग, जला है यह जीवन पतंग।¹⁰
 कवि का आशावादी स्वर और नवनिर्माण के प्रति आस्था भी प्रकट हुई है—
 अब जागो जीवन के प्रभात।
 वसुधा पर ओस बने बिखरे हिमकण आँसू जो क्षोभ भरे,
 ऊषा बटोरती, अरुण गाता।¹¹

‘शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण’ में अतीत का गौरव प्रकट हुआ है। इस कविता में भारत का सारा गौरव, अतीत का सुखद वैभव, भारतीय दर्शन, आदर्श, शूरवीरता सब समवेत स्वर में साकार हो उठे हैं। ‘पेशोला की प्रतिध्वनि’ कविता में कवि ने महाराणा प्रताप की वीरता और स्वाभिमान को पुनर्जागृत करना चाहा है। ‘प्रलय की छाया’ कविता में कमला के अंतर्द्वंद्व के माध्यम से सौंदर्य के चिरंतन और अचिरंतन रूपों में अंतर स्पष्ट किया है। ‘लहर’ की सभी कविताओं में कवि ने जीवन के आशा का संचार कर एक संतुलन बनाने का प्रयास किया है। प्रसादजी स्वार्थ भाव को नष्ट करके समाज में दया, करुणा, ममता, परस्पर सहानुभूति जैसे मानवीय भावों को स्थापित कर संसार का नवनिर्माण करना चाहते हैं।

कामायनी में प्रसाद जी ने डार्विन के विकासवाद से प्रेरित होकर मनुष्य के जीवन के विकास की कहानी को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। प्रस्तुत कृति में कवि ने जीवन में पूर्णत्व लाने का सफल प्रयास किया है। ‘कामायनी’ के नायक ‘मनु’ मन के प्रतीक होते हुए भी मन की सत्ता के प्रति विद्रोह करते दिखाई देते हैं और श्रद्धा के संपर्क में आकर आत्मसुखवाद का पोषण करते हैं। संघर्ष के बाद जब श्रद्धा मनु को ढूँढ लेती है, तो मनु की मनःस्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो जाती है। उसी मनु के मुख कवि ऐसी बातें कहलवायी हैं, जो त्यागमयी श्रद्धा को ईर्ष्यावश छोड़कर चला गया था—‘तुम अपने सुख से सुखी रहो, मुझको दुख पाने दो स्वतंत्र’।¹²

आत्मसुखवाद और स्वार्थभावना का विरोध करते हुए श्रद्धा मनु को अपने सुख का विस्तार करने का संदेश देते हुए कहती है—

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ,
 अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।¹³

प्रसाद ने नारी के अनेक आदर्श रूपों को भी उभारा है। कामायनी में नारी श्रद्धा, माँ, उपदेशिका और कल्याणी और चिरंतन सौंदर्य की अधिष्ठात्री है, जिसमें निर्माण की शक्ति और जीवन में समरसता स्थापित करने की अद्भुत क्षमता है। श्रद्धा के साहचर्य के बिना मनु का जीवन असहाय हो गया था। उस असहाय मनु को श्रद्धा अनेक स्थलों पर सँभालती है, इसीलिए तो कवि ने लिखा है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में,
 पीयूष स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।¹⁴

श्रद्धा मनु को सत्यमार्ग पर लेकर जाती है। वह मनु के भावों का विस्तार चाहती है ताकि मानवता का पूर्ण विकास हो—‘दया माया ममता लो आज, मधुरिमा लो अगाध विश्वास’।¹⁵

कामायनी में कर्म, कर्म का विस्तार, कर्तव्यबोध, सृजनात्मकता, संतुलन आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। श्रद्धा मनु को मानवता की बेल को संपूर्ण विश्व में फैलाने के लिए प्रेरित करती है। कवि की कामना है कि संपूर्ण मानवता विजयिनी हो जाए। वे श्रद्धा के मुख से

कहलवाते हैं—

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।¹⁶

मानव-विकास के लिए श्रद्धा और बुद्धि का समन्वय आवश्यक है। इसीलिए श्रद्धा मानव का हाथ इड़ा के हाथ में देती हुई कहती है—

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय, तू मननशील कर कर्म अभय;
इसका तू सब संताप निश्चय, हर ले लो मानव भाग्य उदय।¹⁷

कठोर मनु का हृदय भी अब सरस बन गया है और वह श्रद्धा के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है। वस्तुतः श्रद्धा की कल्पना कर प्रसादजी उच्च मानवीय भावों की स्थापना करना चाहते थे, परस्पर सौहार्दपूर्ण व्यवहार बनाना और सहानुभूति की भावना का प्रसार करना चाहते थे, जिससे विश्वबंधुत्व और श्रद्धावाद की स्थापना हो सके। श्रद्धा सर्ग में कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि समरसता से ही विषमता को दूर किया जा सकता है और भूमा की विराट शक्ति का आभास होता है—

विषमता की पीड़ा से व्यस्त, हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही दुःख सुख विकास का सत्य, यही भूमा का मधुमय दान।¹⁸

जिस काव्य में सामाजिक भावना जितनी अधिक होती है, वह उतना ही लोकमंगलकारी होता है। कामायनी में सामाजिक भावना नये रूप में आई है। रचनाकार मानव के लिए नवीन सृष्टि का निर्माण करना चाहता है। कामायनी के माध्यम से कवि यह संदेश देना चाहता है कि मनुष्य को सुखों के साथ-साथ दुःखों को भी आवश्यक समझना चाहिए। त्यागमय जीवन का परिणाम सुखकारी होता है। अगर मनु में आरंभ से ही त्यागभावना होती तो वे इतने दुख न सहते। लोकमंगल की कामना करते हुए कवि कामना करते हैं—

शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है;
जीवन-वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।¹⁹

जीवन में समरसता की स्थिति अखंड आनंद की अनुभूति है, जो सुख-दुख से ऊपर उठी हुई है, जो जड़-चेतन में सर्वत्र व्याप्त है—

समरस थे जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था;
चेतनता का विलसती आनंद अखंड घना था।²⁰

संसार की सारी समस्याएँ ज्ञान, क्रिया और इच्छा के सामंजस्य से सुलझाई जा सकती हैं। ज्ञान मस्तिष्क से संबंधित है और इच्छा हृदय से। कर्म की प्रेरणा दोनों से व्याप्त होनी चाहिए। केवल बुद्धि से प्रेरित कर्म विनाश का कारण बन सकता है। यदि हृदय, मस्तिष्क और कर्म में भिन्नता है तो यह जीवन की विडंबना है—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक-दूसरे से न मिल सके, यही विडंबना है जीवन की।²¹

वस्तुतः प्रसादजी युगद्रष्टा थे। वे विश्व में शांति स्थापित करना चाहते थे। इसी विश्व-मंगल की कामना हेतु इस महाकवि ने कामायनी महाकाव्य की रचना की। इसी सम्बन्ध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—‘यह काव्य बड़ी विशद कल्पनाओं और मार्मिक उक्तियों से पूर्ण है।

इसका विचारात्मक आधार या अर्थभूमि केवल इतनी ही है कि श्रद्धा या विश्वासमयी रागात्मक वृत्ति ही मनुष्य को इस जीवन में शांतिमय आनंद का अनुभव और चारों ओर प्रसार कराती हुई कल्याण मार्ग पर ले चलती है और उस निर्विशेष आनंद धाम तक पहुँचाती है।²² अतः जयशंकर प्रसाद लोकमंगल की कामना करते हुए ऐसी मानव-सृष्टि की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें उच्च मानवीय भावों का समावेश हो, विश्वबंधुत्व की भावना हो और मानवता विजयिनी बनकर लोकमंगल और विश्वकल्याण की भावना स्थापित कर सके।

संदर्भ

1. राजपाल हिन्दी शब्दकोश, डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल एंड संस द्वारा प्रकाशित, पृ० 727
2. वही, पृ० 626
3. काव्यप्रकाश 1/2
4. झरना, जयशंकर प्रसाद, आठवाँ संस्करण, सं. 2016 वि. भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ० 21
5. वही, पृ० 80
6. वही, पृ० 37
7. आँसू, जयशंकर प्रसाद, द्वादश संस्करण, सं. 2018 वि., भारती भंडार इलाहाबाद, पृ० 19
8. वही, पृ० 79
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2007 (छठा संस्करण), पृ० 681
10. लहर, जयशंकर प्रसाद, सातवाँ संस्करण, सं. 2021 वि., भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ० 50
11. वही, पृ० 24
12. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, संवत् 1992, भारती भंडार, इलाहाबाद, पृ० 231
13. वही, पृ० 140
14. वही, पृ० 114
15. वही, पृ० 65
16. वही
17. वही, पृ० 252
18. वही, पृ० 62
19. वही, पृ० 296
20. वही, पृ० 302
21. वही, पृ० 280
22. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० 690

पत्नी श्री अनंतराम
गाँव व डाक सलारपुर,
तहसील थानेसर,
जिला कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136 118
मो० 94162-18757

परसाई, जोशी एवं त्यागी व्यंग्य दृष्टि

पंकजकुमार डी० पटेल

एम०ए०; एम०फिल, शोधछात्र

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात जीवन और समाज में आए बड़े पैमाने पर के बदलाव के साथ ही हिंदी साहित्य में भी अनेक नूतन मोड़ आए। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्यान्य स्तरों पर हम जिन मूल्यों से जुड़े हुए थे, हमारे जो आदर्श और मान्यताएँ थी, स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात वह पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं। व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का मूल मकसद बन जाता है। कर्तव्य और नैतिकता की भावना एक प्रकार से समाप्त हो जाती है। हमारे राजकीय, सामाजिक जीवन में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, धोखाधड़ी, अनैतिक आचरण जैसी भयंकर विकृतियाँ और विसंगतियाँ पनप उठीं, जिसमें सारे आदर्श ढह जाते हैं। राजनीति, समाज, धर्म सबमें दोगलापन, अनीति, भ्रष्टाचार पाखंड घूस गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के इस धिनौने परिवेश ने, विकृति एवं विसंगतियों ने साहित्यकारों को विचलित कर दिया। आक्रोश एवं संवेदना से लबालब भरे स्वरों ने व्यंग्य की झड़ी लगा दी। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी तथा रवींद्रनाथ त्यागी की व्यंग्यत्रयी ने व्यंग्य को विधा का रूप देने में बहुत बड़ा योगदान दिया।

हरिशंकर परसाई

हिंदी के अत्यंत सजग तथा समाज के सच्चे हितचिंतक, शिरोमणि व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की अब तक प्रकाशित सभी पुस्तकें हिंदी साहित्य की अमूल्य पूँजी हैं।

हरिशंकर परसाई के साहित्य में आने से बहुत पहले ही साहित्य में व्यंग्य का प्रादुर्भाव हो चुका था, किंतु उन्होंने व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने में पूरा योगदान दिया। व्यंग्य को सार्थक विस्तार देकर, उन्होंने पुराने, भुलाए जा रहे मूल्यों का परिष्कार तथा नए मूल्यों का आविष्कार किया। परसाई अपने आलोचनात्मक दृष्टिकोण को रचनात्मक बनाने में समर्थ हैं। यह उनके लेखन की विशेषता है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ ही काल बाद परसाई ने अनिवार्यतः लेखनी सँभाली। यह अनिवार्यता उनके परिवेश की, उनकी पैनी दृष्टि की देन थी। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि ने अपने आस-पास तथा देशभर में विसंगतियों का व्यापक रूप देखा। उन्हें समाज के सम्मुख रखने का उन्होंने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया। उन्होंने तीखे आयुध के समान व्यंग्य का उपयोग करना प्रारंभ किया। अपने व्यंग्यवृक्ष को विकसित करने के लिए उन्होंने विसंगतियों के पोषक तत्वों को सहज ही में पा लिया। ये तत्व उन्हें स्थान-स्थान पर दिखाई देते थे। उन्होंने देखा कि सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्था तथा खोखलेपन के कारण मध्यवर्ग पिस्तता जा रहा है। उन्होंने उक्त

वर्ग की कड़वी सच्चाइयों को जानने के साथ ही उस वर्ग की निराशाभरी, चिंतित एवं दुखभरी उसाँसों को अनुभव किया।

कबीरी फक्कड़पन और निराला जैसी जीवंतता का समन्वय साधने वाले परसाई अपनी लेखनी में पाठक की सामाजिक वास्तविकता को बिल्कुल सामने खड़ा करने की शक्ति रखते हैं। इस विषय में नर्मदाप्रसाद खरे ने लिखा है—‘परसाई घोर यथार्थवादी लेखक तथा विचारक हैं। राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला सभी उनके यथार्थवाहक हैं। उनके व्यक्तित्व में कबीर का फक्कड़पन तथा उनके लेखन में निराला की जीवंतता समन्वित है।’¹

एक बार जो परसाई ने व्यंग्य लिखना प्रारंभ किया उनकी व्यंग्य-शक्ति दिनोदिन बढ़ती ही गई। हर कहीं उन्हें सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक विषयताओं से भरा वातावरण दिखाई देता था। इसी कारण वे उस वातावरण में परिवर्तन लाना चाहते थे। अपने लेखक बनने के बारे में वे लिखते हैं—‘पर मैं तो इस ऐंठ में रहा कि समाज के तल में जाकर परीक्षण करूँगा और समाज परिवर्तन के लेख लिखूँगा। मैं साहित्य में आर्यसमाजी हो गया।’²

स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूँजीपतियों को पर्याप्त लाभ हुआ। अधिक-से-अधिक धन बटोरने के नए-नए मार्ग ढूँढने की पूरी स्वतंत्रता उन्हें प्राप्त हुई। उनका हित-साधन जनशोषण पर ही निर्भर था। उधर नेताओं की भी यही प्रवृत्ति बनी रही। वे भी किसी तरह से चुनाव में विजयी होने के प्रयत्न करते। इसके कई कारण हैं जैसे दोनों हाथों से अधिकाधिक धन बटोरा जा सकता है, निजी कार्य के लिए भी सरकारी धन का उपयोग किया जा सकता है, अपने बंधु-बंधवों को उच्चासनों पर विराजमान किया जा सकता है और स्वयं आराम से जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इस सबके लिए पैसा तो जनसाधारण का ही जाता है। इसी बात को लेकर परसाई जी ने शोषण का एक धिनौना यथार्थ प्रस्तुत किया है—‘एक स्त्री नौकरी के सिलसिले में एक बड़े आदमी के पास सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र लेने गई थी। बड़े आदमी ने उसे पहले अपने शयन-कक्ष में ले जाना चाहा और बाद में सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र देना चाहा। पहले देवता आदमी बनकर ठगते थे, अब आदमी देवता बनकर ठगते हैं। देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाणपत्र है।’³

उपेक्षितों और शोषितों के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति रही है। अपने कई निबंधों में वे उपेक्षितों, शोषितों पक्ष लिया है। वे कटु सत्य को प्रकाश में लाते समय कभी झिझकते नहीं। यथा—‘इस देश का आम आदमी अपनी ही ज़मीन से बेदखल कर दिया गया है। वह अपने ही मकान में किराए में रहता है।’⁴ ‘लेकिन छोटे आदमी का बाप सचमुच मर जाए, तो भी कोई निश्चित नहीं कि शक्कर मिल जाएगी।’⁵

स्वतंत्र भारत में नित्य नई घटनाएँ होती रहती हैं, नई-नई समस्याएँ उभरती रहती हैं, उन पर इतनी गहराई से विचार करनेवाला कोई विरला ही साहित्यकार होगा। परसाई जी हर अवसर को पकड़ पाते हैं। यही कला उन्हें उत्तम व्यंग्यकार बनाने में सहायक हुई है। चाहे चुनाव का समय हो, चाहे परिवार नियोजन का, चाहे नैतिक-मूल्यों का विघटन स्पष्ट हो रहा हो या मारपीट ही हुई हो, परसाई जी उसी को अपने व्यंग्य का विषय बना लेते हैं। यहाँ तक कि दीवाली पर्व तथा चीनी आक्रमण जैसे विषयों को भी उनके व्यंग्य की फटकार सहनी पड़ी। इस तरह परसाई सजग तो हैं ही साथ ही सोए हुआओं में चेतना लाने के लिए भी तत्पर रहते हैं। यह काम है तो कठिन पर परसाई की क्लम हार मानने को तैयार नहीं। कबीर की तरह ही प्राचीन रूढ़ियों और संस्कारों

पर वे खुलकर प्रहार करते हैं। जहाँ कहीं ढोंग दिखाई देता है, परसाई के व्यंग्य का प्रहार उस पर अवश्य ही पड़ता है।

कुछ अन्य उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि परसाई जी ने धर्म के ठेकेदारों को भी समाज की विद्रूपता का कारण सिद्ध किया है—‘यज्ञ तथा इस तरह की दूसरी चीजें इसलिए कराई जाती हैं कि समाज उन्हीं पुरानी परंपराओं में जकड़ा रहे। उसी भेद-भाव को माने, जाति-भेद माने, ऊँच-नीच माने, अंधविश्वास में जकड़ा रहे। यज्ञ करने और कराने वालों का सही उद्देश्य है कि पिछड़ी हुई रुग्ण मानसिकता बनी रहे, जिससे वर्णभेद, वर्गभेद बने रहें।’⁶

परसाई जी ने साहित्य में हो रहे संस्कृति के अवमूल्यन पर भी बहुत लिखा है। ‘और अंत में’ की बहुत-सी रचनाएँ कलुषित राजनीति तथा साहित्य के दृश्यों से भरपूर हैं—‘खुद अपने बारे में लेख लिखकर उसे किसी दूसरे के नाम से छापने भेज देना तो आत्मसम्मान की क्लासिकल शैली है। यह युग परीक्षित है और युग स्वीकृत भी।’⁷

समाज, राजनीति, धर्म आदि क्षेत्रों में होनेवाले अनाचार को देखते तो सभी हैं, परंतु अधिकांश लोग उसे देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। परसाई उन्हें देखते तो हैं ही उनके विरुद्ध आवाज भी उठाते हैं। जीवन में व्याप्त विषमताओं की सूक्ष्मता को पकड़ने की क्षमता उनमें है। ‘वाक आउट’, ‘स्लीप आउट’, ‘जिंदगी और मौत का दस्तावेज’, ‘अकाल उत्सव’, ‘ठंडा शरीफ आदमी’ आदि उनके व्यंग्य लेख इसके साक्षी हैं।

शरद जोशी :

व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करनेवालों में हरिशंकर परसाई की तरह शरद जोशी का भी बहुमूल्य योगदान है। व्यंग्य का मुख्य विषय विसंगतियाँ हैं, जो हमारे समाज में सर्वत्र बिखरी हुई हैं। ये विसंगतियाँ परसाई की तरह जोशी जी ने भी संस्कृति, समाज तथा राजनीति के आज के रूप में देखीं।

जोशी जी का साहित्य विसंगतियों को देख पाने की उनकी तीव्र दृष्टि का परिचायक हैं। उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं को अलग ही ढंग से देखा है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अलग-अलग परिवेश में थोड़ा-थोड़ा काल बिताया है। शिक्षा पूरी करने के बाद पत्रकारिता, फिर रेडियो की नौकरी, उसके बाद सरकारी दफ्तर आदि विविध क्षेत्रों के अनुभव उनकी व्यंग्य शैली को अधिक प्रखर बनाने के सहयोगी हैं। इतने अनुभव पाने के बाद उन्होंने स्वतंत्र लेखन की राह को चुना और कई वर्ष तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए स्तंभ-लेखन करते रहे। आज शरद जोशी नाम हर हिंदी प्रेमी के लिए सुपरिचित है। कोई भी पत्रिका जिसमें व्यंग्य के लिए स्थान हो, कवि-सम्मेलन जिसका मुख्य विषय व्यंग्य हो, दैनिक पत्र या दूरदर्शन हो, हर कहीं शरद जोशी अपनी व्यंग्य-प्रतिभा के साथ मजबूती से खड़े नज़र आते हैं।

उनके व्यंग्य-संकलन—‘किसी बहाने’, ‘जीप पर सवार बिल्लियाँ’, ‘रहा किनारे बैठ’, ‘तिलस्म’, ‘यथासंभव’, ‘जादू की सरकार’ आदि साक्षी हैं कि शरद जोशी समय के साथ आगे बढ़ते रहे और व्यंग्य के प्रस्तुतिकरण तथा उसके शिल्प को नूतनता देते रहे।

राजनीति, समाज तथा साहित्य में फैली विसंगतियों को शरद जोशी की पैनी दृष्टि ने सिर्फ देखा ही नहीं, बल्कि गहराई के साथ उन्हें समझा भी है। तीव्र उपहासगर्भ शैली में उन्होंने व्यंग्य निर्मिति की है। भ्रष्टाचार के विविध क्षेत्रों को जोशी जी ने बिना हिचकिचाहट, पाठकों के

सामने खोलकर रखा है—‘कहाँ पर नहीं खिल रहे भ्रष्टाचार के फूल। जहाँ-जहाँ जाती है सरकार उसके नियम-क़ानून, मंत्री, अमला, कारिंदे। जहाँ-जहाँ जाती है सूरज की किरन, वहीं-वहीं पनपता है भ्रष्टाचार का पौधा।’⁸

सरकारी कार्यालय के भीतर ही झाँककर जोशी जी आगे नहीं बढ़ते, कार्यालय के बाहर जो कार्यालय का प्रभाव पड़ता है उसे भी देख लेते हैं। देश का प्रशासन धीरे-धीरे कितना बिगड़ता जा रहा है। आज गरीब की स्थिति कितनी दयनीय हो गई है, देखिए जोशी जी द्वारा प्रस्तुत इस चित्र में—‘हमारे देश में बड़े आदमी की हत्या होती है। गरीब को आत्महत्या करनी पड़ती है। उसे मारने को कोई भी ख़ाली नहीं है। उनका शोषण किया जाता है मारा नहीं जाता। यदि किसी गरीब की हत्या हुई हो तो साबित करना पड़ता है कि यह आत्महत्या नहीं है।’⁹

बढ़ती हुई फैशन-परस्ती न केवल नगरों तक सीमित है, बल्कि गाँवों में भी उसने पैर जमा लिए हैं। इस परिवर्तन से जोशी जी अशांत हो उठते हैं। ‘जनाब यह मिनी साड़ी है, लेटेस्ट फैशन। अब वैसी लंबी साड़ियाँ और पूरी बाहों के ब्लाउज का रिवाज नहीं रहा। वह बोली और खेत में काम में लग गई।’¹⁰

आज डिग्री पाने का अर्थ यह हो गया है कि कुंजियाँ और नोट्स अच्छे पढ़ें होंगे। आज छात्र पाठ्य पुस्तकों को, मौलिक रचनाओं को पढ़ना पसंद नहीं करते। उनका उद्देश्य केवल डिग्री पाना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति कुंजियों और नोट्स से हो जाती है। विद्यार्थियों को इन्हें खरीदने के लिए उकसाने के खूब प्रयत्न होते हैं। इसी कारण कभी-कभी पाठ्य पुस्तक के छपने से पहले उनकी कुंजियाँ और नोट्स बाजार में आ जाते हैं।

आज के साहित्य, साहित्यकार तथा साहित्यिक सम्मेलनों की जो दुर्गति बनी है उससे भी जोशी जी नाराज हैं। आज कवि होने का अर्थ हो गया है निरर्थक बन जाना। जोशी जी कहते हैं—‘कवि हो जाता तो मैं सब कुछ कर सकता था। देश की हालत पर अफसोस करता और उस हालत को जस-की-तस बनाए रखने की कोशिश करनेवाले सम्मेलनों में जाता और उनके भाषणों को चुपचाप सुन प्रस्तावों का समर्थन कर बाहर आ बड़बडाता हुआ प्राप्त लिफाफे के रूपे गिनता। उनके ख़िलाफ़ कविता लिखने की बात सोच फिर नहीं लिखता, बल्कि कवि सम्मेलन का मज़ाक़ बनाते कॉफी पीता रहता।’¹¹

शरद जोशी विविध क्षेत्रों में व्याप्त दोषों को केवल देखते ही नहीं, बल्कि उनका पूरा परिचय भी प्राप्त कर लेते हैं। लक्ष्य केवल यही कि इन दोषों के बारे में और भी लोग जान लें और हो सके तो इनसे मुक्त होने का प्रयत्न करें। राजनीति, नेता, सरकारी कर्मचारी, प्रशासन, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, वैभव हर एक का समाज के लिए विशेष महत्त्व है, परंतु जब इनका उपयोग अनुचित कार्यों के लिए होने लगता है, तो विसंगतियाँ अपने-आप ही आ जाती हैं। जब वे विसंगतियाँ शरद जोशी जैसे सशक्त व्यंग्यकार के सामने उभरकर आ जाती हैं, तब अपने-आपको उनसे बचा नहीं पातीं। जोशी जी न केवल दोष को सर्वसम्मुख लाते हैं, अपितु दोषी पर भी प्रहार करते हैं। ऐसे में दोषी अपने कुकर्म का पर्दाफाश होते देख लज्जित हो जाता है तथा उस अपराध की पुनरावृत्ति करने में हिचकिचाता है।

रवींद्रनाथ त्यागी

व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने वाले व्यंग्यकारों की सूची में रवींद्रनाथ त्यागी

को आदरणीय स्थान प्राप्त है। त्यागी जी मूलतः भावुक कवि हैं, किंतु समाज में रहते हुए वे विसंगतियों को देखकर अनदेखा नहीं कर पाए। जैसे ही कोई त्रुटि गोचर हुई, उन्होंने सरल गद्य लेखन के माध्यम से उसे समाज के सामने रखा। त्यागी जी एक सरकारी अधिकारी के पद 'इंडियन डिफेंस एकाउंट्स सर्विस' में रह चुके हैं। इसी कारण प्रशासनिक कमियों की ओर उनका ध्यान रहा, अन्य विसंगतियों पर भी उन्होंने अच्छी व्यंग्य कृतियाँ दी हैं। त्यागी जी का व्यंग्य-साहित्य-पट बहुत ही विस्तृत है।

देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक क्षेत्रों में जो मूल्यहीनता उत्पन्न हुई, उसी से प्रेरित होकर, व्यंग्यकारों ने एक से बढ़कर एक व्यंग्य रचनाएँ दीं। इस कारण रवींद्रनाथ त्यागी की लेखनी से भी ऐसी व्यंग्य रचनाओं का निकलना स्वाभाविक ही था, परंतु एक बात स्पष्ट है कि उनके व्यंग्य हरिशंकर परसाई की तरह कठोर प्रहार नहीं करते, बल्कि चुटकियाँ काटते हैं। कमियों को बताते समय वे मनोरंजन भी करते हैं। उन्होंने अपने अभिव्यक्ति कौशल के आधार पर सरल एवं शिष्ट हास्य का ही सृजन किया है।

त्यागी जी ने कुछ निबंधों में सामाजिक विसंगतियों, प्रशासनिक एवं शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, संस्कृति से संबद्ध विसंगतियों को विषय बनाया है। 'शहीद दिवस: एक परिचर्चा' में लेखक शहीदों के बारे में वार्ता करने से पहले एक नेता से मिलने गए, तो नेता का वक्तव्य देखिए—'सरकार को चाहिए कि शहीद होने के अवसर फिर प्रदान करे। अगर ऐसा नहीं किया, तो वह जनता के साथ और खासतौर से विरोधी दल के साथ सरासर गद्दारी होगी। विरोधी पार्टी का एक व्यक्ति भी यदि शहीद हो जाए, तो सरकार का तख्ता पलट सकता है। मगर सरकार है कि इस ओर कुछ ध्यान ही नहीं देती। प्रजातंत्र क्या इसी का नाम है, हार्गिज नहीं।'¹²

त्यागी जी ने साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों का भी पर्दाफाश किया है। बहुत से लोग कुछ भी लिखकर स्वयं को कवि मान लेते हैं और अपने को कवि सिद्ध करने के लिए अपनी कविताओं को पढ़ने में जरा भी नहीं हिचकते। ऐसे लोगों को लक्ष्य कर त्यागी जी कहते हैं—'हिंदी के कुछ कवि वाकई ऐसे हैं जिनकी वाणी सुनते ही ज़िंदा तो क्या, मुर्दा लोग भी इलाक़ा छोड़कर चले जाएँ।'¹³

सरकारी अफसर के पद का अनुभव होने के कारण त्यागी जी सरकारी कार्यालयों की कमियों को खूब पहचानते हैं। इसलिए सरकारी कार्यालयों के विविध पहलुओं पर भी उन्होंने कतिपय चोटें की हैं। अफसर तथा कर्मचारी के बीच किस प्रकार का प्रेमभाव रहता है इस ओर त्यागी जी ने कैसा संकेत किया है—'हर अफसर का एक मुर्गा होता है। वह अफसर की तरफ से बाँग देता है, अफसर को अंडे और मुर्गी लाकर देता है और वक्त जरूरत अफसर की तरफ के बाकी लोगों को चोंचे भी लगाता है।'¹⁴

सांस्कृतिक विसंगतियाँ भी समाज में कुछ कम नहीं हैं। जीवनमूल्यों का हास हो रहा है। यह बात भी त्यागी जी के दिल को कचोटती है। हमारे देश में बच्चों को फूल सदृश्य माना जाता है, परंतु आज कितने ही लोग केवल धन पाने हेतु कैसे-कैसे दुष्कर्मों में लगे हुए हैं। त्यागी जी ने ऐसे लोगों की ओर इस प्रकार संकेत किया है—'और उन महान समाज-सेवकों का तो कहना ही क्या, जो बेचारे भिक्षावृत्ति की प्राचीन आर्य-परंपरा को जीवित रखने के लिए छोटे-छोटे बच्चों का अपहरण करवाते हैं, लड़कियाँ भगवाते हैं और फिर उनकी आय में से तीन चौथाई अपनी

जेब में रखते हैं। ऐसे नरपुंगव न होते तो हमारी संस्कृति कब की रसातल हो चली गई होती।¹⁵

शिक्षा क्षेत्र भी विसंगतियों से अस्पृश्य नहीं है। छात्र परीक्षा में नक़ल कर उत्तीर्ण होते हैं और डाँटनेवाला कोई नहीं होता। अगर होता भी, तो भी उसके शब्दों का कोई मूल्य नहीं होता। ऐसी अनेक विसंगतियों को देखकर ही त्यागी जी शिक्षा संस्थाओं के लिए एक नया क़ानून पारित करवाना चाहते हैं। वे लिखते हैं—‘सरकार के शिक्षा विभाग के अधिकारियों को ये निश्चित आदेश दिए जाएँगे कि वे शिक्षकों के मुक़दमों पर शिक्षकों के जीते-जी कोई ध्यान नहीं देंगे। निष्पक्ष और न्यायसंगत निर्णय के लिए यह आवश्यक होगा कि ऐसी सारी फाइलें शिक्षक की मृत्यु के बाद ही निबटाई जाएँ।¹⁶

त्यागी जी के निबंधों के अवलोकन के पश्चात् हमें यह धारणा बनाने में संकोच नहीं होना चाहिए कि त्यागी जी समाज के सच्चे हितैषी हैं। उन्हें यह विश्वास अवश्य है कि वे सच्चा साहित्य समाज को दे रहे हैं। वे विसंगतियों को देखकर अप्रसन्न अवश्य होते हैं, किंतु ऐसे विसंगति-भरे समाज से अपना संबंध तोड़ते नहीं, अपितु उसका परिष्करण करना चाहते हैं। इसीलिए वे विध्वंसक नहीं, मधुर कटाक्ष को अपनाते हैं वे स्वयं जिंदादिल हैं। इसलिए उनका लेखन इतना उन्मुक्त हो सका है कि उनके व्यंग्य समाज को सचेत करने के लिए होते हैं, निश्चेष्ट करने के लिए नहीं। त्यागी जी की संवेदनशीलता और सहानुभूति उनके निबंधों में स्पष्ट दिखाई देती है।

संदर्भ

1. एक लड़की पाँच दीवाने, हरिशंकर परसाई, नर्मदा प्रसाद खरे द्वारा
2. प्रतिनिधि व्यंग्य, हरिशंकर परसाई, पृ० 65
3. वही, पृ० 62
4. वही, पृ० 18
5. वही, पृ० 19
6. वही, पृ० 121
7. और अंत में, हरिशंकर परसाई, पृ० 81
8. हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, शरद जोशी, पृ० 2
9. यथासंभव, शरदजोशी, पृ० 2
10. वही, पृ० 194
11. वही, पृ० 62
12. भद्रपुरुष, रवींद्रनाथ त्यागी, पृ० 10
13. वही, पृ० 84
14. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, रवींद्रनाथ त्यागी, पृ० 3
15. भद्रपुरुष, रवींद्रनाथ त्यागी, पृ० 63
16. प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएँ, सं० कमलकिशोर गोयनका, पृ० 174

‘वृंदावन’, ग्राम-पोस्ट, बालीसणा
तहसील : प्रांतिज, जि० साबरकांठा-383205 गुजरात
मो० 9879079353

जनपद हापुड़ में नगर पालिकाओं की भूमिका (एक राजनीतिक अध्ययन) भूमिका

निधि रानी

प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग

डी०ए०वी० कॉलेज बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर

प्रोफेसर जे०के० पुंडीर, निर्देशक, प्रो० वाइस चांसलर

चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रस्तुत शोधपत्र जनपद हापुड़ के अंतर्गत राजनीतिक सहभागिता के परिपेक्ष्य में सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव दोनों के अध्ययनरत लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए किए गए प्रयास एवं उनके प्रभाव का वर्णन करता है तथा यह अध्ययन एक आनुभाविक अध्ययन है, जिसका प्रमुख स्रोत क्षेत्रीय अध्ययन, साक्षात्कार एवं प्रत्यक्ष अध्ययन, प्राथमिक स्रोतों पर आधारित है, जिसके अंतर्गत साक्षात्कार प्रश्न, साक्षात्कार प्रश्नावली के अंतर्गत बनाए गए और सामग्री एकत्रित की गयी। इन्हीं प्रश्नों को सारणीबद्ध रूप में विश्लेषित किया गया है तथा निष्कर्ष पर पहुँचकर कुछ कमियों के परिणामस्वरूप सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं। भारत में त्रिस्तरीय शासन-व्यवस्था को अपनाया गया है—

1. केंद्रीय शासन-व्यवस्था
2. राज्य शासन-व्यवस्था
3. स्थानीय शासन-व्यवस्था

वर्तमान भारत में स्थानीय शासन को तीसरे स्तर की शासन-व्यवस्था के रूप में जाना जाता है। स्थानीय शासन के दो प्रकार हैं—(क) ग्रामीण शासन (ख) शहरी शासन। इस शोधपत्र में नगरीय स्थानीय शासन-व्यवस्था में नगरपालिकाओं की कार्यप्रणाली को जानने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य

शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य यह है कि स्थानीय स्तर पर शासन-व्यवस्था के प्रति नगरीय क्षेत्र के लोगों में कितनी जागरूकता है। नगरीय क्षेत्र के लोग स्थानीय शासन के बारे में कितनी जानकारी रखते हैं। नगरपालिकाओं के चुनावों में इन लोगों की क्या भूमिका रही है। नगरीय क्षेत्रों में सार्वजनिक व्यवस्था की ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों ने इन स्थानीय संस्थाओं को सौंप रखी है। इसलिए प्रस्तुत शोध के माध्यम से यह जानने की कोशिश की गई है कि क्या नगरीय क्षेत्र में नगरपालिकाएँ सार्वजनिक कार्यों को उचित ढंग से कर रही हैं। नगरपालिका के द्वारा की जा रही

सार्वजनिक व्यवस्था से नगरीय क्षेत्रों में लोगों को किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हो रही है। क्योंकि नगरक्षेत्र में बिजली, जल-निकासी, प्रकाश, पानी, सफ़ाई, सड़कें व जलापूर्ति आदि की व्यवस्था कराना नगरपालिकाओं का दायित्व है। इन कार्यों को पूर्ण करने के लिए राज्य सरकारें नगरपालिका को वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं।

शोध प्रविधि—

मनुष्य प्रारंभ से ही जिज्ञासु प्राणी रहा है, जो नवीन खोज एवं आविष्कारों के माध्यम से मानवीय सभ्यता के विकास में सहयोग प्रदान कर रहा है। इसलिए सभी प्रकार के वैज्ञानिक शोध अध्ययन की समस्या के समाधान के लिए अध्ययन विधियों को अपनाया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर-प्रदेश में स्थानीय नगरीय शासन के मूल्यांकन के लिए तथ्य-संग्रह की नवीन तकनीक को अपनाया गया है। किसी भी आनुभाविक अध्ययन के लिए ऐसी तकनीकों की आवश्यकता होती है, जिनका सही प्रयोग करके सही सूचना संकलित हो सके और परिकल्पनाओं का उचित परीक्षण हो सके।

शोधपत्र में विभिन्न शोध-प्रविधियों यथा अनुसूची, प्रश्नावली, सर्वेक्षण, व्यक्तिगत साक्षात्कार, तथ्य-विश्लेषण आदि का उचित प्रयोग करके शोधकार्य को उचित रूप प्रदान किया और शोध के माध्यम से उचित परिणाम पर पहुँचने से सहायता मिली।

परिकल्पना—

शोधार्थी के द्वारा विषय का चयन करने के उपरांत उसे अपने विषय से संबंधित परिकल्पना का निर्माण करना अति आवश्यक होता है। परिकल्पना के अभाव में वैज्ञानिक अध्ययन करना संभव ही नहीं है, क्योंकि परिकल्पनाओं का निर्माण करके ही शोधार्थी अपने शोधकार्य को सही दिशा प्रदान कर सकता है। शोध के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया—

1. उत्तर प्रदेश में स्थानीय नगर प्रशासन में सहभागिता में वृद्धि हुई है।
2. उत्तर प्रदेश में स्थानीय प्रशासन में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है।
3. स्थानीय नगर प्रशासकों को अधिक अधिकार दिए जाने की माँग है।
4. कार्यक्रमों व योजनाओं की जानकारी बढ़ रही है।

अध्ययन-क्षेत्र परिचयांकन

शोधपत्र में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नवीन सृजित ज़िले हापुड़ का अध्ययन किया गया, जिसका विवरण निम्नलिखित है—

हापुड़ नगर जनपद गाजियाबाद की एक तहसील क्षेत्र हुआ करता था। इसे 27 सितंबर, 2011 को ज़िला बनाने की घोषणा की गई। तभी से यह ज़िले के रूप में अस्तित्व में आया। जनपद हापुड़ गंगा और यमुना नदियों के दोआब में स्थित पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख विकसित जनपद है। जनपद हापुड़ पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 28.72° उत्तर और 77.78° पूर्वी देशांतर में स्थित है। यहाँ की भूमि समतल है। समुद्रतल से औसत ऊँचाई 213 मी (699 फीट) है।⁶

जनपद की पूर्वी सीमा पर गंगा नदी बहती है। ज़िले में इन्हीं नदियों से निकलकर बहने वाली कई सहायक नहरें हैं, जिनके माध्यम से जनपद के बड़े भू-भाग की सिंचाई होती है। जनपद का मुख्यालय हापुड़ नगर को बनाया गया है। जनपद हापुड़ राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है। हापुड़

नगर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अंतर्गत आता है। यह भारत की राजधानी नई दिल्ली से 60 किमी की दूरी पर स्थित है। राष्ट्रीय राजमार्ग-24 दिल्ली को लखनऊ से जोड़ने वाला राजमार्ग शहर से होकर गुजरता है।

जनपद हापुड़ के उत्तर में मेरठ, दक्षिण में बहुलंदशहर और दक्षिण-पश्चिम सीमा गाजियाबाद से, गौतमबुद्ध नगर से और पूर्वी सीमा ज्योतिबा फूलेनगर (अमरोहा) जिले की सीमाओं से मिलती है। जिले के पूर्व में पवित्र गंगा नदी गढ़मुक्तेश्वर से होकर बहती है, जहाँ हर साल लाखों लोग तीर्थयात्रा के लिए आते हैं। यहाँ पर गंगास्नान मेलों का आयोजन लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। लोग मोक्षदायिनी गंगा में डुबकी लगाकर अपनी आत्मा को पवित्र कर मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

जनपद हापुड़ में 3 तहसीलों, 4 विकासखंड और एक नगर पंचायत क्षेत्र है। जनपद हापुड़ में 253 ग्राम पंचायतें, 49 न्याय पंचायतें, 356 कुल राजस्व गाँव, 15 जिला क्षेत्र पंचायत, 4 क्षेत्र पंचायत और 1 जिला पंचायत है। जनपद में 3 विधानसभा क्षेत्र व लोकसभा क्षेत्र है।⁸

जनपद में कुल 428 प्राइमरी व 209 जूनियर हाईस्कूल हैं। हापुड़ जनपद में तीन तहसील क्रमशः हापुड़, धौलाना और गढ़ में स्थित हैं। जनपद में तीन नगरपालिका हापुड़ नगरपालिका, पिलखुआ नगरपालिका, गढ़मुक्तेश्वर नगरपालिका व बाबूगढ़ में नगर पंचायत स्थित है। 2001 के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 11,29,420 है, जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 8,10,744 और नगरीय जनसंख्या 3,18,676 है।⁹

प्रतिदर्श पद्धति-

हापुड़ नगर क्षेत्र के दो वार्डों के दो बूथों का चयन किया। इसके बाद दोनों बूथों से 40-40 प्रतिदर्श व्यवस्थित दैव (Random) निदर्शन प्रणाली से चयनित किए हैं। दोनों बूथों से कुल 80 प्रतिदर्श लिए गए।

शोधपत्र में आनुभाषिक अध्ययन-पद्धति को अपनाया गया है, इसलिए आनुभाषिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने हापुड़ नगर में 36 वार्डों में से दो वार्डों का चयन दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया। ठीक इसी प्रकार दोनों वार्डों से एक-एक बूथ का चयन किया गया, जिसमें प्रथम वार्ड नं० 2 के बूथ नं० 8 के अंतर्गत लोधीपुर व सोटावाली क्षेत्र आते हैं। बूथ नं० 8 की मतदाता-सूची से पता चलता है कि इस पोलिंग बूथ पर मतदाताओं की संख्या 700 है। ठीक इसी प्रकार दूसरा वार्ड नं० 15 के अंतर्गत अतरपुरा क्षेत्र, जो नगर के बीच में स्थित है। इसके बूथ नं० 94 में मतदाताओं की संख्या 892 है।

शोधार्थी ने अपने अध्ययन-क्षेत्र को ध्यान में रखकर एक बंद संरचित अनुसूची तैयार की, जिसमें कुल 16 प्रश्न हैं। सभी प्रश्न नगरपालिका के अंतर्गत किए जानेवाले कार्यों से संबंधित हैं। इन प्रश्नों के माध्यम से शोधार्थी ने दोनों बूथों के सभी उत्तरदाताओं से आँकड़े एकत्रित करके तालिका बनाई। उन तालिकाओं का उचित विश्लेषण किया गया। दैव निदर्शन प्रणाली के माध्यम से उत्तरदाता के चयन करने से शोधार्थी का उद्देश्य यही था कि इस प्रणाली से जो उत्तरदाता चुना जाए, वह पूरे क्षेत्र का सही-सही प्रतिनिधित्व करता हो।

प्रस्तुत शोध से संबंधित निम्नलिखित समस्याओं के संदर्भ में प्रश्न उठाए गए-

1. क्या नगरपालिका के द्वारा ठीक प्रकार से सफ़ाई-व्यवस्था की जा रही है?

2. क्या नगरपालिका के द्वारा जलआपूर्ति सुचारु रूप से की जा रही है?

3. क्या नगरपालिका के द्वारा सड़कों पर प्रकाश की उचित व्यवस्था की गई है?

प्रस्तुत शोध में आनुभाविक शोध-पद्धति को अपनाया गया है। इसलिए शोधार्थी को शोध के माध्यम से यह जानना था कि क्या नगरक्षेत्र में नगरपालिका के द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था ठीक प्रकार से की जा रही है। नगरवासियों को नगरपालिका के द्वारा किए जानेवाले सभी कार्यों की उचित जानकारी है या नहीं। शोध के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गयी कि नगर क्षेत्र में व्यक्तियों को नगरपालिका के चुनावों की जानकारी है या नहीं और उनका चुनाव में किस प्रकार का योगदान रहा।

स्थानीय प्रशासन : सैद्धांतिक अवधारणा (नगरपालिकाओं का गठन)

अनुच्छेद-243(थ) यह कहता है कि प्रत्येक राज्य निम्न प्रकार से नगरीय स्थानीय निकायों की स्थापना करेगा—(क) किसी भी 'संक्रमणशील क्षेत्र' के लिए जो परिवर्तनीय क्षेत्र है अर्थात् जो ग्रामीण क्षेत्र नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित हो रहे हैं, उनमें 'नगर पंचायत' की स्थापना करना। (ख) किसी भी 'लघुतर नगरीय' क्षेत्र के लिए 'नगरपालिका परिषद्' का गठन करेगा और (ग) किसी भी 'वृहत्तर नगरीय' क्षेत्र के लिए 'नगर निगम' की स्थापना करेगा।

स्थानों का आरक्षण—

अनुच्छेद 243(न) में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों के व्यक्तियों और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए सीट आरक्षित होगी।

खंड 1 के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या में कम से कम 1/3 स्थान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित किए जाएंगे। प्रत्येक नगरपालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जानेवाले स्थानों की कुल संख्या के 1/3 स्थान (जिनके अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी शामिल है) स्त्रियों के लिए आरक्षित किए जाएंगे और ऐसे स्थान किसी नगरपालिका के भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम में आवंटित किए जा सकेंगे। नगरपालिका के अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और स्त्रियों के लिए ऐसी रीति से आरक्षित किए जाएंगे जैसा कि राज्य के विधानमंडल विधि द्वारा उपबंधित करें।

आधुनिक नगर प्रशासन

भारत में शहरी क्षेत्रों के लिए आधुनिक नगर प्रशासन की दृष्टि से निम्न प्रकार के स्थानीय निकायों का गठन किया गया है—

1. नगर निगम;
2. नगरपालिका;
3. अधिसूचित क्षेत्र समिति (नोटिफाइड एरिया समिति);
4. नगर क्षेत्र समिति (टाउन एरिया समिति);
5. छावनी बोर्ड/परिषद्;
6. टाउनशिप;
7. पोर्ट ट्रस्ट;
8. स्पेशल परपज एजेंसी।¹

ये उन बड़े शहरों के लिए बनाए गए थे, जिनकी जनसंख्या अधिक हो। नगर निगमों की स्थापना राज्यों के विधान मंडलों के द्वारा पारित कानून के आधार पर की जाती है। इस प्रकार के कानून किसी विशेष नगर निगम की स्थापना के लिए पारित किए जा सकते थे। राज्य सरकार के द्वारा राज्यों के विधान मंडल में पारित राज्य के किसी भी भाग की नगर निगम के रूप में

स्थापना की जा सकती है।

उत्तर प्रदेश के नगर निगमों की रचना उत्तर प्रदेश महापालिका अधिनियम, 1959 तथा मध्य प्रदेश के निगमों का निर्माण मध्यप्रदेश नगर-निगम अधिनियम, 1956 के अनुसार किया गया है। मुंबई, चेन्नई, कोलकत्ता के निगम देश में प्राचीनतम नगर निगम हैं।

नगर निगम के तीन अंग होते हैं—1. निगम की साधारण परिषद्, 2. परिषद् स्थायी समिति, 3. एक कमिश्नर या अधिशासी अधिकारी।

उत्तर-प्रदेश में स्थानीय नगर-प्रशासन

उत्तर प्रदेश में 75 जिले व 18 मंडल और 12 नगर निगम हैं। राज्य में 11226 नगरपालिका परिषदें हैं³ जबकि ग्रामीण स्तर पर 107452 गाँव 300 तहसील 809 सामुदायिक विकास खंड और 8135 न्याय पंचायतें 52028 ग्राम पंचायत 813 क्षेत्र पंचायत हैं⁴ 1994 के उत्तर प्रदेश अधिनियम के पूर्व नगर प्रशासन में महानगरपालिका क्षेत्र, नगरपालिका क्षेत्र, नगर क्षेत्र तथा अनुसूचित क्षेत्र थे, परंतु 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के द्वारा उत्तर प्रदेश में निम्न क्षेत्र हैं—

1. महानगर क्षेत्र (नगर निगम)
2. वृहत्तर नगरीय क्षेत्र (नगर निगम)
3. लघुतर नगरीय क्षेत्र तथा (नगरपालिका)
4. संक्रमणशील क्षेत्र (नगर पंचायत)

अब वर्तमान में सभी राज्यों में तीन प्रकार की नगरपालिकाएँ स्थापित करने का प्रावधान है—1. नगर निगम, 2. नगरपालिका, 3. नगर पंचायत

तालिका 1

स्थानीय निकायों में न्यूनतम, मनोनीत और अधिकतम सदस्यों का विवरण

क्र.सं.	शासकीय परिषद्	सदस्य का नाम	न्यूनतम सदस्य सं.	अधिकतम सदस्य सं.	मनोनीत सदस्य सं.	मनोनीत न्यूनतम सं.
1	नगर निगम	सभासद	60	110	-	10
2	नगरपालिका परिषद्	सदस्य	25	55	3	5
3	नगर पंचायत	सदस्य	10	24	2	3

नगर निगम—

नगर निगम में सभासदों की न्यूनतम सं. 60 और अधिकतम सं. 110 है। नगर निगम को 74वें संशोधन के अनुपालन में उत्तर प्रदेश नगर अधिनियम ने राज्य सरकार को नगरीय स्थानीय निकायों में अधिकतम 10 व्यक्तियों को मनोनीत करने का अधिकार प्रदान किया गया है। लोकसभा तथा विधानसभा के सदस्य भी पदेन सदस्य होंगे। उपर्युक्त मनोनीत सदस्यों को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। नगर निगम की संरचना में एक परिषद्, महापौर समितियाँ एवं निगम आयुक्त होते हैं।

हापुड़ नगरपालिका का अध्ययन—

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार हापुड़ नगरीय क्षेत्र की कुल जनसंख्या 276752

है, जिसमें से 148372 पुरुष तथा 128382 महिलाएँ हैं। हापुड़ नगरीय क्षेत्र में अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की संख्या 68019 है। 2011 की जनगणना के अनुसार नगरीय क्षेत्र में पुरुष साक्षरों की सं० 92647 है, जो कि 76.19 प्रतिशत है और महिला साक्षरों की कुल जनसंख्या 50014 है, जो कि 42.54 प्रतिशत है। हापुड़ नगरक्षेत्र की कुल साक्षर जनसंख्या 142661 है, जो कि 6291 प्रतिशत है।

हापुड़ नगरीय क्षेत्र के सभी 36 वार्डों से 206 उम्मीदवारों ने चुनावों में भाग लिया, जिनमें से 36 उम्मीदवार चुनाव में चुने गए। दो महिला अनुसूचित जाति की हैं। इस प्रकार महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ाई जा रही है। संविधान के 74वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए 1/3 स्थान सुरक्षित किए गए हैं, जिनके माध्यम से आज महिलाएँ राजनीति में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इसी प्रकार हापुड़ नगरपालिका के 36 वार्डों में से भी 13 महिलाएँ सभासद के पदों पर चुनी गयी हैं।

हापुड़ नगरपालिका में केंद्रीय सेवा में अधिकारी/कर्मचारी के सृजित पद 20 हैं, जबकि 13 कर्मचारी ही कार्यरत हैं और 7 पद रिक्त हैं। इसी प्रकार अकेंद्रीय कर्मचारियों में समूह-ग, के कुल 47 पद सृजित हैं। इनमें 28 कार्यरत व 19 पद रिक्त हैं। इसी प्रकार समूह घ के 149 पद सृजित हैं और इसमें से 137 कर्मचारी कार्यरत हैं और 12 पद रिक्त हैं। इसी प्रकार दैनिक कर्मचारियों में 303 पद सृजित हैं, जिनमें 256 कार्यरत और 47 पद रिक्त हैं। संविदा सफ़ाई कर्मचारियों की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार है। इनमें 366 पद सृजित हैं, जबकि 256 कार्यरत और 110 पद रिक्त हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तालिका के अनुसार हापुड़ नगरपालिका में कर्मचारियों में 885 पद सृजित हैं और इन पदों पर 690 कर्मचारी नियुक्त हैं। इस प्रकार 175 पद हापुड़ नगरपालिका में खाली हैं। हापुड़ नगरपालिका में पेशनरों की सं० 198 हैं, जिस पर 6.70 लाख रुपए खर्च किए जाते हैं। इसप्रकार हापुड़ नगरपालिका में सभी विभागों में 1083 कर्मचारी कार्यरत व पेशनर हैं। जिन पर स्थानीय सरकार हर महीने 65.62 लाख रुपए खर्च करती है।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण

शोधपत्र के लिए एकत्रित किए गए तथ्यों एवं आँकड़ों का परीक्षण, वर्गीकरण, संकेतन व सारणीयन आदि करने में सांख्यिकीय सिद्धांतों के माध्यम से सही व्याख्या एवं निष्कर्ष निकालने के लिए तथ्यों के विश्लेषण में तुलनात्मक गुणनात्मक एवं सुस्पष्टता का पूर्ण ध्यान रखा गया है।

अध्ययनकर्ता ने अध्ययन-क्षेत्र में जाकर नगर के दो वार्डों के अंतर्गत आनेवाले दोनों मोहल्ले के सामाजिक परिवेश, सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों और आज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप उनमें हो रहे परिवर्तनों का सूक्ष्म परीक्षण करके आँकड़े एकत्रित किए। अध्ययन-क्षेत्र में स्थानीय नगर-प्रशासन के प्रति जनदृष्टि का विश्लेषण करने के उद्देश्य से एक अनुसूची क्षेत्र के दो वार्डों के विभिन्न सामाजिक वर्गों के 40-40 उत्तरदाताओं के समक्ष प्रस्तुत की गयी। अनुसूची में से बंद एवं संरचित प्रश्नों के द्वारा सार्थक सूचना प्राप्ति हेतु उत्तरदाताओं से निम्न स्वतंत्र चरों शिक्षा, व्यवसाय, आयु, शैक्षिक स्थिति और लैंगिक स्थिति आदि के आधार पर चरों के माध्यम से आँकड़े प्राप्त किए गए हैं। प्राप्त आँकड़ों को उचित निम्न तरीके से सारणी

वृद्ध करके उनके विश्लेषण को निम्न प्रकार से विश्लेषित किया गया है—

तालिका-2

आयु के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क.	18 से 25	4	10	11	27.5	15	18.75
ख.	26 से 35	14	35	17	42.5	31	38.75
ग.	35 से 50	11	37.5	9	22.5	20	25
घ.	51 से ऊपर	11	27.5	3	7.5	14	17.5
योग		40	100	40	100	80	100

उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं में से 18 से 25 वर्ष की आयुवर्ग के 4 उत्तरदाता हैं, जिनका प्रतिशत 10 है। 26 से 35 वर्ष की आयुवर्ग के 14 उत्तरदाता हैं, जिनका प्रतिशत 35 है। 36 से 50 वर्ष के उत्तरदाता 11 हैं, जिनका प्रतिशत 27.5 है। 51 से ऊपर के उत्तरदाता की सं० 11 है, जिनका प्रतिशत 27.5 है।

इसी प्रकार मतदान केंद्र 2 के 18 से 25 आयुवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 11 है, जिनका प्रतिशत 27.5 है। 26 से 35 आयुवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 17 है, जिसका प्रतिशत 42.5 है। 36 से 50 आयुवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 9 है, जिनका प्रतिशत 22.5 है। 51 वर्ष व इससे ऊपर के मतदाताओं की सं० 3 है, जिसका प्रतिशत 7.5 है।

इस प्रकार उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि दोनों केंद्रों के 18 से 25 वर्ष के उत्तरदाताओं की सं० 15 है, जिसका प्रतिशत 18.75 है। 26 से 35 आयुवाले उत्तरदाताओं की सं० 31 है, जिनका प्रतिशत 38.75 है। 36 से 50 आयुवर्ग वाले उत्तरदाताओं की सं० 20 है, जिनका प्रतिशत 25 है। 51 वर्ष व उससे ऊपर की आयुवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 14 है, जिनका प्रतिशत 17.5 है।

तालिका-3

व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क.	मजदूरी	15	37.5	15	37.5	30	37.5
ख.	नौकरी	0	0	5	12.5	5	6.25

ग. विद्यार्थी	4	10	8	20	12	15
घ. गृहणी	21	52.5	12	30	33	41.25
योग	40	100	40	100	80	100

उपर्युक्त सारणी में आँकड़ों को व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण करने से स्पष्ट होता है कि मतदान केंद्र 1 में मजदूरीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 15 है, जिसका प्रतिशत 37.5 है। नौकरीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० शून्य है। विद्यार्थीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 4 है, जिसका प्रतिशत 10 है। गृहणीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 21 है, जिनका प्रतिशत 52.5 है।

ठीक इसी प्रकार मतदान केंद्र 2 के मजदूरीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 15 है, जिनका प्रतिशत 37.5 है। नौकरी करनेवाले वर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 5 है, जिनका प्रतिशत 12.5 है। विद्यार्थीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 8 है, जिनका प्रतिशत 20 है। गृहणीवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 12 है, जिनका प्रतिशत 30 है।

उपर्युक्त सारणी के आधार पर दोनों मतदान केंद्रों के कुल उत्तरदाताओं में मजदूरीवर्ग के उत्तरदाता की सं० 30 है, जिनका प्रतिशत 37.5 है। नौकरीवर्ग के उत्तरदाता की सं० 5 है, जिनका प्रतिशत 6.25 है। विद्यार्थीवर्ग के 12 है, जिनका प्रतिशत 5 है। गृहणीवर्ग के उत्तरदाता की सं० 33 हैं, जिनका प्रतिशत 41.25 है।

तालिका-4

वैवाहिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. विवाहित	34	87.5	32	80	67	83.75
ख. अविवाहित	6	12.5	8	20	13	16.25
योग	40	100	40	100	80	100

उपर्युक्त सारणी में आँकड़ों को वैवाहिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण करने से स्पष्ट होता है कि मतदान केंद्र 1 के विवाहित उत्तरदाताओं की सं० 34 है, जिनका प्रतिशत 87.5 है। अविवाहित उत्तरदाताओं की सं० 6 है, जिनका प्रतिशत 12.5 है।

इसी प्रकार मतदान केंद्र 2 के विवाहितवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 32 है, जिनका प्रतिशत 80 है। अविवाहित वर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 8 है, जिनका प्रतिशत 20 है।

उपर्युक्त सारणी के आधार पर दोनों मतदान-केंद्रों के विवाहितवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 67 है, जिनका प्रतिशत 83.75 है। अविवाहितवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 13 है, जिनका प्रतिशत 16.25 है।

तालिका-5
लैंगिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क.	पुरुष	18	45	23	57.5	41	51.25
ख.	महिला	22	55	17	42.5	39	48.75
योग		40	100	40	100	80	100

उपर्युक्त सारणी में आँकड़ों को लैंगिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण करने से स्पष्ट होता है कि मतदान केंद्र 1 में पुरुषवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 18 है, जिनका प्रतिशत 45 है। अविवाहित उत्तरदाताओं की सं० 22 है, जिनका प्रतिशत 55 है। ठीक इसी प्रकार मतदान केंद्र 2 में पुरुषवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 23 है, जिनका प्रतिशत 57.5 है। अविवाहितवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 17 है, जिनका प्रतिशत 42.5 है। उपर्युक्त सारणी के आधार पर दोनों केंद्रों के उत्तरदाताओं में पुरुषवर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 41 है, जिनका प्रतिशत 51.25 है। अविवाहित वर्ग के उत्तरदाताओं की सं० 39 है, जिनका प्रतिशत 48.75 है।

तालिका-6
शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क.	अशिक्षित	13	32.5	12	30	25	31.25
ख.	साक्षर 1 से 8	21	52.5	12	30	33	41.25
ग.	इंटरमीडिएट 10 से 12	3	5	10	25	12	15
घ.	स्नातक व ऊपर	4	10	6	15	10	12.25
योग		40	100	40	100	80	100

उपर्युक्त सारणी में आँकड़ों को शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण करने से स्पष्ट होता है कि मतदान केंद्र 1 के अशिक्षित उत्तरदाताओं की सं० 13 है, जिनका प्रतिशत 32.5 है। साक्षर उत्तरदाताओं की सं० 21 है, जिनका प्रतिशत 52.5 है। इंटरमीडिएट उत्तरदाताओं की सं० 2 है जिनका प्रतिशत 5 है। स्नातक व इससे ऊपर के उत्तरदाताओं की सं० 4 है, जिनका प्रतिशत 10 है।

इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 में अशिक्षित उत्तरदाताओं की सं० 12 है, जिनका प्रतिशत 30 है। साक्षर उत्तरदाताओं की सं० 12 है, जिनका प्रतिशत 30 है। इंटरमीडिएट उत्तरदाताओं की सं० 10 है, जिनका प्रतिशत 25 है। स्नातक व इससे ऊपर के उत्तरदाताओं की सं० 6 है, जिनका प्रतिशत 15 है। इस प्रकार उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में अशिक्षित उत्तरदाताओं की सं० 25 है, जिनका प्रतिशत 31.25 है। साक्षर उत्तरदाताओं की सं० 33 है, जिनका प्रतिशत 41.25 है। इंटरमीडिएट उत्तरदाताओं की सं० 12 है, इनका प्रतिशत 15 है। स्नातक व इससे ऊपर के उत्तरदाताओं की सं० 10 है, जिनका प्रतिशत 12.25 है।

तालिका-7

क्या नगरपालिका अध्यक्ष अपना कार्य नियमित और ईमानदारी से करता है?

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. हाँ	36	90	33	82.5	69	86.25
ख. नहीं	4	10	7	17.5	11	13.75
योग	40	100	40	100	80	100

नगरपालिका के अध्यक्ष की कार्यप्रणाली के विषय में जानने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदान केंद्र-1 के 90 प्रतिशत हैं। उत्तरदाताओं ने नगरपालिका अध्यक्ष की कार्यप्रणाली को उचित ठहराया, जबकि 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नगरपालिका अध्यक्ष की कार्यप्रणाली के संदर्भ में नकारात्मक उत्तर दिया। इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 के 82.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अध्यक्ष की कार्यप्रणाली को उचित ठहराया, जबकि 17.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अध्यक्ष की कार्यप्रणाली को अनुचित ठहराया। उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 86.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर देकर अध्यक्ष की कार्यप्रणाली को उचित ठहराया, जबकि मात्र 13.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर देकर अध्यक्ष की कार्यप्रणाली को अनुचित ठहराया है।

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. हाँ	30	75	28	70	58	72.5
ख. नहीं	10	25	12	30	22	27.5
योग	40	100	40	100	80	100

तालिका-9

क्या आपके यहाँ पर नगरपालिका के द्वारा सफाई कार्य समय पर किया जाता है?

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क.	हाँ	6	15	10	25	16	20
ख.	कभी-कभी	30	75	27	67.5	57	71.25
ग.	कभी नहीं	4	10	3	7.5	7	8.75
योग		40	100	40	100	80	100

उत्तरदाताओं से नगरपालिका द्वारा सफाईकार्य के संबंध में उत्तर जानने के संदर्भ में तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदान केंद्र 1 के 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि सफाईकार्य समय पर किया जाता है और 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि कर्मचारी कभी-कभी कार्य करने के लिए आते हैं। जबकि 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि सफाई कर्मचारी द्वारा उनके क्षेत्र में सफाईकार्य कभी-नहीं किया जाता है। इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 के 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि समय पर सफाई कार्य किया जाता है और 67.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि कभी-कभी सफाईकार्य किया जाता है। जबकि मात्र 8.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि सफाईकार्य कभी नहीं किया जाता है।

उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर दिया और 71.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि कभी-कभी सफाईकार्य किया जाता है, जबकि मात्र 8.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर दिया।

तालिका-10

क्या आप नगरपालिका के द्वारा बनाई गई सड़कों से संतुष्ट हैं?

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क.	हाँ	10	25	24	60	34	42.5
ख.	नहीं	30	75	16	40	46	57.5
योग		40	100	40	100	80	100

नगरपालिका द्वारा बनाई गई सड़कों के संदर्भ में जानने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित अगले प्रश्न में उत्तरदाताओं से उनकी राय पूछी गई, जिसमें मतदान केंद्र-1 के 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर दिए। जबकि 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे नगरपालिका

द्वारा बनाई गई सड़कों व खंडों से संतुष्ट नहीं है। इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 के 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे बनाई गई सड़कों से संतुष्ट हैं। जबकि 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर दिए। वे नगरपालिका के द्वारा बनाई गई सड़कों से संतुष्ट नहीं हैं।

उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल 42.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के जवाब सकारात्मक मिले, जो इन बनाई गई सड़कों से संतुष्ट थे। जबकि 57.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने उत्तर नकारात्मक दिए। वे नगरपालिका के द्वारा बनाई गई सड़कों नालियों गलियों के खंडों से संतुष्ट नहीं थे।

तालिका-11

क्या नगरपालिका द्वारा लगाई गई चौराहों की स्ट्रीट लाइटें ठीक प्रकार से कार्य कर रही हैं?

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. हाँ	24	60	36	90	60	75
ख. नहीं	16	40	4	10	20	25
योग	40	100	40	100	80	100

नगरपालिका द्वारा लगाई गई चौराहों पर स्ट्रीट लाइटों के ठीक प्रकार से कार्य करने के संदर्भ में जानने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदान केंद्र-1 के 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि लाइटें ठीक प्रकार से कार्य करती हैं। चौराहों पर रात्रि में उचित रोशनी रहती है, जबकि 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि स्ट्रीट लाइटें सही प्रकार से कार्य नहीं करती हैं।

इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 के 90 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि चौराहों की स्ट्रीट लाइटें सही प्रकार से कार्य करती हैं। जबकि मात्र 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि स्ट्रीट लाइटें ठीक प्रकार से कार्य नहीं करती हैं। इससे चौराहों पर रात्रि के समय अँधेरा रहता है। उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक और मात्र 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर दिए।

तालिका-12

क्या नगरपालिका द्वारा आपके वार्ड में जलापूर्ति सुचारु रूप से की जा रही है?

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. हाँ	1	2.5	32	80	33	41.25

ख. नहीं	39	97.5	8	20	47	58.75
योग	40	100	40	100	80	100

नगरपालिका के द्वारा जलापूर्ति के सुचारु रूप से किए जाने के संदर्भ में जानने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदान केंद्र-1 के 2.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि नगरपालिका के द्वारा जलापूर्ति सुचारु रूप से की जा रही है, जबकि 97.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि नगरपालिका के द्वारा जलापूर्ति सुचारु रूप से नहीं की जा रही है। इससे क्षेत्र को लोगों के बहुत बड़ी मात्रा में पेयजल के लिए पानी की बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 के 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि नगरपालिका द्वारा उनके क्षेत्र में पेयजल के लिए उचित मात्रा में प्रबंध किए गए हैं और जलापूर्ति सुचारु रूप से की जा रही है, जबकि मात्र 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि जलापूर्ति सुचारु रूप से नहीं की जाती है। उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 41.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर दिए, जबकि 58.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर दिए हैं।

तालिका-13

क्या आप नगरपालिका के द्वारा किए गए कार्यों से संतुष्ट हैं?

क्र.सं.	उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. हाँ		10	25	21	52.5	31	38.75
ख. नहीं		30	75	19	47.5	49	61.25
योग		40	100	40	100	80	100

नगरपालिका के द्वारा किए जा रहे कार्यों के प्रति उत्तरदाताओं से उनकी सहमति और असहमति के संदर्भ में जानने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदान केंद्र-1 के 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे नगरपालिका के द्वारा किए कार्यों से संतुष्ट हैं, जबकि 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे नगरपालिका के द्वारा किए कार्यों से असंतुष्ट हैं। इसी प्रकार मतदान केंद्र 2 के 52.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हम संतुष्ट हैं, जबकि 47.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे नगरपालिका के द्वारा किए जा रहे कार्य से असंतुष्ट हैं।

उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदानकेंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 38.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक और 61.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर देकर अपनी राय व्यक्त की।

तालिका-14

आप नगरपालिका में अपनी समस्याओं को लेकर

किस अधिकारी के पास जाते है?

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. अध्यक्ष	28	70	30	75	58	72.5
ख. अधिशासी अधिकारी	3	7.5	2	5	5	6.25
ग. स्वास्थ्य अधिकारी	2	5	0	0	2	2.5
घ. किसी के पास नहीं	7	17.5	8	20	15	18.75
योग	40	100	40	100	80	100

नगरपालिका में समस्याओं को लेकर अधिकारियों से मिलते के संदर्भ में जानने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदानकेंद्र-1 के 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हम अध्यक्ष के पास जाते हैं और 7.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हम अधिशासी अधिकारी के पास जाते हैं, जबकि 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि स्वास्थ्य अधिकारी से और 17.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हम किसी के पास भी अपनी समस्याएँ लेकर नहीं जाते हैं, क्योंकि कोई भी समस्याएँ नहीं सुनता है।

इसी प्रकार मतदानकेंद्र 2 में 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि अध्यक्ष के पास समस्या लेकर जाते हैं। और मात्र 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि अधिशासी अधिकारी से जबकि स्वास्थ्य अधिकारी से मिलनेवालों का प्रतिशत नगण्य रहा और 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हम किसी के पास अपनी समस्या लेकर नहीं जाते हैं।

उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदानकेंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 72.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा अध्यक्ष से और 6.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि अधिशासी अधिकारी से, जबकि मात्र 2.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि स्वास्थ्य अधिकारी के पास और 18.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि हम किसी के पास भी अपनी समस्या लेकर नहीं जाते हैं।

तालिका-15

क्या नगरपालिका द्वारा आवश्यकतानुसार विकासकार्य कराए जा रहे हैं?

क्र.सं. उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)	मतदान केंद्र 1 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-1 का (प्रतिशत)	मतदान केंद्र-2 के उत्तरदाताओं की सं०	केंद्र-2 का प्रतिशत	मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं की सं०	प्रतिशत
क. हाँ	14	35	21	52.5	35	43.75
ख. नहीं	26	65	19	47.5	45	56.25
योग	40	100	40	100	80	100

नगरपालिका के द्वारा किए जा रहे विकासकार्यों की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से तालिका में वर्णित प्रश्न में मतदानकेंद्र-1 के 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि नगर में आवश्यकतानुसार विकासकार्य किए जा रहे हैं, जबकि 65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि नगर में आवश्यकतानुसार विकासकार्य नहीं किए जा रहे हैं।

इसी प्रकार मतदान केंद्र-2 के 52.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि नगर में उचित विकासकार्य किए जा रहे हैं, जबकि 47.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि नगर में आवश्यकता के अनुसार विकासकार्य नहीं किए जा रहे हैं। उपर्युक्त सारणी के अनुसार मतदान केंद्र 1 व 2 के कुल उत्तरदाताओं में से 43.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर दिए, जबकि 56.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर दिए हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

भारत में स्थानीय शासन की अवधारणा कोई नवीन अवधारणा नहीं है, क्योंकि भारत में प्राचीनकाल से ही स्थानीय स्तर पर शासन-व्यवस्था विद्यमान थी। यद्यपि भारत में प्राचीन समय में गाँवों की अधिकता थी। उस समय नगरों व शहरों के विकसित होने के प्रमाण मिलते हैं। इन स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय क्षेत्रों के लिए सार्वजनिक कार्यों भी व्यवस्था की जाती थी। किंतु ये संस्थाएँ प्राचीनकाल में इतनी अधिक सुदृढ़ नहीं थीं, क्योंकि इन पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। समय के साथ-साथ ये संस्थाएँ कार्य तो करती रहीं, परंतु इनकी स्थिति कमजोर ही बनी रही।

स्थानीय शासन को नवीन दिशा ब्रिटिशकाल में प्रदान की गई, क्योंकि इसी काल में सर्वप्रथम इन नगरीय संस्थाओं पर अधिक ध्यान दिया गया। तभी से इन संस्थाओं के विकास के लिए उचित कदम उठाए गए। इसी काल में कलकत्ता, बंबई और मद्रास आदि महानगरों में नगर-निगमों की रचनाएँ की गईं। इस काल में स्थानीय स्तर की शासन-व्यवस्था पर ध्यान दिया जाने लगा, परंतु इनकी स्थिति में उचित सुधार नहीं हो सका।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ही इन नगरों में स्थानीय निकायों की स्थापना की गई और इन संस्थाओं पर अधिक ध्यान दिया गया। उससे पहले तो इन संस्थाओं की स्थिति कमजोर व प्रभावहीन बनी हुई थी, क्योंकि इन संस्थाओं के न तो समय पर चुनाव कराए जाते थे और न ही इन संस्थाओं को उचित वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी। अधिकतर संस्थाएँ तो निलंबित ही रहती थीं और प्रशासकों द्वारा शासित होती थीं।

इन संस्थाओं को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए 1989 में तत्कालीन राजीव गांधी सरकार द्वारा संसद में विधेयक प्रस्तुत करके आवश्यक कदम उठाने की पहल की गयी। तभी से सरकार ने इन निम्नस्तरीय सरकार के पुनरुद्धार के लिए आवश्यक कदम उठाकर इनकी स्थिति को मजबूत बनाने में आवश्यक पहल की। 1992 में संविधान में संशोधन करके 74वाँ संशोधन अधिनियम 1992 पारित किया गया। इस संशोधन के द्वारा संविधान में भाग 9क जोड़ा गया जिसमें कुल 18 अनुच्छेद को एक नई 12वीं अनुसूची माध्यम से जोड़ा गया। संविधान के उक्त संशोधन के आधार पर नगरीय स्तर पर स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया तथा और इनके अधिकार एवं शक्तियों में उचित विस्तार किया गया। इसी के माध्यम से आज नगरीय स्थानीय स्तर की ये संस्थाएँ नगरीय क्षेत्रों में सार्वजनिक कार्यों को कर रही हैं। इसी संशोधन के माध्यम से स्थानीय नगरीय संस्थाओं की

स्थिति की व्यवस्था की गयी, तब इनकी दशा में सुधार हुआ।

अनुसूचित व अनुसूचित जाति व जनजाति 74वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा महिलाओं के लिए सीटों में आरक्षण की जो व्यवस्था की गई है, उसी के माध्यम से नगरपालिकाओं में इन वर्गों के लोगों की भागीदारी बड़ी है। इस संशोधन के माध्यम से महिलाओं की राजनीति में सहभागिता बड़ी है और वे आज चुनावों में बढ़चढ़कर भाग लेती हैं। राजनीति में महिलाओं का योगदान बढ़ा है और उनकी स्थिति में राजनीतिक, सामाजिक सुधार हुए हैं। आरक्षण के पहले की व्यवस्था के मुकाबले में आरक्षण के बाद की स्थिति में महिलाओं की दशा में सकारात्मक बदलाव आया है। ठीक इसी प्रकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग में की राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है।

नगरपालिकाओं में जनसहभागिता एवं नगरपालिका की कार्यप्रणाली के विषय में अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ की नगरीय क्षेत्र की जनता नगरपालिका के चुनावों में 60 प्रतिशत ही अपनी भागीदारी निभाते हैं। नगरपालिका की कार्यप्रणाली के विषय में जानकारी प्राप्त करने से यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश लोग नगरपालिका के द्वारा कराए जा रहे विकासकार्यों से संतुष्ट नहीं हैं। वे लोग नगरपालिका के द्वारा किए गए सार्वजनिक कार्यों से भी अधिक संतुष्ट नहीं हैं।

नगरपालिकाएँ केवल विभिन्न सरकारी कार्य, जलकर, भवन, सीवर, संपत्तिकर आदि कार्यों को ही उचित ढंग से करती हैं, क्योंकि इससे इनको आय प्राप्त होती है और शहर में सफ़ाई व्यवस्था, जलापूर्ति आदि सार्वजनिक कार्यों पर ध्यान कम ही दिया जाता है। लेकिन सरकार द्वारा नगरीय क्षेत्रों के लिए जो विकास-योजनाएँ निर्धन लोगों के लिए चलाई जा रही हैं, उनके बारे में नगरपालिका के द्वारा नगर के व्यक्तियों को उनकी उचित जानकारी नहीं प्रदान की जाती। इससे नगरवासी इन योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं। नगरपालिका द्वारा नगरवासियों को नवीन कार्यों व विकासकार्यों की जानकारी प्रदान करने में अपना उत्तरदायित्व ठीक से निर्वहन नहीं किया जाता है। सरकार द्वारा चलायी जा रही विभिन्न प्रकार की योजनाएँ, शहरी रोजगार योजना आदि योजनाओं की जानकारी, क्षेत्रवासियों के लिए उचित रूप से उनका क्रियान्वयन नहीं किया जाता। इससे नगरपालिका के कर्मचारियों के प्रति जनता में संदेह शेष रह जाता है। इसी कारण लोकतांत्रिक विभेदीकरण भी अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगता है।

सुझाव—

74वें संविधान संशोधन के माध्यम से नगरों में स्वशासन की व्यवस्था तो की गयी लेकिन ये नगरीय संस्थाएँ अभी भी अपने उत्तरदायित्व को उचित ढंग से नहीं निभा पा रही हैं। इसलिए इन स्थानीय संस्थाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक रूप से अभी और प्रयास किए जाने चाहिए। भारत में स्थानीय शासन को उचित ढंग से स्थापित करने के लिए सुझाव निम्न हैं—

- * इन संस्थाओं को उचित रूप से चलाने के लिए ईमानदार व्यक्तियों को ही निर्वाचित करना चाहिए, जिससे कि ईमानदार व्यक्ति चुने जाएँ तो जनता के हितों की रक्षा कर सकें और जो भी योजनाएँ बनाएँ वे पूर्ण हो सकें।
- * किसी धर्म, जाति विशेष को ध्यान में रखकर मतदान नहीं करना चाहिए। जनता को चाहिए वे इन सबसे बड़कर सोचे और स्पष्ट छवि व ईमानदार व्यक्ति को चुनकर उसी के हाथों

- में इनकी सत्ता सौंपी जाए, जिसके की स्थानीय स्तर से ही भ्रष्टाचार कम हो सके।
- * राज्यसरकारों को चाहिए की वह पार्टी-विशेष पर ध्यान न देकर इन संस्थाओं पर अधिक ध्यान दे। इन संस्थाओं को उचित समय पर उचित वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
 - * स्थानीय निकायों की आय में वृद्धि की जानी चाहिए, जिसके माध्यम से ये संस्थाएँ अपनी योजनाओं को उचित ढंग से पूर्ण कर सकें। उन्हें इन योजनाओं को पूर्ण करने में धन की कमी का सामना न करना पड़े।
 - * लोकतंत्र की सफलता के लिए सभी महत्वपूर्ण निर्णयों की जानकारी निष्पक्ष तरीके से जनता को दी जानी चाहिए।
 - * इन संस्थाओं के प्रशासन के प्रति जनता में बड़ी उदासीनता है। अतः जनसाधारण का सहयोग प्राप्त करने के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा नगरीय क्षेत्र के सभी वार्डों की जनता से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करना चाहिए और जनता को यह सूचना देनी चाहिए थी ये संस्थाएँ मात्र कर वसूलने के लिए नहीं बनाई गई हैं। वरन ये सभी व्यक्तियों के सुख-दुख में साथ देनेवाली संस्थाएँ हैं।
 - * नगरीय क्षेत्रों में आज इस तेज़ी से बढ़ती हुई जनसंख्या ने इन स्थानीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली पर प्रश्नचिह्न लगवा दिया है, क्योंकि अधिक जनसंख्या होने के कारण ये संस्थाएँ नगरीय क्षेत्रों में पूर्ण रूप से सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान करने में असफल हो रही हैं, इसलिए इन संस्थाओं की योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनसंख्यावृद्धि पर रोक लगाना अत्यंत आवश्यक है।
 - * राज्य सरकारों के द्वारा इन संस्थाओं को स्वेच्छा से न्यूनतम दर से अधिक कर लगाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
 - * राज्य सरकार के द्वारा संस्थाओं पर जो नियंत्रण रखा जाता है, प्रजातंत्र में निर्वाचित सदस्यों को बिना उचित कारण के केवल दलगत राजनीति के आधार पर नहीं हटाना चाहिए। इससे इनके निर्वाचन के व्यय का भार जनता पर पड़ता है, उस भार को रोका जा सकता है।
 - * इन संस्थाओं की वर्तमान स्थिति के बिगड़ने का एक कारण यह भी है कि निर्वाचन के पश्चात् सदस्यों का जनता से संपर्क नहीं रहता और नहीं इन पर जनता का कोई नियंत्रण रहता है। इसलिए इन संस्थाओं के सदस्य मनमानी करते हैं।
 - * निर्वाचित पदाधिकारी अपना अधिकांश समय अपने व्यक्तिगत लाभ में लगाते हैं। इससे जनता के हितों की अवहेलना की जाती है। इसलिए इन पदाधिकारियों का यह उत्तरदायित्व है कि वह जनता के हितों की रक्षा करें, उनकी अवहेलना न करें।
 - * वर्तमान युग में प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सभी वर्गों को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में समानता लाने के लिए अस्पृश्यता की भावना का अंत करना परम आवश्यक है। सभी को समान अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

इस प्रकार उपर्युक्त सुझावों को अपनाकर स्थानीय शासन को और अधिक सफल बनाया जा सकता है। ईमानदार व्यक्तियों का चुनाव ही भ्रष्टाचार को कम कर सकता है, इसलिए ईमानदार एवं स्पष्ट छवि वाले व्यक्तियों का ही चुनाव किया जाना चाहिए, क्योंकि ईमानदार व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों में न लगकर सर्वसमाज के प्रति कार्य करेगा, तभी नगरपालिकाओं की स्थिति के सुधार हो सकता है।

भारत में जनाधिक्य : कारण तथा दुष्परिणाम

संजय खर्ब

प्राध्यापक समाजशास्त्र

छोटूराम किसान कॉलेज, जींद (हरियाणा)

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का चीन के बाद विश्व में दूसरा स्थान है। इसी प्रकार विश्व की कुल जनसंख्या का 15 प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है, जबकि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का केवल 2.4 प्रतिशत है। भारत में हर 1.3 सेकेंड में 1 बच्चा पैदा होता है और हर वर्ष यहाँ इतने बच्चे पैदा होते हैं जितनी आस्ट्रेलिया की कुल आबादी है। यदि भारत की जनसंख्या के इतिहास को देखा जाए, तो भारत की पहली जनगणना 1872 से शुरू हुई। वास्तव में 1872 से पूर्व भारत में जनगणना नहीं की जाती थी। इससे पहले के जो भी जनगणना के आंकड़े उपलब्ध हैं, वे अनुमानों पर आधारित ही कहे जा सकते हैं। मोरलैंड के अनुसार 1605 (अकबर की मृत्यु के समय) में भारत की जनसंख्या लगभग 10 करोड़ थी। डॉ॰ राधाकमल मुकर्जी का अनुमान है कि 19वीं सदी के आरंभ में भारत की जनसंख्या 10.5 करोड़ के आस-पास रही होगी। इसी प्रकार किंग्सले डेविस ने अपनी पुस्तक 'पोपुलेशन ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान' में भारत की जनसंख्या 1600 ई॰ में 10 करोड़ व 1800 ई॰ में 12 करोड़ के लगभग बताई गई है। भारत की जनसंख्या जो 1891 में 23.59 करोड़ थी, वह आज बढ़कर 2011 में 1,21,01,93422 हो गई है, जो भारत में जनाधिक्य की समस्या को दर्शाती है।

अनुकूलतम जनसंख्या

किसी देश की जनसंख्या कितनी होनी चाहिए, इस विषय पर जनसंख्या शास्त्रियों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य किसी भी देश की उस स्थिति से है जिसमें प्रति व्यक्ति आय एवं कुल उत्पादन अधिक हो। प्रो॰ डाल्टन के अनुसार 'अनुकूलतम जनसंख्या वह है, जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय देती है। इसी प्रकार प्रो॰ बीलिंग्टन का कहना है कि वह जनसंख्या जिसमें जीवन स्तर उच्चतम होता है, सर्वोत्तम जनसंख्या कहलाती है।' इन विद्वानों के अनुसार किसी भी देश में जनसंख्या की तीन स्थितियाँ हो सकती हैं—

प्रथम-अनुकूलतम से कम जनसंख्या—अनुकूलतम से कम जनसंख्या का तात्पर्य जनसंख्या की उस स्थिति है जिसमें देश के आर्थिक साधनों (मिट्टी, खनिज, वन संपदा) का जनसंख्या की कमी के कारण इनका उपयोग उचित ढंग से नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय कम होती है। संक्षेप में, अधिकतम उत्पादन तथा अधिकतम प्रति व्यक्ति आय को प्राप्त करने के लिए जितनी संख्या होनी चाहिए उससे कम होना अनुकूलतम से कम जनसंख्या की स्थिति है।

द्वितीय-अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य-

उस स्थिति से है जिसमें उपलब्ध आर्थिक साधनों का अधिकतम शोषण संभव है। उस स्थिति में कुल उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है।

तृतीय-अनुकूलतम से अधिक जनसंख्या से तात्पर्य-

जनसंख्या की उस मात्रा से है, जो अनुकूलतम से अधिक होती है जिसमें उत्पत्ति के अन्य साधनों के साथ श्रम का अनुपत्ता बिगड़ने लगता है। परिणामस्वरूप उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय घटने लगती है। इस स्थिति में जनसंख्या में कमी करना आवश्यक हो जाता है।

भारत में जनाधिक्य या जनसंख्या की अधिकता

भारत में निश्चित रूप से जनाधिक्य की स्थिति विद्यमान है जैसा कि साउंडर्स ने भारतीय जनसंख्या के बारे में लिखा है—'यहाँ जीवन निर्वाह के साधनों के ऊपर जनसंख्या का अत्यधिक भार है। यदि वर्तमान जनसंख्या वर्ष दर बनी रही, तो हमारा आर्थिक विकास और उपलब्धियाँ निश्चल हो जाएँगी। भारत के अनेक अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, जनांकिकी शास्त्री, समाज-सुधारक और मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि भारत में निश्चित रूप में जनाधिक्य है, क्योंकि भारत में खाद्य समस्या, बढ़ती हुई बेरोजगारी, निम्न जीवन स्तर, ऊँची मृत्यु दर, बढ़ता जनघनत्व आदि समस्याएँ देखी जा सकती हैं।

भारत में जनाधिक्य के कारण

भारत में अनेक सामाजिक समस्याओं के तारतम्य में जनसंख्या वर्ष की समस्या सबसे महत्वपूर्ण है। भारत ही क्या विश्व के सभी देश जनसंख्या वृद्धि की समस्या से चिंतित हैं। जनसंख्या वृद्धि की दर भारत में अत्यंत ही तीव्र है। जैसे तो भारत में अनेक परिस्थितियाँ जनसंख्या के लिए उतरदायी हैं, किंतु भारत में जन्म दर का अधिक होना और मृत्यु दर में निरंतर कमी जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारणों में मूल कारण हैं। भारत में जनाधिक्य के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

1. **अशिक्षा**—आज भी भारत की अधिकांश जनता अशिक्षित है। भारत में शिक्षा का प्रतिशत सिर्फ 74.04 प्रतिशत (जनगणना 2011 के अनुसार) है। अशिक्षा और अज्ञानता के कारण भारतवासी संतानोत्पत्ति को ईश्वर की कृपा मानते हैं। इसके साथ ही यह धारणा की अधिक संतानों का होना भाग्यशाली होने की निशानी मानी जाती है। अशिक्षित होने के कारण वे अधिक बच्चों के दुष्परिणामों को समझ नहीं पाते और ज्यादा बच्चे पैदा करते जाते हैं।

2. **जन्म-दर का अधिक होना**—भारत में कुछ समय से जन्म-दर निरंतर कम हो रही है, लेकिन जिस दर से मृत्यु दर कम हुई है उस गति से जन्म दर कम नहीं हो पाई है। 2008 में जन्म दर 22.8 थी, जोकि मृत्यु दर से काफी अधिक है, जिस कारण जनसंख्या में वृद्धि होती है।

3. **संयुक्त परिवार प्रणाली**—भारत में जन्म दर अधिक होने का एक प्रमुख कारण यहाँ संयुक्त परिवार प्रणाली का लोकप्रिय होना है। संयुक्त परिवार का एक दोष यह होता है कि इसमें परिवार का आर्थिक दायित्व किसी सदस्य विशेष पर नहीं होता, बल्कि सामूहिक होता है। इस कारण वे संतान उत्पन्न करते जाते हैं और मुखिया उनके लालन-पालन की जिम्मेदारी वहन करता है। इस प्रकार संयुक्त परिवार बच्चों को पैदा करनेवाले एक कारखाने के रूप में कार्य कर रहा है।

4. **बाल विवाह**—बाल्यावस्था में ही विवाह कर देने का प्रचलन भारत में रहा है। कई बार तो एक-दो वर्ष की आयु में ही विवाह होते पाए गए हैं। बचपन में ही विवाह होने के कारण

वे बच्चे पैदा करते जाते हैं और जब तक उन्हें समझ आती है, तब तक वे कई बच्चों के माता-पिता बन चुके होते हैं। बाल-विवाह जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण कहा जा सकता है।

5. **विवाह की अनिवार्यता**—भारत में विवाह को अनिवार्य सामाजिक व आर्थिक घटना या आर्थिक संस्कार माना जाता है। अविवाहित लोगों को समाज में निम्न व घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। धार्मिक दृष्टि से हिंदुओं में संतानोत्पत्ति, स्वर्ग की प्राप्ति व पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए विवाह अनिवार्य माना जाता है। डॉ० ज्ञानचंद ने कहा है कि 'हर व्यक्ति स्वाभाविक क्रिया के समान ही विवाह करता है, ऐसी स्थिति में जन्म-दर का ऊँचा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।'

6. **गर्म जलवायु**—भारत एक गर्म जलवायु वाला देश है। परिणामस्वरूप यहाँ गर्म जलवायु के कारण न केवल कम उम्र में ही लड़कियाँ स्त्रीत्व को प्राप्त कर लेती हैं, बल्कि उनकी प्रजनन अवधि भी लंबी होती है जिस कारण भारत की जन्म-दर अन्य शीत जलवायु वाले देशों में अधिक है।

7. **निर्धनता**—भारत एक निर्धन देश है और गरीब व्यक्ति संतान को उत्पादन का एक साधन मानते हैं। आज भी प्रत्येक गरीब पिता को आशा होती है कि वह अपनी गरीबी अधिक बच्चे पैदा कर दूर कर सकता है। इसके अलावा गरीब भारतीय के पास यौन-संबंध ही मनोरंजन का एकमात्र साधन रह जाता है, जिसका स्वाभाविक परिणाम संतानों की अधिकता है। निर्धन लोगों की यह भी मान्यता है कि 'जो पेट लेकर आता है, वह साथ में दो हाथ और दो पैर भी लाता है।'

8. **कृषि पर निर्भरता**—भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। कृषि एक ऐसा व्यवसाय है, जिसमें अनेक कार्यों के लिए बच्चों का सहयोग छोटी आयु से ही प्राप्त किया सकता है, जैसे खेत की रखवाली, पानी लगाना, पशुओं को चराना, खेत में खाना पहुँचाना आदि कार्यों में बच्चे छोटी आयु में ही अपने माँ-बाप का हाथ बँटाते हैं।

9. **पुत्र की चाहत**—भारत में बेटी की अपेक्षा बेटे को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। किसी परिवार में अगर लड़की नहीं है, तो कोई बात नहीं; लेकिन लड़के के बिना परिवार सूना रहता है। परिवार में लड़का बहुत जरूरी माना जाता है। माता-पिता तब तक बच्चे पैदा करते हैं जब तक उनको लड़का पैदा नहीं हो जाता है। फिर चाहे वह लड़का लगातार 4 या 5 लड़कियों के बाद ही क्यों न हो। इसप्रकार लड़के की चाहत में परिवार का आकार बढ़ा दिया जाता है।

10. **मृत्यु-दर की अधिकता**—भारत में शिशु मृत्यु दर व सामान्य मृत्यु दर अधिक है। अतः हर दंपति को यह विश्वास या यह भय रहता है कि कहीं उनके बच्चे को कुछ हो गया तो उसका सहारा कौन बनेगा? इस धारणा के कारण प्रत्येक दंपति अधिक संतान पैदा करता है।

11. **गर्भ निरोधक साधनों का अभाव**—पश्चिमी देशों में जहाँ स्वेच्छा से भारी मात्रा में जनसंख्या तथा जन्म दर को कम करने के लिए गर्भ निरोधक साधनों का प्रयोग किया जाता है वहीं भारत में अशिक्षा, अज्ञानता, धार्मिक मान्यताएँ तथा उन साधनों का आसानी से उपलब्ध न होने के कारण उनका प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

12. **अन्य कारण**—इन सब मुख्य कारणों के अलावा भी अनेक ऐसे कारक हैं, जिससे जनाधिक्य की समस्या उत्पन्न होती है, जैसे—अज्ञानता, बहुपत्नी विवाह, परिवार नियोजन के प्रति उदासीनता आदि।

जनाधिक्य के दुष्परिणाम—

यदि किसी भी देश में जनसंख्या की वृद्धि आवश्यकता से अधिक होती है, तो जनाधिक्य की स्थिति हो जाती है और जनाधिक्य होने से देश को भारी हानि उठानी पड़ती है। किसी भी देश में जनाधिक्य की स्थिति देश के सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करती है। बढ़ती हुई जनसंख्या केवल आर्थिक, विकास में ही बाधा उत्पन्न नहीं करती, बल्कि देश की अनेक समस्याओं का मूल कारण है। जिस गति से जनसंख्या में वृद्धि होती है उस गति से उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय कम हो जाती है। जनता का जीवनस्तर और निम्न हो जाता है तथा उसकी कार्यकुशलता में कमी आती है। जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम इस प्रकार से हैं—

1. **खाद्यान्न पूर्ति की समस्या**—जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि से खाद्यान्न पूर्ति की समस्या पैदा हो जाती है, जिसकी पूर्ति करने के लिए अरबों रुपयों का खाद्यान्न आयात करना पड़ता है और इस प्रकार वह पूँजी जो विकास में लगनी चाहिए, वह खाद्यान्न क्रय करने में लगानी पड़ती है।

2. **बचत में कमी**—किसी देश की जनसंख्या वृद्धि उस देश की आय व बचत पर प्रभाव डालती है। आर्थिक विकास के कारण जिसका सृजन होता है, उसमें बढ़ी हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए व्यय कर देना पड़ता है। जिसका परिणाम यह होता है कि पूँजी के निर्माण में वृद्धि नहीं हो सकती है, जिससे बचत प्रभावित होती है और कम बचत होने से विनियोग की दर गिर जाती है।

3. **आर्थिक विकास में बाधक**—भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए प्रति वर्ष लाखों स्कूल, अध्यापक, अस्पताल, डाक्टर, भवन आदि की आवश्यकता पड़ती है, जिसको पूरा करने के लिए भारत सरकार को अरबों-खरबों रुपया खर्च करना पड़ता है। जो पैसा देश के विकास में जाना चाहिए, वह पैसा बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खर्च हो जाता है। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

4. **बेरोज़गारी की समस्या**—प्रतिवर्ष निरंतर तेज गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बेरोज़गारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जनसंख्या के बढ़ने से जिस दर से बेरोज़गारों की संख्या बढ़ रही है, उस दर से देश में रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराना संभव नहीं हो पा रहा है। रोज़गार के नियोजित प्रयत्नों के बाद भी बेरोज़गारों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इस बेरोज़गारी के अनेक सामाजिक व आर्थिक दुष्परिणाम देश के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं।

5. **कृषि एवं उद्योग के विकास में बाधा**—बढ़ती हुई जनसंख्या कृषि का भी तीव्र गति से विकास नहीं होने देती है, क्योंकि परिवार के सदस्य बढ़ने से भूमि का उप-विभाजन होने लगता है। भारत में 1911 में प्रति व्यक्ति हेक्टेयर औसत 1.11 था, जो वर्तमान में घटकर 0.38 हेक्टेयर रह गया है। इससे पूँजी निर्माण नहीं हो पाता, जिस कारण देश के आर्थिक विकास पर प्रभाव पड़ता है।

6. **मूल्य-स्तर में वृद्धि**—जनसंख्या की वृद्धि से वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है, लेकिन उत्पादन नहीं बढ़ता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वस्तुओं में मूल्य-स्तर में वृद्धि हो जाती है। यह मूल्य वृद्धि देश के आर्थिक विकास पर प्रभाव डालती है।

7. **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में कमी**—बढ़ती हुई जनसंख्या से देश की राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय कम हो जाती है। भारत की प्रति व्यक्ति आय अन्य देशों की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में काफी कम है और यह कमी एक कुचक्र रूप में क्रियाशील होकर जीवन स्तर से गिरा रही है। राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय की कमी का मूल कारण आर्थिक विकास के अनुपात में जनसंख्या में अधिक वृद्धि है।

8. **व्यक्तित्व के विकास में बाधक**—किसी भी देश की जनसंख्या का बढ़ना उस देश के नागरिकों के वैयक्तिक विघटन का सबसे प्रमुख कारण है। इसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य, शिक्षा, रहन-सहन की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

9. **पारिवारिक विघटन**—जनाधिक्य की समस्या से जब व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है, तो उसका वैयक्तिक विघटन पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन करता है। जीवन का लगातार गिरता स्तर पारिवारिक जीवन में कटुता की भावना को प्रोत्साहन करता है, जिस कारण पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है।

10. **सामाजिक विघटन**—बढ़ती हुई जनसंख्या व्यक्तित्व का विघटन करती है। वह विघटित व्यक्तित्व, परिवार व समाज को विघटित कर देता है। जनसंख्या वृद्धि से गरीबी, बेकारी आदि समस्याओं का जन्म होता है। ये समस्याएँ किसी भी समाज को विघटित करने के लिए पर्याप्त हैं।

निष्कर्ष

भारत जैसे विकासशील देश में प्रति वर्ष 1 करोड़ 30 लाख की दर से जनसंख्या वृद्धि बहुत ही चिंतनीय है। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के प्रयास किए जाएँ। जनाधिक्य की समस्या न केवल देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है बल्कि विकास से प्राप्त प्रतिफलों को भी नगण्य बना देती है। जैसा कि अशोक मेहता ने कहा है कि 'देश की बढ़ती हुई जनसंख्या उस चोर के समान है, जो रात में सब-कुछ चुरा लेता है, जिसे हम दिन की योजनाओं से प्राप्त करते हैं।' इस प्रकार वर्तमान परिस्थितियों में जनसंख्या वृद्धि अर्थव्यवस्था को मजबूत न करके कमजोर करती है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि बढ़ती हुई जनसंख्या को रोका न गया, तो हमारी प्रगति रेत पर लिखने के समान होगी जिसको जनसंख्या की लहरें मिटा देंगी।'

संदर्भ

1. डॉ० डी० एस० बधोल व डॉ० किरण बधोल, 'जनांकिकी' विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2011
2. डॉ० गणेश पांडेय, 'भारतीय सामाजिक समस्याएँ' राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003
3. डॉ० मृदुला शुक्ला, 'स्त्रियों का घटता अनुपात' रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर, 2009
4. डॉ० एम०एन० सिंह, 'मानवाधिकार और महिलाएँ,' जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. ए०एस० अलटेकर, 'पोजीशन ऑफ वीमन इन हिंदू सीविलाइजेशन,' मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005

पितृसत्तात्मकता और भारतीय महिलाएँ

डॉ० सुभाषचंद्र लोहान (प्रिंसिपल)

संजयकुमार, प्राध्यापक समाजशास्त्र

छोटू राम किसान कॉलेज, जींद

ईश्वर द्वारा रचित इस संसार में मानव को सबसे बुद्धिमान प्राणी माना जाता है। प्रकृति की हर चीज़ को उसने अपने अधीन करने का प्रयास किया है। वह अपनी सूझ-बूझ से हवा की दिशा बदल सकता है, मिट्टी एवं कीचड़ से कलाकृतियों का निर्माण कर सकता है और यदि वह चाहे तो नदियों के रूख को मोड़ सकता है। वह खूँखार से खूँखार जानवरों को भी अपनी ताकत, अक्ल एवं तकनीक के द्वारा वश में कर सकता है तथा अपने हित के लिए उसका प्रयोग कर सकता है। जो मानव कभी जंगलों में नग्न अवस्था में भटकता था, वही आज चाँद पर जा पहुँचा है। आज इस संसार में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जिस पर अपना प्रभुत्व स्थापित न किया हो। इसी कड़ी में आगे बढ़ते हुए पुरुष ने औरत को भी अपना दास बना लिया एवं इसे वश में करने के लिए उसने जिस तंत्र या तकनीक का प्रयोग किया, वह और कुछ नहीं बल्कि वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। यदि हम कहें कि भारतीय महिलाओं को दोगुना दर्जे की स्थिति के लिए पितृसत्तात्मकता जिम्मेवार है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पितृसत्ता न केवल उस व्यवस्था को दर्शाता है जिसमें हमारा समाज कार्य करता है बल्कि इस समाज को भी उद्घाटित करता है कि समाज ने महिलाओं के ऊपर कैसे प्रभुत्व स्थापित कर लिया है।

पितृसत्ता का अर्थ—

व्यवस्था, वंश, परंपरा, वंशानुगत नियमों पर आधारित है। वास्तव में पितृसत्ता शब्द अंग्रेजी के **पेट्रिआर्की** (Patriarchy) का हिंदी रूपांतरण है जो **‘पेट्रिआर्क’** (Patriarc) शब्द से बना है, जो प्राधिकार को व्यक्त करता है। यह पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक सत्ता को अभिव्यक्त करती है जिसका पलड़ा पुरुषों की ओर झुका होता है। पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें महिलाओं के ऊपर पुरुषों की एक सत्ता होती है। इसमें महिलाओं को पुरुषों की वस्तु के रूप में माना जाता है। हमेशा यह संभावना बनी रहती है कि पुरुष ही समाज के नेतृत्वकर्ता बनेंगे क्योंकि पितृसत्ता में इसी प्रकार की बात होती है।

पितृसत्तात्मकता एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है—

पितृसत्तात्मकता व्यवस्था वाले समाजों में बचपन से ही परिवार के अंदर समाजीकरण के द्वारा बच्चों में यह भावना डाल दी जाती है कि समाज में पुरुष की तुलना में स्त्री का स्थान निम्न होता है तथा आगे चलकर शिक्षा, साहित्य, धर्म आदि के द्वारा इसे स्थापित किया जाता है।

कैट मिलैट के अनुसार 'परिवार पितृसत्ता की सर्वोच्च संस्था है। परिवार ही है, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था को कायम रखता है और साथ ही महिलाओं के उत्पीड़न का स्वयं एक स्रोत भी है। यहाँ महिलाओं को पुरुषों पर आश्रित बना दिया जाता है ताकि पुरुष उनसे जबरदस्ती गृहकार्य करवा सकें तथा अपनी यौन इच्छाओं को पूरा कर सकें।' परिवार के माध्यम से लड़कियों को यह बताया जाता है कि लड़की पराया धन होती है। उसको मानसिक रूप से बचपन से ही तैयार कर दिया जाता है। विवाह से पहले कहा जाता है कि माँ-बाप की सेवा करो तथा ससुराल में जाकर पति की आज्ञा का पालन करो, पति परमेश्वर होता है। इस प्रकार से पुरुष का प्रभुत्व नारी के ऊपर थोप दिया जाता है और यह प्रक्रिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है।

पितृसत्तात्मकता एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है और नहीं लगता कि भविष्य में यह कमजोर होगी क्योंकि हम देखते हैं कि बचपन से ही लड़के दूसरों को दबाने एवं नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। वे आक्रामक प्रकृति के होते हैं। उनके माता-पिता भी इस बात का परीक्षण करते रहते हैं कि उनका बेटा ताकतवर है। किंतु वही माता-पिता लड़कियों को अच्छी माँ बनने के लिए शिक्षा देते हैं। इसलिए लड़कियों से सबसे पहली जो अपेक्षा की जाती है वह किसी पुरुष पर निर्भर होने के लिए उसे आकर्षित करना है। उन्हें अपने शारीरिक ताकत व बुराई कल बजाए रूप रंग पर ज्यादा ध्यान देने की अपेक्षा की जाती है। लड़कियाँ हमेशा अपने संबंधों को बनाने एवं सुधारने का प्रयास करती हैं। मानो उन्हें हमेशा उन्हें दूसरों से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि क्या तुम मुझे पसंद करते हो। पुरुषों के माता-पिता द्वारा काम देखने एवं आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित किया जाता है। पुरुषों से अपने मनोभावों को दबाने एवं अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं करने की अपेक्षा की जाती है क्योंकि यह महिलाओं का कार्य माना जाता है। जिस पितृसत्तात्मक व्यवस्था को हम जन्म से ही बच्चों के व्यवहार में डाल देते हैं, तो उस व्यवस्था के समाप्त होने की आशा कैसे कर सकते हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की स्थिति—

पितृसत्तात्मक समाज में महिलाएँ निरंतर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं एवं कभी-कभी तो वे पुरुषों की अधीनता के बीच शक्तिविहिन व निःसहाय होकर जिंदा रहने के लिए जदोजहद करती हुए देखी जा सकती हैं एवं इसी यौन के आधार पर महिलाओं को उनके विस्तृत मानव अधिकार एवं प्रतिष्ठा से वंचित रखा जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने महिलाओं के लिए एक प्रकार से दासता की ही स्थिति उत्पन्न की है। प्रगति कर रही महिलाओं के ऊपर इस व्यवस्था में कड़ा प्रहार किया जाता है। वे यहाँ कार्यालयों में पुरुषों के बराबर कार्य करती हैं, फिर भी उन्हें वे अधिकार नहीं मिलते जो पुरुषों को मिलते हैं। परिवार में भी बच्चों के लालन-पालन के कार्य की तो कोई गिनती ही नहीं है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंदर महिलाओं को नियन्त्रण में रखने के लिए अनेक प्रकार के हिंसक कृत्यों का प्रयोग किया जाता है। नारीवादी चिंतकों के अनुसार इस व्यवस्था में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का प्रयोग अत्याधिक ही नहीं बल्कि व्यवस्थित रूप से भी किया जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को हम पारिवारिक परंपराओं में भी देख सकते हैं कि कैसे विवाह के पश्चात् महिलाएँ अपने नाम में पति के नाम का टाईटल जोड़ती हैं। इसके अलावा बच्चों का नामकरण भी पिता के नाम के अनुरूप ही होता है। इस व्यवस्था में ऐसा लगता है कि महिलाओं की न तो कोई

जाति होती है, न कोई धर्म होता है क्योंकि वे जिस भी पुरुष के साथ विवाह करती हैं वह जिस जाति, धर्म का है, महिलाओं की भी वही जाति और वही धर्म हो जाता है। ऐसा नहीं है कि यह पितृसत्तात्मकता नवीन व्यवस्था है, यह प्राचीन भारतीय समाज की देन है जोकि भारतीय परंपराओं, रीति-रिवाजों में देखी जा सकती है। मनु के काल से ही स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से निम्न रही है। मनु ने कहा भी है कि स्त्री को सदैव नियंत्रण में रखा जाना चाहिए। बाल्यावस्था में पिता के नियंत्रण में युवावस्था में पति के नियंत्रण में और वृद्धावस्था में पुत्र के नियंत्रण में। इस प्रकार स्पष्ट झलकता है कि परिवार में लड़की को जन्म से मृत्यु तक पुरुष की सत्ता में रहना पड़ता है।

पितृसत्ता के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र में जो भेदभाव देखा जाता है वह भी पारिवारिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्र से पृथक नहीं होता है। वस्तुतः सार्वजनिक क्षेत्र में तो सार्वजनिक संस्थाओं के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि वह महिलाओं का दमन कर सके। यह तो पारिवारिक क्षेत्र के अंतर्गत स्थापित पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो सार्वजनिक क्षेत्र में भी महिलाओं को दोगुना दर्जे की भूमिका में ला खड़ा करता है। उदाहरण के लिए हम भारत में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को देख सकते हैं। पंचायत में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया है। लेकिन क्या इन पंचायतों में महिलाओं को वास्तव में वो अधिकार होते हैं? क्या वो अपनी शक्ति का प्रयोग करने में स्वतंत्र होती हैं? निश्चित रूप से इसका उत्तर नकारात्मक ही है। सच्चाई तो यह है कि वहाँ भी उसके कार्यों एवं शक्तियों का निर्वहन पुरुष ही करते हैं। इस प्रकार से निजी क्षेत्र की पितृसत्तात्मक संरचना एवं सार्वजनिक क्षेत्र की पितृसत्तात्मक संरचना दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों ही जगह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष के द्वारा ही महिलाओं के ऊपर प्रभुत्व का प्रयोग किया जाता है।

किसी भी परिवार में महिलाएँ सबके निशाने पर होती हैं। वे घर का सारा कार्य करती हैं जिस पर औपचारिक रूप से प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता है। वे परिवार में रहकर सब कुछ करती हैं, लेकिन फिर भी कहा जाता है कि कमाती नहीं हैं, घर पर ही रहती हैं। इस प्रकार परिवार के अंदर बिना वेतन के घरेलू काम-काज के ऊपर काफी विवाद है। शुमालिथ फायरस्टोन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द डायलेक्टिक ऑफ़ सेक्स' के अंतर्गत कहती है कि महिलाओं की संतानोत्पत्ति की भूमिका के कारण ही वे पंगू बन जाती हैं और इसी ने सदियों से पुरुषों को पितृसत्तात्मक शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम बना दिया है। फायरस्टोन के अनुसार आर्थिक संरचना की बजाए जैविक सच्चाई ही है जो समाज में पुरुषों एवं महिलाओं के बीच मूल विभाजन हेतु एक भौतिक आधार तैयार कर देता है।

भारतीय समाज की परंपराएँ, धारोहर एवं मूल्य जिसे यहाँ की महिलाएँ सहेज पर रखती हैं वही उनके लिए पितृसत्ता से लड़ने में एवं विमुक्ति के मार्ग में सबसे बड़ा काँटा है। 'पतिव्रता' एवं 'सती-सावित्री' नारी की जिस विचारधारा को यहाँ की महिलाएँ अपना आदर्श मानती हैं, पितृसत्ता से लोहा लेने में एक बड़ी समस्या बन जाती है। पतिव्रता नारी से तात्पर्य ऐसी महिला से है जो अपने पति को परमेश्वर मानती है, वह अपने पति को भगवान की तरह पूजती है तथा अपने ससुराल के सभी लोगों की सेवा करना ही अंतिम उद्देश्य होता है। भारतीय संस्कृति में परंपरा, धर्म एवं अन्य दूसरे तरीकों के माध्यम से इस पतिव्रता नारी की इस विचारधारा का प्रसार किया जाता है। महिलाओं की इस प्रकार की छवि उन्हें हर तरह के कष्ट सहकर पुरुषों की दासी

बनने के लिए प्रेरित करती है।

पितृसत्ता उत्पीड़न की एक संक्रामक व्यवस्था है। यह एक वायरस की तरह है जो महिलाओं के घोषणा की एक ऐसी पद्धति तैयार कर देता है जो अनंत काल तक चलता रहता है। यहाँ महिलाओं को जन्म से ही उत्पीड़न व दमन का सामना करना पड़ता है। भारतीय हिंदु परंपरा में यह मान्यता है कि पुत्र के हाथ में मुखाग्नि मिलने पर ही माता-पिता को मुक्ति मिलती है और व स्वर्ग के भागी होते हैं। माता-पिता की संपत्ति भी बेटे की ही होती है, बेटी की अपनी कोई संपत्ति नहीं होती है। माता-पिता जहाँ बेटे के लालन-पालन, खान-पान व शिक्षा पर पर्याप्त खर्च करते हैं, वहीं बेटी को स्कूल तक नहीं भेजते हैं। उसे छोटी उम्र में ही घर के कमा-काज करने की जिम्मेदारी दे दी जाती है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण ही कन्या भ्रूण हत्या जैसी समस्याएँ देखी जा सकती हैं। इसी प्रकार गर्भ में ही लड़की को मार दिया जाता है। इसी प्रकार विवाह के बाद यदि उसके पति की मृत्यु हो जाती है तो उसका जीवन नरक बन जाता है। अपने मायके से तो उसका नाता पहले टूट चुका होता है, ससुराल में भी उसे परिवार का सदस्य नहीं माना जाता है। प्राचीन भारत में तो विधवा के जीवन को अभिशाप माना जाता था और उसे देवी की प्रतिष्ठा देकर अपने पति के साथ जला दिया जाता था। अतः यहाँ उसे बलि का बकरा बना दिया जाता था। वस्तुतः यहाँ पितृसत्ता की धिनौनी राजनीति खेली जाती थी। इसका मुख्य मकसद महिलाओं को जला का उसे संपत्ति से अलग रखना था।

निष्कर्ष

‘औरत जन्म नहीं लेती बल्कि बना दी जाती है’ यह प्रसिद्ध उक्ति है। यह उक्ति पुरुष और स्त्री के बीच मौलिक अंतर को रेखांकित करती है। इसी प्रकार यदि समाज की इस परंपरा को गहराई से देखें, तो हम पाते हैं कि पुरुष जहाँ अधिकार की भाषा बोलते हैं, वहीं महिलाएँ उत्तरदायित्व की भाषा तक ही सिमटी रहती हैं। शिक्षक भी लड़कियों को न्याय एवं अधिकार की भाषा सीखाते हैं क्योंकि इस स्थापित दुनिया को चलाने के लिए उन्हें इस तरह की भाषा को सीखने की आवश्यकता होती है। लेकिन दूसरी तरु शिक्षक लड़कों को देखभाल एवं जिम्मेवारी की भाषा नहीं सीखाते हैं क्योंकि बाजार व्यवस्था में यह उनकी प्रगति को रोक सकता है। निश्चित रूप से पितृसत्ता शक्ति का एक प्रभावशाली स्वरूप है जिसे नारीवादियों ने चुनौती दी है और यदि वे समकालीन समाज के साथ केवल संपर्क में भी बनी रहें तो व्यापक सामाजिक परिवर्तन लाने में मदद कर सकती हैं। इस प्रकार नारीवादियों ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बेनकाब कर दिया है एवं शक्ति संरचना में अब परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

संदर्भ

1. डॉ॰ तपन बिसवाल, ‘मानवाधिकार जेंडर एवं पर्यावरण’ विवा बुक प्रा॰ लि॰, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-2008
2. भसीन कमला, ‘अंडरस्टैंडिंग जेंडर पेट्रीआरकी, काली फॉर वीमेन, नई दिल्ली, 2000
3. भसीन कमला, ‘अंडरस्टैंडिंग पेट्रीआरकी, काली फॉर वीमेन, नई दिल्ली, 2000
4. दूबे तथा नीता बोरा, ‘भारत में सामाजिक न्याय एवं महिलाएँ’ स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999

एक शैक्षिक चिंतक के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती के शिक्षा-दर्शन का मूल्यांकन

डॉ० आदित्यकृष्ण सिंह चौहान

प्रवक्ता विभागाध्यक्ष बी०एड० विभाग
शांतिदेवी आहूजा गर्ल्स कॉलेज ऑफ एजुकेशन
शिकोहाबाद (फिरोजाबाद)

श्रीमती प्रवीता चौहान

एम०ए० समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र
एम०एड० छात्रा
रामनाथसिंह शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
सिथौली, ग्वालियर (म०प्र०)

स्वामी दयानंद का जन्म आधुनिक सौराष्ट्र (पहले के काठियावाड़ राज्य) प्रदेश में 'मोरवी' नामक ग्राम के एक सम्पन्न और उच्च ब्राह्मण परिवार में सन् 1824 में हुआ था। उनके पिता का नाम कर्षणजी लालजी त्रिवाड़ी था। कर्षणजी शिव के बड़े भक्त थे, धर्मनिष्ठ तथा कठोर नियम पालन करनेवाले थे। जन्म के बाद उन्हें 'मूलजी' कहा गया, परंतु उनका नाम मूलशंकर था। स्नेहवश माता उन्हें दयाराम कहती थीं, जिससे आगे चलकर उन्होंने दयानंद नाम धारण किया।

8 से 14 वर्ष तक इन्होंने यजुर्वेद संहिता तथा अन्य तीन वेदों के अंशों का अध्ययन कर लिया। साथ ही पाणिनी का व्याकरण, शब्द-रूपावली तथा तर्कशास्त्र आदि का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। सन् 1838 में शिवरात्रि के दिन पिता की आज्ञा से रात्रिजागरण करते हुए मूलजी ने शिवलिंग पर चूहे को दौड़ते हुए देखा, जिससे प्रतिमा की शक्ति में अविश्वास उत्पन्न हुआ। इसके बाद बहिन व चाचा की मृत्यु से विरक्ति के भाव उत्पन्न हुए। सन् 1846 में गृह त्याग दिया और संन्यासी वेश धारण कर अपना नाम शुद्ध चैतन्य रखा। सन् 1846 से 1861 तक के समय में इन्होंने अध्ययन, चिंतन-मनन, योगाभ्यास व साधु-संगत में बिताया। स्वामी पूर्णानंद के सान्निध्य में इन्होंने योगाभ्यास किया। स्वामी पूर्णानंद ने शुद्ध चैतन्य को दयानंद सरस्वती का नाम दिया। सन् 1861 में मथुरा में इनकी भेंट स्वामी विरजानंद से हुई। विरजानंद ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया और जीवन-भर आर्यग्रंथों के प्रचार और अनार्य भ्रमों के खंडन का परामर्श दिया। सन् 1861 से लेकर 1883 तक वैदिक ज्ञान और धर्म के प्रचार में लगे रहे।

इनकी समस्त शिक्षाओं का उल्लेख उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में मिलता है। 10 अप्रैल, 1875 में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की, जिसके द्वारा हिंदू, समाज में उपस्थित कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। हिंदूसमाज में पाखंडवाद व्याप्त था। मंदिरों में मूर्तिपूजा के नाम पर भ्रष्टाचार का बोलबाला था। इनके विरुद्ध आर्यसमाज के माध्यम से धार्मिक व सामाजिक आंदोलन किया। भारतीयों का प्रेम, स्वतंत्रता व भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने का संदेश दिया। हिंदुओं को धर्मपरिवर्तन के विरोध का नारा दिया। अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, हिंसात्मक यज्ञ आदि का विरोधकर हिंदूसमाज को नष्ट होने से बचाया। इनके समक्ष

चार मुख्य उद्देश्य थे-आर्यसमाज का प्रचार, राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार, समाज-सुधार और वैदिक पाठशालाओं की स्थापना। सन् 1883 में दीपावली के दिन इस महापुरुष ने महाप्रस्थान किया।

महर्षि दयानंद सरस्वती का दार्शनिक चिंतन : महर्षि दयानंद वेदों के ज्ञाता थे और वैदिक दर्शन ही इन्हें मान्य था, परंतु इस दर्शन के मूल तत्त्वों की व्याख्या इन्होंने कुछ अपने ढंग से की है और उसे आर्यदर्शन एवं आर्यसमाज-धर्म की संज्ञा दी है। महर्षि दयानंद का आर्यदर्शन अथवा आर्यसमाज-धर्म वैदिक होते हुए भी वैदिकदर्शन और सनातनधर्म से कुछ भिन्न है। वैदिकदर्शन एवं स्वयं में भिन्नताओं का योग है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत और मीमांसा, सभी दर्शन वैदिकदर्शन पर आधारित हैं, परंतु इन सबमें बड़ी भिन्नता हैं। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत और बहुतत्त्ववाद आदि दर्शन भी वैदिकधर्म पर आधारित हैं, परंतु इनमें भी भिन्नता है। दयानंद का आर्यदर्शन वैदिकदर्शन पर आधारित होते हुए भी सबसे भिन्न है। दयानंदजी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ईश्वर के जितने भी रूप हैं, उन सबको एक मानते थे, इसलिए कुछ लोग इन्हें अद्वैतवादी समझने की भूल करते हैं। पदार्थ को ये ब्रह्मा से अलग मानते थे, इसलिए कुछ लोग इन्हें द्वैतवादी कहते हैं। इन्होंने आत्मा और परमात्मा को भी अलग-अलग माना है, इसलिए कुछ लोग इन्हें त्रैतवादी कहते हैं। परंतु सच बात यह है कि स्वामीजी परमात्मा और पदार्थ के साथ-साथ जीवात्माओं के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करते थे, इसलिए ये बहुतत्त्ववादी हैं।

कुछ विद्वान् तो स्वामीजी के दार्शनिक चिंतन को पाश्चात्य दर्शनों से जोड़ते हैं। स्वामीजी आत्मा-परमात्मा में विश्वास करते थे, इसलिए कुछ विद्वान् इन्हें आदर्शवादी मानते हैं। स्वामीजी प्रकृति को भी मूल तत्त्व मानते थे, इस आधार पर कुछ विद्वान् इन्हें प्रकृतिवादी मानते हैं। स्वामीजी पदार्थ की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते थे, उसे वास्तविक एवं यथार्थ मानते थे, इसलिए कुछ विद्वान् इन्हें यथार्थवादी मानते हैं। स्वामीजी भौतिक जीवन की सुरक्षा के लिए कर्म-प्रवृत्त होने का उपदेश देते थे, साथ ही इन्होंने समाजसुधार के लिए अथक परिश्रम किया था, इस आधार पर कुछ विद्वान् इन्हें प्रयोजनवादी मानते हैं, परंतु वास्तविकता यह है कि स्वामीजी ने इन पाश्चात्य दार्शनिक संप्रदायों का अध्ययन तक नहीं किया था, स्वामीजी के दर्शन का इन पाश्चात्य दर्शनों से कुछ लेना-देना नहीं है। स्वामीजी ने केवल वैदिक साहित्य का अध्ययन किया था और इनका दार्शनिक चिंतन उसी पर आधारित एवं विकसित है।

शैक्षिक विचार :

शिक्षा का अर्थ-प्राचीन वैदिक परंपरा के अनुसार शिक्षा वह है, जिससे विद्या मिलती है। दयानंद शिक्षा को प्रक्रिया नहीं, वरन् विषयवस्तु मानते हैं। उन्होंने शिक्षा को ज्ञान के समकक्ष माना है। वह ज्ञान, जिससे ब्रह्म, जीवात्मा और पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है और मनुष्य का लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से शुभ एवं कल्याण होता है, वही शिक्षा है। दयानंदजी के अनुसार, 'शिक्षा जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि की बढ़ोतरी हो और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं।' इस प्रकार शिक्षा के पाँच गुण हैं, जैसे-विद्या प्रदान करना, सभ्य बनाना, धर्मात्मा बनाना, जितेन्द्रियता बढ़ाना और अविद्या से मुक्ति दिलाना। इस प्रकार शिक्षा में इहलौकिक व पारलौकिक सभी विद्याएँ आती हैं। स्वामीजी ने लिखा है, 'जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदैव आनंदित हो सकें

वह शिक्षा कहलाती है। जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर ग्रहण करने योग्य गुणों को प्राप्त करके अपने को और दूसरों को सुखी बना सकें, वह विद्या है। जिससे पदार्थों के स्वरूप का प्रतिकूल ज्ञान हो और जिसको जानकर अपना और दूसरों का अहित कर लिया वह अविद्या है।' विद्या का कार्य नित्य और अनित्य, पवित्र और अपवित्र में सही भेद करना है। विद्या से दुःखों से छुटकारा मिलता है और इस प्रकार मोक्ष प्राप्त होता है। वैदिक विचारों के अनुसार विद्या वह है, जिससे मोक्ष प्राप्त होता है।

शिक्षा के उद्देश्य : दयानंद जी मनुष्य-जीवन के चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के समर्थक थे। ये मनुष्य को पहले लौकिक जीवन के लिए तैयार करने की बात करते थे और उसके बाद उसे पारलौकिक जीवन के लिए तैयार होने की सलाह देते थे। इनकी दृष्टि से शिक्षा को ये दोनों कार्य करने चाहिए। शिक्षा के उद्देश्यों संबंधी इनके विचारों को हम निम्नलिखित शीर्षकों में क्रमबद्ध कर सकते हैं—

1. शारीरिक विकास,
2. मानसिक विकास एवं यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति,
3. समाजसुधार की शक्ति का विकास
4. सद्ज्ञान का विकास
5. सद्गुणों का विकास

पाठ्यक्रम : वैदिक परंपरा को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानंद ने ब्रह्मचर्य आश्रम (25 वर्ष तक) को विद्याध्ययन का काल माना है। उनके अनुसार बच्चे की शिक्षा गर्भ से प्रारंभ हो जाती है। अतः उन्होंने गर्भकाल से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु तक की पाठ्यचर्चा तैयार की है।

गर्भकाल में माता को सात्विक भोजन, शुद्ध आचरण और धार्मिक क्रिया-कलापों में लीन रहना चाहिए और किसी भी प्रकार के दूषित विचारों को नहीं मन में लाना चाहिए। इससे बालक शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ होगा।

1. **जन्म से पाँच वर्ष तक का पाठ्यक्रम**—इस काल में माता द्वारा शिक्षा दी जाएगी। इस काल में अच्छी आदतों के निर्माण अच्छे आचरण की शिक्षा व भाषा के विकास पर बल दिया जाएगा। खेलकूद की क्रियाओं के अवसर बालक को दिए जाएँ और ऐसा वातावरण दिया जाए, जिससे बालक में जिज्ञासा उत्पन्न हो।

2. **पाँच से आठ वर्ष तक का पाठ्यक्रम**—इस काल में पिता द्वारा शिक्षा दी जाए। इस काल में साधारण ज्ञान की बातें आरंभ कर देनी चाहिए। इस काल में वर्णों के उच्चारण का स्पष्ट ज्ञान कराया जाए। इस काल में पदों व श्लोकों को कंठस्थ करने का सुझाव दिया। खेलकूद व शुद्ध आचरण का अभ्यास इस स्तर पर भी कराया जाए।

3. **आठ से ग्यारह वर्ष तक का पाठ्यक्रम**—आठ से ग्यारह वर्ष तक बच्चों को गुरुकुल अथवा विद्वानों की शरण में रहकर विद्याध्ययन करना होगा। पहले बालकों को शब्दों के उच्चारण की शिक्षा दी जाए फिर व्याकरण की। पहले अष्टाध्यायी पढ़ाई जाए और फिर महाभाष्य।

4. **बारह वर्ष से पंद्रह वर्ष तक का पाठ्यक्रम**—ग्यारह वर्ष की आयु पूरी करने के बाद निघण्टु (वैदिक शब्दकोष) और निरुक्त (भाषाशास्त्र) को पढ़ाया जाए। इसके अतिरिक्त पिंगलाचार्य द्वारा लिखे छंद ग्रंथ को पढ़ाया जाए। छंदों का ज्ञान व श्लोकों की रचनाविधि का

परिचय दिया जाए। बारह वर्ष की आयु में स्वामीजी ने मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण आदि धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने का सुझाव दिया है। तेरह से पंद्रह वर्ष की आयु में पूर्ण मीमांसा, वैशेषिक न्याय, योग, सांख्य और वेदांत, ऋषिकृत व्याख्या अथवा विद्वानों की सरल व्याख्या सहित छह शास्त्रों को पढ़ाया जाए।

5. **पंद्रह से पच्चीस वर्ष तक का पाठ्यक्रम**—पंद्रह से इक्कीस वर्ष तक के पाठ्यक्रम में वेदों के अध्ययन को सम्मिलित किया जाए। अध्ययन करते समय स्वरोच्चारण, शब्द-अर्थ, संबंध और क्रियापद आदि का पूरा ध्यान रखा जाए। इक्कीस से पच्चीस वर्ष के बीच उपयोगी विषयों का अध्ययन कराया जाए। उपयोगी विषयों में वैद्यशास्त्र, धनुर्विद्या, सैन्यशिक्षा, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र कानून, गायन, शिल्पकला, विज्ञान, भूगोल व खगोल आदि को स्थान दिया जाए।

शिक्षक व शिक्षार्थी : स्वामीजी के अनुसार शिक्षक को चरित्रवान होना चाहिए। शिक्षक को स्वयं विद्वान होना चाहिए। उन्हें तपस्वी होना चाहिए और धर्मानुष्ठान करते हुए वेद आदि शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना चाहिए। शिक्षक का विद्यार्थियों के साथ पितातुल्य व्यवहार होना चाहिए। शिक्षक व शिक्षार्थी में निकट संपर्क होना चाहिए। शिक्षा समाप्त करके जब विद्यार्थी आचार्यकुल छोड़ता है तो विद्वान शिक्षक उसे धर्माचरण का पालन करने और पापाचरण से दूर रहने का उपदेश देता है।

विद्यार्थी में कुछ गुणों का होना आवश्यक है, तभी वे धर्मानुसार नैतिक आचरण करते हुए गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थी को ब्रह्मचारी, माता-पिता-गुरुसेवी, आज्ञापालक, संयमित एवं एकांतवासी, कर्म-धर्मशील, विद्यापरायण, दानी, श्रद्धाशील, धैर्य-उत्साहयुक्त, लक्ष्यनिष्ठ, धर्मपालक, स्वस्थ, साधारण जीवनवाला, सुखत्याग करनेवाला, परिश्रमी, सभ्य, सद्गुणी, सच्चरित्र, बुद्धिमान, समाजहितैषी एवं सुधारक, ऋतु व समय के अनुकूल पठन-पाठन करनेवाला होना चाहिए। शिष्य के लिए गुरु के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन करना चाहिए। जिज्ञासु शिक्षक ही गुरु से ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

शिक्षण विधियाँ : स्वामीजी ने शिक्षण-विधि और अध्ययन-विधि में कोई अंतर नहीं किया है और प्रायः वैदिक विधियों का ही समर्थन किया है। सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में स्वामीजी ने लिखा है कि संध्योपासना एवं यज्ञ-हवन आदि के द्वारा मन, वाणी, शरीर और वातावरण को शुद्ध करके शिक्षा-कार्य आरंभ करना चाहिए। शिक्षण के लिए इन्होंने जिन विधियों की उपयोगिता स्वीकार की है, वे हैं—उपदेश अथवा व्याख्यान-विधि, स्वाध्याय-विधि, प्रत्यक्षानुभव-विधि, तर्क-विधि और व्यवहारिक विधि। दयानंदजी ने इन विधियों को एक विशेष रूप में स्वीकार किया है।

स्त्रीशिक्षा : स्वामीजी स्त्री-शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते थे। मातृशक्ति को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। मातृशक्ति की सहायता से राज्य व समाज आगे बढ़ सकता है। अतः पुरुषों के समान स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। स्वामीजी ने कई कन्या गुरुकुलों व कन्या वैदिक पाठशालाओं की स्थापना की। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य, संयम व नैतिक नियमों का पालन करना होगा। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी धनुर्वेद, व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प-विद्या आदि सीखनी चाहिए, क्योंकि इनके बिना संतान का पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि काम, जैसे होने चाहिए वैसे नहीं होंगे।

शिक्षा-शास्त्री के रूप में स्वामी दयानंद का योगदान : स्वामी दयानंद ने शैक्षिक सामाजिक आंदोलन के माध्यम से शिक्षा व समाज को अविस्मरणीय योगदान दिया है। आपने संपूर्ण देश में विशेषतया उत्तरी भारत में आर्य समाजों व गुरुकुलों की स्थापना की। आर्य समाज एक व्यवस्थापक संस्था है। यह वैदिक विद्यालयों की देख-रेख करता है। सन् 1886 में लाहौर में दयानंद एंग्लोवैदिक कॉलेज तथा सन् 1902 में काँगड़ी में गुरुकुल की स्थापना की। यह गुरुकुल आज स्वतंत्र विश्वविद्यालय है। इनके अतिरिक्त ज्वालामपुर व वृंदावन में गुरुकुलों की स्थापना की गई। कन्याओं के लिए पृथक् गुरुकुल है, जिनमें देहरादून, बड़ौदा तथा सासनी के गुरुकुल महत्वपूर्ण हैं। आज लगभग प्रत्येक जिले में और अधिकतर बड़े-बड़े नगरों में दयानंद एंग्लोवैदिक कॉलेज और आर्य कन्या पाठशालाएँ शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। स्वामी दयानंद का शिक्षा दर्शन प्राचीन वैदिक शिक्षा दर्शन है उन्होंने ईसाई और मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से हिंदू संस्कृति की रक्षा की और प्राचीन भारतीय मूल्यों, विचारों और व्यवस्थाओं को बनाए रखने के लिए महान् परिश्रम किया। भारतीय शिक्षा-दर्शन में उनके विचारों का शाश्वत महत्त्व है।

महात्मा गांधी ने सत्य ही लिखा है, 'महर्षि दयानंद हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा।'

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि स्वामी दयानंद सरस्वती केवल धर्म प्रचारक और समाज सुधारक ही नहीं थे, अपितु राष्ट्रीय जागरण के प्रणेता भी थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वामीजी का बड़ा योगदान है। ये भारतीय शिक्षा को भारतीय बनाने, अँग्रेजी के स्थान पर मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने और अँग्रेजी-पद्धति पर चलने वाले विद्यालयों के स्थान पर भारतीय पद्धति पर चलनेवाले गुरुकुलों और दयानंद वैदिक विद्यालयों की स्थापना करने के लिए सदैव स्मरण रहेंगे। जनशिक्षा, स्त्रीशिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा का बिगुल भी इस देश में सबसे पहले स्वामी दयानंद ने ही बजाया था। इनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज संस्था आज भी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसारकार्य में रत है और देश में सहस्रों शिक्षण संस्थाएँ चला रही हैं। यह बात दूसरी है कि गुरुकुलों को छोड़कर अन्य शिक्षण-संस्थाओं में आज न संस्कृत अनिवार्य है और न दैनिक हवन अनिवार्य है। नाम है दयानंद वैदिक एंग्लो विद्यालय अथवा महाविद्यालय और शिक्षा का स्वरूप, जिसकी नींव अँग्रेजों ने रखी थी। पर, कुछ भी हो, स्वामीजी ने प्राचीन की रक्षा और नवीन के निर्माण का श्रीगणेश कर डूबते हुए भारत को जीवन दिया था, हम इनके चिर ऋणी रहेंगे। सर यदुनाथ सरकार के शब्दों में—'जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जाएगा तो नंगे फ़क़ीर दयानंद सरस्वती को उच्चासन पर बैठाया जाएगा।' हम हृदय से इस महापुरुष को नमन करते हैं।

संदर्भ

1. प्रो० रमनबिहारी लाल एवं डॉ० राजेंद्रसिंह तोमर, विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ
2. डॉ० रामशकल पांडेय एवं डॉ० बीना कपूर, शिक्षा के दार्शनिक आधार, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, आगरा
4. अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र, आगरा

तिलक का धर्म तथा अध्यात्म : एक अध्ययन

डॉ० नीलू कपूर

प्रवक्ता इतिहास

कमला आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मीरजापुर (उ०प्र०)

बाल गंगाधर तिलक की सनातन हिंदूधर्म में पूर्ण निष्ठा थी। हिंदूधर्म की महानता उदारता व सहिष्णुता के वे प्रबल प्रशंसक थे। उन्होंने हिंदूधर्म से संबंधित समस्त मान्यताओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक ग्रंथों आदि का विशद अध्ययन किया था। वे हिंदूधर्म की अवतारवादी, अद्वैतवादी तथा ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिवेणी से निस्तृत योग-साधना की मान्यताओं के समर्थक थे। उन्होंने सनातनी होते हुए भी अनेक धार्मिक आडंबरों का विरोध किया था। छुआछूत, विधवा-विवाह आदि ऐसी कुरीतियाँ थीं, जिनको तिलक ने धार्मिक दृष्टि से असंगत पाया। वे हिंदुओं में सामाजिक सुधार के कार्यों के विरुद्ध नहीं थे, किंतु वे समाज-सुधारकों की नास्तिकता अथवा धर्म के प्रति उदासीनता के विरोधी थे। समाज-सुधारकों ने पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति के विदेशी प्रभाव में हिंदूधर्म की मान्यताओं तथा हिंदू-संस्कृति को तिरस्कृत करने का जो प्रयास किया था, उसे तिलक ने राष्ट्रघाती बताया। उनके अनुसार वेदों, उपनिषदों तथा वेदांत की वैज्ञानिक धारणाओं में संदेह नहीं किया जा सकता। उनमें भौतिकता का विरोध तथा आध्यात्मिकता का तर्क आधुनिक मानवता के मार्गदर्शन की सनातन क्षमता से युक्त है।¹

तिलक ने हिंदुओं की सांप्रदायिक एकता पर बल दिया। वे हिंदुओं के विभिन्न मतमतांतरों को समन्वित कर समस्त हिंदू-मतावलंबियों को एकजुट होने का आह्वान कर रहे थे। तिलक ने कहा था, 'धर्म, धृ धातु से बना बंधन का अर्थबोधक शब्द है—धारण करने, ग्रहण करने के अर्थ में आनेवाला शब्द। एक साथ रखने या धारण करने के लिए क्या है? आत्मा को परमात्मा से जोड़ना, मनुष्य मनुष्य को जोड़ना या एक साथ रखना। धर्म से हमारे ईश्वर व मनुष्य के प्रति कर्तव्य का बोध होता है। वैदिकयुग में भारत स्वावलंबी देश था। वह एक महान राष्ट्र की भाँति संगठित था। परंतु अब वह संगठन और एकता छिन्न-भिन्न हो गई, जिससे हमारा पतन हुआ।²

तिलक ने धर्म को अति व्यापक अर्थ में देखा था। वे धर्म को संघर्ष अथवा मतभेदों का जनक नहीं मानते थे। तिलक ने हिंदुओं तथा मुसलमानों को अपने-अपने धर्म की उचित शिक्षा दिलवाने का आग्रह किया ताकि वे परस्पर धार्मिक सहिष्णुता का ज्ञान प्राप्त करें। तिलक ने पंडिता रमाबाई द्वारा संचालित 'शारदा-सदन' की गतिविधियों का भंडाफोड़ कर यह सिद्ध किया कि धर्म की आड़ में ईसाई मिशनरियों द्वारा किस प्रकार अबोध हिंदू बालिकाओं को ईसाई धर्म में परिवर्तित

किया जा रहा था। तिलक के अनुसार 'किसी को अपने धर्म पर अभिमान कैसे हो सकता है, यदि वह उससे अनभिज्ञ है।'³

1916 के काँग्रेस अधिवेशन में तिलक ने हिंदुओं तथा मुसलमानों में सांप्रदायिक समझौता करवाने का सफल प्रयास किया। उनके सहिष्णु दृष्टिकोण के कारण मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देने का निर्णय काँग्रेस ने स्वीकार किया, जिसके कारण मुसलमान नेताओं में उनके प्रति गहरी श्रद्धा थी।⁴ इस प्रकार तिलक ने एक धर्मनिष्ठ सनातनी हिंदू होते हुए भी अपने धार्मिक विश्वास का अन्य संप्रदायों के अहित में प्रयोग नहीं किया।

तिलक ने हिंदू सनातन धर्म को लिंग तथा जाति-भेद रहित मानव-स्वतंत्रता की समानता का पोषक माना। वे वर्ण-व्यवस्था तथा आत्मिक विकास के कार्य सिद्धांत को मानव की उर्ध्वगामी प्रगति का सूचक मानते थे— 'वर्ण-व्यवस्था सामाजिक संगठन का निर्माण कर व्यक्ति की प्रकृति तथा उसकी प्रतिभाओं के अनुरूप उसे स्वतंत्रता का अधिकार देती है। धर्म के प्रति व्यक्ति की शिथिलता को दूर करने के लिए कर्म का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है।'⁵

तिलक यह कहते हैं यदि ईश्वर भी अछूत-प्रथा का समर्थन करें तो वे ऐसे ईश्वर को ईश्वर नहीं स्वीकार करेंगे। उनका यह विचार है कि वर्ण-व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता को सबकी स्वतंत्रता में परिवर्तित कर देती है। वे खानपान में छूआछूत तथा अछूत प्रथा को सनातनी धर्म जनित न मानकर ऐसी व्याधि मानते हैं, जिसे सनातनधर्मी पुरातनपंथियों ने आमंत्रित किया है। वे सनातनधर्म की श्रेष्ठता में विश्वास करते हुए उसे विश्वधर्म की संज्ञा देते हैं। विश्व में कोई अन्य धर्म ऐसा नहीं है, जो शाश्वत सत्य तथा परब्रह्म की सत्ता का इतना स्थायी एवं निर्मल विचार करता हो।⁶

'तिलक ने 'गीता रहस्य' के माध्यम से अपने आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका मानना था कि परब्रह्म के साक्षात्कार के अनेक मार्गों में कर्म का मार्ग प्रधान है। ज्ञानयोग तथा भक्तियोग ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करने की श्रेष्ठता रखते हुए भी कर्म से विमुक्त नहीं है। व्यक्ति को ज्ञान तथा भक्ति में पूर्णता प्राप्त करके भी मोक्ष-प्राप्ति के लिए कर्म का सहवर्ण करना होता है। मनुष्य का ईश्वर के साथ एकाकार होना उसे कर्म से मुक्त करने की प्रेरणा देता है। स्वयं ईश्वर भी कर्म के बंधन से मुक्त नहीं। प्रकृति तथा पुरुष की एकरूपता कर्म से ही स्थापित हो सकती है और इसके बाद पुरुष तथा ईश्वर का एकीकरण भी कर्म-प्रेरित है। कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का अर्थ है मानव-सेवा की बंधनों से मुक्ति तथा सत्य के साथ एकरूपता। 'गीता-रहस्य' में कर्मयोग की विशद व्याख्या करते हुए तिलक ने कहा है कि कर्म, अकर्म और विकर्म में कर्म का अर्थ सात्विक कर्म, अकर्म का अर्थ राजसिक कर्म तथा विकर्म का अर्थ भ्रांतिवश किए गए कार्य हैं। तिलक ने आचार-नीति की समस्याओं को आध्यात्मिक विवेचन श्रेष्ठ मानते हुए सुखवाद, पदार्थवाद एवं उपयोगितावाद की आलोचना प्रस्तुत की है।⁷

तिलक ने मनुष्य में स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों ही प्रवृत्तियों का दर्शन किया है। परमार्थ की स्वार्थ पर विजय ही नैतिक मूल्यों द्वारा व्यक्ति के चरमोत्कर्ष का मार्ग है। तिलक ने परब्रह्म के सच्चिदानंद स्वरूप की कल्पना को आध्यात्मिक चिंतन की महत्वपूर्ण उपलब्धि बताया है। तिलक और शंकर दोनों ही अद्वैतवादी हैं। तिलक ने सांख्य दर्शन के अनीश्वरवादी परब्रह्म तथा श्रीकृष्ण के ईश्वरीय अस्तित्व के वेदांती दृष्टिकोण का गीता में सुंदर समन्वय अनुभूत किया है।

तिलक ने गीता के अवतारवाद को स्वीकार करते हुए ईश्वर द्वारा धर्म तथा बार-बार पृथ्वी पर अवतरित होने को कर्म माना है। गीता ने पलायनवादी धारणा को प्रश्रय नहीं दिया। कर्महीन जीवन की कोई उपादेयता नहीं। ज्ञान से उत्पन्न वैराग्य अथवा संन्यास में भी कर्म की स्थिति बनी रहती है।

‘तिलक ने गीता में मानसिक अहिंसा का उपदेश दिया है। ईश्वर-आराधना में भक्ति का अपना महत्त्व है। गीता के संपूर्ण अवगाहन के पश्चात् तिलक ने व्यक्त किया कि गीता-ज्ञान-भक्ति समन्वित कर्मयोग का मार्ग प्रशस्त करती है। गीता को आधुनिक जीवन की मार्गदर्शिका मानते हुए भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में निर्भयता, स्वतंत्रता, बलिदान तथा सेवा की प्रेरणा तिलक ने गीता से ही प्राप्त की है।’⁸

तिलक में पंडित राजनीतिज्ञ नेतृत्व दोनों का समन्वय था। अतः उनका भारतीय इतिहास में विशिष्ट इतिहास है।

योगदान

लोकमान्य तिलक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन के अद्वितीय विचारक थे। तिलक ने न केवल भारतीयों को शासन के रवैये के प्रति असंतुष्ट बनाया, अपितु उन्हें अपने-आपके विकास के प्रति भी संतुष्ट होकर बैठने न दिया। तिलक ने स्वराज्य की मान्यता को सैद्धांतिक शब्दावली से लाकर भारतीयों के होंठों पर बैठाया। राष्ट्रवाद की सुरसरी को भगीरथ के समान जनमानस के स्मृति-पटल पर अवतरित करके तिलक ने भारत को पुनः एकता का संदेश दिया।

गीता का अमर-संदेश देकर भारतीयों को कर्ममार्ग के प्रति प्रेरित किया। स्वराज्य, स्वदेशी, स्वधर्म, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम को सफलतापूर्वक संचालित करके तिलक ने विदेशी शासन की नींव हिला दी। राजनीति को लोकनीति में परिवर्तित करने का श्रेय प्राप्त कर तिलक ने जन-जन को राजनीतिक आंदोलनों में सम्मिलित किया।

‘हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करनेवाले तिलक ने गांधी जैसे उत्तराधिकारी को भी पहचान लिया था। गांधी जी उनके मानस-पुत्र थे। गाँधी जी ने गोखले को गुरु माना, किंतु जनसामान्य उनके क्रियाकलापों में तिलक का ही दर्शन करता रहा। आर्यजाति के इतिहास की प्राचीनता सिद्ध कर तिलक ने भारतीयों के मन की सांस्कृतिक हीनता को सदा के लिए समाप्त कर दिया। तिलक ने असहयोग का पाठ सिखाकर ब्रिटिश साम्राज्य के अंत की घोषणा कर दी थी। यही असहयोग कालांतर में गांधी जी के पूर्ण स्वराज्य का सबल बना।’⁹

तिलक ने गीता रहस्य लिखकर समाज के जीवन, धर्म और नीति-संबंधी हिंदूतत्त्वज्ञान को प्रतिपादित किया। तिलक आधुनिक भारतीय लोकतंत्र के प्रणेता हैं। जनशक्ति ही उनकी उपासना की देवी थी। इसी कारण उनकी राजनीति लोकतंत्र की राजनीति हुई और यही कारण है कि तिलक भारतीय लोकशक्ति की गंगोत्री हैं। ‘तिलक के राष्ट्रवाद की एक अन्य विशेषता उनकी सब समुदायों की एकता है। हिंदू-मुस्लिम संबंध, जाति-भेद, राजनीतिक दृष्टि से एकात्म भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्य बाधा थी। तिलक आधुनिक भारत के हरक्यूलीज तथा प्रोमेथियस ही नहीं, अपितु भारतीय राष्ट्रवाद के पिता थे।’¹⁰

संदर्भ

1. एम०ए०बुच०, दी स्पिरिट आफ़ एनसिएंट हिंदू कल्चर (बडौदा 1920) पृ० 179
2. जीवन परिचय, रामगोपाल कृत लोकमान्य तिलक, पृ० 43
3. टी०वी० पार्वते, बाल गंगाधर तिलक, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद 1958, पृ० 222
4. प्रधान तथा भागवत, लोकमान्य तिलक : ए बायोग्राफ़ी, जैको पब्लिशिंग हाउस, बंबई 1959, पृ० 181
5. के० एम० मुंशी, भगवद्गीता एंड मोडर्न लाइफ, विद्या भवन, बंबई 1964, पृ० 101-113
6. बाल गंगाधर तिलक, हिज राइटिंग्स एंड स्पीचेज (गणेश एंड कंपनी मद्रास) 1922 तृतीय संस्करण पृ० 170
7. बाल गंगाधर तिलक, श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अर्थात् कर्मयोगशास्त्र, तिलक ब्रदर्स, पूना 1935, खंड-1, पृ० 114-128
8. बाल गंगाधर तिलक, श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अर्थात् कर्मयोगशास्त्र तिलक ब्रदर्स, पूना 1935 खंड -1 पृ० 155-158
9. तिलक एंड दी स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, पी०पी०एच० नई दिल्ली 1966, पृ० 150-155
10. जवाहरलाल नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम, दी जॉन डे कंपनी, न्यूयार्क 1942 पृ० 35

□ द्वारा श्री सिद्धार्थ कपूर
स्वामी दयानंद मार्ग
गिरधर का चौराहा
मीरजापुर 231001 (उ०प्र०)
मो० 08576826116

मेरठ तहसील में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक विकास में भूमिका

डॉ० नीरज तोमर

सहा० प्रोफेसर भूगोल विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ

कपिल तोमर

शोधछात्र भूगोल विभाग
डी०जे० कॉलेज, बड़ौत (बागपत)

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का विकास, वृहत रूप से उसके कृषि विकास पर निर्भर करता है। औद्योगिक विकास के लिए एक सुदृढ़ एवं सुविकसित कृषि आधार की आवश्यकता होती है। उद्योगों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता होती है। उसकी पूर्ति कृषि और उससे संबंधित श्रेणी से प्राप्त जाती है। कृषि क्षेत्र की उन्नति आधुनिकीकरण तथा यंत्रिकीकरण के अभाव में संभव नहीं है। कृषि तथा औद्योगिक विकास एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

मेरठ तहसील के नगरीय क्षेत्र में स्त्रियाँ अधिकांश कार्य करती हैं लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की दशा अधिक अच्छी नहीं है, सुबह से शाम तक वे खेती एवं गृहस्थी के विभिन्न प्रकार के कार्य करती रहती है। मेरठ तहसील में भी महिलाओं की व्यवसायिक कार्यों में उपस्थिति में विशेषत ही उत्साहजनक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। इस बढ़ती भागीदारी के लिए सामाजिक सोच में परिवर्तन तथा शिक्षा के प्रति बढ़ता रुझान ही जिम्मेदार है।

भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति बहुत दयनीय है। भारत विश्व की 7.5 प्रतिशत महिला रहती हैं तथा इनका जीवनस्तर मातृत्व जीवन, मृत्युदर, साक्षरता स्वास्थ्य शिक्षा बहुत कम अथवा शिथिल अवस्था में है तथा विकास के साथ महिला उत्थान की प्रगति में परिवर्तन बहुत संतोषजनक नहीं है। वर्ष 2011 में प्रति 1000 पुरुषों पर 914 महिला अनुपात था तथा यही अनुपात 2001 जनगणना वर्ष में 927 प्रति हजार था। विश्व स्तर पर महिला सशक्तिकरण में भारत का अनुपात में 0.3 है जबकि बराबरी के लिए 1.0 आदर्श स्थिति मानी गई है। अतः महिलाओं की आर्थिक विकास में सहभागिता को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इनको वोकेशनल प्रशिक्षण, स्वरोजगार हेतु प्रेरणामूलक सहयोग महिला स्वयं सहायता समूह के माध्यम से इन्हें आर्थिक विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नोबेल पुरस्कार

विजेता डा० अमृत्यसेन ने अपने शोधपत्र 'The Missing Women' में विश्व स्तर पर 30 प्रतिशत महिलाएँ कभी जन्म ही नहीं ले पातीं। 10 प्रतिशत अपने बाल्यकाल में गुम हो जाती हैं। 21 प्रतिशत संतानोत्पत्ति काल में मृत्यु का ग्रास बन जाती हैं तथा 38 प्रतिशत महिलाएँ 60 वर्ष की आयु के उपरांत मर जाती हैं, मेरठ तहसील व संपूर्ण जनपद मेरठ के विकासखंडों व क्षेत्रों में स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत पुरुषों की अपेक्षा कम होने का मुख्य कारण यहाँ के ग्रामीण अंचलों व समाज में स्त्रियों की शिक्षा के प्रति उदाससीनता व समाज में स्त्रियों का दर्जा निम्न स्तर का होना है इस क्षेत्र में बालिकाओं के लिए विद्यालयों की संख्या कम है। वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों को घरेलू कामकाज तक ही सीमित रखा जाता है। मेरठ तहसील के विकासखंडों में साक्षरता का स्तर एक समान नहीं है। 1991 में सबसे अधिक स्त्री साक्षरता रोहटा विकासखंड 27.6 प्रतिशत में थी। जबकि सबसे कम स्त्री साक्षरता विकासखंड खरखौदा 21.6 प्रतिशत थी। सन् 2001 के अनुसार सबसे अधिक महिला साक्षरता दर विकासखंड रोहटा 52.6 प्रतिशत पाई गई, जबकि सबसे कम खरखौदा विकासखंड 43.3 प्रतिशत पाई गई। 1991-2001 के बीच सबसे अधिक साक्षरता परिवर्तन मेरठ विकासखंड में दृष्टिगत हुआ। जबकि सबसे अधिक साक्षरता परिवर्तन मेरठ विकासखंड में देखने को मिला। जबकि सबसे कम परिवर्तन विकासखंड जानीखुद विकासखंड 20.1 प्रतिशत में पाया गया। इसका मूल कारण है शिक्षण संस्थाओं का अधिक होना। गाँवों के नजदीक इंटर कॉलेज व उच्च शिक्षण संस्थाओं की उपलब्धि तथा बड़े शहर के समीप होना या गाँव से शहर की दूरी कम होना आदि कारणों की वजह से साक्षरता अधिक मिली। आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन के कारण नगरीय क्षेत्रों की तुलना में साक्षरता का स्तर ग्रामीण क्षेत्रों के निम्न पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता हेतु पर्याप्त अवसरों का अभाव है। नगरीय क्षेत्रों की स्त्रियों में ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियों की अपेक्षा साक्षरता ऊँची मिलती है।

महिलाएँ अधिकतर घर का काम करती हैं। कृषि क्षेत्र में भी उनका बहुत बड़ा योगदान है। छोटे-छोटे धंधों में स्वरोजगार के रूप में काम करती हैं जैसे खाना प्रोफेसर करना, कपड़ा बनाना, बीड़ी बाना, चूड़ी बनाना, भवन-निर्माण स्थलों में काम करना, पैकिंग करना, थैले तैयार करना, कपड़े सीना, दस्तकारी इत्यादि। इन सारे कामों में महिलाओं का कितना अधिक योगदान है। इसका सीधा प्रभाव हमारी अर्थव्यवस्था दिखाई पड़ता है। जंगल से लकड़ी काटना, गृहकार्य, बच्चों का पालन-पोषण, सफाई, कपड़े धोना आदि काम भी महिलाओं द्वारा ही किए जाते हैं। कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा होने की वजह से महिला और विकास का अंतरंग संबंध है।

तालिका संख्या-1

मेरठ तहसील में कार्यशील महिला जनसंख्या का विवरण-2001

(प्रतिशत में)

विकास खंड	कुल ग्रामीण महिलाएँ	कार्यशील ग्रामीण महिलाएँ	अकार्यशील ग्रामीण महिलाएँ
रोहटा	53081	5333 (10.04 प्रतिशत)	47748 (89.96 प्रतिशत)
जानीखुर्द	61554	10666 (17.32 प्रतिशत)	50888 (82.68 प्रतिशत)
मेरठ	29387	4061 (13.81 प्रतिशत)	25326 (86.19 प्रतिशत)
श्रजपुरा	76303	6514 (8.53 प्रतिशत)	69789 (91.47 प्रतिशत)

खरखौदा	60130	5554 (9.03 प्रतिशत)	54576 (88.81 प्रतिशत)
मेरठ तहसील	281782	32128 (11.40 प्रतिशत)	69789 (88.13 प्रतिशत)

स्रोत : सांख्यिकीय पत्रिका, अर्थ एवं सांख्याधिकारी कार्यालय, मेरठ, राज्य नियोजन संस्थान, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, उत्तरप्रदेश, 2003 एवं जिला जनगणना हस्तपुस्तिका-2001

अध्ययन क्षेत्र में कुल ग्रामीण महिलाएँ 281782 हैं। क्षेत्र में कुल ग्रामीण महिलाओं में से 32128 (11.40 प्रतिशत) कार्यशील तथा 248327 अकार्यकर्ता हैं। विकासखंड रोहटा में 5333, ग्रामीण महिला कार्यकर्ताएँ तथा 47748 अकार्यकर्ता महिलाएँ, विकासखंड जानीखुर्द में 10666 महिलाएँ (17.32 प्रतिशत) कार्यकर्ता महिलाएँ तथा 50888 (82.68 प्रतिशत) कार्यशील महिलाएँ, विकासखंड मेरठ में 4061 कार्यकर्ता तथा 25326 अकार्यशील हैं। मेरठ तहसील में दशक 1981 से 2001 के मध्य ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक विकास में योगदान दिया है। 1981 में महिला कार्यकर्ता 3.62 प्रतिशत महिलाएँ थीं, जो 2001 में बढ़कर 18.1 प्रतिशत हो गई। विकासखंड के स्तर पर रोहटा विकासखंड में 1981 में 4.69 प्रतिशत से बढ़कर 15.5 प्रतिशत महिलाएँ (2001) हो गई। जानीखुर्द विकासखंड में 1981 में 5.68 प्रतिशत महिलाएँ थीं, जो 2001 में बढ़कर 22.8 प्रतिशत हो गई। मेरठ विकासखंड में 1981 में 4.69 प्रतिशत से बढ़कर 15.5 प्रतिशत (2001) हो गई। जानीखुर्द विकासखंड में 1981 में 5.68 प्रतिशत महिलाएँ थीं, जो 2001 में बढ़कर 22.8 प्रतिशत हो गई। मेरठ विकासखंड में 1981 में 3.42 प्रतिशत थीं, जो 2001 में बढ़कर 23.3 प्रतिशत हो गई। रजपुरा विकासखंड में 1981 में 2.56 प्रतिशत थीं, जो 2001 में बढ़कर 14.1 प्रतिशत हो गई। तथा खरखौदा विकासखंड में 1981 में 1.58 प्रतिशत महिलाएँ थीं, जो 2001 में बढ़कर 17.4 प्रतिशत हो गई। 1981-2001 के मध्य सबसे अधिक महिला कार्यकर्ताओं की वृद्धि मेरठ विकासखंड (19.88 प्रतिशत) में पायी गई। जबकि सबसे कम महिला कार्यकर्ताओं की वृद्धि विकासखंड रोहटा (10.81 प्रतिशत) में अंकित की गई। मेरठ तहसील में 1981-2001 के बीच 14.48 प्रतिशत की वृद्धि अंकित की गई। शहर से सटे व समीपवर्ती गाँवों में नई पीढ़ी का आकर्षण कृषि कार्य से हटकर अन्य आर्थिक कार्यों में लगा है। जनसंख्या का झुकाव व्यापार तथा नौकरी पेशा आदि की ओर बढ़ा है। मेरठ तहसील के सभी विकासखंडों के स्तर पर महिला कार्यकर्ताओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 1981 के अपेक्षा 2001 में सभी विकासखंडों में महिला कार्यकर्ताओं का प्रतिशत बढ़ा है। स्त्री कृषक विकासखंड रोहटा, जानीखुर्द व खरखौदा में बढ़े हैं। जबकि विकासखंड मेरठ व रजपुरा में स्त्री कृषकों का प्रतिशत घटा है।

तालिका संख्या-2

मेरठ तहसील में कुल कार्यशील जनसंख्या में पुरुष तथा महिलाओं का वितरण प्रतिशत में 2001

विकास खंड	कुल ग्रामीण महिलाएँ	कार्यशील ग्रामीण महिलाएँ	अकार्यशील ग्रामीण महिलाएँ
रोहटा	100	29.81	84.4 15.6
जानीखुर्द	100	33.15	77.14 22.86
मेरठ	100	32.54	76.65 23.35
रजपुरा	100	28.20	85.87 14.13

खरखौदा	100	30.04	85.47	14.6
मेरठ तहसील	100	30.41	82.4	17.59

स्रोत : सांख्यिकीय पत्रिका, अर्थ एवं सांख्याधिकारी कार्यालय, मेरठ, राज्य नियोजन संस्थान, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, उत्तर प्रदेश, 2003

मेरठ तहसील में स्त्रियाँ खेतिहर मजदूर के रूप में पुरुषों की अपेक्षा कम मात्रा में कार्य करती हैं इसका मुख्य कारण यह है कि हर परिवार के पास कुछ-न-कुछ जमीन होती है जिसमें हर स्त्री और पुरुष कार्य करते हैं जिन लोगों के पास कोई भूमि नहीं है वे अक्सर खेतिहर मजदूर के रूप में जीवन यापन करते हैं। वास्तव में ये नर-नारी स्थाई मजदूर नहीं होते हैं, बल्कि केवल फसलों की बुवाई-कटाई के समय ही खेतिहर मजदूर का कार्य करते हैं। 2001 में खेतिहर स्त्री मजदूरों की संख्या 10075 थी। मेरठ तहसील में खेतिहर स्त्री मजदूरों की संख्या सबसे अधिक जानी खुर्द विकासखंड (670) में पाई गई। जबकि सबसे कम संख्या रोहटा विकास खंड में (191) पाई गई। मेरठ विकासखंड में (422), रजपुरा विकासखंड में (547) तथा खरखौदा विकासखंड में (505) स्त्री खेतिहर मजदूर मिलीं।

तालिका संख्या-3

तहसील मेरठ में महिला कार्यकर्ताओं की व्यावसायिक संरचना (2001)

मेरठ तह०	कुल जनसंख्या	कर्मकरों का वर्गीकरण				
		कुल कर्मकरों की संख्या (मुख्य व सीमा०)	कृषक	खेतिहर मजदूर	पारिवारिक घरेलू	अन्य कर्मकर
कुल	1807911	503.029	69246	36642	24817	372324
व्यक्ति	(100 प्रति०)	(27.8 प्रति०)	(13.8 प्रति०)	(7.3 प्रति०)	(4.9 प्रति०)	(74.0 प्रति०)
पुरुष	967783	442.862	60875	26567	18722	36.698
		(45.8 प्रति०)	(13.7 प्रति०)	(6.0 प्रति०)	(4.2 प्रति०)	(76.0 प्रति०)
स्त्री	840128	60167	8371	10075	6095	35626
	(100 प्रति०)	(7.2 प्रति०)	(13.9 प्रति०)	(16.7 प्रति०)	(10.1 प्रति०)	(59.2 प्रति०)

स्रोत : सांख्यिकीय पत्रिका, अर्थ एवं सांख्याधिकारी कार्यालय, मेरठ, राज्य नियोजन संस्थान, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, उत्तर प्रदेश, 2003

महिलाएँ प्राथमिक कार्यों को छोड़कर द्वितीय व तृतीय कार्य भी करने लगी हैं। महिलाओं के शैक्षिक स्तर में सुधार हुआ है। अब महिलाएँ अन्य कार्यों में रुचि लेने लगी हैं। वे शहर की ओर पलायन कर रही हैं। वर्तमान में अधिकतर महिलाओं का विवाह शहरों में होने लगा है और वे पति के साथ शहर की अर्थव्यवस्था व घरेलू कार्य में हाथ बँटा रही हैं। नगरों में महिलाएँ हॉस्टल में नर्स के रूप में, पब्लिक व प्राइवेट स्कूलों में टीचर, बैंकों में, पुलिस में, रेलवे में और बड़े-बड़े शोरूम में कार्य कर रही हैं। महिलाएँ गाँव व शहर के आँगनवाड़ी केंद्रों में कार्य कर रही हैं। शहर से सटी फैक्ट्रियों में भी कुछ महिलाएँ काम करने लगी हैं। शहरों में रोजगार के अनेक अवसर प्राप्त हो रहे हैं और महिलाएँ विभिन्न कार्यों में पुरुषों से कंधे-से-कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं। वहीं गाँवों में महिलाएँ कृषि कार्य काश्तकार के रूप में खेतिहर मजदूर

के रूप में, कढ़ाई-बुनाई, आशा के रूप में, आँगनवाड़ी केंद्रों में, मनरेगा में व प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण कार्य कर रही हैं। इस सभी कारणों की वजह से ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं का खेतिहर मजदूरों का प्रतिशत घटा है।

तहसील मेरठ में कृषि व्यवस्था के साथ ही साथ स्त्रियाँ अन्य कार्यों में भी लगी रहती हैं जिससे उनकी जीविका चलती है तथा धनोपार्जन के साधन उपलब्ध रहते हैं। ऐसे कई गाँव मेरठ तहसील में हैं, जहाँ स्त्रियाँ खेती के अतिरिक्त अन्य काम-धंधे करती हैं। ये कार्य बहुत बड़े पैमाने पर तो नहीं होते हैं, परंतु परिवार का खर्च चलाने में सहायक होते हैं। अन्य कार्य जैसे मिट्टी के बर्तन बनाना, दूध बेचना, उपले बनाकर बेचना, अचार बेचना, सिवैया बेचना, टोकरियाँ, हाथ के पंखे, फनीचर, रस्सियाँ, चारपाई बुनना, टेलरिंग, सब्जियाँ बेचना, फल बेचना, गुड़-शक्कर का उत्पादन आदि लघुउद्योग व कुटीर उद्योग में महिलाओं का अधिक योगदान रहता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मेरठ तहसील के सभी ग्राम समूहों में स्त्रियों का योगदान अधिक है।

महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय है। सन 1971 व 1991 के मध्य महिलाओं की आर्थिक स्थिति में बहुत अधिक सुधार नहीं हुआ है। पारिवारिक उद्योग व भिन्न उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी 20 सालों में अधिक नहीं हुई है। हमारे समाज में स्त्री-पुरुष जीवन स्तर एक समान नहीं है और रोजगार के अवसर महिलाओं के लिए कम हैं। ग्रामीण क्षेत्र का विकास न होने के कारण ही शहरी क्षेत्र पर दबाव बढ़ता रहा है। शहरों में सुलभ सुविधाओं के प्रति आकर्षित होकर गाँवों के लोग शहरों की ओर पलायन करते हैं। मानव श्रम के अभाव में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिति दयनीय हो जाती है और आबादी का भार बढ़ने से शहरी व्यवस्था चरमरा जाती है। ग्रामीणों को शहरी क्षेत्रों में विद्यमान जल, सड़क, भवन, विद्युतिकरण और दूरसंचार केनक्टीविटी आदि सुविधाएँ आकर्षित करती हैं। यदि यह सुविधाएँ गाँवों में उपलब्ध हो जाएँ, तो लगभग सारी समस्याओं का निदान हो जाएगा। जब तक ग्राम्यजीवन और गाँवों के कुटीर उद्योगों को जीवित नहीं किया जाएगा, तब तक गाँव का पुननिर्माण नहीं हो सकता। गाँवों में कृषि-विकास व विस्तार, पशुपालन, मत्स्यपालन, वन-विकास, लघु व कुटीर उद्योगों के विकास का भार पंचायतों के कंधों पर ही है। गाँव में सफाई, चिकित्सा, शिक्षण-व्यवस्था, बिजली-पानी व सिंचाई जैसी आधारभूत सुविधाओं का प्रावधान पंचायतीराज संस्थाओं के द्वारा किया जाता है। इसके साथ ही महिला वर्ग, गरीब वर्ग व पिछड़े वर्ग के कल्याण हेतु विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं सामुदायिक परिसंपत्तियों के निर्माण, रखरखाव व देखभाल की जिम्मेदारी पंचायतों पर है। पंचायती संस्थाएँ गाँवों को सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से सशक्त बनाकर उनके सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए कटिबद्ध है।

यहाँ पर महिलाओं को दायम दर्जे का नागरिक माना जाता है। महिलाएँ अपने-आपको असुरक्षित महसूस करती हैं। दूसरा पुरुष अपनी घर की महिलाओं को इन कार्यों व धंधों में भेजना अपना अपमान समझते हैं और मान-सम्मान से जोड़कर देखते हैं और महिलाओं के लिए यह कार्य दायम दर्जे का माना जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जनता आर्थिक रूप से कमजोर होती है, रहन-सहन का स्तर भी निम्न होता है तथा साक्षरता भी कम मिलती है। ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त अवसरों का अभाव है। आर्थिक पिछड़ापन व जाग्रति भी इसके मुख्य कारण हैं, जो महिलाएँ कार्य करती हैं। उन पर परिवार को दोहरा भार आ जाता है। दिनभर कार्यालय, स्कूल, बैंक अथवा दूसरे प्रतिष्ठानों

में काम करने के बाद घर लौटने पर उन्हें बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त सभी काम करने पड़ते हैं, जो सामान्य गृहणियों के द्वारा किए जाते हैं।

आज स्त्रियाँ अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर नहीं हैं। शिक्षा की प्रगति तथा बदलती हुई मनोवृत्तियों के प्रभाव से अब सभी क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। उच्च स्तर की प्रशासनिक और पुलिस सेवाओं में भी स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। आज स्त्रियाँ बड़े-बड़े उद्योगों का संचालन कर रही हैं तथा चिकित्सकों एवं सलाहकारी सेवाओं में उनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। महिलाओं को एकजुट करने, उनके समूह बनाने, तकनीकी, संगठनात्मक और वाणिज्यिक क्षमता और सामर्थ्य में सुधार के लिए पर्याप्त संसाधनों के साथ नए कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए। ये कार्यक्रम महिलाओं और अन्य संगठनों के साथ परामर्श से बनाए जाने चाहिए। इससे सरकार के कृषि विभागों के प्रयासों को पूरा करने में मदद मिलेगी।

मेरठ तहसील का आर्थिक ढाँचा मजबूत होने के कारण शिक्षा व यातायात एवं तकनीकी सहायता के कारण महिलाएँ नए उद्योगों में काम करती हैं और सरकार द्वारा दी जाने वाली सरकारी छूट का पूरा लाभ उठाती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा स्त्री-जाति का अधिकांश वर्ग अशिक्षित है। मेरठ तहसील के ग्रामीण क्षेत्र में हर परिवार की स्त्रियों को खेती के कार्य के साथ-साथ अन्य घरेलू कार्यों में भी हाथ बटाना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्री वर्ग को खेतिहर मजदूरों के रूप में कार्य करते देखा गया है।

आज यदि ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों को वस्तुओं के उत्पादन, उनकी खरीद-बेच, पोषण, स्वच्छता और स्वास्थ्य, भोजन बनाने तथा बालकों की उचित तरीके से देखभाल करने के संबंध में अनौपचारिक शिक्षा सुविधाएँ प्रदान की जाएँ, तो गाँव में स्त्रियों की स्थिति को सुधारा जा सकता है। व्यावहारिक रूप से आज भी नारी को पुरुषों के समान अधिकार नहीं मिले हैं। महिलाओं की क्षमता का पूर्ण विकास किए बिना किसी भी आर्थिक व्यवस्था का विकास संभव नहीं है। कोई भी समाज या राष्ट्र तब तक अपूर्ण है, जब तक उसमें महिलाओं का विकास और विकास का लाभ महिलाओं तक पहुँचाने की व्यवस्था सम्मिलित नहीं है। महिलाएँ राष्ट्र के विकास के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानवीय संसाधन हैं जिनका पूर्ण और प्रभावी उपयोग और विकास राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य है। यदि महिला-शक्ति का उचित पोषण और नियंत्रण किया जाए, तो वह राष्ट्र को प्रगति की ओर ले जाने वाली महान शक्ति बन सकती है। महिलाओं के विकास में भागीदारी बढ़ाने के लिए उनके व्यक्तित्व का विकास जरूरी है। महिलाओं की क्षमता का पूर्ण विकास किए बिना किसी भी आर्थिक-व्यवस्था का विकास संभव नहीं है। आज जरूरी है कि हम आधी आबादी को उसका पूरा हक प्रदान करें। तभी हम और हमारा समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा। समाज के संतुलित विकास हेतु ऐसा किया जाना अति आवश्यक है। आज महिलाओं को शिक्षित करने की जरूरत है ताकि वे सामर्थ्यवान और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बन सकें। महिला शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. आशुतोष शुक्ल, ग्रामीण भारत में उठाए गए नए कदम, अंक 12, वॉल्यूम 37, अक्टूबर 2012, कुरुक्षेत्र,

पृ० 38-42

2. सुभाष सेतिया, गाँवों से पलायन : कारण और निवारण, अंक-2, वॉल्यूम 57, कुरुक्षेत्र, पृ० 0.19-25
3. अखिलेशचंद्र, मिला रोजगार, रुका पलायन, अंक 04, वॉल्यूम-58, कुरुक्षेत्र, फरवरी-2012, पृ० 14-19
4. भारतीय गजेटियर, उ०प्र०, जिला मेरठ, 1994, उ०प्र० शासन, लखनऊ
5. सरिता यादव, गाँवों में शैक्षिक विकास एवं चुनौतियाँ अंक-07, वॉल्यूम-57, कुरुक्षेत्र, मई-2011, पृ० 12-18
6. अनीता मोदी, पर्यावरण संरक्षण में ग्रामीण महिलाओं का योगदान, अंक-07, वॉल्यूम-58, न० 08, कुरुक्षेत्र, जून-2012, पृ० 26-30
7. उमर फ़ारुखी, महिला सशक्तिकरण में पंचायतीराज की भूमिका, अंक-07, वॉल्यूम-56, न०-12 कुरुक्षेत्र, अक्टूबर-2012, पृ० 37-42
8. नीरजकुमार गौतम, गाँवों का बदलता स्वरूप, अंक-07, वॉल्यूम-58, नं०-12 कुरुक्षेत्र, अक्टूबर-2012, पृ० 37-42
9. सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद-मेरठ, 2005, अर्थ एवं सांख्याधिकारी कार्यालय-मेरठ, राज्य नियोजन संस्थान, अर्थ एवं संख्या प्रभाग, उ०प्र०
10. अमृत पटेल, कृषिक्षेत्र में महिला योजनाएँ, वर्ष-56, अंक-6, जून-2012, पृ० 11-13
11. रश्मिसिंह, स्त्री शक्ति-महिला सशक्तिकरण, योजना, वर्ष-56, अंक-6, जून-2012, पृ० 39-41
12. ममता मोहन, सशक्तिकरण : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, योजना, वर्ष-56, अंक-6, जून-2012, पृ० 43-45
13. जी०आर० वर्मा, स्त्री अधिकारिता और कानून, योजना, वर्ष-56, अंक-6, जून-2012, पृ० 53-54

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● निश्चर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल गज़ल और उसका व्याकरण	250.00
● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2	700.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00
शोध अंक भाग-19	200.00

शोध अंक भाग-20	200.00
शोध अंक भाग-21	200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
डॉ० कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • डॉ० अंजु भटनागर	500.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • डॉ० ज्योति सिंह	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • डॉ० ज्योति सिंह	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • डॉ० मिथिलेश माहेश्वरी	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • डॉ० मनोजकुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • डॉ० दीपा के०	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) • डॉ० मीना अग्रवाल	450.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • डॉ० हरीशकुमार सिंह	350.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • डॉ० वी० जयलक्ष्मी	450.00
साठोत्तरी हिंदी-गज़ल : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • डॉ० अनिलकुमार शर्मा	350.00
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ • डॉ० शंकर क्षेम	150.00
गज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • डॉ० ज्योति व्यास	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्व • डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • डॉ० अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • डॉ० ओमदत्त आर्य	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
साहित्य और संस्कृति • डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • डॉ० आशा रावत	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • डॉ० प्रेम जनमेजय	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • विनोदचंद्र पांडेय	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ० सुरेंद्र विक्रम का योगदान • डॉ० स्वाति शर्मा	450.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • डॉ० शुचि गुप्ता	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • डॉ० शिवशंकर लधवे	200.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • डॉ० पी०आर० वासुदेवन	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • रवींद्र प्रभात	300.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • डॉ० मीनल रश्मि	250.00

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
हिंदी सिनेमा में दांपत्य-संबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	450.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (गीत खंड) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दोहा खंड) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
अमरकांत का कथासाहित्य • डॉ० योगेश पाटिल	450.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • डॉ० अनुभूति भटनागर	450.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बाबू झोलानाथ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
भज्जी का जूता • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्लियर फंडा • महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • काका हाथरसी	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • काका हाथरसी	200.00
कक्के के छक्के • काका हाथरसी	200.00
लूटनीति मंथन करी • काका हाथरसी	200.00
खिलखिलाहट • काका हाथरसी	200.00
वसीयतनामा • पं० सूर्यनारायण व्यास, सं० राजशेखर व्यास	150.00
पैसे कहाँ से दें • डॉ० आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • डॉ० आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • महेश राजा	150.00
ए जी सुनिए • अशोक चक्रधर	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • अशोक चक्रधर	100.00
चुटपुटकुले • अशोक चक्रधर	60.00
तमाशा • अशोक चक्रधर	60.00
सो तो है • अशोक चक्रधर	60.00
हँसो और मर जाओ • अशोक चक्रधर	60.00
नमस्ते जी • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
अजगर करे न चाकरी • बाबूसिंह चौहान	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • गोपाल चतुर्वेदी	150.00

सच का सामना • हरीशकुमार सिंह	150.00
• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर • डॉ० शिव शर्मा	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
धमकीबाषी के युग में • निश्तर खानकाही	60.00
नो टेंशन • डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
ला खर्चा निकाल • गजेन्द्र तिवारी	200.00
जलनेवाले जला करें • गजेन्द्र तिवारी	60.00
ये है इंडिया • डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल • डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे • डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00
देवेंद्र के कार्टून • देवेंद्र शर्मा	80.00
कार्टून कौतुक • देवेंद्र शर्मा	120.00
लिफ्राफ़े का अर्थशास्त्र • डॉ० पिलकेंद्र अरोरा	120.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • सूर्यकुमार पांडेय	100.00
कहानी	
जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
छोटे-छोटे सुख • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
कथा जारी है • बाबूसिंह चौहान	150.00
इक्कीस कहानियाँ • सत्यराज	100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • डॉ० दिनेशचंद्र बलूनी	200.00
एक बौना मानव • महेशचंद्र द्विवेदी	100.00

लव जिहाद • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
हैं आस्माँ कई और भी • नीरजा द्विवेदी	200.00
कौन कितना निकट • रेणु 'राजवंशी' गुप्ता	120.00
लघु कथाएँ • डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00
कमरा नंबर 103 • सुधा ओम ढींगरा	150.00
इमराना हाज़िर हो • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • सं० इला प्रसाद	150.00
कुत्तेवाले पापा • मीना अग्रवाल	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका	150.00
लघुकथाएँ मानव-जीवन की • सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'	150.00

उपन्यास

इतिहास की आवाष • राजेन्द्र मिश्र	450.00
अनोखा उपहार • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
तीन बीघा षमीन • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
मन के जीते जीत • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कालचक्र से परे • श्रीमती नीरजा द्विवेदी	200.00
भीगे पंख • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
मानिला की योगिनी • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
और लहरें उफनती रहीं • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • डॉ० आशा रावत	150.00
एक चेहरे की कहानी • डॉ० आशा रावत	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० आशा रावत	100.00
इतिहास की आवाज़ • डॉ० राजेन्द्र मिश्र	450.00

एकांकी-नाटक

• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मंचीय व्यंग्य एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00

भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
संसार : एक नाट्यशाला • बाबूसिंह चौहान	150.00
ग्यारह एकांकी • डॉ० हरिशरण वर्मा	200.00
दमन • रामाश्रय दीक्षित	100.00
स्वप्न पुरुष • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	150.00
अफलातून की अकादमी • डॉ० शिव शर्मा	150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • निश्तर खानकाही	125.00
यादों का मधुबन • कृष्ण राघव	150.00
समय के चाक पर • डॉ० लालबहादुर रावल	125.00
समय एक नाटक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • बाबूसिंह चौहान	60.00
मकड़जाल में आदमी • बाबूसिंह चौहान	80.00
उफनती नदियों के सामने • बाबूसिंह चौहान	100.00
पीठ पर नील गगन • बाबूसिंह चौहान	100.00
इन दिनों समर में (प्रकाशनाधीन) • डॉ० कृष्णकुमार रत्नू	250.00
अनुभव के पंख • चंद्रवीरसिंह गहलौत	250.00

गीत-गुजल

निश्तर खानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ निश्तर खानकाही	500.000
ग़षल मैंने छोड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	80.00
ग़षलों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	150.00
कोई आवाष देता है • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
दिन दिवंगत हुए • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00

रोशनी बनकर जिओ (गज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
शिकायत न करो तुम (गज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आदमी है कहाँ (गज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
प्रतिनिधि गज़लें ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मातृभूमि के लिए ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	200.00
संघर्ष जारी है ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	170.00
जीवन-पथ में ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
देश हम जलने न देंगे ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
उजियारा आशाओं का ● तारा प्रकाश	150.00
बुलंदी इरादों की ● तारा प्रकाश	150.00
चलने से मंषिल मिलती है ● तारा प्रकाश	200.00
इंद्रधनुष ● तारा प्रकाश	200.00
संवेदनाओं के रंग ● तारा प्रकाश	200.00
तारा प्रकाश समग्र ● तारा प्रकाश	600.00
शमा हर रंग में जलती है ● रामेश्वरप्रसाद	150.00
आदमी के हक में (गज़ल-संग्रह) ● रामगोपाल भारतीय	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) ● रमेश कौशिक	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) ● रमेश कौशिक	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) ● आर्यभूषण गर्ग	200.00
राधेय (खंडकाव्य) ● डॉ० आकुल	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) ● डॉ० आकुल	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(गज़ल-संग्रह) ● डॉ० आकुल	120.00
आसमान मेरा भी है (गज़ल-संग्रह) ● किशनस्वरूप	100.00
बूँद-बूँद सागर में (गज़ल-संग्रह) ● किशनस्वरूप	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (गज़ल-संग्रह) ● कर्नल तिलकराज	100.00
ज़ख्म खिलने को हैं (गज़ल-संग्रह) ● कर्नल तिलकराज	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) ● शचींद्र भटनागर	150.00
तिराहे पर (गज़ल-संग्रह) ● शचींद्र भटनागर	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) ● शचींद्र भटनागर	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) ● शचींद्र भटनागर	200.00
सुरों के ख़त ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनाते हुए ऋतुगीत ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सुबह की अंगूठी ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) ● डॉ० मीना अग्रवाल	150.00

जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) ● डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) ● डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) ● मनोज अबोध	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) ● मनोज अबोध	150.00
अग्निसुता ● राजेंद्र शर्मा	150.00
सीतायनी ● डॉ० शंकर क्षेम	150.00
एक मुट्ठी धूप ● नीरजा सिंह	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर ● डॉ० कमल मुसद्दी	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाए (ग़ज़लें) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
आँधियों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अनजाने आकाश में ● महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
बातें कुछ अनकही ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
मैंने देखा है ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
हौसला तो है ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
षिंदगी रुकती नहीं ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जख्बात की धूप ● धूप धौलपुरी	250.00
मैं एक समुद्र ● डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध'	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ ● नवलकिशोर शर्मा	180.00
जब चाँद डूब रहा था ● नवलकिशोर शर्मा	200.00
एड्स शतक ● पूरणसिंह सैनी	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) ● पूरणसिंह सैनी	300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) ● डॉ० ओमदत्त आर्य	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) ● डॉ० ओमदत्त आर्य	200.00
राष्ट्र-शक्ति ● सलेकचंद संगल	150.00
माँ तुझे प्रणाम ● सलेकचंद संगल	150.00
लहरों के विरुद्ध ● डॉ० रामप्रकाश	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता ● महेंद्र कुमार	200.00

समय के भूगोल में • राजेंद्र मिश्र	200.00
असाबिया • राजेंद्र मिश्र	200.00
पीड़ा का राजमहल • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	200.00
उड़ान जारी है • विनोद भृंग	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • रामेश्वर वैष्णव	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • हरिराम पथिक	200.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग एक) • सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग दो) • सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
मान भी जा छुटकी • गीतिका गोयल	150.00
धनुषभंजक राम • चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'	200.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • काका हाथरसी	300.00
आत्मसरोवर • ओम्प्रकाश अग्रवाल	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • नीरजा द्विवेदी	200.00
सफ़र साठ साल का • डॉ० अजय जनमेजय (सं)	400.00
यादों की गुल्लक • गीतिका गोयल, डॉ० अनुभूति (संपादक)	300.00
आधी हकीकत आधा फ़साना • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
मेरे साक्षात्कार • डॉ० बालशौरि रेड्डी	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैया'	200.00
उत्तरोत्तर • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • शंभूनाथ तिवारी	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • विनोद भृंग	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) • बालकृष्ण गर्ग	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • गीतिका गोयल	150.00
किशोर मन की कहानियाँ • डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
चलो आकाश को छू लें • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
मानव-विकास की कहानी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पार्टी गेम्स • चाँदनी कक्कड़	125.00
कागज की नाव • डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ	150.00

विविध

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
उत्तराखण्ड में आध्यात्मिक पर्यटन • डॉ० सरिता शाह	200.00
• निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
• निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
• रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर खानकाही,	
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन • डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
कन्हैया गीता • डॉ० मूलचन्द दालभ	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी • मनोज भारद्वाज	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी • डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas • Dr.Vikram Singh IPS	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 0124-4076565,

09412712789, 07838090732

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए है। लगभग 1200 पृष्ठों की इन 12 पुस्तकों का पूरा सैट मात्र 500 रुपए में दिया जा रहा है। अपना आदेश बैंक ड्राफ्ट सहित तुरंत भेजें। पुस्तकें 'पहले आदेश पहले प्राप्ति' के आधार पर उपलब्ध रहेंगी।

कहानी

कमरा नंबर 103 / सुधा ओम ढींगरा

इमराना हाज़िर हो / महेशचंद्र द्विवेदी

कुत्तेवाले पापा / डॉ० मीना अग्रवाल

प्रेमचंद : कालजयी कहानियाँ / सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका

लघुकथाएँ मानव-जीवन की /

सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

कहानियाँ अमेरिका से / सं० इला प्रसाद

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र / गोपाल चतुर्वेदी

आदमी और कुत्ते की नाक / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

सच का सामना / डॉ० हरीशकुमार सिंह

व्यंग्य-एकांकी

अफलातून की अकादमी / डॉ० शिव शर्मा

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति / नवलकिशोर शर्मा

कविता

मान भी जा छुटकी / गीतिका गोयल

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 0124-4076565,

09412712789, 07838090732